प्रतीक-शास्त्र

हिन्दी समिति-ग्रन्थमाला—९७

प्रतीक-शास्त्र

लेखक

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६४

मूल्य
दस रुपये

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, (बनारस) ६२५ -२०

प्रकाशकीय

साधारण यवहार म लोग प्रतीक चिह्न सकेत और लक्षण का समान अथ मे प्रयोग करते ह । किन्तु इन शब्दो मे सूक्ष्म अतर है जिसकी मीमासा इस ग्रथ मे भली भाँति की गयी है । प्रतीक का विषय बहुत ही रोचक है और इस शब्द के यापक अथ पर विचार करन पर ससार के अनक विषय जस विज्ञान भूगोल खगोल जीव जतु शास्त्र—इसमे आ जाते ह । तत्वशास्त्र से गूढ मे गढ बाते प्रकट होती ह जिनका साफ साफ लिखन का साहस सब नही कर पाते । प्रस्तुत पुस्तक मे एतदथ सराहनीय प्रयत्न किया गया है ।

यह पुस्तक श्री परिपूर्णानन्द वमा की दस वर्षों की साधना का परिणाम है । इसमे तत्व शास्त्र पर भी विशष ध्यान दिया गया है । प्रतीको पर विचार करते हुए लखक ने दशन मनोविज्ञान राजनीति धम अधविश्वास और स्वप्न के प्रतीको के सम्बध मे प नाप्त सामग्री दी ह । इसम पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तो की चर्चा एव आलोचना भी की गयी है जिससे इसकी उपयोगिता और भी बढ गयी है ।

सुरेन्द्र तिवारी
सचिव हिन्दी समिति

विषय-सूची

चित्र-सूची

निवेदन

प्रतीक शास्त्र के प्रकाशन के साथ मेरे लघु जीवन के दस वष की साधना तथा तपस्या को पूर्णाहुति हो रही है। सन् १९५० की महाशिव रात्रि की ही बात है। भगवान् शकर की पूजा करते समय मुझे अग्रेज़ी लेखक कटनर की एक पुस्तक का ध्यान आ गया। उन्होने सिद्ध किया था कि शिवलिग का पूजन केवल सष्टि की रचना तथा स्त्री पुरुष सम्बध का प्रतीक है। उनके उस भयकर अज्ञान से म विचलित हो उठा। मन ही तो है। पूजा पाठ के समय सबसे अधिक भागता है। वह चचल मन कई पाश्चात्य लेखको की रचनाओ की ओर भाग गया। प्रसिद्ध मनो वैज्ञानिक फ्रायड ने सप की पूजा तथा सप के प्रतीक को वासना से सम्बधित कर दिया है। हावेल लेखक ने बौद्ध मन्दिरो पर उलटे कमल का उलटा ही अथ लगाया है। स्वस्तिक के विषय मे तो अज्ञान भरी पुस्तके विदेशी भाषाओ मे भरी पडी ह। किन्तु इसमे उनका दोष नही है। इस ससार मे कितने ऐसे व्यक्ति ह जो ससार की वास्तविकता अथवा विचित्रता से परिचित ह ? कितने ऐस व्यक्ति ह जा उसकी रहस्यमयी रचना की जानकारी रखते ह। इस जगत मे सत्य क्या है ? यह कौन कह सकता है ? हम जो कुछ करते या कहते ह वह भी तो प्रतीकमय है। हमने क ख, ग अक्षर या ध्वनि को देखा नही है। उनको पहचान के लिए वणमाला बना ली। हमने भगवान् को देखा नही है—उसकी पहचान के लिए मूर्ति बना ली। म हाड मॉस का लोथडा हू। मुझे पहचानने क लिए और दूसरे प्राणियो से अन्तर करने के लिए मेरा नाम रख दिया गया है। यह सब प्रतीक ही तो हुए।

प्रश्न यह अवश्य उठता है कि यह चीज़ें चिह्न ह सकेत है या प्रतीक ह। इन तीनो मे सूक्ष्म अन्तर है--पर कितना भी सूक्ष्म अन्तर हो यह बहुत ही महत्त्वपूण है। क्या और कितना अन्तर है इसकी मीमासा तो इस ग्रन्थ मे ही मिलेगी। अंग्रेजी में चिह्न को साइन कहते ह। सकेत का वास्तविक अंग्रेजी अनुवाद इडिकेशन होगा। किन्तु प्रतीक 'सिम्बल को कहते है। सिम्बल' का आध्यात्मिक तथा विश्व-व्यापी रूप पाश्चात्य दार्शनिको मे सबसे पहले कैसिररे ने समझा था।

प्रतीक का विषय बडा ही रोचक है। इसमें पढने पर ससार के सभी विषय चाहे विज्ञान हो, भूगोल हो जीव-जन्तु शास्त्र हो—सब कुछ इसमे आ जाता है। अतएव

एक बार इस विषय पर लिखने का प्रयत्न करते ही अथाह समुद्र मे कूद पडना पडता है। किनारा दिखाई नही देता। गूढ से गूढ बाते निकलती आती ह। तत्र शास्त्र की गूढ बातो को साफ साफ लिखने का साहस भी नही होता। फिर भी यथाशक्य प्रयत्न तो यही किया गया है कि जरूरी बाते न छूटने पावे।

यह विषय रोचक है रहस्यमय भी है। अतएव बहुत चेष्टा करने पर भी कही कही पर जटिलता आ ही गयी है। पाठको को जरा ध्यान से पढना पडेगा। प्रारम्भ के अध्याया को ध्यान से पढन पर पिछले अध्यायो मे समूचा विषय स्पष्ट हो जायगा। तब पाठक अनुभव करेग कि इस सम्बन्ध मे कुछ लिखना कितना आवश्यक था।

प्रतोक शास्त्र से सम्बधित हिन्दी मे एक पुस्तक मन और देखी है। पर जिस मीमासा की आवश्यकता तथा अपेक्षा थी सम्भवत वह इसी ग्रन्थ म मिले। यदि इस पुस्तक मे किसी के निश्चित विश्वास के विपरीत कोई सिद्धान्त मिल ता म उसके लिए क्षमा प्रार्थी हू। किसी विषय के वज्ञानिक विवेचन म एसा करना ही पडता है। पर इसका यह अथ कदापि नही है कि म किसी अन्य के सिद्धान्त के प्रति पूरी श्रद्धा तथा आदर नही रखता। यह पुस्तक धमग्रन्थ या आध्यात्मिक ग्रथ नही है। शुद्धत मनोवज्ञानिक भी नहा है। एक कम बुद्धिवाल लखक का एक अनन्त विषय पर प्रकाश डालन का प्रयास मात्र है। दस वष पूव के सकल्प से उत्पन्न अध्ययन का परिणाम मात्र है।

—परिपूर्णानन्द वर्मा

प्रतीक-शास्त्र

(सकेत, लक्षण, चिह्न तथा मुद्रा का रहस्य)

'प्रतीक' की व्याख्या

सहज रूप में प्रतीक शब्द की व्याख्या करना कठिन है। इस शब्द के प्रयाग म हमारा जो तात्पय है उस अथ मे इस विषय पर देशी या विदेशी भाषाओं में कोई भी ग्र य उपलब्ध नही है। अग्रेजी भाषा में एक शब्द है सिम्बल । किन्तु जितने अर्थों म इस शब्द का प्रयोग हुआ है उससे तो सिम्बल [१] के अनक अथ हो सकते ह जसे सकेत लक्षण चिह्न तथा मुद्रा इत्यादि। चिह्न के लिए अग्रजी भाषा मे साइन [२] शब्द है। किन्तु सकेत आदि के लिए या पर्यायवाची शब्द अनक मिल जाय, पर वज्ञानिक दृष्टि से उस भाषा मे सिम्बल क अलावा दूसरा शब्द नही है।

किन्तु प्रतीक न तो सकेत है न लक्षण है और न चिह्न है। फिर भी हम अगले अध्यायो में इन सब भिन्न अथवाली चीजो पर विचार करेग। यदि प्रतीक से तात्पय उस निशानी से है जो किसी अदृश्य सामने न दिखाई पडनेवाल दृश्य वस्तु देव देवी का आभास है तो यह कहना स्यात् उचित न हो क्योकि व्याकरण के अनुसार आभास का अथ मिथ्या भी हाता है, जसे हेत्वाभास यानी मिथ्या याय। ब्राह्मणाभास यानी मिथ्या ब्राह्मण। अमरकोश में प्रतीक का अथ है— अङग प्रतीको अवयव [३]। अङग प्रतीक अवयव तीनो का समान रूप में अथ समझ लेना भी कठिन है।

अभिधानरत्नमाला मे प्रतीक को पुलिङ्ग वाचक शब्द प्रतीयते प्रत्येति वा

१ SYMBOL

२ SIGN

३ हलायुद्धकोश—सरस्वतीभवन, वाराणसी।

इति'—एक देश, अङ्ग अवयव अर्थ दिया है। इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी है[१]—वि सानुना पृथ्वी सस्र उर्वी पथु प्रतीक मध्येधे अग्नि । इसी का भाष्य करते हुए सायणाचाय ने लिखा है—

तथाग्नि पृथु विस्तीण प्रतीक पथिव्या अवयव

यदि उस अग्नि का विस्तार कर' पथु ने पथ्वी का प्रतीक अवयव बनाया तो प्रतीक उसे कहेंगे जो किसी का अग हो अवयव हो। हमारे शास्त्रकारो का मत है कि २०० कराड वष पूव सूय से पथ्वी बनी। पथु नामक विद्युत आकाश गगा से निकल कर पथ्वी को घेरे हुए है। पृथ्वी सूय से १२०० गुनी छाटी है अण्डाकार है और १८½ मील प्रति सेकण्ड की गति से सूय की परिक्रमा कर रही है[२]। अतएव पथ्वी सूय का अङ्ग है, अवयव है प्रतीक है।

१ ऋग्वेद—७ ३६ १।

२ कुण्डलिनीयोगतत्व—प्रकाशक, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सस, वाराणसी।

मूर्त्ति

क्या प्रतीक मूर्त्ति है ? मूर्त्ति देवता का अग या अवयव है यह कौन कहेगा ? मूर्त्ति स्त्रीलिग शब्द है। मनु ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है।[१] इस शब्द का अर्थ शरीर देह गात्र कलेवर प्रतिमा तथा स्वरूप है। स्वरूप के अर्थ में जसे पिता प्रजापति की मूर्त्ति है आत्मा सब प्राणियो की मूर्त्ति है बहन दया की मूर्त्ति है' इत्यादि।[२]

मूर्त्ति के लिए अग्रेजी मे आइडल (idol) शब्द है। अज्ञानवश पश्चिमी लोग हिदू को आइडल वर्शिपर यानी मर्त्ति पूजक कहते ह पर मूर्त्ति ता वह चीज है जो किसी का स्वरूप हो, देह हा तस्वीर की तरह से नकल करक बनायी गयी प्रतिमा हा। कितु कोई भी सच्चा हिदू यह नही कहेगा कि चार भुजा वाले विष्णु या जीभ निकाले हुई काली को देखकर चित्रकार ने उनकी तस्वीर खीच ली। कुम्हार ने उनकी मूर्त्ति बना ली अथवा इस प्रकार से नकल करके सामने देखकर मिट्टी या पत्थर स तस्वीर बना दी। बुद्ध की प्रतिमाओ का जिक्र करते हुए आदि शकराचाय ने अपने वेदान्त दशन मे पौत्तलिक यानी पुत्तली या पुतली की उपासना करनेवालो का जिक्र किया है।[३] ऐसी कला को पुतली कहना उचित होगा। मूर्त्ति उसी को कह सकते ह जो स्वरूप मात्र हो जसे पिता प्रजापति का स्वरूप है। बहन दया स्वरूप है। यानी उनके गुणो का प्रतिविम्ब है छाया है आकार है। सजीव प्राणी मूर्त्ति हो सकता है। गुण तथा प्रतिमा मूर्त्ति का रूप ग्रहण कर सकती है पर जिसे हम लाग साधारण तौर पर मूर्त्ति कहते हं वह मूर्त्ति नही मूर्त्ति सदश वस्तु है प्रतिमा है।

१ मनुस्मृति १२, १२० "गात्रं मूर्तिषु।"

२ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्ति पिता मूर्त्ति प्रजापते।
दयाया भगिनी मूर्त्तिर्धमस्यात्मातिथि स्वयम्।
अग्नेरभ्यागतो मूर्त्ति सर्वभूतानि चात्मन।—भागवत, ६ ७ २९ ३०।

३ देखिये वेदान्तदर्शन अध्याय २, २।

प्रतिमा

प्रतिमा स्त्रीलिंग शब्द है। प्रतिच्छाया प्रतिकृति प्रतिबिम्ब प्रतिरूप प्रतिनिधि आदि इसके पर्यायवाची शब्द ह।[१] इसलिए किसी देवी देवता की प्रतिमा की उसके प्रतिबिम्ब की पूजा की जाती है पुतली या मूर्त्ति की नही। शिव लिग का शकर की मूर्त्ति तो कह ही नही सकते। प्रतिरूप भी नही कह सकते। उस प्रतिमा केवल इसलिए कह सकते ह कि वह उनका महादेव का प्रतिनिधि है। हनुमान राम कृष्ण सूय चन्द्र आदि की प्रतिमाए हा सकती ह। इनके गुणा के कारण इनकी मर्त्ति सी बन सकती है पर विष्णु शकर काली आदि जो अवतार लेकर मनुष्य के रूप म स्वय कभी नही दिखाई पडे जिनको अपनी आखो से शकराचाय ने भी नही देखा[२] उनकी जिस रूप म हम उपासना करते ह वह उनका अवयव अग यानी प्रतीक हा सकता है। गीता मे ग्यारहवे अध्याय में भगवान के जिस रूप का वणन है वह भी ता परब्रह्म का एक प्रतीक मात्र है। प्रतीक शब्द का इसी रूप म प्रयाग वदान्तदशन म शकराचाय ने किया है। प्रतिमा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के दसवे मण्डल मे तथा श्वेताश्वतर उपनिषद के अध्याय ७ श्लोक ६ मे है।

न देखी हुई चीज़ की निशानी भी प्रतीक नही कही जा सकती क्याकि उसमे कल्पना का दोष आ जायगा। किसी ने १ अक का स्वरूप नही देखा। एक का आकार किसी ने नही देखा पर उसका रूप बना लिया गया। अतएव एक का १ प्रतीक हुआ यह तक भी भ्रमपूण होगा। एक का **सकत** १ है प्रतीक नही। साधारण आँख से न दिखाई पडने वाली पर अध्ययन तथा अनुभव स बाधगम्य वस्तु के अग और अवयव को इङ्गित करने वाली सकेत करन वाली वस्तु प्रतीक है। इसलिए वह सकेत से ऊचे उठकर समझने वाली चीज़ है।

१ गिरिपृष्ठ तु सा तस्मिन् स्थिना स्वसितलोचना।
विभ्राजमाना शुशुभे प्रतिमेव हिरण्मयी॥—महाभारत, १, १७२, २७।

२ शकराचार्य ने कहीं नहीं लिखा है कि भगवान् से उनका साक्षात्कार हुआ, उसे देखा, उसका अमुक रूप था।

सकेत

रस-सग्रह मे सकेन प्रिय शङ्कया निजपति प्रावोचदध्वश्रमम --जिस पुलिग शब्द का प्रयोग किया गया है उसका अथ है स्वाभिप्रायव्यञ्जकचेष्टाविशेष अपने अभिप्राय का व्यक्त करने के लिए जो विशेष चेष्टा की जाय जसे किसी काम को मना करने के लिए आख से इशारा करना ।[1] सकेत का अथ है परिभाषा शली प्रज्ञप्ति समय । इन सब अर्थों में प्रतीक का उपयोग नही हो सकता । सकेत का लक्षण नही कह सकते । प्रतीक का लक्षण नही कह सकते । जिससे देखा जाय और जाना जाय, वह लक्षण है ।[2] जैसे यह बात काय सिद्धि का लक्षण है । उस आदमी के लक्षण अच्छे नही ह । इसलिए किसी के आँख मटकाने के सकेत से उसके चरित्र का लक्षण जाना जा सकता है । किसी लक्षण स कोई सकेत प्राप्त हो सकता है । पर यह दाना शब्द एक दूसरे के पूरक हो सकते ह पर्यायवाची नही । इसलिए लक्षण **प्रतीक** नहो हो सकता ।

१ सकेतकालमनस विट ज्ञात्वा विदग्धया ।
हसन्नेत्रार्पिताकूत लीलापद्म निमीलितम् ॥—साहित्यदर्पण ८ २२ ।

२ लक्ष्यते, ज्ञायते अनेनेति ।

चिह्न और सकेत

अब हमारे पास एक श द और बचा है—चिह्न पर इस शब्द का अथ लक्षण है। फिर कनक अङ्कक लाछन आदि अथ म भी इसका प्रयोग करते हैं। लक्षण और चिह्न मे थोडा अ तर है। इस शब्द की याख्या के लिए हम पश्चिमी विद्वानो से भी सहायता लना उचित समझते ह। सकेत हमारी याख्या के अनुसार वह लक्षण है जिससे मार्मिक अथ छिपा हुआ तात्पय समझा जा सके जसे आख के इशारे से समझ जाना कि आओ या जाओ। पर चिह्न और सकेत म अ तर बनलाते हुए श्री लगर ने लिखा है कि चिह्न किसी वस्तु या स्थिति क भूत वतमान तथा भविष्य का द्योतक है जसे सडक भीगी है, यानी पानी बरसा हागा। रलगाडी ने सीटी दी यानी ट्रेन छूटन वाली है। पर सकेत अपने उद्दश्य का द्योतक या प्रतिनिधि नही है उसकी भावना पदा करन का साधन है। यदि हम किसी चीज की बात करते ह ता हम चीज की नही उसकी भावना की बात करते ह। इसी प्रकार सकेत हमको उस चीज की भावना की तरफ ले जाते ह।[१] जसे आख स इशारा करते समय यह स्पष्ट नही है कि चले जाओ या चले आओ। जाने या आने की भावना पदा कर दी जाती है।

कि तु एसे चिह्न की जा भूत स लेकर भविष्य तक की घटना की ओर इशारा कर दे व्याख्या करने की जरूरत पडगी। बिना समझाने वाल के बिना याख्या करने वाले के चिह्न का अपना कोई महत्त्व नही हाता। और इस याख्या के करने वाल या यो कहिये कि चिह्न के समझने वाले को उक्त काय करने के प्रति प्रेरणा मिलती है या प्ररणा म रोक लगती है। अपनी सु दर पुस्तक म पियर्स न इसे बडी अच्छी तरह से समझाया है।[२] सडक पर मोटर दौडाये हम चले जा रहे ह। हमने चौराहे पर लाल बत्ती देखी। मोटर

१ K. Sausanne Langer— Philosophy in a New Key —Pub Harvard University Press Cambridge Mass 1942, Pages 60 61

२ Charles Sanders Peirce— Collected Papers Harvard University Press 1934 Vol V Page 476

चलायें चलने की प्रेरणा को रोक लग गयी । हरी बत्ती मिली तो इस प्रेरणा को स्फूर्त्ति मिल गयी ।

यही पर सकेत तथा चिह्न में भेद भी पैदा हो जाता है । चिह्न एक स्थिति का परिचायक है । हरा बत्ती का मतलब यही है कि अब रास्ते म काई रुकावट नही है । लाल बत्ती उस समय के रास्ते के खतरे को बतला देती है । चिह्न तत्कालीन परिस्थिति को बतला देता है जब पानी बरसा तभी सडक भीगी होगी । पर सकेत पहले के अनुभव से बनता है । प्रेमी को देखकर उसे आँख के इशारे से बुलाना प्रेम के अनुभव के साथ उसके प्रति व्यवहार का सकेत हो सकता है । नदी किनारे पत्थर के घाट पर बना हुआ गढा यह सकेत करता है कि उस स्थान पर घडा रखते रखते गढा हो गया है अतएव यह सकेत घडा रखने के स्थान का अग अवयव बन गया प्रतीक हा गया । नेसन न अपनी पुस्तक में सकेत को अनुभव ज य माना है ।[१]

इस सम्ब ध में कुछ और स्पष्ट कर दिया जाय । तू तू का आवाज देने से कुत्ता खाना पाने के लालच से आता है । तू तू करने पर उसे खाना मिलता है ऐसा उसका अनुभव है इस दृष्टि से इस साकेतिक चिह्न कह सक्ते ह । किन्तु तू तू करने वाला कुत्ते को खाना देगा या लात मारेगा यह निश्चित नही है । लात भी मार सकता है । सीटी देने के बाद भी ट्रेन खडी रह सकती है । भूल से पुलिस मन सडक पर सवारियो की भीड रहते हुए भी हरी बत्ती दिखा सकता है । इसीलिए चिह्न के साथ आभास भी मिला हुआ है । चिह्न झठा भी हो सकता है । पर खतरे की जगह पर सडक के बेढगे मोड पर यदि मनुष्य की खोपडी की तस्वीर बनाकर लगा दी गयी हो तो वह अकाट्य सकेत है और प्रतीक भी है । उस मोड पर तेज़ मोटर चलान से मौत हुई है । जो भी तेज़ रफ्तार से चलेगा वह खतरा उठा रहा है । अतएव मृत्यु का सकेत बना है । मृत्यु का किसी न देखा नही है । उसका अङ्ग तथा अवयव है नर मुण्ड अतएव यह खोपडी मृत्यु का प्रतीक है । इस सकेत इस प्रतीक म कोई भूल हा नही सकती । यदि तेज़ रफ्तार से मोटर चलाने पर भी वहाँ कोइ नही मरा तो यह प्रतीक का दोष नही है । अनुभव बतलाता है कि अधिकाश लोग मरे—अतएव वह अनुभव उस सकेत का आधार है । चिह्न भूल कर सकता है प्रतीक या सकेत नही ।

१ Robert M Yorkes and Henry W Nessen—Chimpanzees Laboratory Colony—Yale University Press, New Haven 1943 page 177

सकेत तथा प्रतीक की बडी भारी विशेषता यह है कि यो देखने में वे किसी आवश्यकता की पूर्ति नही भी कर सकते। उदाहरण के लिए प्राचीन शिवालयो पर सबसे ऊपर उलटा हुआ कमल बना मिलेगा---कमल की नाल ऊपर होगी। बौद्धो के चत्य मे भी ऐसा ही मिलेगा पर साधारण व्यक्ति इसे देख कर एक भूल ही कह सकता है। कमल को सीधा क्यो नही बनाया ? किन्तु इस महान तथ्य को बिना समझे नही जाना जा सकता कि इस मानव शरीर के भीतर नाडियो ने उलटा कमल बना रखा है। वही पुरुष अपने जीवन को तथा परलोक का साथक करता है जो योगाभ्यास द्वारा इस उलटे कमल को सीधा कर देता है। कमल की नाल को नीचे ले आता है। योग के इस महान तत्त्व को हर शिवालय तथा बौद्ध चत्य मे बतलाया गया है पर बिना स्पष्ट किये उसे कोई नहा समझ सकता। इस प्रकार यह उलटा कमल एक बड़े यौगिक तथ्य का प्रतीक है। उसका सकत है। इसे चिह्न नही कहग। चिह्न से कभी एकदम स्पष्ट बात नही मालूम हा सकती। क्या अच्छा वस्त्र किसी व्यक्ति की उच्चता का चिह्न है ? क्या मधुर कण्ठ अच्छ चरित्र का चिह्न है ? सडक पर हरी बत्ती का मतलब निश्यचत यह नही होता कि रास्ता साफ हागा पुलिसमन की भूल भी हो सकती है। मकान म खाने की घटी बजन से खाना मिलना निश्चित नही है। हा सकता है कि घर म भोजन सामग्री न हो चाय पर ही काम चल जाय। चिह्न का परिणाम सशयात्मक होता है। उसका अर्थ अस्पष्ट हाता है इसीलिए बहुत से लखक इस शब्द का उपयाग नही करते।[१]

१ Charles Morris—Signs Language and Behaviour—University of Chicago Prentice Hall Inc New York

चिह्नक

चिह्न किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है। यही चिह्न का आधार होता है।[१] खाना खाने की घटी खाने की आवश्यकता की पूर्ति करती है। पर भोजन के प्रतीक नाज का चित्र खाने का द्योतक मात्र है। खाने की आवश्यकता की पूर्ति वह नही करता। चिह्न कहाँ सकेत बन जाता है इसकी व्याख्या करते हुए मौरिस कहते ह कि जब किसी वस्तु के स्थान पर उसको व्यक्त करने के लिए एक चिह्न बना दिया जाता है और उस चिह्न से उस वस्तु का बोध होने लगता है तब वह चिह्न सकेत या प्रतीक बन जाता है। बोध कराने वाली क्रिया को चिह्न की सकेत क्रिया कहेगे। पर जब चिह्न किसी काय की जरूरत को पूरा करता है उसे केवल चिह्नक (अग्रेजी मे सिगनल) कहते हैं। सकेत वह चिह्न है जा किसी अय चिह्न की ओर सकेत करे किसी अय चिह्न के बदले मे हो। सभी चिह्न चिह्नक होते ह। सभी सकेत चिह्नक नही होते।[२]

यही पर शका होती है कि क्या सब चिह्नक किसी विचार या भाव के द्योतक होत ह जस रल की पटरी पर सिगनल गिरा है यानी ट्रेन जान क लिए रास्ता साफ है। इस प्रकार टेन के आने जाने की सूचना देने का काय तो वह चिह्नक कर रहा है। स्वत वह चिह्नक किसी विचार का परिणाम है पर विचार का बोध कराने वाला नही है। एक बडे लेखक का कहना है कि कोई यक्ति किसी चिह्न के विषय म अपन विचार अपनी भावना अपने अनुभव आदि की बाते कह सकता है। उसके लिए एक ही चिह्न के बारे मे भिन्न भिन्न अनुभव हो सकते ह जसे किसी देश म हरी बत्ती का मतलब है अपन बाये से जाओ पर कही दाये से जाओ। पर चिह्न स्वय इतना निर्जीव पदाथ है कि उसके बारे मे तो अनुभव प्राप्त किया जा सकता है पर उससे स्वत कोई अनुभव नही होता।[३] चिह्न किसी पदाथ के लाभ के लिए होता है। रेलवे सिगनल ट्रेन के डब्बो के लिए कोई

१ वही, पृष्ठ ५६।

२ वही, पृष्ठ २५।

३ A Hofstandter— Subjective Theology in Philosophy and Phenomenological Research —Vol 2 1941 pages 88 97

ग्रथ नही रखते। वे इजिन ड्राइवर को ग्रादेश देते है प्रभावित करते ह। किसी पदाथ या वस्तु को प्रभावित करने वाली वस्तु का नाम चिह्न है। बिना चिह्न बनाये या बने भी चिह्न की सत्ता हो सकती है।[1] सडक पर कोई नही चल रहा है। इसका मतलब है कि किसी भयवश लोग मकान के भीतर छिपे हुए ह्। चिह्न जिस पदाथ की ग्रोर इशारा करता है उसका -याख्याता दुभाषिया है। पर वह कवल काम की ग्रोर इशारा कर सकता है। काम हागा या नही यह नही बतला सकता। खाने की घटी बजी। इसका मतलब यह हुग्रा कि खान का समय हो गया। पर खाना मिलेगा या नही यह कौन कह सकता है। कि तु किसी चीज का हम चिह्न तभी मानते ह जब ग्रधिकाश ग्रवसरा पर उसक द्वारा इगित बात सही निकल। घटी दिन भर बज सकती है पर ग्रधिकाश ग्रवसर पर खान की घटी बजत ही खाना मिलता है। कभी ग्रगर न मिले ता चिह्न का तिरस्कार नही किया जाता। इसीलिए बिना विश्वसनीयता के चिह्न हा नही सकता। प्राय हरी बत्त। का मतलब होता है कि रास्ता साफ है। ग्रधिकाश चिह्न सभी ग्रवसरा पर एक ही ग्रथ रखते ह। पर कुछ चिह्न एक ही माक के लिए हाते ह। चिह्न एकवाचक तथा बहुवाचक दाना ही हाते ह।[2] लोग घर म रहे यहा पर घर चिह्न का काम दे रहा है। चिह्न किसी एक काम की ग्रार ल जाता हे। जहा पर शरीर द्वारा कोई काय जसे सीटी बजाना ग्राख मटकाना ग्रादि चिह्न पदा हो उस श द धारी चिह्न कह सकत ह। चिह्न स भाषा का वाणी का ध्वनि का काम बहुत हल्का हा जाता है। बार बार किसी म हटो बचा कहन के स्थान पर चिह्न क रूप मे हरी बत्ती बडा काम देती है। ग्रतएव क्या चिह्न भाषा का रूप भी ग्रहण कर सकता है? क्या भाषा चिह्न है?

१ Morris—pages 15 16 17

२ वही, पृष्ठ २१ २२।

भाषा और चिह्न

भाषा भी चिह्न स्वरूप है पर बहुत से चिह्नो को मिलाकर भाषा बनती है। भाषा मे प्रत्येक चिह्न की अपनी विशेषता है और उसके अनेक अर्थ हो सकते ह। भाषा में जो चिह्न ह वे अन्य चिह्नो से परस्पर सम्बधित होते ह। अनेक प्रकार के गूढ चिह्नो के सयोग स भाषा बनती है। भाषा मे चिह्न तथा प्रतीक दोनो ही होते ह।[१] इस विषय में विद्वानो की भिन्न भिन्न राय है कि चिह्न किस सीमा तक भाषा का काम करता है या भाषा किस सीमा तक चिह्न है। साधारण जीवन म हमारा जो आचरण समाज से सम्बध नही रखता वह व्यक्तिगत आचार कहलाता है। नित्य की क्रिया शौच इत्यादि शुद्ध व्यक्तिगत आचार ह। यो तो व्यक्ति के हर एक आचरण का समाज पर किसी न किसी रूप में प्रभाव पडता ही है पर व्यक्तिगत और सामाजिक आचार की मर्यादा सदव भिन्न होगी। जब हम भाषा का उपयोग करते ह तो उससे अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता ही नही पूरी करते समाज की जरूरत भी पूरी करते हैं। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने के लिए भाषा का उपयोग करना सीखना ही होगा। पर जिस समय भाषा का जन्म नही रहा होगा चिह्न तथा सकेत से ही वह अपने अभिप्राय व्यक्त करता रहा होगा। मुह से शब्द निकाल कर एक व्यक्ति अपनी बात अपना विचार अपना मनोभाव दूसरे को सुनाता है बतलाता है। दूसरा उसे ग्रहण करता है। मुह से हम जो कुछ कहते ह उसे दूसरा भी उसी भाव से सुनता है जिस भाव स हमने कहा यह सदेह की बात है। हमने प्रेमवश अपने बच्चे को उपदेश दिया। उस उपदेश के भीतर छिपा प्रेम न भी दिखाई दे। उसके लिए वह फटकार ही बन जायगा। चिह्न जिस सीमा तक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करता है वहा तक वह भाषा बन जाता है। पर भाषा के अनेक अर्थ हो सकते हं। उससे भाव कुभाव बन सकता है। चिह्न अपने इशारे पर अटल है। वह जो कहना चाहता है उसको उसी रूप म ग्रहण करना होगा। इसलिए मोटे तौर पर यह मान लिया गया है कि भाषा चिह्नो का समुच्चय है पर भाषा के साथ भाव का जो तादात्म्य है वह चिह्न के साथ नही हो सकता।

१ G H Mead— Concerning animal perception —Psychological Review—14-1907 pages 383 90

भाषा और सकेत

यहाँ पर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या भाषा के चिह्न सकेत और प्रतीक का काम देत हैं ? मौरिस का कहना है कि बोले हुए शब्द बालने वाले और सुनन वाले दोनो के लिए सकेत तथा प्रतीक का काम देते ह ।[१] बहुत से व्यक्ति अपरिचित भाषा मे कही गयी बात का तात्पय समझ लेते ह । पर उस भाषा का बोल नही सकते । यह समझ केवल उस अज्ञात भाषा के सकेत से प्राप्त हुई ।[२] मीड नामक लेखक का कहना है कि पहले से ही निश्चित सीधे सादे चिह्नो से ही भाषा के सकेत बन जाते है ।[३] नही की निशाना सर हिलाना है । नही कहते हुए चाहे अग्रेजी मे नो जमन मे निख्त कुछ भी कह अस्वीकृति का एक सकेत बन जाता है । हर एक व्यक्ति के जीवन मे जो अनुभव हाते ह उन्ही के आधार पर उन्ही का लेकर भाषा के सकेत बन जाते ह । और चूँकि इन सकेता के साथ सबका निजी अनुभव मिला हुआ है इन्ह समझन मे किसी को कठिनाई नही हानी । इसी प्रकार आकृति भी सकेत तथा भाषा का काम करती है । आकृति देखकर हमे जो सकेत प्राप्त होता है वह हमारे अनुभव की बात है । किसी को दाँत पीसत हुए देखकर हम समझ जाते ह कि वह क्रुद्ध है । फिर उसके साथ कसा यवहार किया जाय इसका हम निणय करते हैं । पर सभी का दात पीसना क्रोध का द्योतक नही हो सकना । आचरण म जा चिह्न बनते या मिलते ह वे ज्यादातर आदतन होत ह ।[४] किसी का आख मटकान की आदत ही होती है । पर मन म भाषा की कल्पना करके मन ही मन भाषा का उपयोग करके मनष्य भाषा का नही भाषा के सकेत का उपयाग कर रहे ह । मन के भीतर सोचना मन ही मन बाते करना अपन से बात करना यह सब भाषा का उपयाग नही है भाषा के सकेत का उपयाग है ।[५] भाषा वास्तव म भाषा तब होती है जब वह किसी को सुनाने के लिए किसी दूसरे के कान

१ Morris Signs Language and Behaviour—page 34

२ वही, पृष्ठ २५३ ।

३ G H Mead— Mind, Self and Society Pub University of Chicago 1938—page 54

४ Morris page 310

५ वही, पृष्ठ ४८ ४९ ।

तक पहुँचाने के लिए बोली जाती है। बहुत-सी भाषाए ऐसी है जो शुद्ध साकेतिक हैं या चिह्न-स्वरूप हैं।[1] चीनी भाषा मे जो लिपि है वह साकेतिक है। पक्षी शब्द के लिए पक्षी का चित्र बना देने से काम चल जाता है। चीन के महान देश मे हजारो भाषाए है पर लिपि एक ही है। युगो तक चीन एक ही सम्राट के अधीन था अतएव एक लिपि चालू रही। फलत चीन के हर कोने का आदमी अपने परिचित पडोसी अपरिचित भाषा भाषी के पत्र को समझ सकता है। पक्षी का चित्र सामने यदि है तो बड चिडिया कुछ भी कहिए लिखावट से एक ही चीज निकलगी।

अस्तु चिह्न का मानव जोवन में बडा भारी महत्त्व है।[2] आधुनिक वज्ञानिक अनुसन्धानो ने इस महत्त्व को प्रमाणित कर दिया है। चिह्न के महत्त्व पर हम आज नया विचार नही कर रहे ह। यूनानी सभ्यता के समय से इस विषय पर खोज और शोध जारी है। मनाविश्लेषको न आज सिद्ध कर दिया है कि बहुत से मानसिक रोगियो की व्याधि चिह्नो के कारण पदा हुई है।[3] चिह्न मोटे तौर पर किसी एसी वस्तु के प्रति ध्यान आकृष्ट करता है किसी एसे काम के प्रति प्ररित करता है जिसकी ओर उस समय ध्यान नही गया हो। ऐसा चिह्न देखकर तथा उसका अथ निकाल कर जब कोई वसा ही दूसरा चिह्न बनाता है जा समानाथक हो जसे किसी न दरवाजे पर कोई निशान बनाकर उस स्थान पर आन का मना किया और जिसे मना किया गया उसन उसका उत्तर आँख से इशारा करक दिया कि म जा रहा हू तो आँख का यह इशारा सकेत कहलाएगा। सभी सकेत भाषा के पूव की स्थिति ह या भाषा के बाद की स्थिति है।[4] म जा रहा हू न कहकर आंख से इशारा करके उठ जाना यह भाषा क पूव की स्थिति हुई। किसी चिह्न को देखकर शरीर के किसी अग से जो क्रिया बनती है वही सकेत है।[5] इसलिए यह कहना भी अनुचित न होगा कि चिह्न से सकेत बनते ह।

मारिस ने इसी विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि सकेत तथा चिह्न उस सीमा तक एक ही समान ह जहा तक वे किसी काय के लिए प्रेरित करते ह या उसमे राक लगाते

१ W H Grant— An Experimental Approach to Psychiatry — American Journal of Psychiatry—92, 1936 pages 1007 1021

२ मॉरिस, पृष्ठ २।

३ मॉरिस, पृष्ठ १।

४ मॉरिस, पृष्ठ ३५४ ३५५।

५ वही, पृष्ठ ३०६।

है। शरीर के किसी अवयव से या किसी वस्तु से उत्पन्न होने वाला संकेत ही चिह्न बन जाता है या किसी चिह्न के स्थान पर काम देता है। पर चिह्न तथा संकेत में एक बहुत व्यापक अंतर है। पशु चिह्न समझ सकता है बना नहीं सकता। पशु संकेत समझ सकता है संकेत कर नहीं सकता। मनुष्य के लिए चिह्न एक सहज क्रिया हो सकती है। पर संकेत के साथ बुद्धि का भी सहयोग होना चाहिए। चिह्न एक यंत्रीय ढंग से अपने लक्ष्य को बतलाता रहता है। संकेत बुद्धि से उत्पन्न होता है और बुद्धि से ही ग्रहण किया जा सकता है। यही बात ब्रिल ने[१] अपनी पुस्तक में लिखी है। ब्रिल के अनुसार किसी अन्य वस्तु को व्यक्त करने वाला संकेत होता है। पर किसी अन्य वस्तु को, जो हमारे सामने नहीं है व्यक्त करने वाली वस्तु प्रतीक है केवल संकेत नहीं है। जो वस्तु सामने नहीं है उसका रूप प्रदर्शित करने वाली या उसका बोध कराने वाली वस्तु प्रतीक है। पर अंग्रेजी में दोनों शब्दों के लिए एक ही शब्द है सिम्बल। इसका एक कारण है। किसी भाषा में शब्द तब बनते हैं जब उस भाव की कल्पना की जाती है। कल्पनामय वस्तु के प्रतीक को अंग्रेजी में इमेज[२] कहते हैं। हम लोग इमेज का अनुवाद मूर्त्ति करते हैं जो गलत है। प्रतीक और मूर्त्ति में बड़ा अंतर है यह हम बतला चुके हैं।

पश्चिमी विद्वान प्रतीक पर विचार करते करते काफी छिछले पानी में चले गये। उन्होंने भ्रमवश प्रतीक को छोड़ दिया और संकेत को पकड़ बैठे। यही भूल अर्नेस्ट जोन्स ऐसे विद्वान ने भी की।[३] स्वप्न में हमको जो कुछ दिखाई पड़ता है वह निश्चयतः किसी घटना या भाव या भविष्य का प्रतीक है। पर फ्रायड ने इसे सदैव संकेत के रूप में समझा। वे जीवन की हर एक चीज को कामवासना से सम्बद्ध समझते थे। उनके लिए जीवन में और कुछ नहीं केवल वासना ही है। इसीलिए हमें स्वप्न में जो कुछ दिखाई पड़ता है उसको वे किसी न किसी रूप में कामवासना से सम्बन्ध जोड़ देते थे।[४] मारिस ने शायद ऐसे ही लोगों के लिए फ्रायड ऐसे विद्वानों के लिए लिखा है कि

१ A A Brill— The Universality of Symbols —The Psycho analytic Review— 30 1943 1 18

२ Image—यह शब्द—Imagination—कल्पना का जनक है।

३ Earnest Jones— The Theory of Symbolism— British Journal of Psychology—9 1917 19 184

४ Freud—Inter pretation of Dreams and ' Introductory Lectures on Psycho analysis

वातावरण के अनुकूल, बिना किसी चिह्नक के भी प्रतीक बन जाता है। किसी चीज को देखकर उसके वातावरण के अनुसार कोई काय आप से आप प्रतीक बन जाता है। एक अनहोनी घटना को देखकर यदि किसी के नेत्र भय या विस्मय मे फल गये तो उन नेत्रो की स्थिति समूची घटना का प्रतीक बन जाती है। पर ऐसी दशा मे बिना चिह्नक के जो चिह्न बनते है बिना वातावरण को समझे जो प्रतीक प्रतीत होता है उस पर पूरा विश्वास नही किया जा सकता। मारिस के कथनानुसार प्रतीक अविश्वसनीय पदाथ है। विष्णु भगवान का प्रतीक उनकी चतुभुजी मूर्त्ति है। पर यह कौन कह सकता है कि निश्चयत विष्णु का यही प्रतीक है ?

इसी प्रकार शरीर के किसी भी अग का या सष्टि के किसी भी पदाथ का हर एक काय उसका चिह्न या चिह्नक प्रतीक या सकेत नही कहा जा सकता। एक यक्ति अपने हाथ की नाडी को गिनकर अपने स्वास्थ्य की स्थिति जान सकता है। नाडी की गति कवल चिह्नक है। उस गति को देखकर वह जो अथ निकालगा और उसे मुह से कहगा वही सकेत होगा। चिह्नक न विचार उत्पन्न किया विचार से सकेत बना पर सभी शब्द या वाक्य या ध्वनि—नाडी से पदा होनेवाली गति के कारण उत्पन्न शब्द भी—चिह्नक नही है। बहुत से विचार या शब्द जब तक लिखित शब्दो के रूप मे नही आते सकेत नही कहे जा सकते [१]

१ मॉरिस—पृष्ठ २५ से २७ तक

विचारो का प्रतीक

हर एक मनुष्य हर एक समाज हर एक सभ्यता के विचार तथा भाव अलग अलग होते ह । विचार तथा प्रतीक का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह प्रतीका के अध्ययन से ही समझा जा सकता है । प्रतीक से सभ्यता का अध्ययन हो सकता है । इसीलिए एक हो बात के लिए भिन्न सभ्यताओ मे भिन्न प्रतीक बन जाते है । साधारण सी मिसाल लीजिए । हाथ पर मुह म गोदना गोदाने की बडी पुरानी प्रथा है । जगली लागो तथा सभ्य समाज मे भी यही प्रथा है । कोई अपने हाथ पर वक्ष या फूल पत्त बनवा लेता है और कोई भगवान का नाम गोदा लेता है । भिन्न जातियो के ऐसे भिन्न प्रतीक इतिहास में भरे पडे ह । किन्तु जाति सभ्यता धम ससार हर एक के लिए सबको एक सूत्र म पिरो देनवाला प्रतीक भारत की आय सभ्यता के अलावा और किसी को न सूझा । इसीलिए भारत की आय तथा आष सभ्यता ससार की मुकुटमणि है । हमार दो प्रतीक एसे ह जो हर एक को भावना भाव सृष्टि इतिहास तथा सभ्यता का एक साथ बोध करा देते साथ ही सष्टि के बडे गूढ तत्वा का दिग्दशन भी करात ह । व ह ॐ तथा स्वस्तिक । इसी स्वस्तिक को हिटलर ने जमनी म उलटे रूप मे अपनाया था ।

स्वस्तिक आय प्रतीक हिटलरी प्रतीक

स्वस्तिक तथा ॐकार

हमारे ऋषियो ने सृष्टि की आदि से लेकर कल्पना की । उसका रूप पहचाना । आज सभी यह स्वीकार करते है कि सृष्टि के आरम्भ मे केवल नाद था ध्वनि थी । ध्वनि से शब्द बने जिसे पाणिनि ने अपने व्याकरण मे अ इ उ ण'' आदि के रूप मे पिरो दिया है । ईसाई मजहब ने भी जो प्राचीन धर्मों मे सबसे नया है (मुसलिम मजहब को छाडकर), आरम्भ में नाद (शब्द) की सत्ता स्वीकार की है । इसी नाद को हमारे ऋषिया ने सृष्टि के आदि से लेकर अ त तक सव यात्प्त माना । उसे परब्रह्म की व्याख्या तथा परिभाषा स्वीकार किया । भूत वतमान तथा भविष्य मे जो कुछ भी है उसी नाद का स्वरूप माना । आदि अनादि अ त अन त मे इसी नाद की श द की सत्ता स्वीकार की । उस नाद का शब्द का स्वरूप ॐकार है । माण्डूक्योपनिषद का पहला ही मत्र है—

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सव तस्योपव्याख्यानम ।
भूत भव्य भविष्यदिति सवमोङ्कार एव, यच्चा यत्त्रि
कालातीत तदप्योङ्कार एव ।

इस ॐ का यदि सभ्यता सष्टि नाद ब्रह्म—हर एक का सम्मिलित सामूहिक प्रतीक नही कहेगे तो और किस रूप में उसका सम्बोधन होगा ? हमारे यहा किसी भी काय के प्रारम्भ में ओकार श द का उच्चारण होना ही चाहिए । स्मति का आदेश है—

ओङ्कारपूवमुच्चाय ततो वेदमधीयेत ।

पहले ॐकार का उच्चारण करे तब वेद पाठ करे। मनु ने भी—

प्राणायामस्त्रिभि पूतस्तत ओङ्कारमहति (२-७५)

ॐ की मर्यादा अक्षुण्ण सिद्ध की है । हम यहाँ पर ॐकार की महिमा या महत्त्व की व्याख्या नही करना चाहते । यह तो दूसरा ही विषय है । पर ॐ को ससार का श्रेष्ठ प्रतीक तथा अति गम्भीर अथवाला प्रतीक कहना चाहते ह ।

इसी प्रकार हमारा दूसरा, अतिगूढ़ अथवाला प्रतीक स्वस्तिक है । इस श द के अनेक अथ है । पुलिग शब्द है । सूचिपत्र पणक कुक्कुट, शिखा—यह शब्द इसी स्वस्तिक

के अथ तथा पर्यायवाची ह । साँप के फन के ऊपर एक नील रेखा होती है । उसे भी स्वस्तिक कहते ह ।[१] हलायुधकोश म इसे चतुर्विंशतिचिह्नान्तर्गतचिह्नविशेष — चौबीस चिह्नों म एक विशेष चिह्न माना है । किन्तु उसी कोश म स्वस्तिक का अथ चतुष्पथ यानी चौराहा भी लिखा है । यदि स्वस्तिक चार मार्गों का द्योतक है तो चिह्न हो सकता है । पर वे चार माग क्या ह ? स्वस्तिक का अथ क्या है ?

हम हर एक मगल काय म मत्र पढते ह—

गणानां त्वा गणपति ~~ हवामहे

गणो के गणपति यानी राष्ट्रपति का हम आवाहन करते ह नमस्कार करते ह ।

ग्व पूरक स्वर है । गणपति का पूरक स्वर है । ग—गणपति का प्रतीक है । यह ग ही गणपति का बीजाक्षर रूप है ।

गॅ से ऽ से 卐 प्रतीक के रूप से बन गया

से से बना

प्रतीक इसी प्रकार बनते ह और उसका रूप समूचे मत्र का रूप 卐 बन गया । चतुष्पथ यानी चौराहा का भी चिह्न अवश्य है । वह चार रास्ते का है ? प्राचीन तथा अर्वाचीन विश्वास के अनुसार सूय मण्डल के चारों ओर चार विद्युत केन्द्र ह जिनम—

१ पूव दिशा मे वृद्धश्रवा इन्द्र
२ दक्षिण दिशा मे वृहस्पति इन्द्र
३ पश्चिम दिशा म पूषा विश्ववेदा इन्द्र
४ उत्तर दिशा मे स्तार्क्ष्य अरिष्टनेमि इन्द्र

[१] शिरोभि पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणै ।
वमन्त पावक घोर ददशुर्दशनै शिला ॥—वाल्मीकि १ १९५ ।

इन चारो से घिरे स्थान का नाम वेदो मे कल्याणवाची स्वस्तिक मण्डल है ।[१] यजुर्वेद का मत्र है—

हरि ॐ ॥ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिन –
पूषा विश्ववेदा (॥ स्वस्तिनस्ताक्ष्यो अरिष्टनमि (स्वस्ति
नो बहस्प्पतिर्दधातु ॥ १ ॥[२]

मानव समाज के कल्याण का यह प्रतीक है । वसो मम —मेरा कल्याण करो— का भी यही प्रतीक है ।

१ यास्कीय निरुक्त अ० ११, खण्ड ४५ ।
२ यजुर्वेद अ० २५, म० १९ ।

स्वस्तिक का पौराणिक रूप

सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान प० रामचन्द्र शास्त्री बझे ने स्वस्तिक को प्रतीक मानते हुए उसकी बडी निश्चयात्मक व्याख्या की है। उनके कथनानुसार स्वस्तिक कमल का पूवरूप है। किन्ही लागा के मत से विष्णु भगवान के वक्षस्थल पर विराजमान कौस्तुभ मणि स्वस्तिकाकार है। सगुण मूर्त्ति का अलकारयुक्त कामनापूवक आराधना का आरम्भकाल ही इसका आरम्भकाल है। ज्यो ज्यो जनसमूह मे सासारिक भाव सासारिक मोह विषय और उसकी सामग्री के प्रति लालसा बढती गयी लक्ष्मी की आराधना भी बढती गयी। लक्ष्मी का आसन कमल है। इसलिए कमल भी उपासना का विषय बन गया। कमल का खिला हुआ फूल प्रसन्नता तथा हष का प्रतीक माना जाने लगा। अतएव कल्याण (लक्ष्मी के द्वारा) तथा प्रसन्नता का प्रतीक कमल का फूल बन गया। कमल का पूवरूप स्वस्तिक जसा होता है। इसलिए कमल का प्रतीक स्वस्तिक हो गया— सर्वारम्भास्तडुलप्रस्थमूला इस व्यावहारिक न्याय से भी प्रत्येक मगल काय में प्रारम्भ में स्वस्तिक को विशष स्थान प्राप्त हुआ। प्रसन्नता तथा कल्याण का द्योतक स्वस्तिक हो गया।

गणपति के उपासका के लिए गाणपत्य लोगो के लिए स्वस्तिक बिन्दुरूप है। जीवन ससार सष्टि सबका बिन्दुरूप में प्रदर्शित करनेवाला प्रतीक है। कई विद्वानो की सम्मति में स्वस्तिक की निश्चित व्याख्या कठिन है। परन्तु यह एक प्रकार का सवतोभद्र मडल है यानी चारो ओर से समान है। भारतीय सस्कृति मे अनक प्रकार के मडलो की चर्चा वदिक काल से ही चली आयी है। मडल को ही यत्र कहते ह। तान्त्रिक उपासना मे यत्र का बडा महत्त्व है। इन मडलो या यत्रो के साथ ज्यामिति[1] के गूढ सिद्धान्त मिले हुए ह।

धुरधर पण्डित बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते की एक व्याख्या विचारणीय है। उनके अनुसार श्राद्ध आदि क्रियाओ मे पितमडल ○ गोल होता है। देवता का मडल □ चौखूटा होता है। इससे कल्पना होती है कि चौखूटा यानी चतुरस्र का फल शुभ माना

१ Geometry

गया है । जिस प्रकार सनिक कम्प के सामने बदूके मिलाकर खडी की जाती ह उसी प्रकार किसी भी काय के प्रारम्भ में काम के कैम्प के सामने स्वस्तिक रखकर विघ्न के विरुद्ध किलेबदी कर दी जाती है । विघ्न विनाशक गणपति हैं । गणपति का बीजाक्षर ग का चतुरस्र मडल ही (दखो चित्र पष्ठ २० पक्ति १०) स्वस्तिकाकार होने के कारण सवथा मगलप्रद माना गया है । ब्राह्मी लिपि की पद्धति से भी यह स्वस्तिक मगल-प्रद प्रतीक सिद्ध होता है ।

किन्तु स्वस्तिक के इस महान अथ को न समझ कर उसे भ्रष्ट अथ या रूप देने मे कुछ पश्चिमी विद्वानो ने कम परिश्रम नही किया है । कटनर ने अपनी पुस्तक मे स्वस्तिक ऐसे प्राचीन प्रतीको को केवल स्त्री पुरुष सम्बन्ध का द्योतक माना है । उनको फ्रायड की तरह हर उपासना में उपासना के हर प्रतीक म केवल स्त्री पुरुष प्रसग ही दीख पडता था । कटनर के अनुसार क्रास—> का प्रतीक स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का द्योतक है । उसी का मिस्र देश मे प्राप्त रूपान्तर यह है
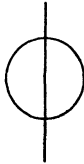
जिसे बार आव आइसिस[१] कहते ह । मिस्री भाषा मे इस ⌀ प्रतीक को आख[२] कहते थे । हिब्रू लोगो का भी यही धार्मिक प्रतीक था पर उसका

१ Bar of Isis
२ ANKH

रूप यह था[1] -->

तथा मेक्सिको के प्राचीन निवासियो का यही प्रतीक

२स रूप म था।

यनानिया के कामदव (वीनस) का प्रतीक था[2] --> और वहा बदलकर हिदुग्रा का स्वस्तिक 卐 हा गया।[3]

पर हर देश मे यह प्रतीक भिन्न रूप म स्त्री पुरुष के सम्बध का प्रतीक था। भारत मे कौडी भी स्त्री की योनि का प्रतीक है। बहरहाल कटनर यह मानने को कदापि तयार नही होगे कि ऋषि कालीन भारत ने जिस मगलसूचक स्वस्तिक की कल्पना की थी वही भिन्न रूपो में ससार की अय बडी सभ्यताग्रा द्वारा अपना लिया गया।

१ Hebrad Tau Cross
२ Symbol of Venus
३ H Cutner— A Short History of Sex Worship 1940—1st Edition page 158

भारतीय सभ्यता को इतना महान स्थान वे देने को तयार नही ह—अधिकाश पश्चिमी विद्वान भी तयार नही हैं। इसलिए अपनी मोटी बुद्धि से उन्होन केवल कामवासना का प्रतीक समझकर एक परम कल्याणकारी प्रतीक की भत्सना कर दी।

स्वस्तिक के विषय में एक महान् तथ्य और है। अशोक के समय क अक्षर का + लिखते थे। उसका यही रूप था। क का अथ है ब्रह्मा। क का अथ है सुख इसलिए सुख का बोधक + यदि 卐 के रूप में आ गया तो वदिक व्याख्या आदि छोडकर इतनी सीधी व्याख्या भी क्यो न मान ले ?

प्रतीक तथा सकेत की व्याख्या करते-करते हमने ऊपर ॐ तथा स्वस्तिक का उदाहरण इसीलिए दिया है कि यह स्पष्ट हो जाय कि जरा-सी नासमझी से प्रतीक के अर्थ का कितना अनथ हो सकता है। इसीलिए व्याख्या करनेवाले को कितनी कठिनाई से अपना तात्पय स्पष्ट करना पडता है।

प्रतीक भावनाप्रधान होता है

जिस वस्तु का आधार भावना है उसकी व्याख्या करना सरल नही है। इस ससार मे जो कुछ दिखाई पडता है वह सत्य है उसको जिस रूप मे हम देख रहे ह वही है यह कहना बुद्धि के लिए कठिन है। प्लेटा ने लिखा था कि हम ससार मे जो कुछ देखते ह वह छाया मात्र है वास्तविकता नही है।[1] विज्ञान के महान पण्डित आइस्टीन ने लिखा था कि ससार म जो कुछ है उसे समझन के लिए अन्त प्ररणा सबसे अधिक महत्त्व की बात है।[2] विज्ञान के तराज पर ही तौलकर हर एक असलियत को नही पहचाना जा सकता। एक विद्वान ने लिखा है कि विज्ञान वास्तविकता तक पहुचने के लिए एक द्वार मात्र है। वह एक महत्त्वपूण द्वार अवश्य है पर उससे भी अधिक महत्त्वपूण माग धम तथा नतिकता है। उसी विद्वान ने लिखा है कि प्राकृतिक विज्ञान क साकेतिक नियमो के सामने किसी वस्तु का मल्याकन उसकी व्यापकता तथा उपयोगिता पर निभर होता है। उस वस्तु का काय क्षेत्र जितना ही अधिक बढता जायगा उसकी उपादेयता जितनी ही अधिक हागी उतना ही उसका मूल्याकन भी हागा।[3]

हर एक देश के दाशनिको न इस मूल्याकन का प्रयत्न किया है। सबसे बडा मूल्याकन मनुष्य के जीवन का ही है। जीवन वही है जा साथक हा जिससे कल्याण हा। इस कल्याण का सकेत क्या है? कल्याण किसे कहते ह? इस पर आदि काल स बहस हाती चली आ रही है। बृहदारण्यक मे मत्रयी ने कल्याण श्रयस के माग का आत्म ज्ञान का माग बतलाया है।[4] यानी उसी के जीवन की साथकता का मूल्याकन होगा जिसने जितनी अधिक मात्रा मे आत्मज्ञान प्राप्त किया है। मत्रयी के अनुसार ससार मे कुछ भी सुख नही है। जिसे हम सुख समझते ह वह क्षणिक है। याज्ञवल्क्य ससार मे एक मात्र सुख का साधन आत्मा को मानते ह। ससार के सुखा की नश्वरता तथा जीवन की भी अन्तत

१ Plato—Republic
२ Einstein in his preface to Planch s— Where is Science Going
३ Dynamics of Morals—pages 210 215
४ बृहदा० ४-४-३।

समाप्ति और धूल में मिल जाने की याद दिलानेवाला, उसका रूप बतलानेवाला प्रतीक भस्म है जिसे साधु लोग शरीर पर लगाते ह । भस्म जीवन की नश्वरता का प्रतीक है । पर इस नश्वरता का बिना बोध हुए केवल भस्म को देखकर कोई उसका अथ नही समझ सकता । भस्म को प्रतीक का रूप देते समय उसके साथ भाव भी जोड दिया गया है । इसीलिए प्रतीक को भाव प्रधान कहते ह । जिसकी जसी भावना होगी वह प्रतीक का वैसा अथ लगा लेगा । कुछ लोग भस्म को प्रतीक नही मानते । शरीर में भस्म रमा लेने से सर्दी या गर्मी कम लगती है बस वे इतनी दूर तक पहुँचते ह । प्रतीक के सामने यही सबसे बडी कठिनाई है । अपनी भावना के अनुसार उसके अर्थ का अनथ होता रहता है । शकर भगवान के चित्र मे सप को देखकर केवल प्राण लेनवाले साँप का बोध होता है । नागपूजा तथा सप के स्थान स्थान पर प्रतीक को देखकर केवल मृत्यु का चिह्न या प्राण लेनेवाले सप देवता समझकर हम बुद्धि को और आगे बढने नही देते । पर शरीर के भीतर इडा पिङ्गला सुषुम्ना नाडिया की जिन्हे जानकारी है जो शरीर के भीतर सर्पाकार कुण्डलिनी को जानते ह तथा उसे यौगिक क्रियाओ से जाग्रत कर जीवन का परम सुख प्राप्त करने की बात समझते है वह शकर ऐसे योगी के मस्तक या गल म सप देखकर मदिरो पर सप बना देखकर यदि उसे कुण्डलिनी का प्रतीक सिद्ध करते ह तो कौन सत्य तक वास्तव म पहुच गया है इसका निणय हर एक अपनी अपनी भावना स करेगा ।

मनोविज्ञान का विद्यार्थी जानता है कि हममें से अधिकाश व्यक्ति मन मे जो कुछ सोचते ह वह तस्वीरो म सोचते ह । मन की यह कमजारी है पर कम लोग इस कमजोरी के ऊपर उठ पाते ह । म जब यह कहता हू कि म घर जाऊगा' तो अपने घर की तस्वीर मन के एक कोने मे सामन आ जाती है । म भोजन करूगा कहनेवाले के मन में भोजन का नक्शा खिच जाता है । किन्तु घर या भोजन की पूरी तस्वीर नही बनती । केवल उनका प्रतीक बन जाता है इसलिए हमारी भावना क अनुसार प्रतीक बनते रहते ह । प्रतीको मे ही सोचना मनुष्य की बुद्धि की विशषता है ।[१] किन्तु मानव स्वभाव तथा प्रकृति मे इतनी विभिन्नता है कि एक ही वस्तु का हर व्यक्ति अपनी भावना क अनुसार भिन्न अथ लगायेगा ।[२] हमने ऊपर सप को मानव शरीर के भीतर कुण्डलिनी का प्रतीक

१ Dr Padma Agrawal— A Psychological Study in Symbolism— Manovigyan Prakashan Varanasi 1955—page 53

२ वही, पृष्ठ ५३ ।

बतलाया है । पर सभी इसे ऐसा नही मानते । फ्रायड के मतानुसार सप का अधिकाशत प्रयोग पुरुष के लिग का बाध कराने के लिए होता है और सपन मे यदि सप देख लिया तो समझ लना चाहिए कि पुरुष का लिग देखा । फ्रायड की काम वासनामय बुद्धि की यानें हर चीज को हर बात को हर व्यवहार का तथा हर प्रतीक को कामवासना से सम्बन्धित बताने की बुद्धि की कटु आलोचना जुग तथा फिशर[१] ऐसे विद्वान मनो वज्ञानिका ने की है जुग ने लिखा है— प्रतीक का निश्चयात्मक अथ नही होता । कुछ प्रतीक बार बार सामन आते ह पर हम उनका मोटे तौर पर ही अथ लगा पाते ह । उदाहरण के लिए यह कहना बिलकुल गलत है कि सपने मे सप देखने से केवल पुरुष लिंग का बोध होता है । [२] प्रिस्टर ने मपने म सप दखने को बीबी की जहरीली जबान का परिचायक तथा प्रतीक माना है ।[३]

भावना एक दिन मे या एक जन्म मे ही नही बनती । कलिफोर्निया के विट्रिन रुडाल्फ फान अबन न कहा है कि हर एक प्राणी चाहे पशु हो या मनुष्य जन्म के समय कुछ परम्पराए सस्कार तथा भावनाए लकर आता है । ऐसी ही सस्कार वश प्राप्त भावना माता का प्रेम है । माटगू ने मात प्रेम को मानव जीवन के समूचे सम्बन्ध का मौलिक आधार माना है । यदि हम मात प्रेम को मनुष्यता का प्रतीक कहे तो क्या अनुचित होगा ? पर यह प्रतीक न तो चिह्न क रूप मे है और न सकेत के रूप मे । यह अन्तर्निहित है । सभी प्रतीक द्रष्टव्य तथा नेत्रो स देखने योग्य नही होते । सकेत और चिह्न आख से दिखाइ पडते ह । प्रतीक नही भी दिखाई देता । यह एक बडा अन्तर है जिसे समझ जान से हम प्रतीक का महत्त्व समझ सकत ह । प्रतीक भावना प्रधान है ।

१ V E Fisher—An Introduction to Abnormal Psychology, 1937

२ C G Jung— Collected Papers on Analytical Psychology—1920 Chapt VII—pages 217 218

३ Prister The Psycho Analytic Method 1917 p 292

धर्म का प्रतीक

यदि भावना से प्रतीक बनते ह तो भावना का ग्राधार या सजनकर्ता बुद्धि है। बुद्धि सस्कार से बनती है। सस्कार कम के ग्रनुसार बनता है हिन्दू धम कर्मानुसार जन्म मानता है। कौषीतकी उपनिषद् मे कीट पतग से लेकर सिंह तक का जन्म इसी कम के ग्रनुसार माना गया है।[1] कम ग्राचरण से बनते ह ग्राचरण धम से बनता है। धम क्या है ?

यह इतना बडा प्रश्न है जिसका उत्तर देने के लिए एक समूची पुस्तक ही लिखनी पड़ेगी फिर भी सन्तोषजनक व्याख्या नही की जा सकेगी। फिर हमारे ग्रन्थ का यह विषय भी नहा है। हमे तो इस प्रश्न का वही तक छूलना है जहाँ तक यह हमारे प्रतीक विषय से सम्बन्धित है। धम शब्द का पर्यायवाची शब्द भी ससार की किसी भाषा मे नही है। ग्रग्रजी म जिसे रिलिजन कहते ह उर्दू म जिसे मजहब कहते ह वे धम का समानान्तर नहो है। पश्चिम के विद्वान इसकी कल्पना भी ठीक से नहा कर सकते। रैक[2] ने धम को परवशता की भावना से उत्पन्न वस्तु माना है। पश्चिमी मनोवैज्ञानिको का विश्लेषण है कि सभ्यता के ग्रारम्भ म मनुष्य का जीवन बडा सकटमय था। उसे बार बार ग्रपनी तुच्छता का ग्रनुभव होता था ग्रौर इसी तुच्छता की हेयता की भावना ने मनुष्य के मन म ग्रपने से बडी किसी महत्त्व की शक्ति की भावना का प्रादुर्भाव किया। दूसरे ढग से सोचनेवाले मनोवैज्ञानिको का कहना है कि ग्रारम्भ म बच्चा ग्रपने पिता पर निर्भर करता है। बडा हो जाने के बाद निर्भरता की यही भावना पिता से परमात्मा को प्राप्त होती है प्रदान की जाती है। यानी ईश्वर म विश्वास पिता पुत्र के सम्बन्ध का प्रतीक मात्र है।[3] पिता की पितत्व की कामना ही परमपिता की कामना का कारण

१ स इह कीटो वा पतगो वा मत्स्यो वा शकुनिर्वा सिंहो (१ २)।

२ Otto Rank — Religion has its origin in the feeling of dependence — इस विषय में दो पुस्तकें जरूर देखनी चाहिये—(क) Sausane K Langer— Philosophy in a New Key —1942 और (ख) J H Leuba—Psychology of Religious Mysticism

३ देखिए Totem and Taboo—Sigmund Freud लिखित।

है। इसलिए बहुत-से पश्चिमी विद्वान चाहे पिता की कामना से हो या अपने को तुच्छ समझने की भावना से हो परमात्मा के प्रति विश्वास को मानव स्वभाव की अपने को हेय समझनेवाली प्रेरणा का परिणाम मानते हैं।

किन्तु मनुष्य की बुद्धि का आधार तुच्छता तथा हेयता की भावना समझ लेना मनुष्य मात्र को बहुत नीचे गिरा देना है। हर एक मानव के हृदय में ऐसी अन्तश्चेतना वर्तमान है जो उसे अनायास इस विश्वास की ओर प्रेरित करती है कि एक ऐसी परा शक्ति है जो सृष्टि का सञ्चालन कर रही है। स्वयं उस व्यक्ति का सञ्चालन कर रही है। ईश्वर के प्रति आस्था तथा विश्वास बुद्धि गम्य नहीं होता आत्म गम्य होता है। जन्म लेने के बाद हर बच्चे को ईश्वर में विश्वास करना सिखलाया नहीं जाता। ऐसी आस्था स्वतः पैदा हो जाती है। जंग ने धर्म को अन्तःप्रेरित भावना माना है। यहाँ पर धर्म का अर्थ ईश्वर में विश्वास मात्र से है। लूबा ने इसे अन्तःप्रेरित भावना ही नहीं माना है अपितु उसके कथनानुसार अनुभव तथा जानकारी से आन्तरिक प्रेरणा की नींव पर धार्मिक भावना का क्रमशः विकास होता है। दोनों ही दशाओं में अन्तरात्मा या आन्तरिक प्रेरणा ही वह मुख्य वस्तु है जिससे धर्म की भावना पैदा होती है। जिनमें यह भावना आ गयी या जिन्होंने धर्म की पहचान लिया उन्होंने दूसरों में ऐसी पहचान आसानी से पैदा करने के लिए आन्तरिक प्रेरणा या अन्तर्ज्ञान में सहायता देने के लिए तथा दुर्बल हृदय लोगों के मार्गदर्शन के लिए धार्मिक प्रतीक मूर्त्ति आदि की रचना की जिसे शंकराचार्य ने प्रतीकोपासना कहा है। अन्तर्ज्ञान प्राप्त करने के लिए चित्त को एकाग्र करना जरूरी होता है। ऐसी एकाग्रता में सहायता देने के लिए तथा वास्तविक जानकारी कराने के लिए ऐसे धार्मिक प्रतीक बने होंगे जिनमें मूर्त्तियाँ सबसे अधिक महत्त्व रखती हैं। शिवलिंग का पूजन करने से शंकर भगवान के दर्शन प्राप्त करने की कथाएं पढ़ी जाती हैं। शंकर भगवान लिंग के रूप में नहीं अपने रूप में प्रकट हुए। इसलिए शिव का बोध करानेवाला लिंग स्वयं शंकर नहीं शंकर की मूर्ति नहीं, शंकर का प्रतीक है।

किन्तु धर्म मानव स्वभाव की विचित्र गति का द्योतक है। जिसका जैसा स्वभाव हुआ, वह धर्म को उसी रूप में बना लेगा गढ़ लेगा इसीलिए मनुष्य को चारों तरफ भटकने से बचाने के लिए उसे सच्ची बात बतलाने के लिए ही मैत्रेयी ने बृहदारण्यक में कहा है कि श्रेयस का कल्याण का मार्ग आत्मज्ञान है। याज्ञवल्क्य ने आत्मा को परम सुख का साधन माना है। मनु ने गृहस्थ का जीवन और गार्हस्थ्य धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध

किया है ।[१] याज्ञवल्क्य ने धम और समाज मे, आत्मा और ससार मे झगडा बचाने के लिए आदेश दिया है कि धर्म के अनुकूल होते हुए भी समाज के विरुद्ध काम मत करो ।[२] आपस्तम्ब ने अपने धमसूत्र म ' समय और रीति जो सज्जनो को स्वीकार हो, उसे ही धम कहा है । शेष अधम है । इसीलिए लिखा है कि जो करने योग्य है वह धम है और जो न करने योग्य है वह अधम है । इस प्रकार कर्मो का विभाग करने के लिए धम और अधम को जुदा जुदा किया है । धम का फल सुख और अधम का फल दु ख यह विवेचना की—

कमणाञ्च विवेकाथ धर्म्माधर्मौ व्यवचयत ।
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमा सुखदु खादिभि प्रजा ॥ १–२६

आय धम ने समाज और धम का मिलाकर चलने की बात कही है । दुष्ट का दण्ड देना धम है पर यदि हर एक यक्ति दुष्ट का दण्ड देने का काम अपने हाथ म ले ले तो समाज कसे चलेगा ? इमलिए धम अ त प्ररणा तथा बुद्धि का विषय है । पर इसे कोरी भावुकता नही कह सकते, जसा कि मक टगाट न लिखा है । उनके विचारा से धम एक भावना मात्र है जो अपने तथा ससार के बीच एकस्वरता पदा करने के विश्वास से पदा हुई है ।[३]

यदि धम एक भावना मात्र ह्रा है तो भी वह बडे तार्किक रूप से निर्धारित है । ईसाई मजहब पर प्रकाश डालते हुए हानक न लिखा था कि उसके सिद्धा त बडे तकपूण ढग से व्यवस्थित किये गय ह । उनके द्वारा ईश्वर तथा उसक ससार की जानकारी होती है । ईश्वर ने मनुष्य की मुक्ति के लिए क्या प्रब ध किया है उसका बोध होता है ।[४] मतलब यह कि ईसाई धम म जो उपासना पद्धति है वह ईश्वर का बोध कराने के लिए है । बोध मन म होता है । इसलिए धम म जो भी कुछ पद्धति होगी, मन के लिए मन की जानकारी के लिए होगी । जो कुछ बतलाना है सिखाना है मन को ही । इसीलिए हमार उपनिषदा ने मन को ही सब का सब प्राणियो का स्वामी माना है । मन हृदय क भीतर रहता है जसे धान के भीतर चावल ।[५] पुरुष मन है मन -स्वरूप है ।

मनोमयोऽय पुरुषो

१ मनुस्मृति—६ ८९ ।
२ याज्ञवल्क्यस्मृति—५ १५६ ।
३ Mc Taggart—'Some Dogmas of Religion
४ Harnach—Hi tory of Dogmas—Vol I, Chapter I.
५ Dr E Roer The Twelve Principles of Upnishads, Vol II, 1931

हृदय के भीतर बठा मन जसा करता हे कराना चाहता है वसा मनुष्य करता है पर आत्मा उस मन के विकार या विवेक से अछूती है । हमारे शास्त्रकारो न जीवन के दो रूप मान ह—एक है जीवन का सुख दु ख भाग करनवाला तथा दूसरा तटस्थ रूप मे बठा द्रष्टा । इसी महान सत्य का सकेत के रूप म मुण्डकोपनिषद म समझाया गया है—
दो पक्षी जो सदा एक साथ रहते तथा परस्पर मित्र ह एक ही वक्ष पर बठ हुए ह । एक पक्षी उस वक्ष क मीठ फला का भाग रहा है दूसरा केवल साक्षी के रूप मे बठा है । [१]

इस वणन म दा पक्षी जीव तथा आत्मा के प्रतीक ह । एक के फल खान तथा दूसरे के चुपचाप देखन को सकेत द्वारा उनक भिन्न कार्यो की ‍याख्या कर दी गयी है । पर प्रतीक तथा सकेत के इस मिले जुले उदाहरण को वही समझ सकेगा जिसकी भावना ऐसे विषयो म समझने के याग्य हा वरना चित्र क रूप म एक वक्ष बनाकर उस पर दा पक्षी बिठा दने का काई प्रयाजन नही निकलगा । इसलिए प्रतीक भाव प्रधान तथा ज्ञान प्रधान भी हाते ह ।

किन्तु धम इतनी आसानी स समझ म आ जानवाली चीज नही है । वशेषिक सूत्र म धम की ‍याख्या की है— जिसस लाक म सबस ज्यादा उत्कष हा एव अन्त म माक्ष सिद्धि हा वह धम है ।

यतोभ्युदयनि श्रयस सिद्धि स धम ।

जिससे अपना अभ्युदय और कल्याण हो वही धम है एसा समझ लन स ही काम नही चलगा । कल्याण का प्रतीक स्वस्तिक है । यदि स्वस्तिक का अथ ठीक स न समझा जाय यदि कल्याण की ‍याख्या ठीक से समझ म न आवे तो लोग चारी जुआ आदि म भी धम की तलाश करन लगग और मनुष्य का जीवन एकदम उच्छखल हा जायेगा । प्रतीक का ठीक अथ न समझने से इसी प्रकार अनथ हाता है । कटनर ने स्वस्तिक को पुरुष स्त्री सभाग तथा सभोग का चिह्न समझ लिया है ।[२] वे उसके महान कल्याण

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिशस्वजाते
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्ति अवश्नन्योऽभिचा कशीति
—मुडकोपनिषद् ३—१ ।
श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह मत्र भी मनन के योग्य है —
यस्तूणनाभ इव तन्तुभि प्रधानजे स्वभावत ।
देव एक स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्मा व्ययम् ॥ ६—१०१

२ H Cutner, A Short History of Sex Worship—pages 158 159

कारी ग्रथ तक पहुचे ही नही। प्राचीन मन्दिरो की दीवारो पर प्राचीन चित्रो मे या शिलालेखो मे कुम्भ (घडा) बना देखकर बहुत से पश्चिमी विद्वान यह समझग कि प्राचीन भारतीय बत्तन की बडी मयादा समझते थे। उसकी तस्वीर बना देते थे। पर जिसे हम साधारण लोग केवल कुम्भ समझकर देखते ह वह वास्तव म ज्ञान का कोष है। विद्या का भण्डार है। प्राचीन भारत में कुम्भ सरस्वती विद्या की देवी का प्रतीक था।[१]

प्राचीन काल के लागो के धम तथा उनकी धार्मिक पद्धतियाँ उतनी जगली तथा विवक शू य न थी जितना पश्चिमी विद्वान् समझते ह। उनका ऐसा विश्वास है कि जादू टोने के द्वारा प्रकृति को वर्षा धूप बिजली आदि के प्रत्येक प्राकृतिक उपद्रव को अपने वश में करने के लिए कुछ पद्धतिया लागो ने बनायी और यही पद्धतियाँ क्रमश विकसित तथा उन्नत हाती हुई धार्मिक पद्धतिया बन गयी। स्पष्ट है कि हमारे इस युग के प्रारम्भिक कुछ सौ वर्षों तक तत्कालान साहित्य म धम और दशन का जा कुछ रूप था उसके भीतर प्रारम्भिक जादू टोना आदि की क्रियाओ की एक यापक भीतरी धारा बह रही थी।[२] प्राचीन धम और उसकी पद्धतिया के विषय म ऐसा ही विचार या इसी प्रकार का विचार मलिनास्की तथा फ्रेजर जसे विद्वाना का भी है।[३] एसी भावना की लपेट म हिन्दू धम भी आ गया है। उसकी अनक पद्धतिया तथा क्रियाए जादू टोना तथा प्रकृति पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न मात्र ऐसे विद्वाना के लिए रह जायेग।

जो बात समझ म न आये उसे जादू या अद्भुत कह देना साधारण सी बात है। बच्चो का बिना दात का मुह और बिना किसी कारण के झुकी हुई कमर भी अद्भुत मालूम हाती

१ Jitendra Nath Bannerjee— The Development of Hindu Iconography —Pub Calcutta University 1941 page 213 Iconal n— from Greel Eikon—A figure representing a deity or saint in painting etc —मूर्त्ति प्रतिमा।

२ Sir William Cecil Dampier—'A History of Sciences and its Relations with Philosophy and Religion —Pub Cambridge University—1948 4th Edition page 63

३ देखिए—J B Frazer— The Golden Bough —3rd part V— Spirits of the Corn and Wild— Vol II page 167 अपने ग्रथ Foundations of Faith and Moral Oxford 1936—में Malinoski ने भी यही प्रतिपादित किया है।

है। करोडो ऐसे देहाती भाई मिलेंगे, जिनको हवाई जहाज अदभुत प्रतीत होते ह। इसीलिए वैज्ञानिको को यदि दो हजार वष का प्लॉटिनस या ईसाई धम प्रचारक आगस्टीन की दवी चमत्कार के विरोध में कही गयी बाते सही मालूम पड हिप्पालिटस का पुराने जादू मत्र का ज्योतिष शास्त्र का प्रचण्ड विरोध अधिक तकसगत प्रतीत हो तो इसमे ज्योतिष शास्त्र का दोष नही है। उसे न समझने वाली बुद्धि का दाष है। प्राफिरी तथा इयाम्लिवकस ने तथा उनके दो सौ वष बाद जेरामी और टूस निवासी ऋेजरी ने ग्वत्व तथा ज्योतिष शास्त्र दोना का घोर समथन किया था। पश्चिमी विद्वान इन समथको की निन्दा करन से नही चूके।[१]

प्रतीक को समझन के लिए धार्मिक सस्कार की आवश्यकता होती है। एसी बुद्धि होनी चाहिए जो पिछले विचार के ऊपर उठकर चीजो को समझे। जिन प्राचीन प्रतीका को हम जादू टोना आदि का प्रतीक समझते ह जादू-टोना आदि समझते ह उनका कितना व्यापक अथ है महत्त्व है यह हम आगे चलकर सिद्ध करेगे।

[१] A History of Sciences pages 64-65

तन्त्र-प्रतीक

विदेशी लोग पिता क भय से उत्पन्न परम पिता की भावना" का तो वणन करत ह और भय से भगवान की उत्पत्ति मानते है पर माता की ममता से उत्पन्न मातृत्व की कल्पना स उत्पन्न जगदम्बा की भावना वे क्यो नही स्वीकार करते ? बच्चा पिता से अधिक माता का पिता से पहले अपनी माता को पहचानता है । इसलिए यह क्यो नही स्वीकार किया जाय कि परम पिता के पहले परम माता आयी ? जगदम्बा की उपासना शक्ति की उपासना सबसे पुरानी है और त्रिकाण आदि उसी शक्ति के प्रतीक ह । मातत्व की उपासना भगवती की उपासना उस समय से है जब समूचा पश्चिम देश बीरान पडा हुआ था । महजोदारो और हडप्पा म जो खुदाई हुई है उससे आज से पाँच हजार वष पूव सि-ध देश म भारतीय सभ्यता का उज्ज्वल प्रमाण मिलता है । वहाँ भी राजा की मुहर पर देवी की मूर्ति बनी हुई है ।[१] माता को शक्ति का सष्टि मे प्रधान वस्तु मानकर उपासना करना हजारो वर्षा पूव हमने सीखा था । शक्ति की उपासना को साधारणत तान्त्रिक उपासना कहते ह तत्र पुरान ह या वेद इस विषय मे विद्वानो का भिन्न मत हे । आगम (तत्र शास्त्र) और वेद हमारे आध्यात्मिक ज्ञान के ये ही दो आधार ह । मनुष्यरूपी बच्चे के लिए ये माता तथा पिता के समान ह । आगम व्यवहार शास्त्र है तत्र की साधनाए इतनी प्रभावशाली ह कि व सद्य सिद्धि प्रदान करती ह । वेद याना निगम सिद्धा-त ह आगम व्यवहार है । तत्र द्वारा प्रकृति और पुरुष शक्ति और शिव का याग होकर ससार और परमाथ दोनो ही बनते ह । योग क्रियाओ में सबसे बडा याग राजयाग है जिसमे अप्ट सिद्धिया ह । भोग और योग को एक साथ मिलाकर चलने वाला आगम है तत्र शास्त्र है । आष ग्र थ तत्रराजतत्र ने इस विषय का बडा सु-दर निरूपण किया है ।

तत्रराजतत्र की टीका करते हुए सर जान उडरफ ने लिखा है कि मनुष्य मे अद भुत परमाणुक शक्ति छिपी हुई है । उसे जाग्रत कर, उसको उसकी वास्तविक शक्ति

१ R E M Wheeler— Five Thousand Years of Pakistan' —Pub, Christopher Johnson Ltd London 1950—page 28

का परिचय कराने के लिए रहस्यमय क्रियाओं के द्वारा वह उस महान मंत्र को समझ लेता है जिसे लोग बड़ी कठिनाई से समझ पाते हैं। वह मंत्र है सहम —वह (शक्ति) मैं हूँ। इसे समझने के बाद वेदान्त का महान मंत्र सोऽहम —वह (शिव) मैं हूँ — यह भी ज्ञान हो जाता है।[1] यदि मूर्ख विद्वान इस सहम तथा सोऽहम को जादू का मंत्र समझें तो क्या चारा है। ये मंत्र उस ज्ञान के प्रतीक हैं जिसकी थाह लगाना असम्भव है।

इसी पराशक्ति का माता का जगदम्बा का बोध रहस्यमय ढंग से बिन्दुरूप में कराया गया है। सृष्टि के आरम्भ में संसार में कुछ नहीं था शून्य था। शून्य भी बिन्दु रूप है बिन्दु इस शून्य का प्रतीक है। महा अंधकार में शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। शब्द का नाद का प्रतीक बिन्दु है। सर्वप्रथम और सदैव और प्रलयपर्यन्त हृदय में तथा सृष्टि में ॐ का नाद होता रहता है। ॐ का प्रतीक बिन्दु है। एक बूंद वीर्य से ही मनुष्य का प्रत्येक प्राणी का निर्माण हुआ है। केवल एक बूंद वीर्य में ही रूप स्वभाव संस्कार आकृति वंश कुल परम्परा —सभी कुछ होता है। यह बिन्दु ○ ही उस पराशक्ति का प्रतीक है। महानिर्वाणतंत्र में लिखा है—

> या काली ब्रह्मणा प्रोक्ता महामायायकाक्षका।
> विश्वामात्रायको नादो बिन्दुद् खापहारक ।
> तेनैव कालिका देवीम पूजयेत दु खशान्तय ॥[2]

अतएव तंत्र में बिन्दु को सर्वानन्दमय कहा है। तंत्र में यंत्रों (प्रतीकों) का सिरमौर श्री यंत्र है। उसमें केन्द्र में बिन्दु विराजमान है। यह बिन्दु ही ललिता है। परम मनोहारी भगवती है— आद्या नित्या ललिता। तंत्रशास्त्र में रहस्यभरी उपासना भिन्न भिन्न प्रतीकों के द्वारा होती है। यह प्रतीक ही यंत्र है। सर जान उडरफ के अनुसार तंत्र में ९६० प्रकार के यंत्र हैं[3] यानी प्रतीक हैं। हम इस विषय में आगे चलकर एक पूरा अध्याय देंगे।

साधक अपने कार्य की सिद्धि के लिए भिन्न प्रतीक द्वारा भिन्न उद्देश्य से उपासना करता था। तंत्रराजतंत्र में तीसरे अध्याय में भगमालिनी की उपासना है। उनका रक्त वर्ण है परम सुन्दरी हैं। मुस्कराता चेहरा है। तीन नेत्र हैं। कमल पर बैठी हैं।

१ Sir John Woodroffe— Tantraraj Tantra—A Short Analysis — Pub Ganesh & Co Madras 1954—page XVIII

२ महानिर्वाणतंत्र—बीजविधान। सम्पादक जगमोहन तर्कालंकार, पृष्ठ ३२१।

३ Tantraraj Tantra—A Short Analysis—page 97

उनका उपासक वनिताजनमोहिनी की कृपा से अपनी पत्नी तथा प्रेयसी को तथा ससार को वश मे कर लेता है।[१]

पर ये ऐसी सिद्धियाँ है जिनके दुरुपयोग से बडा अनर्थ भी हो सकता है। बच्चे के हाथ मे नगी तलवार नही दी जा सकती। इसलिए बडी सावधानी बरतने की जरूरत है। इसीलिए बडे रहस्यमय ढग स मन्त्र बनाये गये ह। पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं। गोपनीयम् गोपनीयम् —गुप्त रखो गुप्त रखो—की पुकार बार बार लगायी जाती है। यहाँ तक कह दिया गया है कि—

'अन्त शाक्ता बहि शैवा सभामध्य तु वष्णवा ।"

भीतर से शाक्त शक्ति के उपासक रहे बाहर से शव मालूम पडे, पर चार आदमिया के बीच वष्णव प्रतीत होना चाहिए। उपासना के इस क्रम को गुप्त रखने के लिए तत्रराज तत्र म व्याकुलिताक्षर (श्री० ७९ से ९० तक) दिये गये ह जिनको बिना ठीक से हिसाब समझे निरथक समझा जा सकता है और पश्चिमी लोग जादू टोना समझेगे। उदाहरण के लिए देखिए—

व वु ते म ष्व रे तु वा बे त त्ता क र्वा पि प
र स

अब इसी को पढने के लिए आठव अक्षर को पहला अक्षर कर दीजिये चौथे अक्षर का दूसरा छठे अक्षर को तीसरा इस प्रकार नीचे लिखी सख्या से गिनकर अक्षर बिठाइय —

८ ४ ६ २ ७ ३ ५ १

तब पहली पक्ति बनेगी—

वासरेषु तु तेष्वेव सर्व्वापत्तारक पिबेत ।[२]

तत्रशास्त्र आसानी से समझ मे नही आता। उसकी पद्धति गुप्त क्या रखी गयी इसका विवेचन हम यहाँ नही करना चाहते। तात्रिक प्रतीका की व्याख्या भी कुछ अधिक विस्तार के साथ अगले अध्याय मे की जायगी। यहाँ पर तो हम प्रतीक की परिभाषा मे तात्रिक प्रतीक का थोडा जिक्र कर देना चाहते थे। यह अवश्य ध्यान रहे कि मनो

१ वही पृष्ठ ३६—श्री० ३१।
२ वही, पृष्ठ ३७।

विज्ञान के गम्भीर पण्डितो ने ही तात्रिक साधनाए निर्धारित की ह ।[१] वे हसी खेल नही ह ।

माता की उपासना से ही पिता की उपासना की ओर अनक महान् धर्मों की गति के अनगिनत प्रमाण भरे पड ह । मुसलिम तथा ईसाई धम म भी जहाँ पिता परमेश्वर ही प्रधान है माता की मर्यादा कम नही है । सभी प्राचीन धम शिव और शक्ति की किसी न किसी रूप मे पूजा करते थ ही । सभी सभ्यताओ के इस समन्वय पर लेखक ऊली न लिखा है कि ऊर की खुदाई मे प्राप्त सामग्री हो या इब्रानी (हिब्रू) लिपि हो मिस्र में प्राप्त प्राचीन सामग्री हो या बबीलोनिया म प्राप्त सामान हो किसी से भी ऐसी कोई बात नही मिलती जिसस हमारे धमग्र थ बाइबिल के कथनो का खण्डन होता हो ।[२] सभी देश काल म माता सर्वोपरि रही है इसीलिए माता का प्रतीक चारो ओर मिलेगा ।

१ वही पृष्ठ ११ ।

२ C L Wolley— The Excavations at Ur and Hebrew Record — page 52

माता का प्रतीक

माँ का महत्त्व शक्ति का महत्त्व स्त्री जाति का महत्त्व है। ससार म जो कुछ सत्य शिव तथा सुन्दर है वह स्त्री जाति के कारण है। एक ईसाई पादरी ने लिखा है कि महिलाओ का समुदाय अपनी साधु आत्मा से ससार को पवित्र कर रहा है। गुण तथा धम का, पवित्रता तथा स्नेह का प्रतिबिम्ब स्त्री है। चाहे किसान की सन्तान हो या राजा की हर एक के बच्चे को इनके द्वारा उदारता तथा पवित्रता की शिक्षा मिलती है। बन्दियो का सुधार इनके द्वारा होता है। रोगियो को शान्ति इनके द्वारा मिलती है। जीवन के तूफानो मे टकराते हुए प्राणियो को ये शान्ति प्रदान करती ह। आहत तथा पतित को इन्ही से सान्त्वना मिलती है।[१]

माँ कहिए माता कहिए महिला कहिए या अग्रेजी मे मदर कहिए हमारे जीवन मे सबसे प्यारा शब्द माता सबसे प्यारा अक्षर म है। बच्चा पदा होते ही किसी भी देश तथा सभ्यता का रहनेवाला हो म अक्षर का उच्चारण करता है। मिस्र के प्राचीन लोगो का विश्वास था कि सष्टि के आरम्भ मे केवल तरगें थी—तरग का आकार

इस प्रकार हुआ। आकाश और जल की तरगो से पथ्वी बनी। तरगो का रूप

था। नवजात शिशु के मुख से पहला अक्षर म निकला। तरगो का आकार ही बदलकर M म बन गया। मिस्री भाषा मे पहला अक्षर M है तथा दूसरा अक्षर W वही तरगो

१ Edmund Ignatius Rice and Christian Brothers—By a Christian Brother Pub M H Gill & Sons Dublin, 1926—page 9

का उलटा स्वरूप है।

से अग्रजी शब्द Mothcr माना

वना।

से अग्रजी श ्द W1fe पत्नी बना। माता और

पत्नी ही ससार म प्रवान ग्स ह्। जावन म प्राण के समान ह। अनेक विद्वाना का मत है कि आरम्भ म मस्य ससार म दा भाषाए ही प्रचलित थी—सस्कृत तथा सुमिरियन हिब्रू यानी इब्रानी भाषा भी सुमिरियन से बनी है। इब्रानी म भी M म अक्षर है। रूसी भाषा के अक्षर अग्रजी अक्षरा का उलट दन से बहुत कुछ बन जाते ह जस p का q। अस्तु माता सप्टि के आदिकाल की तरगा का प्रतीक है। म अक्षर उन तरगा का द्योतक है।

एक जाति, एक धर्म

प्रत्येक देश की सभ्यता की समाज की उपज मनुष्य के रूप रग स्वभाव मे भेद हो सकता है पर जीवन की मौलिक कामनाए एक समान है। माँ की ममता और पिता का भय स्त्री का प्रम और सन्तान की इच्छा––यह सबम है। मानव जाति की शाखाएँ भिन्न हो सकती ह। पर ये शाखाएँ वक्ष की शाखाओ क समान नहा ह जा कभी नही मिलती। एक शाखा दूसरी स जुदा रहती है। जिस प्रकार बादला क टुकड टुकडे हा जाते ह फिर मिलते ह फिर अलग होने रहत है उसी प्रकार मानव जातिया भी ह। यदि डा० कुक और प्रा० गायकी' का यह कथन सत्य है कि पथ्वी पर से बफ के पिघलने और प्राणिया का जीवन प्रारम्भ हुए ८० ००० वष हो गये या प्रो० ओसबोन क अनुसार ६० ०० वष हा गय––तो इतने हजार वर्षो म भी मनुष्य के अन्तरतम भावो म कोई अन्तर नही आया है। यदि आन्तरिक भाव समान ह तो हर एक का प्रतीक भी समान अथ वाला होगा। केवल उसको समझन की चेष्टा करनी चाहिए। आज हम भारतीय विश्वास की खिल्ली उडाते ह कि सतयुग १७ २८ ००० वष तक था त्रेतायुग १२ ९६ ००० वष तक द्वापर ८ ६४ ००० वष और ४ ३२ ००० वष का कलियुग ईसा से ३१०२ वष पूव १८ फरवरी शुक्रवार को शुरू हुआ है तो कौन जाने कल हमको इस पर भी विश्वास हो जाय। पहले तो हमारे वेदो को भी प्राचीन रचना नही माना जाता था। अब जोन्स उसे ईसा से १२०० वष पूव हग २४०० वष पूव तथा लोकमा य तिलक ने ८००० वष पूव सिद्ध कर दिया है। ६००० वष पुराना ही सही वद ससार का सबसे प्राचीन ग्रथ तो मान लिया गया तब यह भी मान लना चाहिए कि हमारी आय सभ्यता ही ससार की सबसे पुरानी सभ्यता है तथा ससार म चारो ओर यह फली हुई थी। ससार मे एक जाति थी––आय जाति। एक सभ्यता थी––आय सभ्यता।

आय लोगो की एक खास पहचान थी––उभडी हुई लम्बी नाक। एच० जी० वेल्स

१ Prof Geikie

ने लिखा है कि भूरे लागा की नाक भी एसी ही थी । सर आथर कीथ ने इनको आर्य जाति का ही कहा है । मिस्र बबीलोन मसोपाटामिया—सभी दशो के प्राचीन निवासी भूरे रग के आय थ । मेसोपोटामिया क निकट सुमर लागो का निवासस्थान था । इनकी सभ्यता बडी पुरानी मानी जाती हे । ऊला न इनके विषय मे एक बडी पुस्तक ही लिखी है । उनका कहना है कि सुमेर लागा क नरशा की कथाए दन्तकथाए नही ह । वास्तव म व नरेश हुए थ और उनका इतिहास है ।[१] तब हमारे पुराणो तथा वाल्मीकि रामायण म वर्णित सुमरगिरि और सुमरियन लागा का एक ही क्यो न माना जाय ? पुरान यूनानी इतिहासकारा ने भी लिखा है कि भारतवष के बाहर दो भारतीय राष्टीय रहते ह यानी भारतीय जाति के लाग रहते ह । हेरोडेटस ने भी यही लिखा है । अन्तरीप आब क ऊपर हिगहाज का मदिर शुद्ध भारतीय मन्दिर है । मिस्र की नील नदी का काली कृष्णा नदी के नाम स वणन भी पुराणा मे मिलता है । सुमरगिरि की सभ्यता ता एकदम भारतीय थी । ईसा म २० ० वष पूव खम्मूराबी ने सुमेर नरश कौच का परास्त कर बन्दी बनाया और उनकी सभ्यता नष्ट भ्रष्ट कर दी । अन्यथा आज भारत से लकर अरब तक एक सभ्यता एक समाज रहता । सुमर नरश बारती इतिहास प्रसिद्ध ह । यह बारती (भारती) शब्द भारत से ही बना है । उनके एक नरेश का नाम उखर या लवुक्ष दिया हुआ है । यह और कुछ नही इक्ष्वाकु थे जिनका सुमेरगिरि पर भी राज्य था । ईसा से २१०० वष पूव उनके एक नरश का नाम जिन भुजेन था । महाभारत काल म हमारे जनमेजय (परीक्षित के पुत्र) यही थे ।

एतिहासिक अनुसन्धान के अनसार समरगिरि या सुमेर लोगो की सभ्यता की जा जानकारी होता है उससे हमारी सभ्यता का ही पता चलता है । वहाँ के निवासी पुनजन्म में विश्वास करते थ । मरन क बाद बाय करवट लिटाकर मुर्दा दफनाते थे । लडके लडकिया की शादी घर का बडा बूढा तय करता था । वध्या स्त्री को तलाक दे सकते थे । एक पुरष कई विवाह कर सकता था । पर भरण पोषण की कानूनी जिम्मेदारी कवल पहली पत्नी की हाती थी । दूसरी स्त्री भी जायज थी पर उसका ओहदा पहली पत्नी के बाद का ही होता था । विवाह म पत्नी अपने पिता के घर स जो कुछ ले आती थी वह स्त्री धन होता था । उस पर पति का अधिकार नही होता था इत्यादि ।

उन्ही के इतिहास से पता चलता है कि ईसा से २००० वष पूव असीरिया देश की महारानी सामारामिय ने नौसेना द्वारा समुद्री माग से भारत पर हमला किया । हिन्दुस्तान

१ C L. Wolley— Sumerians '—page 30

के हाथियो की सेना को डराने के लिए वे नौका पर लकडी के बडे बडे हाथी भी ले आयी थी। पर स्तव्रोवतीस ने इस सेना को परास्त कर दिया। यह स्तव्रोवतीस और कोई नही वीरसेन स्थवरपति ही थे।[१]

इन बातो का एक ही अथ निकलता है--वह यह कि इन सब जगहा मे एक ही सभ्यता एक ही विचार धारा व्याप्त थी। इसलिए हमारे प्रतीक भी एक ही समान थ। मिस्र में भी प्रसन्नता कल्याण तथा पवित्रता का प्रतीक कमल था। वह राजचिह्न बन गया। भारत में भी कमल इन्ही बातो का प्रतीक रहा है। इसलिए तन्त्र पुराना है या वेद इस तक मे न पडकर यह मानना पडेगा कि च कि वेद सिद्धान्ता का प्रतिपादन करता है और आगम यवहार तथा पद्धति का अतएव तान्त्रिक प्रतीक ससार मे सबसे पुराने प्रतीक ह और ससार के हर कोने मे विशषकर जहा आय सभ्यता थी विपुल मात्रा म पाये जाते ह। पर इनको समझने के लिए बडे गहरे अध्ययन की आवश्यकता है।

१ प्राचीन सभ्यताओं के साथ भारत के सम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए दो पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये--(क) T S Forbal— The Travels and Settlements of Early Man, (ख) Peak and Fleura— Priest and King —Clarendon Press London—1927

बिन्दु

हमने बि दु प्रतीक का ऊपर जिक्र किया है । इस बिन्दु की व्याख्या करने के लिए पथक पुस्तक ही लिखनी पडगी । तब बिन्दु के प्रतीक को लोग विशषकर पाश्चात्य लोग कस समझ सकग ? ऋग्वद का सबसे प्रथम मत्र अग्निमाले पुरोहितम से अकार—अ—लिया गया । यजुर्वेद क सवप्रथम मत्र इषेत्वा जेत्वा से इकार—इ—लिया गया ।

सामवेद के सवप्रथम मत्र अग्न आयाहिवीतय से अ लकर इ मिलाकर ऐ बना । यही बिन्दुरहित वाग्भव बीज ऐ हुआ । यही वाग्भव बीज श्री विद्या के मत्रो मे सव श्रष्ठ कादि विद्या के प्रथम कट पञ्चाक्षरी कूट का मूल मत्र बना । अब ए कितना महान प्रतीक है यह बात सरल बद्धि क लिए नही है ।

बहुत से लोग ए क प्रतीक की खिल्ली उडाते ह । किसी बात का न समझना और बात है और उसका मजाक उडाना और बात है । देहाती म पर पर पर रखकर सोना या बठना दुर्भाग्य का प्रतीक मानते ह । हम इस लोग अधविश्वास समझते ह । सामुद्रिक शास्त्र म पर स पर रगडना मना है । सामुद्रिक के अनुसार लक्ष्मी का वास पर म है । वहा से सम्पदा आयी । इसलिए पैर पर पर रखना अशुभ है । दारिद्रय का लक्षण है । एक बात और है विज्ञान न सिद्ध कर दिया है कि सर स शक्ति रूपी विद्युत आती और जाती है । हाथ से आती है पर स जाती है । किसी का पर छूकर हम उस व्यक्ति की शक्ति अपन हाथो से समेटते ह । इसीलिए बहुत से लोग अपना पर छूने नही देते । जिन्हे इतनी बात नही मालूम ह व पर से पर रगडन को दरिद्रता का प्रतीक कैसे समझगे ?

चीन मे प्रतीक

आय सभ्यता की मातत्व तथा पितत्व की कल्पना शिव तथा शक्ति पुरुष तथा प्रकृति की भावना ने सभी प्राचीन सभ्य देशो को प्रभावित किया था । चीन म भी यही भाव फैल गया था । प्राचीन चीनी धम तथा कत्तव्य शास्त्र पुरुष तथा प्रकृति के महान सयोग का द्योतक है । परम पुरुष को चीनी धम म याग कहते थ तथा प्रकृति को यिन । चीनी आचार शास्त्र के यही देवता आधार ह । चीन का प्राचीन धमग्र थ यि वास्तव म देववाणी समझा जाता है । यह समूचा ग्र थ भाषा मे न होकर प्रतीका म है । चीन के महान नतिक विधान के आधार यही प्रतीक ह । इस धमग्रथ म ६४ षटकाण तथा ३८४ मात्रो यानी वे पक्तियाँ ह जिनस षटकोण बनते ह । हर सामाजिक आचार का भिन्न प्रतीक है । सिजु[१] के कथनानुसार ऋषिया ने इन प्रतीको की अपन अनुभव स रचना की है ।[२] चीनी धम प्रतीक शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बड महत्त्व का है । चीनी प्रतीक केवल धम के ही बोधक नही ह आचार शास्त्र के भी बोधक ह ।

१ Hsı Tzu

२ Dr Fung Yu Lan— The Spirit of Chinese Philosophy —page 89 and A Short History of Chinese Philosophy —pages 80-97

प्राचीन रोम तथा मिस्र के प्रतीक

माँ की पूजा पुरुष तथा प्रकृति की पूजा शिव शक्ति की पूजा प्राचीन आय धम की सबस बडी देन है और यह पूजा ससार मे चारो ओर फल गयी। रोमन लाग परम शक्तिशाली माता —सिवेली की पूजा करते थे। यह सिवेली भारतीय शिवा या शिवाली का अपभ्रश है। मात पूजा के साथ जो रहस्यमय उपासना हाती है उसे पश्चिमी या पूर्वी गैर जानकार लाग कामवासना स मिला देत ह। इसीलिए मलिनास्की ऐसे विद्वाना न योनिपूजा का मातत्व की पूजा को कामवासना समझा है। कीफर ने स्वीकार किया है कि रोम का सिवली देवी जिसको मग्नामटर शक्तिशाली मा कहते थे अरब के देश की तरफ स राम म आयी यानी प्राचीन एशियाई सभ्यता की देन ह। पर कीफर इनकी भी उपासना का वासना की उपासना मानते ह।[1] दवी की उपासना के साथ बाद म चलकर कुछ ऐसे आडम्बर लग गये तथा अथ का एसा अनथ हो गया कि ऐसी क्रियाए भी उपासना का अग बन गयी जा भ्रष्ट भी कही जा सकती ह। पर हर एक देश म मर्ति पूजा का यह दाष पाया जाता है। भक्ति अध विश्वास का रूप ग्रहण कर लती है। पर मौलिक सत्य छिपा नही रहता है। मिस्र दश मे महादेवी आइसिस को पूजा हाती थी। यह पूजा भा पूर्वीय देशो से आयी। मिस्र म शक्ति की उपासना के लिए आइसिस देवी थी। आइसिस शब्द भी अस्मिता तथा शिव का अपभ्रश है। शिव के रूप म आइसिस के पति आसिरिस—सिरापिस— ॐशिव — सपयुक्त दवता थ। इन दवी दवताओ का और उनकी उपासना की पद्धति का दायादोरस न अपने इतिहास म अच्छा वणन किया है। इन प्राचीन उपासनाओ की समाप्ति ईसा से २४० वष पूव बबर जातियो के आक्रमण के कारण हुई। सिसली के लोगो ने ईसा से ३०० वष पूव कार्थेज की महान सभ्यता तथा शक्ति को नष्ट किया था। पर, उनकी सभ्यता का प्रभाव सिसली म रह गया था। पर ईसा से २४० वष पूव दास युद्ध

१ Otto Kiefer—Sexual life in Ancient Rome—Standard Literature Co Calcutta 1951, page 123

२ वही पृष्ठ, १२८।

मे सिसली का नाश हो गया और ये दास लोग चारो तरफ फलकर उस सभ्यता को नष्ट भ्रष्ट करने लगे ।[१] दायोदोरस ने ही लिखा है कि आइसिस देवी का आदेश था—

मने ही सवप्रथम मनुष्यो को इतना साहस दिया कि वे समद्रो की यात्रा करके उसे पार कर सके । मैने उन्हे शक्ति दी कि वे अपने जीवन यापन का विधान बनाकर अपना शासन करे । मने पुरुषो को स्त्रियाँ दी ताकि सष्टि हो सके ।[२]

इस कथन की व्याख्या करते हुए कीफर लिखते ह[३] कि कानून बनाने या देने का सिद्धान्त माता के सिद्धान्त से सम्बन्धित है वही माता जा सतान देती है और कठिन यात्राओ मे रक्षा करती है। जो माता पुरुष तथा स्त्री को एक साथ मिलाकर दस महीने म सतान देती है उसी को नियम बनाने का अधिकार है हम यहाँ देखते ह कि माता ही उच्चतम याय का प्रतीक है माता शान्ति मेल स्नेह तथा धन धा य की अभिव्यक्ति है । यही माता आइसिस की पूजा इटली के नीचे के हिस्से से होते हुए राम म पहुची । वहाँ पर इनको बहस्पति की पत्नी के रूप म स्थापित किया गया । वे कृषि तथा सम्मृद्धि की देवी हो गयी । उनका स्थान अन्नपूर्णा देवी का था ।

आइसिस की पूजा मे राम मे प्रति वष बडा उत्सव मनाया जाता था । उनके सम्मान मे एक जुलस निकलता था । इस जुलूस मे तरह-तरह के प्रतीक निकाले जाते थे । याय का प्रतीक होता था एक बायाँ बढगा हाथ जिसकी उगलिया फली रहती थी । इसका मतलब यह था कि याय आदतन धीमी गति से चलता है । वह न तो मक्कार होता है और न तिकडमी । दाये हाथ से अधिक वह याय के निकट है ।[४] अन्नपूर्णा दवी यानी माता आइसिस की प्रतिमा के स्थान पर गाय होती थी । गाय ही भोजन तथा अन्न देनेवाली देवी का प्रतीक थी । गाय का भगवती का प्रतीक मानना एक बहुत ऊचा विचार है । आइसिस के पति देवता की मूर्त्ति चमकते हुए स्वण का एक एसा स्तम्भ होता था जा बीच मे से खोखला रहता था । उसकी शक्ल किसी जानवर पक्षी या मनुष्य से नही मिलती थी । अजीब शक्ल थी । उसके हाथ मे एक टेढी छडी होती थी जिसमे सप लिपटे रहते थे । इतने वणन से यह स्पष्ट है कि यह मूर्त्ति रुद्र की थी । शिव लिंग से मिलती जुलती थी सप (कुण्डलिमो के स्वामी) शकर का प्राचीन शृगार है । जुलूस

१ Diodorus— Historia —i 27
२ वही, पृष्ठ ३४ ।
३ कीफर, पृष्ठ ८९ ।
४ कीफर पृष्ठ १३० ।

का इतना वणन करने पर कीफर लिखते ह कि "ससे ता कामवासनामय पूजा का कोई प्रमाण नही मिलता ।[१]

मा की रोमन यूनानी उपासना का जिक्र प्लटाक[२] ने भी किया है। वे लिखत ह कि रोमना की एक देवी ह जिन्हे वे अच्छी मा कहते ह । यूनाना उन्ह स्त्रिया की दवी कहते है । फाइरिजियन कहते ह कि यह उनक नरश मिदास की माता ह । देवी उपासना म कुछ कामुकता आ गयी हा पर दवी की उपासना कामुक लागा की उपासना थी यह बात ओटा कीफर भी नही मानते । व साफ लिखत ह कि कुछ अति हा सकती है पर उपासना का क्रम कामुक रहा हागा यह म नही मानता ।[३]

यन पुस्तक तत्र उपासना पर नही है । केवल तात्विक प्रतीका का परिचय कराने के सम्बन्ध म हमन उस पर किंचित विचार किया है । इस विषय म अग्रजी म दो अज्ञानी लखका की पुस्तक पढन से विचारशाल पाठक यह समझ सकग कि विषय का न समझन स भी कितना भयकर भ्रम हा सकता ह ।[४] हास लिखत ऐसे अज्ञानी लखका ने यहूदी ईसाई धम के इस विश्वास की कि मानव शरार तपस्या क लिए ह काफी खिल्ली उडायी है । व उनके इस विश्वास का समझ भी नही सक ह कि मरन पर स्वग म वासना रहित परिया क साथ निवास करन का मिलगा ।[५] यूनान के महान देवता ज्यूस और उनका पत्नी हेरा तथा देवी अफ्रोदतीज की वासना की वसी ही भ्रष्ट कथाए लिरत ने दी ह जसी हम शिव पावती का विलासिता के बारे म भी पढ लते ह । ज्यस का पुरुष मथन प्रमा तक सिद्ध किया गया है । उनकी उपासना की क्रियाआ का वसा ही रूप बतलाया गया है ।

१ वही पृष्ठ १३१ ।
२ Plutarch Caeser—9
३ कीफर पृष्ठ १३३ ।
४ देखिये James— The Varieties of Religious Experiences" (1902) तथा Starluch— The Psychology of Religion (1899)
५ Hans Licht— Sexual life in Ancient Greece—Standard Literature Co Ltd Calcutta—1952 page 180

भारतीय तंत्र-शास्त्र तथा संकेत-विद्या

प्रतीक तथा सकेन शास्त्र के विद्यार्थी को भारतीय तत्र शास्त्र तथा प्रतीक और सकेत का सम्बध किसी रूप म समझ ही लना चाहिए। भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति का पर्यालोचन करनवाल जिज्ञासु पुरुष का ज्ञान तब तक अधूरा ही रह जायगा जब तक वह भारतीय तत्र या आगम शास्त्र का परिचय न प्राप्त कर ले। सर जान उडरफ ने तो यहा तक लिख डाला था कि—

वह व्यक्ति हिदुत्व को तब तक यथार्थत नही जानता जब तक तत्र शास्त्र को नही जानता।

तत्र क्या हे? भारतीय ज्ञान की धारा दो रूपा मे प्रवाहित हुई है। एक प्रकट तथा दूसरी गुप्त। पहल को हम वद तथा दूसरे को तत्र या आगम कहते ह। वस्तुत य दोना मूलत भिन्न नही ह। कश्मीरी आचार्यों न भरवागम को वेद का बीज तथा फल दाना कहा हे।[१] कुछ आचार्यो न परम्परा से आनेवाला शास्त्र यानी आगम' वे ही भदो म वद का स्थान दिया है। स्थान स्थान पर वेद और आगम दाना परस्पर के पयाय या पूरक रूप मे प्राप्त हात ह। जिस प्रकार वेद प्राचीन गुरु परम्परा प्रणाली के कारण यानी गुरुओ द्वारा शिष्या को सिखाय जाने क कारण सुरक्षित रहे याद रहे, प्रचलित रहे उसी प्रकार आगम भी परम्परा क कड पहरे म फलते रहे फलते रहे सुरक्षित रहे। इस प्रकार आगम के दिव्य ज्ञान की धरोहर गुरु तथा शिष्य की शृखला मे चलती आयी चली आ रही है। **त्रिपुरारहस्य** म वेद और आगम के पयाय रूप का बडे अच्छे शब्दा मे विवेचन है।[२] आगम की विद्या की गुरुता उसके रहस्यमय रूप के कारण और अधिक हो गयी। उसके लिखित रूप से कही अधिक महान् कान से कान द्वारा सुना हुआ रहस्य रूप है। केवल अधिकारी पुरुष का ही जिसे गुरु ने योग्य तथा पात्र

१ यन्मूल वेदवृक्षस्य सम्पूर्णानन्तशाखिन'।
फल तस्यैव य प्राहुस्त वन्दे भैरवागमम्॥

२ वेदो ह्यागमभाग स्यात् शब्दराशिस्तथागम।
कर्णात्कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनीतलम्॥

समझा हो गोप्यता का रहस्य का पता चल सकता है। अति गोप्यता के कारण ही तंत्र शास्त्र की परम्परा प्राय लुप्त हो चली है। एक दृष्टि से इस रहस्य तथा गुप्तता से लाभ भी हुआ है। जो लोग ठीक से अधिकारी नही होते वे मद्य मास के सेवन को ही तंत्र शास्त्र समझ लेते ह। वे शरीर के भीतर की कुण्डलिनी के स्थान पर बाहरी मथुन म प्राण दे देते ह।

तन्त्र-शास्त्र की प्रामाणिकता

हमारे देश के आचार्यों ने तंत्र शास्त्र की प्रामाणिकता दो भिन्न धाराओं द्वारा सिद्ध की है। कुछ विद्वान तो तंत्रों को स्वतः प्रमाण मानते हैं विशेषकर कश्मीरी शैवाचार्य। आचार्य अभिनवपाद गुप्त कहते हैं कि आगम महेश्वर का स्व प्रकाश ज्ञान ही है।[1] इसलिए तंत्र को प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

दक्षिण के श्रीकंठ शिवाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र के श्रीकंठभाष्य में लिखा है कि शिवागम तथा वेद दोनों में कोई अन्तर नहीं है। वेद को भी शिवागम कहा जा सकता है। ऐसी श्रुतियाँ भी हैं जो वेद तथा तंत्र दोनों का एक ही कर्त्ता 'शिव' को सिद्ध करती हैं। ईशानः सर्वविद्यानाम्। इसलिए शिवागम के ही दो विभाग किये जा सकते हैं। एक त्रैवर्णिका के लिए यानी ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए तथा दूसरा सब लोगों के लिए है।

इस सम्बन्ध में वेदानुयायी मीमांसक पंडितों की भी अपनी राय है। इनमें राघव भट्ट तथा प्रसिद्ध विद्वान श्री भास्करराव दीक्षित आदि प्रमुख हैं। इनका कहना है कि तंत्रों की प्रामाणिकता वेद से ही है। जैसे मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र वेद के कर्मकाण्ड का अंग हैं। वेद का प्रायोगिक रूप क्रियात्मक रूप तंत्रों के आकार में परिणत हुआ है। वेदान्त को कार्यरूप में परिणत करने की क्षमता तान्त्रिक उपासना में ही है।[2]

१ "आगमस्तु अनवच्छिन्न प्रकाशात्मक माहेश्वर विमर्श परमार्थ ॥"

२ वेदे च पूर्वकाण्डस्य शेषभूततया आश्वलायनादिकल्पसूत्राणां मन्वादिस्मृतीनाञ्च प्रवृत्तिवत् उपनिषत्-काण्डशेषत्वेन परशुरामादि कल्पसूत्राणां यामलादितन्त्राणाञ्च प्रवृत्तिः ।

—सेतुबन्ध टीका—भास्कर राव ।

तन्त्रों की शाखाएँ

तन्त्रो के अनेक भेद तथा उपभेद ह । इनकी अनक शाखाए तथा उपशाखाए ह, जिनमें स आज कुछ ही उपलब्ध हो रही ह । प्राचीन भारत म प्रत्यक हिंदू के घर में किसी न किसी रूप मे तान्त्रिक उपासना होती थी । उस उपासना का रूप देश तथा काल के अनुसार बराबर बदलता गया । पुरानी पद्धतियो से जिस प्रकार पूजा पाठ होता था वह ता समाप्त हो गया है । उनका रूपान्तर रह गया है । इसी का आज हम लोग कुलधर्म कुलाचार कुलदवता या कुल की रीति आदि नामो से पुकारते ह ।

बहुत घरो म विशषकर महाराष्ट्र म मकान क सामन चौक पूरन का रिवाज है । शुभ अवसरो पर कौडी क उपयोग का रिवाज है । नरक चतुदशी को यम-दीपक यानी यमराज को माग बतलानेवाला दीपक दरवाज क बाहर रखन का रिवाज है । स्त्रियो की गोद म उनक अचल म नारियल रखन का रिवाज है । ऐसे अनगिनत रिवाज ह । पर क्या इनका कोई आधार नही है ? क्या इनका कोई रूप नही है ? क्या इनका कोई अर्थ नही है ? यह आसानी स साबित किया जा सकता है कि यह सब तान्त्रिक क्रियाओ का रूपान्तर है और विशिष्ट कार्यो का प्रतीक मात्र है । हम इस विषय पर आग लिखग ।

आगम या तन्त्र का नाम सुनकर साधारणत लोगो को अघोरियो या कापालिको की रीति का ही बोध होता है । पर यह नितान्त भ्रम है । तन्त्र शास्त्र का क्षेत्र वही तक सीमित नहीं है । यह सत्य है कि कापालिक तथा अघोरी दोनो का तन्त्र से घना सम्बन्ध है दोनो उसी के अग ह । यह भी सत्य है कि पच मकार यानी मद्य मास आदि से की जानवाली उपासना भी तन्त्र का अग है । परतन्त्रो का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है । देवता की उपासना यन्त्र की रचना काल चक्र विज्ञान योग की क्रियाए ये सभी विषय तन्त्र मे पाये जाते ह । तन्त्रो क अनक भेद ह जस—

यामल डामर सहिता रहस्य तन्त्र अर्णव आगम आदि ।

तन्त्र का अर्थ तथा लक्ष्य

तत्र शब्द का ग्रथ करने म भी लाग बडी भूल करते ह । तन धातु का ग्रथ विस्तार है । जिसमे विस्तार के साथ ग्रनेक विषयो का सग्रह है वही तत्र है । ग्रागम ' के लक्षण से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है—

सष्टिश्च प्रलयश्चैव देवताना तथाऽर्चनम ।
साधन चव सर्वेषा पुरश्चरणमेव च ।।
षटकम साधन चव ध्यानयोगश्चतुर्विध ।
सप्तभिलक्षणयुक्तमागम त विदुर्बुधा ।।

तत्र शास्त्र के ग्रनुसार प्राणिया की भिन्न रुचि को देखकर भगवान शकर ने भिन्न तत्रा की रचना की या सष्टि की ।[१] सौन्दयलहरी मे ग्रादि शकराचाय जी ने लिखा है कि विभिन्न प्राणिया की ग्रभिरुचि के ग्रनुसार फल देन के लिए ६४ तत्रा को बनाया जिससे व ग्रपन ग्रभीष्ट काय कर सके । ग्रापके ही ग्राग्रह से सारे पुरुषार्थों का दनवाल स्वतत्र तत्र —शक्ति उपासना को इस पथ्वी पर श्री शिव ने उतारा है ।

इस जीवन म पूणत्व की प्राप्ति पराहता की उपलब्धि या स्वय महेश्वर हो जाना ही तात्रिक उपासना का चरम लक्ष्य है । छोटे मोटे प्रयाग या षटकम तत्रा मे बहुत मिलते ह पर उच्च कोटि क उपासक उनको महत्व नही देते । क्षुद्र सिद्धिया ग्रसली लक्ष्य तक पहुचने म बाधक होती ह । जा उपासक ब्रह्म विद्या को प्राप्त करना चाहता है वह कभी छोटी मोटी सिद्धिया के पचडे म नही पडता । शकराचाय न ब्रह्म विद्या की महत्ता सिद्ध करते हुए लिखा है— वर्णाश्रम क बधनो से रहित यदि सच्चा ब्रह्म विद्या उपासक

१ चतु षष्ट्या तत्रै सकलमभिसध्याय भुवन,
स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतत्र पशुपति ।
पुनस्त्वन्निबधादखिलपुरुषार्थैक घटनात्,
स्वतत्र ते तत्र क्षितितलमवातीतरमिदम् ॥
—सौन्दर्यलहरी—श्री शकराचार्य ।

हो तो वही आचाय हो सकता है। देवगरु बहस्पति के ज्येष्ठ भ्राता महर्षि सेवर्त ऐसे ही कोटि के पुरुष थे। उनका मरुत्त नामक राजा न अपने यज्ञ मे अध्वयु बनाया था।[१] इस उक्ति मे तात्विक उपासना का सकेत स्पष्ट है।

ऐसे आगम ऐसे तत्र की परम्परा निश्चयत बहुत सुरक्षित तथा शृखलाबद्ध थी। इस शास्त्र मे विषय का विवेचन सकेतो के द्वारा होता था। सकेत प्रतीक का रूप धारण कर लेते थे। जो वास्तव मे उपासक होता था अधिकारी होता था वही उन सकेतो से लाभ उठा सकता था। वही प्रतीक को समझ सकता था। इस महान शास्त्र मे एक बात और थी। उसमे कुछ विषय ऐसे भी थे जो प्रतीक के द्वारा ही स्पष्ट हो सकते थे। अपनी यह बात समझाने म हमको प्रतीक की परिभाषा स्पष्ट करने का भी अवसर मिलेगा। प्रतीक की स्वत कोई सत्ता नही है। वह तो किसी सत्ता की छाया है। सक्षिप्त आकार ही है। इसलिए प्रतीक तथा उसका आधार साथ ही साथ चलते है।

१ ब्रह्मसूत्र—शाकर भाष्य।

शक्ति की परिभाषा

हम तंत्र उपासना म प्रतीक से परिचय प्राप्त करना चाहते है । पर तंत्र उपासना का मौलिक अथ क्या है ?—शक्ति की उपासना करना । यो तो उपासना मात्र ही शक्ति की उपासना है चाहे वह जिस रूप मे हो अ तर इतना ही है कि कही पर प्रत्यक्ष रूप से शक्ति या आत्म शक्ति की उपासना है तो कही अ य देवता की या शक्ति के प्रतीक की उपासना होती है ।

प्रश्न हो सकता है कि शक्ति क्या है ? सबसे सरल तथा बोधगम्य व्याख्या यह हो सकती है कि परम शिव का सष्टि के प्रति उ मुख होना ऊध्वमुख होना उत्सुक होना—इसी का नाम शक्ति है ।

"शक्ति परमशिवस्य जगत्सिसक्षा ।"[1]

परम शिव तरगरहित सव यापक समुद्र के समान ह । उनम कही से चलनेवाली हवा की तरह एक चेतना उत्पन्न हुई जिससे क्षण मात्र मे ही अन त कल्लोल दिखाई पडने लगा । यही अन त कल्लोल है वह शक्ति सघट्ट जो सवथा अन त है । शक्ति का अथ शक्यते जेतुमनया भी है । हलायुधकाश म शक्ति का अथ प्राण भी है ।

आगम शास्त्र तीन शक्तियो का निर्देश करते ह । इनम सबसे महत्त्व की इच्छा शक्ति है जिसके द्वारा ज्ञान तथा क्रिया दोनो की प्रगति होती है ।[2] समूचा विश्व शक्ति से ही उत्पन्न है शक्तिरूप ही है । शिव म से इ निकाल देने से शक्ति निकाल देन से परम कल्याणकर शिव शव अकल्याणकर मुर्दा बन जाता है इसलिए ससार मे जो कुछ भी है शक्ति है । उसी की उपासना के लिए प्रतीक का बडा महत्त्व है । सकतो या प्रतीको के द्वारा जटिलतम गूढतम उपासना विधियो को सरल बना दिया गया है, ताकि

१ परशुराम-कल्पसूत्र ।

२ अनादिनिधनात् शान्तात शिवात् परमकारणात् ।
इच्छाशक्तिर्विनिष्क्रान्ता ततो ज्ञान तत क्रिया ॥
(कुलमूलावतारतंत्र)

बिना अधिक कठिनाई या परिश्रम में पड़े पूजा का काम हो सके। इसीलिए भगवान् शकर ने इन सकेता तथा प्रतीका की स्तुति का है उनसे प्राथना की है--

य कुण्ड मण्डल कमण्डलु मत्र-मुद्रा
ध्यानार्चनस्तुतिजपाद्युपदेशयुक्त्या
भोगापवर्गदमनग्रहमानताना
ध्यानञ्ज रञ्जयतु स त्रिजगद्गुरुव ॥[१]

प्रतीक अथवा सकेत के रूप भी भिन्न होगे ही क्योकि उनका काय क्षेत्र बडा व्यापक है। मोटे तौर पर उपासना के काम म आनेवाले प्रतीका की पाच श्रेणियाँ हुइ--

१ वर्ण प्रतीक
२ अक प्रतीक
३ चक्र प्रतीक
४ मुद्रा प्रतीक
५ पूजा प्रतीक

१ स्तुतिकुसुमाजलि--जगद्धर भट्ट।

वर्ण-प्रतीक

वर्ण पुंलिंग श द है । व्रियते इति वण वण का अथ है अक्षर—जिसका कभी नाश न हो । कहते ह कि प्रारम्भ में केवल श द था । शब्द ब्रह्म के माननेवाले इस विषय का बडे रोचक ढग से प्रतिपादन करते ह । इसलिए वण अनादि तथा अनन्त ह—अन त ध्वनियाँ हैं । आगम या तत्रो मे वर्णों का विचार अत्य त महत्त्वपूण है । सारी सष्टि मातकामय है । मातृका का अथ है उत्पादन करनेवाली शक्ति सारी सष्टि, चौदहो भुवन और वाङमय —ये सब मातृका की ही प्रसूति ह ।[1] वेद का भी यही कथन है कि भू कहते हो प्रजापति ने भूमि की उत्पत्ति की—

"स भूरिति भुवमसजत"

शिव सूत्र मे मत्र की याख्या है— चित्तं मत्र यानी जिसके मनन से त्राण मिले, वह है मत्र । वण ही मत्र है या वण के द्वारा ही मत्र बनते ह । मत्र बनाये नही जाते । हमारे शास्त्र क अनुसार मत्र देखे जाते ह । ऋषिया ने मत्र को देखा—इसलिए उ हे मत्र द्रष्टा कहते ह । वही तपस्वी ऋषि कहलाता है जा मत्र को देखता है— ऋषयो मत्रद्रष्टार । हर एक साधु का ऋषि नही कहते । आजकल हम बिना समझे बूझे जिसे चाहते ह ऋषि या महर्षि कह देते ह । यह इस शब्द का तथा जिसके लिए प्रयुक्त हो उसका अपमान है ।

कि तु मत्र या वणमयी सष्टि का विचार करते हुए उसकी उत्पत्ति तथा विकास के क्रम को भी जान लेना चाहिए समझ लेना चाहिए । आचाय अभिनवपाद गुप्त ने तत्त्वो की उत्पत्ति बतलाते हुए मातका वर्णों को एक एक **प्रतीक** कहा है । वे कहते ह कि परमेश्वर की तीन शक्तियाँ मुख्य ह—१ अनुत्तर (अ) २ इच्छा (इ) तथा ३ उ मेष (उ) । ये तीन वण ही परमेश्वर के सूचक ह प्रतीक ह । अनुत्तर की विश्रान्ति आन द

१ तयोत्पन्नानि भूतानि भुवनानि चतुर्दश ।
वाङ्मय चैव यत्किञ्चित्तत्सर्वं मातृकोद्भवम् ॥

(आ) म हुई। इच्छा की ईशन (ई) म तथा उन्मष की ऊर्मि (ऊ) म विश्रान्ति हुइ। यहा से **क्रिया शक्ति** का प्रारम्भ हाता है।

इसम पूव भाग--अ इ उ प्रकाशात्मक हान से सूय भाग है। उत्तर भाग--यानी पिछला हिस्सा यानी--आ इ ऊ--विश्रान्ति रूप होन से आनन्ददायक है अतएव वह सोमात्मक है। अग्नीषोम अग्निष्टोम सष्टि का मूल तत्त्व है। अभिनवगुप्त ने इसी प्रकार आगे क वर्णों का क्रमश विकास समझाते हुए उनका प्रतीकात्मक रूप समझाया है। यह बडे अच्छ तथा गम्भीर ढग से सोचने की बात है। प्रतीक का विज्ञान प्राचीन भारत म इतनी चरम सीमा पर पहुच गया था कि प्रत्येक वण से समची सष्टि के महत्त्वपूण अगो का बोध होता था। आ ई ऊ परमात्मा की आनन्द शक्ति का बोध कराते थ। इसी प्रकार और भी महत्त्व की चीज हम आगे चलकर बतलायेंगे।

मंत्र के अवयव

मत्रा के सूचक अक्षरो के लिए कतिपय मत्र कोष या बीज कोष मिलते ह जिनके द्वारा साक्षात् या परम्परा से मत्र सूचित किये जाते ह । उदाहरण के लिए—

काम	—	क
यानि	—	ए
इन्द्र	—	ल
अग्नि	—	र
क्रोधीश	—	क्ष

क काम का प्रतीक हुआ । र अग्नि का । अब प्रतीक के इस गूढ रहस्य को कौन समझ सकेगा ? यहा पर शका की जा सकती है कि र स अग्नि का बोध हाना या र को अग्नि का प्रतीक मान लेना यह यदि कल्पना नही तो भावना मात्र है । किन्तु यह कोई नक नही है । यह सृष्टि यह ससार यह दृश्य जगत यह सब भी तो एक विशाल कल्पना है या भावना है । पति पत्नी या पिता पुत्र का सम्बन्ध भावना स ऊपर उठकर और कुछ है क्या ? भावना क आगे जा कुछ भी है वह अधकार है या मिथ्या है । यह ससार एक स्वप्न है । एक भावना है । पर भावना महान नही है भाविक[1] महान है । भाविक से ही भावना की सष्टि होती है । यदि प्रत्येक अक्षर यदि प्रत्येक वण एक प्रतीक है तो यह भी सही है कि प्रत्यक अक्षर का अथ भी है । दोनो एक दूसरे के साथ घुल मिले ह यानी अक्षर और अथ[2] वाणी और अथ[3] वाक तथा अथ[4] । अथ शम्भु

१ दृष्ट्वा स्वप्ने प्रिय यत्र मदनानल तापिता ।
करोति विविधान् भावान् तद्वै भाविकमुच्यते ॥
(भरतनाट्यशास्त्र—२०, १५२)

२ रुद्रोऽर्थोऽक्षरस्सोम । —अक्षर सोमदेव हैं । रुद्र अर्थ है—उपनिषद् वाक्य ।

३ अथ शम्भु शिवा वाणी—पुराण वाक्य ।

४ वागार्थाविव सपृक्तौ—कालिदास ।

भगवान ह । वाणी माता पावती ह । भाज महाकवि ने शब्द अ्रथ को एक तत्त्व माना है । वष्णव कवि पराशर भट्ट ने शब्दाथ को सगा भाई लिखा है । अ्रथ किसे कहते है--जो मतलब हम निकाल ल । जो जिस शब्द का अ्रथ नही जानता वह अ्रथ का अ्रनथ करता है । ऐसे व्यक्ति के लिए गलत अ्रथ ही सब कुछ होता है । फिर भी वह उसे ठीक समझता है क्योकि उसकी भावना वही तक है-- करण च भावना । भावना भाव्य । स्वच्छ शब्दाथ दपण[1] म हमम स कितने अ्रपना मुह देखते ह ? यदि अ्रनुकूल शब्दो का प्रयोग हो तो शब्दो से उत्पन्न होनेवाल सकेत तथा प्रतीक भी स्पष्ट हो जाते ह । इसी अ्रनुकूलता--शब्दो क ठीक चुनाव--स ही कविता जीवन म प्राण सञ्चार कर देती है ।

शब्दानकूलता चेति तस्य हत प्रचक्षते ।

--भामहालकार ३-५४

इसलिए मत्रो के ऊपर आजकल जो शका की जाती है वह बुद्धि का फेर है । मत्र शास्त्र तो इतना महान् है कि मातका न्यास म जिन जिन अवयवो म जिन अक्षरो का न्यास हो उनका नाम लकर उस वण को सूचित कर दिया जाता है । जस--

वाम नत्र	--	ई	
वाम कण	--	ऊ	
पेट	--	प	
पीठ	--	ब	
सिर	--	अ	इत्यादि

क्या इसमे यह स्पष्ट नही होता कि अक्षरो से प्रतीक का कितना बडा काम लिया गया है ? एक और मार्के की बात है । व्याकरण की विभक्तियो के द्वारा सूचित करना--व्याकरण प्रतीक का उपयोग करना । जसे-- ङन्त नाम समुच्चरत --ङ स चतुर्थी विभक्ति सूचित होती है । इस प्रकार महादेवङन्त का अ्रथ हुआ महादेवाय । कही कही एक दूसरे के पर्यायभूत सकेत मिलत ह । जस-- द्विमन्त मत्रमुच्चरेत । इसका अ्रथ होता है--ठ ठ । यानी दो बार ठ ठ मत्र पढे । परन्तु इसका सकेत स्वाहा शब्द

१ स्वच्छे शब्दार्थदर्पणे । --इन्द्रराज ।

के लिए है। कहीं पर स्वाहा का अर्थ होगा ठ ठ , अतएव कब स्वाहा समझें तथा तथा कब ठ ठ , इस बात का निर्णय अपने उपासना सम्प्रदाय तथा गुरु की कृपा पर निर्भर करेगा। मत्रो के विषय मे यही बडी भारी कठिनाई है। उनकी दुर्ज्ञेयता के कारण ही मत्र शास्त्र का लोप हो रहा है। किन्तु मत्रो के सकेत को उनके द्वारा प्राप्त प्रतीक का सकेत से हो सूचित करने का प्रमाण ऋग्वेद से भी प्राप्त होता है—

कामो योनि कमला वज्रपाणि
गुहा हसा मातरिश्वा अभ्रमिन्द्र ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरुच्यषा विश्वमातादिविद्या ॥

—ऋग्वेद ।

उपरिलिखित सूत्र के द्वारा भिन्न भिन्न नामो से मत्र के अवयव बतलाकर विश्व माता आदि विद्या का सूचित किया गया है। मत्रो तथा वर्णों के सम्बन्ध मे हमारे आचार्यों का ज्ञान चरम सीमा तक पहुच गया था।

नाद ब्रह्म की साकार प्रतिमा शब्द ब्रह्म के वास्तविक प्रतीक वर्ण शास्त्र की पूरी व्याख्या करने का यहा पर स्थान नही है। किन्तु यह स्पष्ट है कि जिन वर्णों के या उनके सूक्ष्मतम तत्त्व को हम न तो कह सकते है और न उनका अनुभव ही कर सकते है ऐसे वर्णों के विषय मे भी प्रतीको के द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है। उदाहरण के लिए एक बीज मे होनेवाली अवस्था ओम का दखिए। कहा से कहा उसका रूप उसका प्रतीक पहुचा है। पर हम यदि इस विषय मे और गहरे पैठे तो उसके दायरे के बाहर निकलना कठिन हो जायगा। ओम की व्याख्या श्री भास्करराव ने बहुत अच्छे ढग से की है।

हृल्लेखाया स्वरूप तु व्योमाग्निर्वामलोचना ।
विंद्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय ।
व्यापिका समनोन्मन्य इति द्वादश सहति ।
विंद्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते ॥

—वरिवस्यारहस्य भास्करराव ।

ओम् को समष्टिनाद का प्रतीक माना है। किन्तु साधारण व्यक्ति कैसे इस प्रतीक को समझ सकता है ? वर्णों का स्वरूप नाद म ही पयवसित होता है। अत नाद सबकी समष्टि है। इस नाद सूत्र मे भी बीज पुरोया हुआ है—

बीज के इन सूक्ष्मतम अव यवों का समझना तथा अनुभव गम्य बनाना योगियों का काम है। बड उत्कट विद्वान साधकों उपासकों का काम है। तंत्र शास्त्रों में इनमें से प्रत्येक का स्वरूप उच्चारण का सूक्ष्मतम काल परस्पर सम्बन्ध अधि ष्ठातृ देवता आदि का पूरा विवेचन है।[१] उ मना का उच्चारण काल एक मात्रा यानी एक लघु अक्षर के उच्चारण काल का पाच सौ बारहवा हिस्सा है। इस प्रकार वर्णविज्ञान गणित के आधार पर व्यवस्थित है।[२]

१ योगिनीहृदयदीपिका—अमृतानन्दनाथ तथा स्वच्छन्द तंत्र आदि।

२ वही।

कामकला

सष्टि क मूलभूत त`व का समझाने के लिए मत्र विज्ञान म कामकला का बडा महत्त्व है। इसका प्रतीक है— इ कार । इसमे भी मूलत तीन बि दुग्रो की याजना है। इसे ग्राकार मे लिखने पर यह स्वरूप हागा—

मष्टि क` मूल स्वरूप कामकला को माना गया है। `सका प्रतीक ह ई वण। वर्णों का ग्रारम्भ ग्रौर ग्रत ग्र ह से होता है। ग्रर्थात ग्रह या पराहता म ही वण राशि का पयवसान है। सार विश्व म मातका शक्ति ग्रपन ग्रस्ति`व का पाषित कर रही है।[१] कामकला विज्ञान बडा गूढ है ग्रौर भिन्न शास्त्रा स सम्ब`ध रखता है। मलत ग्रागम के सिद्धा`न का लेकर विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाया म इसको प्रतीक क रूप म लिया गया है। उदाहरण क लिए इसाइया का क्रास या क्रास के रूप मे ग्राकार बनाना सम्भवत कामकला का ही रूप है।

प्राय शक्ति देवता के बीजा म ई कार प्रधान है। ग्रत सवसाधारण शक्ति तत्त्व का यह प्रतीक है। ग्रागमा म इस कही कही शुद्ध विद्या भी कहा है। कामकला को प्राय शक्ति का सम्पूण प्रतीक माना गया है। तीन बि`दु तथा नीच का भाग जिसे हाध कला भी कहत ह ये सब ग्रश मिलाकर परा शक्ति का ग्रवयवात्मक शरीर भी बनता

१ 'वि`व याप्य चि`ात्मनाऽहमित्युज्नम्भमे मातृके" —शक्तिमहिम्नस्तोत्र—दुवासा।

है।[1] ऊपर हमने तीन बिन्दु दिये हैं। ये तीन बिन्दु तंत्र शास्त्र के सार तत्त्व हैं। इन तीन बिन्दुओं से ही श्री देवी के शरीर के अवयवों की कल्पना की जाती है। भिन्न धार्मिक साम्प्रदायिक भावनाएं भी इन्हीं के आधार पर की जाती हैं। श्री भास्कर राव दीक्षित ने लिखा है—

उर्ध्व कामाख्यो बिन्दुरेक
तदधोऽग्नीषोमात्मको बिन्दुर्द्वितीयरूपोऽन्य
तदधो हकारार्धरूप कलाख्यस्तृतीय ।
तदिह प्रत्याहारन्यायेन कामकलत्युच्यते । शरीरेऽपि
त्रय एवाऽवयवा शीर्षादिघटिकान्त, कण्ठादिस्त नान्तो,
हृदयादिसीवन्यन्तश्च ततश्च यथाक्रम मक्षरावयवान
देव्यवयवत्वेन परिणातान् विभाव्य देव्यक्षरयोरभेद चिन्तयेत ।
(सेतुबंध टीका)

कामकला को शक्ति का सम्पूर्ण प्रतीक माना गया है। शक्ति देवता के बीजों में 'ई' कार प्रधान है। हम यहां पर 'कामकला' का पूरा विवेचन नहीं कर सकेंगे।[2] हमने तो केवल एकमात्र अक्षर 'ई' का महत्त्व सिद्ध कर दिया है। तंत्र शास्त्र में कहीं कहीं एक ही अक्षर अनेक प्रकार की क्रियाओं अर्थों भावनाओं आदि का प्रतीक होता है या संकेतसूचक होता है।

कश्मीर के शाक्तों की परम्परा में 'परा-त्रीशिका' नामक ग्रन्थ है जिसमें सिर्फ एक अक्षर-बीज की व्याप्ति तथा गम्भीर अर्थों को प्रकट करने के लिए अभिनव गुप्त पादाचार्य ने बड़ी विस्तृत टीका लिखी है। पर एक अक्षर या बीज को साधारण वस्तु नहीं समझ लेना चाहिए। शब्द मातृका आगम शास्त्र की कामधेनु है। वस्तुतः वाङमय मात्र की कुञ्जी यही है। 'अ'कार से लेकर 'क्ष' कार तक उच्चारण की जानेवाली मातृका ही सप्तकोटि मंत्रों का रूप ग्रहण करती है।

१ बिन्दु सकल्प्य वक्त्र तु तन्धस्थ कुचद्वयम् ।
तन्ध सपराध तु चिन्तयेत्तन्धो मुखम् ॥
एव कामकलारूपमक्षर मत्समुत्थितम् ।
कामान्विषमोक्षणामालय परमेश्वरि ।
तन्वेव तत्त्वप्रवर निजन्वेह विचिन्तयेत् ॥
—वामकेश्वरतंत्र

२ कामकला का विशेष विवरण जानने के लिए पुण्यानन्दनाथकृत "कामकला विलास" को पढ़ना चाहिए।

मातृका का महत्त्व

मातृका के लिए हा लिखा है—

सप्तकोटिमहामन्त्रा महाकालीमुखोद्गता ॥

महाकाली के मुख से ही निकल मन्त्र—वण—मातका का मह॒व तन्त्र शास्त्रा मे भरा पडा है। वामकेश्वरतन्त्र के आरम्भ में मातका की स्तुति करते हुए उसे गणश ग्रह नक्षत्र यागिनी तथा राशि का रूप बतलाया गया है।[1]

भिन्न देवताओ का समष्टि रूप मातका को दिया गया है। प्रत्यक देवता का प्रतीक कुछ अक्षर ह या यो कहिए कि बीज ह। ग्रहो म सूय का सकेत अ स हागा। क्ष केतु का प्रतीक है। नक्षत्रा मे अश्विनी नक्षत्र का प्रतीक अ आ से ह।गा। इ वण से भरणी ली जायगी। इ उ ऊ से कृत्तिका का बोध होगा। रेवती नक्षत्र का सूचक क क्ष अ अ ये चार अक्षर ह। इस प्रकार विभिन्न दवताओ क सूचक प्रतीक अनेक ग्र थो के प्रमाणो से निश्चित किये गय ह।

भपुरदशन के अनुसार वर्णा के साथ तत्त्वा का सम्बध इस प्रकार है —

परावाक का पहला विलास या उन्मष अ कार है।[2] वेदो म भी कहा है— 'अकारो व सर्वावाक। यही अ कार ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति के भेद से क्रमश अन्तमुख होने पर अ अनुस्वार तथा बहिमुख होने पर अ विसर्ग हाता है। भपुरदशन के अनुसार तत्त्वा के अवतरण वण नीचे लिखे प्रकार ह—

क —	पथ्वी	ख —	जल
ग —	तेज	घ —	वायु
ङ —	आकाश	च —	गध
छ —	रस	ज —	रूप

१ "गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशिरूपिणीम् ॥

—वामकेश्वरतन्त्र षोडान्याम प्रकरण।

२ वन्दे तामहमक्षय्यामकाराक्षररूपिणीम्।

—वामकेश्वरतन्त्र।

ञ —	स्पर्श	अ —	शब्द
ट —	पायु (गुदा)	ठ —	उपस्थ (लिंग या योनि)
ड —	पाणि (हाथ)	ढ —	पाद
ण —	वाक	त —	घ्राण
थ —	जिह्वा	द —	चक्षु
ध —	त्वक (चमडा)	न —	श्रोत्र (कान)
प —	प्रकृति	फ —	अहकार
ब —	बुद्धि	भ —	मन
म —	पुरुष	य —	कला
र —	अविद्या	ल —	शम
व —	काल	श —	शुद्ध विद्या
ष —	ईश्वर	स —	सदाशिव
ह —	शक्ति	क्ष —	शिव

विश्व के समूचे तत्त्व अक्षर मातकाओ में वतमान ह—प्रत्येक वण एक महान प्रतीक है सकेत है और यह भी कहे ता क्या दोष है कि चिह्न है।

हमने ऊपर नक्षत्रो की प्रतीक मातकाए बतलायी थी। राशियो की सूचक मातृकाए भी देखिए—

१ मेष—अ आ इ ई
२ वषभ—उ ऊ
३ मिथुन—ऋ ॠ ल ॡ
४ कक—ए ए
५ सिह—ओ औ
६ कया—अ अ श ष स ह ऽ
७ तुला—क ख ग घ ङ
८ वृश्चिक—च छ ज झ ञ
९ धनु—ट ठ ड ढ ण
१० मकर—त थ द ध न
११ कुम्भ—प फ ब भ म
१२ मीन—य र ल व श

सब मे व्याप्त मातृका को मत्र का रूप देकर उससे अपनी उपासना से साधक करने वाला तात्रिक निन्दनीय नही पूजनीय है। जब सब कुछ मातका के अन्तगत है तो फिर देवताओ के वणन मे भी मातृका विन्यास तो होगा ही। भगवान शकर के विषय मे ही देखिए—

> शम्भोर्दक्षिणमक्षि भूतविनते शोषं मकारं पटु
> नेत्रं मध्यममुष्य लोकदहन जागर्त्ति रेफाक्षर।
> विश्वाप्यायककमठ पशुपते र्वामेक्षण वाक्षर
> त्रैनत्र पदमावदाति जयतामेतत्त्रय देहिनाम्॥
>
> —मातृकाचक्रविवेकटीका।

अर्थात भगवान् शकर का दक्षिण नेत्र सूय है। सूय का स्वभाव शोषक है। अत यह य बीज है। भगवान का मध्य नत्र लाक दाहक होन स र बीज है। वाम नत्र चन्द्रात्मक है जो सारे ससार पर अमत की वर्षा करता रहता है। अतएव वह व बीज है।

अक-प्रतीक

अका मे भी प्रतीक होते ह । प्रतीक अको का तत्र शास्त्रो मे बडा महत्त्व है । मत्र-शास्त्र के रचयिता अको के द्वारा भी अपना आशय सूचित करते थे । अक-यत्रो का सबसे बडा सग्रह 'शिव ताण्डव तत्र मे है । उसमें यह दिखाया गया है— भगवान् शिव ही स्वय समस्त मत्र शास्त्रो के रचयिता है । वे जसी-जैसी गतियो मे नृत्य करते थे उन गतियो के अनुसार कोष्ठको में (शतरज के खाने की तरह) अक भरे गये ह । ये अक विभिन्न देवताओ के गुण धम की सख्या आयुध आदि के आधार पर ह ।' हम लोग प्राय दूकानो मे लिखे अक यत्रो को देखते ह । एक एक खान मे एक एक अक भरा रहता है । य अक यत्र व्यापार मे लाभ के लिए लिखे जाते ह । उनका भी मूल आधार या शास्त्र शुद्ध गणित तथा प्रतीकवाद है । किन्तु अब ये अकज्ञान तथा अक-यत्र आदि की परम्पराएँ टूट रही ह—टूट गयी ह । फिर भी प्राचीन साहित्य इस विषय में काफी जानकारी कराता है । मत्रो की व्याख्या करते हुए भास्कराचार्य जी ने छलाक्षरनामसूत्र' नामक किसी ग्र थ का उल्लेख किया है जिसमे अक्षरो से अक की सूचना दी गयी है ।

२ ३ ४—इन अको का उपयोग द्वितारी त्रितारी चतुस्तारी आदि मत्रो के लिए है प्रतीक है । तार का अथ है प्रणव । परन्तु आगम शास्त्र मे पृथक देवताओ के प्रणव या साधारण मत्र भिन्न भिन्न ह । जसे ह्री श्री की जगह केवल २ का उपयाग किया जाता है । इसी तरह अ य मत्रो मे भी । पर जिसे अपनी उपासना परम्परा तथा धम सम्प्रदाय का ज्ञान होगा वही इन अको को देखकर पढकर लाभ उठा सकेगा ।

किसी बडे मत्र मे कुछ बीज लिखे जाते है और कुछ बीजा के स्थान पर २ ५ ६ ३ ४ आदि अक लिखे जाते ह । इनके ठीक उच्चारण से ही मत्र पूरा हो जाता है । जिसे मत्र का अधिकार नही है जो अज्ञानी है, वह न जान पाये इसलिए अक्षर के स्थान पर अक लिख देने की योजना बनायी गयी थी । उदाहरण के लिए एक जगह आता है— नमस्ते ३ स्वाहा । यहाँ पर तीन की सख्या को देखकर प्राय लोगो ने यह अथ लगाया कि नमस्ते तीन बार पढना (कहना) चाहिए । पर ऐसा समझनेवाले धोखा खा गये । सदभ देखने से पता चलता है कि वहाँ— नमस्ते त्रि स्वाहा मत्र है । एक हजार एकतीस

अक्षरा का (मालायत्र)[१] एकतीसवाँ अक्षर है त्रि । जब इस प्रकार समझाया जाय तभी मत्रो का महत्त्व तथा अको का महत्त्व समझ मे आ सकता है ।

कही पर एक ही प्रतीक अनेक वस्तुओ का सूचक होता है--

"एव भशरमितभदाढ्या विभाराज्ञी माता त्वम ।"

--त्रिपुरा रहस्य, महात्म्य खण्ड ।

यहाँ पर भू शर क्रमश एक और पाच सख्या के सूचक ह । यदि क्रम से पढ तो १५ सख्या आती है । यदि उलटकर पढे तो ५१ सख्या आती है । अकाना वामतो गति इस नियम क अनुसार उलटकर भी पढा जा सकता है । अभिप्राय दोनो सख्याओ मे है । १५ अक्षरो से एक महाविद्या का मत्र ५१ अक्षरा से मातका और दाना म वास्तविक अभद य सब बात इससे सूचित हुइ । अका से प्रतीक बनते ह मत्र अक से सहायता प्राप्त करते ह यह बात तो सिद्ध हुइ ।

१ एकत्रिंशत्सहस्रान त्रिलोकीमोहनक्षम ।
मालामत्रो महाराज्या सर्वसिद्धिप्रदायक ॥
--ललितापरिशिष्ट-तत्र

चक्र-प्रतीक

आगम शास्त्र म अन्य वस्तुओ के साथ चक्र या यत्र का भी बहुत ही महत्त्व है । यम ' धातु से यत्र शब्द बना है । इसका अर्थ होता है नियमन या परिच्छेद । सब जगह फल जानेवाली मत्र शक्ति या तेज को निश्चित दायरे के भीतर बाध देना ही प्रवाहित करा देना ही यत्र का प्रयोजन है । यत्र दो प्रकार के होते ह—अक यत्र तथा रेखा-यत्र । अक-यत्रा के बारे मे हम पहले लिख चुके ह । यहाँ पर रेखा-यत्र पर कुछ प्रकाश डाला जायेगा ।

सभी देवताओ के लिए भिन्न भिन्न मत्र हाते ह । उसी प्रकार उनकी उपासना के लिए भिन्न भिन्न यत्र भी होते ह । यत्र तथा मत्र दानो ही सकाम तथा निष्काम दोनो प्रकार की उपासना करनेवाले साधको के लिए होते हैं । यत्र के निर्माण की विधि भी रेखागणित—ज्यामिति—के आधार पर है । यत्र से जो प्रतीक तथा सकेत प्राप्त होते हैं उन्हे हम नीचे स्पष्ट करेंगे ।

◯ बिन्दु और ▽ त्रिकोण यत्रनिर्माण का प्रारम्भ है । मूल-मौलिक

दशा में बिन्दु ही रहता है । उसी से त्रिकोण की उत्पत्ति या उन्मेष होता है ।

अविभक्त बिन्दु ◯

विभक्त बिन्दु ज्ञान ▽ क्रिया

इच्छा

त्रिकोण मानव जीवन की समूची पहेली का प्रतीक है सकेत है । इसीलिए कहा गया है—

त्रिकोणरूपिणी शक्तिर्बिन्दुरूप पर शिव ।
अविनाभावसम्बद्धस्तस्माद् बिन्दुत्रिकोणयो ।।
—(त्रिशती-ब्रह्माण्ड पुराण) ।

बिदु परम शिव का रूप है। त्रिकोण शक्ति का प्रतीक है। योनि (भग) मुद्रा भी त्रिकोणात्मक है। योनि ही सष्टि की जननी है माता है सब कुछ है शक्ति है। यत्र के लिखने में पूव दिशा से प्रारम्भ करते ह। इसी के अनुसार रेखाओ की परिभाषा भी बनती है।
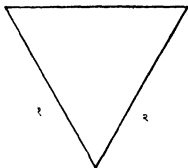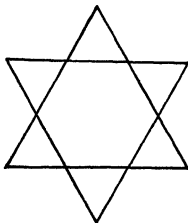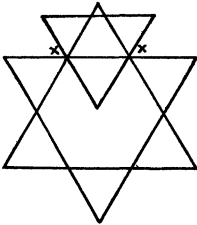
तीन रेखाओ के सयोग को मर्म कहते ह ।

अ—प० ७२ के दूसरे चित्र मे ऊर्ध्वमुख (ऊपर की ओर मुख) त्रिकोण को शिव या वह्नि कहते ह ।

ब—उसी चित्र में अधोमुख (नीचे की ओर मुख) त्रिकोण को शक्ति कहा जाता है ।

किसी देवता का यन्त्र छ कोण का किसी का नौ कोण का किसी का अन्य प्रकार का भी हो सकता है । प्राय हर एक यन्त्र में बीच में बिन्दु त्रिकोण अवश्य ही रहता है । यह बीच का बिन्दु ○ इस बात का प्रतीक है कि वास्तव मे, अन्ततोगत्वा शिव तथा शक्ति का एक ही रूप है । उनमे कोई भेद नही किया जा सकता । उसके आगे की रेखाएँ भिन्न देवी-देवता के अग देवताओ की कमी वेशी के अनुसार होती ह । ये यन्त्र या चक्र स्फटिक पत्थर, सोना तांबा आदि पर बनाये जाते हैं ।

यन्त्रो के निर्माण का साधारण क्रम यह है—बिन्दु, त्रिकोण षटकोण (यदि विशेष भेद हो तो षटकोण के स्थान पर और त्रिकोण भी बन सकते हैं) । अष्टदल कमल, द्वादश, षोडशदल कमल आदि भी होते ह । यन्त्र के बाहर चतुरस्र या भूपुर होता है । भूपुर कहने का मतलब यह है कि भूतल से प्रारम्भ कर एक एक चक्र ऊपर उठा है—यह कल्पना करनी चाहिए ।
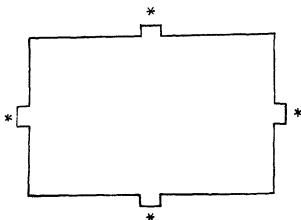
स न्यासी उपासक के लिए दूसरा चतुरस्र या भूपुर होता है । उसम ऊपर उठे हुए हिस्से को व्याघ्रमुख कहते हैं
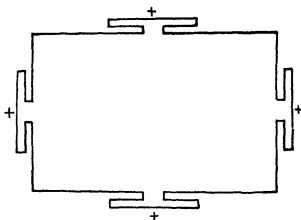
साधारण यत्र मे बिन्दु त्रिकोण षटकोण, अष्टदल तथा भूपुर होता है । इनमें देवता का प्रतीक क्या-क्या है यह यत्र को चक्र को सावधानी से देखने से पता लगेगा । प्रत्येक देवता का यत्र उसका लोक या अधिकार राज्य है । देवी देवता उसमे व्याप्त है । एक कोणात्मक यत्र से लेकर असख्य कोणात्मक यत्र भगवान् की शक्ति के आधार

हैं । अतः विश्व ही भगवान् का यन्त्र है । इसी बात को अभिनवपाद गुप्त ने तन्त्रालोक में इस प्रकार लिखा है—

एक वीरो यामलोऽथत्रिशक्तिश्चतुरात्मक ।
पञ्चमूर्त्ति षडात्माय सप्ताष्टकविभूषित ॥
नवात्मा दशदिक शक्तिरेकादश निजात्मक ।
द्वादशारमहाचक्र नायको भैरव स्थित ॥
एव यावत् सहस्रारे नि सङ्ख्यारेऽपि वा प्रभु ।
विश्वचक्रे महेशानो विश्व शक्तिर्विजृम्भते ॥

तात्पर्य हम ऊपर दे चुके हैं । अब साधारण यन्त्र देखिए—
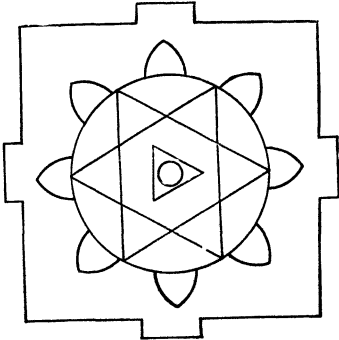
स्थान	देवता
बिन्दु त्रिकोण	मूल देवता या उसकी शक्ति
षटकोण	षडग देवता
अष्टदल	ब्राह्मी आदि अष्ट मातृका
भूपुर	इन्द्रादि दस दिकपाल

कश्मीर के शाक्तो के यन्त्रो म कुछ विलक्षणता है। वहाँ प्राय त्रिशूल या कमल के आधार पर यन्त्र का निर्माण होता है। पराऽपरा परा अपरा—ये तीन शक्तियाँ प्रधान ह। परा अपरा और पराऽपरा ये क्रमश त्रिकोण के अग मे अवस्थित हैं।
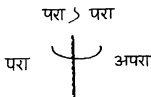
त्रिशूल के प्रतीक के सम्बन्ध म हम आगे चलकर बहुत कुछ विचार करेंगे किन्तु यहाँ दो एक बात प्रसगवश लिख देना जरूरी है। ज्ञान की तीन अवस्थाएँ ह—प्रमाता प्रमाण प्रमेय। त्रिशूल इन तीन अवस्थाओ का प्रतीक है। शकर के हाथ मे त्रिशूल है—यानी वे ज्ञान की चरम सीमा को प्रमाता प्रमाण तथा प्रेमय को मुट्ठी मे किये हुए ह। यो मोटे तौर पर रीढ की हडडी ही त्रिशूल का डण्डा है। उसक ऊपर के भाग मे शरीर के तीन मोटे हिस्से किये जा सकत ह। शरीर रचना के विद्यार्थी इस उदाहरण से भी सहमत होंगे। ऊपर कमल की बात कही गयी है। मस्तक में सहस्रदल कमल की बात योगी तथा हठयोग के पडित बराबर कहते आये है। उसी के ध्यान से उसी मे प्राण खीचकर ल जान से योग पूरा होता है ध्यान पूरा होता है। इसी प्रकार षटकाण का भी मानव शरीर का प्रतीक सिद्ध किया जा सकता है। दानो कधों से नाभि तक कमर की दोनो हड्डियो से कठ तक कोण बनाने से षटकाण की रचना हो जायगी। मस्तक मे स्थित सहस्रदल कमल को शूलाम्बुज कहते ह। कही कही एक त्रिशूल पर यन्त्र बनता है कही कही तीन त्रिशूलो पर।

अस्तु हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जो सष्टि म आज व्याप्त है, उसका मूल आकार बीज ○ रूप था और है। सष्टि का प्रतीक ○ बीज ही है। इसे

शक्ति का, शिव का—महेश्वर का, जिसका भी प्रतीक चाहें, कह सकते ह । देवताओ के प्रतीक उनके सकेत शख चक्र वज्र आदि तो सृष्टि के बहुत बाद के प्रतीक हैं ।

> न शखाका न चक्राका न वज्राकाय त प्रजा ।
> लिंगांका च भगाका च, तस्माद् माहेश्वरी प्रजा ॥[१]

अर्थात मनुष्य के उत्पन्न होने पर शख चक्र वज्र आदि का कोई निशान नही रहता । सब लोग महेश्वर में ही व्याप्त हैं । बिन्दु ही, बीज ही समूचे यत्र तथा चक्र, वण तथा यत्र का केन्द्र आधार है । सब चक्रो या यत्रो मे श्रीचक्र प्रधान माना गया है । सौन्दर्य लहरी में श्रीचक्र के लिए लिखा है—

श्रीचक्र वियत्-चक्र

वियत् आकाश को कहते ह । यानी समूची सष्टि का प्रतीक श्रीचक्र है । श्री मत्र अखिल ब्रह्माण्ड स्वरूप श्री के विराट स्वरूप का प्रतीक है । अर्थात यह पिण्ड का भी प्रतीक है । व्यष्टि समष्टि तथा सभी तत्वो का सूचक है—जिसे यत्र रूप मे व्यवस्थित किया गया है ।

> चतुर्भिश्श्रीकण्ठशिवयुवतिभि पञ्चभिरपि,
> प्रभिन्नाभिश्शम्भो नवभिरपि मूलप्रकृतिभि ।
> चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रस्त्रिवलय
> स्त्रिरेखाभि साध तवशरणकोणे परिणता ।

यह यत्रोद्धारक श्लोक है । श्रीयत्र पराशक्ति का प्रतीक है ।[२]

१ महाभारत, अनुशासनपर्व, मार्कण्डेय-उपाख्यान ।

२. नवधातुरूपो देहो नवयोनिसमुद्भव ।
दशमो योनिरेकैव पराशक्तिस्तदीश्वरी ॥

शिव-तत्त्व

ऊपर हमने तान्त्रिक प्रतीको पर बहुत ही थोडा प्रकाश डाला है। यह विषय इतना गूढ है फिर इतना गुप्त भी है कि इस पर ज़्यादा लिखने का साहस नही होता। हमने स्थान स्थान पर परा शक्ति तथा शिवतत्त्व का उल्लेख किया है। इसको थोडा और स्पष्ट करना होगा।

भारतवष म धम तथा दशन का सदव भाईचारा रहा है। दानो की दष्टि आध्यात्मिक है। जब कभी ऐसा समय आया कि धम अपने स्थान स डिगकर परम्परा की बेडी मे जकड गया किसी-न किसी दशन चिन्तक महापुरुष ने चाहे वह बुद्ध हो महावीर तीथकर हो व्यास या बादरायण हा शकर हा अथवा रामानुज उसे परम्परा[1] तथा रूढि स खीचकर मनीषा[2] की ओर उन्मुख किया है। धम तथा दशन के परस्पर प्रभाव क इस आदान प्रदान क दो परिणाम हुए। धम ने दशन की मान्यताए अपनायी और दशन ने धम क विचार और विश्वास आस्था और परम्परा को प्रतीकात्मक नया अथ प्रदान किया। इस प्रकार प्रतीकवाद धम की पौराणिकता का दाशनिक विवेचन है।[3]

उदाहरण के लिए शव दशन का लीजिए। यह समग्र विश्व परम तत्त्व अथवा शिव का उन्मेष है। समग्र पदार्थो की परम प्रतिष्ठा उसी म है। विश्व की समूची भावना का बोध या भास उसी शिव स हाता है। शिव ही **चिति** है। प्रकाश और विमश उसका स्वभाव है। प्रतिविमश उसका स्वरूप—धम है।[4] स्वभावत इसे परावाक भी कहा जा सकता है। जीवन का समूचा व्यवहार वाक स वाणी से होता है। बिना वाणी के सब कुछ अधूरा है। एक प्राचीन साहित्यकार का कथन है कि बिना शब्द ज्योति के समग्र लाक अधकार म लीन रहेगा—

१ परम्परा को अंग्रेजी भाषा में Dogmatism and Tradition कहते हैं।
२ मनीषाको अंग्रेजी भाषा मे Rationalism कहते हैं।
३ Symbolism is the philosophical interpretation of religous myths
४ चिति प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरकोदिता।

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिः संसारं नैव दीप्यते ।। —काव्यादर्श

जड और चेतन के अन्तर का आधार ही विमर्श है । वह चाहे कितना ही सूक्ष्म तथा सकेत निरपेक्ष क्यो न हो, पर शब्द आधारपीठ रहेगा । त्रिक दर्शन ने परम तत्त्व और परा वाक की इसी दार्शनिक एक आत्मीयता के आधार पर वर्णों अथवा मन्त्रो को शिव रूप माना है ।[१] इसीलिए धार्मिक तथा दार्शनिक दोनो के लिए वर्ण वर्णात्मक मन्त्र श्रद्धा के विषय ह । दार्शनिक भी वर्णों को शिव की विभिन्न शक्तियो का रूप मानता है । वास्तव मे शक्ति तथा वर्ण का तादात्म्य है । परा शक्ति के रूप मे समस्त वर्णों में व्याप्त है । यदि परम शिव मे द्वैत की—दो पृथक की—कल्पना नही की जा सकती तो शक्ति और वाक को एकरूप मानना ही होगा । इस प्रकार वर्णात्मक मन्त्र का ध्यान परम तत्त्व का ही चिन्तन है । उपासक-साधक पराशक्ति तथा परावाक दोनो के ही ध्यान से मोक्ष लाभ कर सकता है ।

कश्मीर के शव दार्शनिको ने स्वर तथा व्यजन रूप समग्र वर्णों की दार्शनिक दृष्टि से व्याख्या की है । उन्होने प्रत्येक वर्ण को किसी-न किसी तत्त्व का प्रतीक माना है । त्रिक दर्शन के अनुसार ३६ तत्त्व ह । उन्हे दो भागो मे विभाजित किया जाता है—शुद्ध माग तथा अशुद्ध माग । शुद्ध माग वह है जिसमे अहन्ता की प्रधानता होती है । अशुद्ध माग वह है जिसम माया तत्त्व के कारण इदन्ता आ जाती है । शुद्ध माग के तत्त्व शव दर्शन के अपने ह और अशुद्ध माग मे वेदान्तियो की माया । शक्ति पचक में साख्यदर्शन के पुरुष तथा प्रकृति के सभी विकारो को मिलाकर २५ तत्त्वा का सग्रह किया गया है । इन तत्त्वो का रेखाचित्र बडा महत्त्वपूर्ण तथा अध्ययन के योग्य है । इ ह ध्यान से पढना चाहिए । जरा सा ध्यान देने से विषय स्पष्ट हो जायगा ।

(रेखाचित्र अगले पृष्ठ म देखिए)

१ मन्त्रा वर्णात्मका सर्वे सर्वे वर्णा शिवात्मका ।
—"प्रत्यभिज्ञानहृदय" में उद्धृत, पृष्ठ ५७
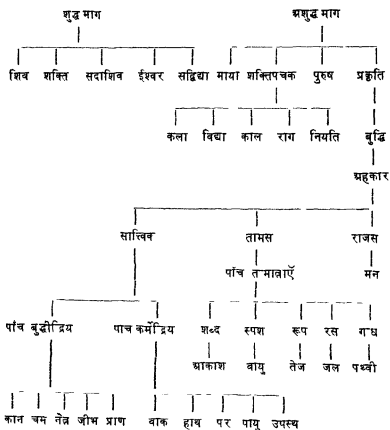
अशुद्ध माग से या या कहिए कि माया से सष्टि का ऊपर लिखे प्रकार क्रमागत विकास हुआ। आज हमारी सत्ता ही अशुद्ध माग के कारण है। कि तु जीवन का ठोस सत्य भी तो इसी माग के द्वारा प्रतिपादित होता है। अशुद्ध माग के अ तगत जिन पच्चीस तत्त्वो का वणन है उनके प्रतीक वण ह मातृकाए ह। अभिनवपाद गप्त ने इसका प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

१ अ से लेकर विसग अ तक शिव-तत्त्व का प्रतीक है।
२ क से लेकर ङ तक के वण पथ्वी तत्त्व से लेकर आकाश-तत्त्व के प्रतीक ह।
३ च से लेकर ञ तक गध से लेकर शब्द तक त मात्राओ के प्रतीक है।

४ ट से लेकर ण तक के वण पाद से लेकर वाक तक यानी पाँचो कर्मेन्द्रियो के प्रतीक ह ।

५ त से लेकर न तक के वण घ्राण से प्रारम्भ कर श्रोत्र तक अर्थात पाँच बुद्धीन्द्रियो के प्रतीक ह ।

६ प से लेकर म तक मन अहकार बुद्धि प्रकृति तथा पुरुष इन पाच के प्रतीक ह ।

७ य से लकर व तक के वण राग विद्या कला तथा माया तत्त्व के प्रतीक ह ।[1]

रहस्य विद्या में वर्णों का विभाग दो रूपो मे मिलता है—बीज तथा योनि । स्वरो को बीज का तथा व्यजनो को योनि का प्रतीक माना गया है । यानि इत्यादि के पूजन का तत्र शास्त्रो म जो विधान है उसका लाग बहुत गलत अथ लगाते ह । योनि बीज का प्रतीक है । यह परम शिव का प्रतीक है । परब्रह्म की कल्पना परब्रह्म का प्रतीक यही बोज अथवा योनि में सष्टि के उत्पादन के यत्र— महदयानि का सकेत है । तात्रिक उपासना के विषय म बहुत सी भ्रान्तियाह । इन भ्रान्तिया का सबसे बडा कारण यह है कि उपासक अथवा साधक अपने क्रम का इतना गुप्त रखते ह कि लाग गलत अथ लगा ही लेते ह । एक आम भ्रान्ति है कि तात्रिक उपासना का मतलब मदिरापान करना है । जिसके एक हाथ म पात्र हो और दूसरे हाथ म घट (मदिरा की बोतल) वही सच्चा तात्रिक हुआ । वास्तविक उपासक के लिए क सा पात्र ह आर कसी मदिरा हा इसका पता इस श्लोक से लगगा—

आधारे भुजगाधिराजतनय
पात्र महीमण्डल,
द्रव्य सप्तसमुद्रवारिपिशित
चाष्टौ च दिग्दतिन ।
सोऽह भरवमचय प्रतिदिन
तारागण रक्षित
रादित्यप्रमुख सुरासुरगण
राज्ञाकर किंकर ।

शेषनाग का आधार यानी रखने का स्थान बनाकर उस पर समूची पृथ्वी का पात्र बनाकर रखे और उस पात्र मे सातो समुद्रा का पानी उड़लकर उस मदिरा को पीना

१ अकारादि विसगान्त शिव-तत्त्व राग विद्या कला मायाख्यानि तत्त्वानि परात्रिंशिका पर अभिनवपाद गुप्त की टीका पृ० ११३ ।

चाहिए। यानी अपनी साधना में समूची सृष्टि की कल्पना कर ली गयी है। अब इस तत्त्व को बिना समझे लाग उसका मजाक उडाये तो किसका दोष है? इसी प्रकार यत्र उपासना में समूची पृथ्वी का भास करके मडल बनाकर अपने देवता को स्थापित कर पूजा करने का विधान है। क्षद्र भावनाओं को लकर इतनी महान कल्पना नही की जा सकता। मण्डल के बीच में बीज स्थापित है—उसे शिव शक्ति का कितना महत्त्वपूर्ण पयोग बनाया गया है यह कितना महान् प्रतीक है यह बात केवल समझ दार लोग ही समझ सकते ह—

इसी म सूयमण्डल का भी आवाहन हाता है। सूय का प्रतीक मिस्र से लकर सभी पूर्वी देशा में बहुत अधिकता से पाया जाता है। पश्चिमी मनोवज्ञानिक फ्रायड ने सूय को उत्पादन शक्ति का प्रतीक स्त्री की योनि का प्रतीक माना है। सूय के प्रतीक पर हम आगे चलकर विचार करेग।

प्राकृतिक प्रतीक

किन्तु यहाँ पर इतना बतला देना उचित होगा कि प्राचीन ऋषिगण सष्टि के मूल तत्वो का पूजा में सयोग कर तथा प्रतीक के रूप में हमारे सामने रखकर हमको स्वस्थ तथा सुखी जीवन का चिर सदेश देते रहे ह। प्रश्नोपनिषद मे कहा है कि उदयकाल का सूय सारे जगत का प्राण है।[१] ऋग्वेद मे सूय को स्थावर जगम आत्मा कहा है।[२] वेदवाक्य ही है कि सूय उदय होने के बाद अस्त होने तक अपनी किरणो से रोग पैदा करनेवाले त्रिमिया का नाश करता है।[३] इस प्रकार वेदो में तथा आयुर्वेद में सूय को स्वास्थ्य का प्राण और रक्षक माना है। यदि सूय का प्रकाश न हो तो प्राणिमात्र रोगी होकर मर जाय। इसलिए केवल यह सोचकर कि चूकि सूय की किरणो से खेती की पैदावार होती है इसलिए सूय उत्पत्ति का द्योतक है यानी योनि का प्रतीक है यह निहायत छाटी बुद्धि की बात हुई। पूर्वी देशा मे सूय योनि का प्रतीक नही है, प्राणिमात्र का रक्षक तथा रक्षा के नियमा का प्रतीक है।

इसी प्रकार जल तथा वायु का भी प्रतीक होता है। शास्त्रो मे मित्र' शब्द का प्रयोग सूय के लिए भी हुआ है और प्राण वायु के लिए भी। शरीर के रोग का इन चीजो से सम्बन्ध वेदा में भी है। एक मत्र में लिखा है कि सविता (सूय), वरुण (जल) मित्र (प्राण वायु) तथा अयमा (आक का पौधा) हाथ और पाव की पीडा को हर ले।[४] वेदो मे वरुण की –जल की–बडी महिमा है। लिखा है कि सूय किरणो से शुद्ध हुआ जल हमारा कल्याण करे। रसा में सबसे अधिक कल्याणदायक रस जल है। उस

१ प्राण प्रजानामुद्यत्येष सूर्य ।

२ सूर्य आत्मा जगतस्तस्तुषश्च ।
प्राणेन विश्वतो वीय देवा सूय समैरयन् ॥

३ उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन हन्तु रश्मिभि ।

४ निररणि सविता साविषत्पदो निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ॥

५ असूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्य सहसा नौ हिन्वन्त्यध्वरम् ।

जल से हम उसी तरह सुख मिल जिस प्रकार सन्तान को माता के दूध से पुष्टि मिलती है ।[१] वायु के महत्त्व मे वद मत्र भरे पडे ह । ऋग्वद न तो वायु के लिए यहाँ तक लिख दिया है कि प्राकृतिक पदार्थो मे वायु प्राणिमात्र के लिए औषधरूप है ।[२] लिखा है कि वायु और सूय के जानन योग्य गणो का हम मनन करते ह । य दोनो समूचे ससार को तारनेवाले ह । य दोनो हम पाप से बचावें ।[३] वायु तथा जल दोनो का महत्त्व बतलाते हुए कहा है कि हे मित्र (वायु) और वरुण (जल) मै आप दोनो का मनन करता हू । आप दोनो सत्य को बढानवाल और स्फूर्ति को देनवाल ह ।[४] वरुण वायु सूय--इन तीनो का सम्मिलित प्रतीक मगल कलश है जिसकी हर उपासना म स्थापना होती है । ससार के सभी वभव सभी देवी देवता[५] सभी प्राकृतिक तत्त्व पथ्वी समुद्र वेद पुराण-- सब कुछ कलश म निहित ह । कलश का पूजन कर लिया और सब कुछ पूजन हो गया । कलश की प्राथना से ही स्पष्ट है कि वह कितनी सम्मिलित चाजो का प्रतीक है--

कलशस्य मुख विष्णु कण्ठ रुद्र समाश्रित ।
मूल तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्य मातगणा स्मता ॥
कुक्षौ तु सागरास्सप्त सप्तद्वीपा वसुधरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजर्वेदो सामवेदो ह्यथवण
अगे च सहिता सर्वे कलशन्तु समाश्रिता ॥

अर्थात कलश के मुख म विष्णु (पापक शक्ति) कण्ठ म शिव (सहारक शक्ति) मूल म ब्रह्मा (सष्टिकर्ता शक्ति) मध्य म षोडश मातकाएँ तथा मातशक्ति बगल म सातो समुद्र तथा सातो महाद्वीप और पथ्वी अग म सब वद इत्यादि समाश्रित ह । कलश इन सबका प्रतीक है । इसीलिए तान्त्रिको तथा अतान्त्रिको हर प्रकार की सनातनी पूजा म कलश स्थापन होता है और उसको प्राथना के अन्त म कहते ह--

पाशपाण नमस्तुभ्य पद्मिनीजीवनायक ।
प्रधानपूजन यावत्तावत्त्व सन्निधौ भव ॥

१ यो व शिवतमो रस तस्य भाजयत हन उशतीरिव मातर ।
२ मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानव ।
३ वायो सवितुर्विदथानि मन्महे । --(ऋ ८, २०२३)
यो विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ मुञ्चत च महम ।
४ मन्वे वा मित्रा वरुणावृतावृधौ सचेतसौ ।
५ व्याकरण की दृष्टि से देवता शब्द से देवी देवता दोनों का बोध होता है ।

इस कलश की स्थापना या तांत्रिक पात्र या घट की स्थापना भी उसी यन्त्र पर होती है जिसका चित्र हमने ऊपर दिया है—जिसे हमने वह्निमण्डल कहा है। ऐसे मण्डल पर स्थापन करके सब वैभव मलक कलश का पूजन होता है। कलश का पूजन करनेवाले के लिए काफी विधि विधान है। पूजा मे किस देवता की कहाँ स्थापना हो इसका निश्चित क्रम है। यह क्रम प्राय शव तथा वैष्णव दोना उपासनाओ मे समान रूप से पाया जाता है। मातृकान्यास मे वर्णों का उपयाग शरीर के विभिन्न भागो के लिए विभिन्न रूप से होता है जसे करन्यास में—

ॐ अं ॐ आ अगुष्ठाभ्या नम ।
ॐ इ ॐ इ तजनीभ्यां नम ।
ॐ ए ॐ ऐं अनामिकाभ्यां नम ।
ॐ ओं ॐ औं कनिष्ठकाभ्या नम ।
ॐ अ ॐ अ करतलकरपष्ठाभ्या नम ॥

इन वर्णों का उपयोग निरथक नही है। प्रत्येक वण एक प्रतीक है यह हम ऊपर लिख आये ह और आगे चलकर प्रमगवश हम इस पर और भी प्रकाश डालेंगे। हमारे शास्त्रो ने शरीर के अग अग को देवता का प्रतीक बना दिया है मान लिया है। अग पूजन की विधि दुर्गाचन सति मे दी गयी है। माला त पूजन के बाद अगपूजा होती है। लिखा है—[१]

ॐ दुर्गाय नम पादौ पूजयामि नम — पर
ॐ महाकाल्य नम गुल्फौ पूजयामि नम — गुल्फ (घुटने)
ॐ मगलाय नम जानुद्वय पूजयामि नम — जघाएँ
ॐ कात्याय य नम हृदय पूजयामि नम — हृदय
ॐ भद्रकाल्य नम कटि पूजयामि नम — कमर
ॐ कमलवासिन्यै नम नाभि पूजयामि नम — नाभि
ॐ शिवाय नम उदर पूजयामि नम — पेट
ॐ क्षमायै नम हृदय पूजयामि नम — हृदय (दुबारा)
ॐ कौमार्यै नम स्तनौ पूजयामि नम — स्तन

१ दुर्गार्चनसृति —लक्ष्मीनारायण गोस्वामी आगरा—
वशीधर प्रेमसुखदास आयल मिल, माईथान, आगरा, सन् १९४४—पृष्ठ ४३।

ॐ उमाय नम हस्तौ पूजयामि नम — हाथ
ॐ महागौर्यै नम दक्षिणबाहु पूजयामि नम — दाहिनी भुजा
ॐ रमायै नम स्कन्धौ पूजयामि नम — कध
ॐ महिषमर्दिन्य नम नेत्र पूजयामि नम — आँखें
ॐ सिंहवाहिन्य नम मुख पूजयामि नम — मुख
ॐ माहेश्वर्यै नम शिर पूजयामि नम — सर
ॐ कात्यायन्य नम सर्वांग पूजयामि नम — सब अग

कुमारी कन्या को पराशक्ति का प्रतीक माना गया है और यदि ब्राह्मणी कुमारी कन्या हो ता रजस्वला हान पर भी उसके पूजन म दाष नही है। सूतक म भी कुमारी कन्याक पूजन में दाष नहा है।

सूतके पूजन प्रोक्त जपदान विशषत

रजस्वला तथा शौचे ब्राह्मणश्च सुपूजयत।

इस विषय को हम यही स्थगित करते ह ममाप्त नही कर रहे ह। प्रतीक की परिभाषा करते करते हमने प्रतीक का तान्त्रिक रूप वदिक रूप आध्यात्मिक रूप तथा वणमाला का रूप पाठका के सामने रख दिया है। वण तथा प्रतीक का कोई सम्बन्ध हो सकता है इसका इससे बढकर और क्या प्रमाण होगा कि आगम शास्त्र ने मत्र यत्र तत्र तीनो का समावश मातका म ही सिद्ध किया है। अब हम इस विषय से थोडा नीचे उतरकर यह अध्ययन करग कि भारत म प्राप्त मूर्तियाँ भी क्या प्रतीकरूप म ह या उनका कोई दूसरा अथ है।

प्रतिमा तथा प्रतीक

ऊपर हमने जो कुछ लिखा है वह विषय यही समाप्त नही हो जाता। हमको इस सम्बन्ध मे अभी बार बार लिखना पड़ेगा। हमने बार बार शिव परम शिव महेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। इसका यह तात्पय नही है कि हम केवल शव सम्प्रदाय का ही प्रतिपादन कर रहे हैं। परम शिव को शिव कहिए विष्णु कहिए या ब्रह्मा कहिए बोध एक ही विषय का होता है—परम ब्रह्म अथवा परमात्मा का सष्टि के आरम्भ से लेकर देवता की उत्पत्ति का हिन्दू विज्ञान घूम फिर कर एक ही बात कहता है चाहे शव सम्प्रदाय हो या वष्णव। बहुत समय पूव कही हुई बाते आज के वैज्ञानिक खोज के युग म सही उतर रही ह। उदाहरण के लिए विष्णुपुराण के द्वितीय अश म दसवे अध्याय म द्वादश सूय का जिक्र है। पौराणिक परम्परा के अनुसार वह श्लेष रूप म है पर हम लोग १२ सूय की बात पर खिल्ली उडाते हैं। आज विज्ञान ने साबित कर दिया है कि १२ सूर्यों का पता चल गया है। जिसे हम आकाशगगा कहते ह वह अनगिनत तारो तथा कम से कम १२ सूर्यो का बहुत दूर से आता हुआ प्रकाश मात्र है। विष्णुपुराण मे ही लिखा है कि शिशुमार (गिरगिट या गोध) की तरह आकारवाला जो तारामयरूप देखा जाता है उसकी पूछ मे ध्रुव तारा स्थित है।[1] यह ध्रुव तारा घूमता रहता है और इसके साथ समस्त नक्षत्रगण भी चक्र के समान घूमते रहते ह। सूय, चद्रमा तारे नक्षत्र तथा अय सभी नक्षत्रगण वायुमण्डलमयी डोरी से ध्रुव के साथ बँधे हुए हैं। इस शिशुमार स्वरूप के अनन्त तेज के आश्रय स्वय भगवान् विष्णु हैं। इन सबके आधार सर्वेश्वर नारायण ह। देव असुर मनुष्य आदि सहित यह सम्पूण जगत् सूय के आश्रित है। सूय आठ मास तक अपनी किरणो से छ रसो से युक्त जल को ग्रहण करके उसे चार महीने में बरसा देता है। उससे अन्न की उत्पत्ति होती है और अन्न से ही सम्पूण जगत पोषित होता है।[2] अन्न को उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टि की उत्पत्ति सूय से होती है। समस्त देव-समूह और प्राणिगण वष्टि के ही

[1] विष्णुपुराण, द्वितीय अश, नवम अध्याय।

[2] श्लोक ६—८।

आश्रित ह। सूय का आधार ध्रुव है। ध्रुव का आधार शिशुमार है। शिशुमार के आश्रय भगवान् विष्णु ह।[१] भगवान विष्णु की ऋक यजु साम नाम की सवशक्तिमयी परा शक्ति है। ये ही तीन वेद वेदत्रयी ह जा उपासना के सूय का ताप प्रदान करते ह।[२] दिन के पूवकाल म ऋक मध्याह्न म बहद्रथ तरादि यजु तथा सायकाल म सामवेद[३] सूय की स्तुति करते ह।[४] वष्णवी शक्ति त्रयीमयी है। ब्रह्मा विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ह। ब्रह्मा ऋड्मय ह। विष्णु यजमय। अन्तकाल म रुद्र साममय ह।[५] रुद्र का काम है सहार करना। रात्रि सहार का प्रतीक है। अतएव रात्रि को सहारकाल मानकर तात्रिक रात्रि म ही उपासना करता है। सामगान के समय--सहार के समय ऋक तथा अजर्वेद का पाठ मना है।[६]

समृची मष्टि के त्राता और पाषणकर्ता विष्ण ही परब्रह्म के निकटतम प्रतीक ह। ब्रह्म दा प्रकार का है-शब्द ब्रह्म और पर ब्रह्म। शास्त्र से प्राप्त ज्ञान से शब्द ब्रह्म म निपुण हो जान पर विवकीजन ज्ञान क द्वारा पर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। विद्या दो प्रकार की है। परा और अपरा। परा से अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति हाती है और अपरा ऋग्वेद आदि वेदत्रयीरूपा है। जा अव्यक्त अजर अचिन्त्य अज अव्यय अनिर्देश्य अरूप पर हाथ आदि अगो से रहित व्यापक नित्य स्वय कारण हीन है तथा जिसस सम्पूण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है वह परम धाम ही ब्रह्म हे। मुमक्षुआ का उसी का ध्यान करना चाहिए और वही भगवान विष्णु का वेदवचनो स प्रतिपादित अति सूक्ष्म परम पद है।

तदेव भगवद्वाच्य स्वरूप परमात्मन।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मन॥

अर्थात परमात्मा का यह स्वरूप ही भगवत शब्द का वाच्य है। और भगवत शब्द ही उस आद्य एव अक्षय स्वरूप का वाचक है।[८]

१ इलोक २--२४ विष्णुपुराण, द्वितीय अंश, नवम अध्याय।
२ वही अध्याय ११--इलोक ७।
३ वही इलोक १।
४ "ऋच पूर्वाह्ने, दिवि देव ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्न सामवेदेनास्तमये महीयते।"
५ इलोक १२।
६ "न सामध्वनावृग्यजुषी --गौतमस्मृति।
७ विष्णुपुराण छठा अंश, ५वाँ अध्याय, ६४ ६८ इलोक।
८ वही इलोक ६८।

हम विष्णु भगवान या शकर "भगवान् कहते हैं। हम लोग भग का साधारण अथ स्त्री की योनि लगाते है जो सष्टि का प्रतीक है। योनि तथा लिग के योग से सष्टि होती है। इसलिए भग लिग समूचे विश्व का प्रतीक है महादेव है शकर है। पर, भग शब्द का अथ इतना ही नही है। सम्पूण ऐश्वय धम यश, श्री ज्ञान और वराग्य—इन छ का नाम भग है।[1] उस अखिल भूतात्मा म समस्त भूतगण निवास करते ह और वह स्वय भी समस्त भूतो मे विराजमान है इसलिए वह अव्यय परमात्मा ही व कार का अथ है। इस प्रकार यह महान् भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्री वासुदेव का ही वाचक है जो समस्त प्राणियो की उत्पत्ति और नाश आना और जाना विद्या तथा अविद्या को जानता है वही भगवान कहलाने योग्य है—

उत्पत्ति प्रलय चव भूतानामगतिं गतिम ।
वेत्ति विद्यामविद्या च स वाच्यो भगवानिति ॥

—विष्णु०, ६—५—७८।

विष्णु सबके आत्म रूप मे सकल भूतो में विराजमान ह इसीलिए उन्हे वासुदेव कहते ह।

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्तत स्मत ॥

—विष्णु० ६—५—८०।

जा जो भताधिपति पहले हो गये ह और जो जो आगे हागे वे सभी सवभूत भगवान विष्णु के अश ह।[2] वे जनादन चार विभाग से सष्टि के और चार विभाग से ही स्थिति क समय रहते है तथा चार रूप धारण करके ही अ त मे प्रलय करते ह। एक अश से वे अव्यक्तरूप ब्रह्मा होते ह दूसरे अश से मरीचि आदि प्रजापति होते है तीसरा अश काल है और चौथा सम्पूण प्राणी।[3] इस प्रकार चार प्रकार से वे सृष्टि में

१ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्यय ॥
—(विष्णुपुराण—६ ५ ७४, ७५)

२ विष्णुपुराण, प्रथम अश, अध्याय २२, श्लोक १७।

३ वही २३—२४—२५।

स्थित ह । शक्ति के तथा सष्टि के इन चारो आदि कारणो के प्रतीक भगवान विष्णु चार भुजावाल विष्णु हजारो वर्षों से हमारे यहा पूजित हो रहे ह । इनके मणि माणिक्य विभूषित वजयन्ती माला से भूषित ऊपरी बाय हाथ में शख ऊपरी दाये मे चक्र नीचे के बायें म कमल तथा नीचे के दाये हाथ मे गदा विराजमान है । इस मूर्त्ति की पूजा हजारा वर्षों से होती चली आ रही है । पर यह मूर्त्ति जिस महान् सत्य का प्रतीक है उसका वणन सकेन मात्र से ऊपर हो चुका है । उनके हाथा मे जो कुछ है तथा शरीर पर जो कुछ है वह सब एक महान तथा ध्रव सत्य का प्रतीक है । विष्णु पुराण मे ही लिखा है—

इस जगत की निर्लेप तथा निर्गुण और निमल आत्मा को अथात शद्ध क्षत्रज्ञ स्वरूप का श्री हरि कौस्तुभ मणि रूप से धारण करते ह । श्री अनन्त न प्रधान को श्रीवत्सरूप स आश्रय दिया है । बुद्धि श्री माधव की गदा रूप से स्थित है । भूतो के कारण राजस अहकार इन दोना को वे शख और शाङ्ग धनुषरूप से धारण करते ह । अपने वेग से पवन को भी पराजित करनेवाला अत्यन्त चञ्चल सात्त्विक अहकार रूप मन श्री विष्णु भगवान क करकमलो मे स्थित चक्र मुक्ता माणिक्य मरकत इन्द्रनील और हीरकमयी जो पञ्चरूपा वजयन्ती माला है वह पञ्च तन्मात्राओ और पञ्च भूता का ही सधान है । जा ज्ञान और कममयी इद्रियाँ ह उनको श्री भगवान् वाणरूप से धारण करते ह । भगवान् जो अत्यन्त निमल खडग धारण करते ह वह[1] अविद्यामय काश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान ही है ।

भूतानि च हृषीकेश मन सर्वेन्द्रियाणि च ।
विद्याऽविद्य च मत्रय सवमेतत्समाश्रितम ।।

यानी इस प्रकार पुरुष प्रधान बुद्धि अहकार पञ्च भूत मन इन्द्रियाँ तथा विद्या और अविद्या सभी श्री हृषीकेश म आश्रित ह ।[2] इस प्रकार भगवान विष्णु की मत्ति जिन चीज़ो की प्रतीक हुई वे या है—

१ हृदय मे कौस्तुभ मणि—निर्लेप निमल आत्मा
२ गदा—बुद्धि ।
३ शख और शाङ्ग धनुष—तामस और राजस अहकार ।

१ विष्णुपुराण अध्याय, २२ प्रथम अश श्लोक ६७ से ७४तक ।
२ वही, ७५—गीता प्रेस की टीका, पृष्ठ १२३ ।

४ चक्र—अत्यन्त चचल सात्त्विक अहकाररूप मन।
५ कमल—सृष्टि प्रजा की उत्पत्ति लक्ष्मी।
६ वाण—ज्ञान और कर्मेंद्रिया।
७ वैजयंती माला—पञ्च तन्मात्राए तथा पञ्चभूत।

कलाकाष्ठानिमेषादिदिनत्वयनहायन।
कालस्वरूपो भगवानपापो हरिरव्यय॥

विष्णु० १—२२—७६।

अर्थात् कला, काष्ठा निमेष दिन ऋतु अयन और वष रूप से वे कालस्वरूप निष्पाप, अव्यय श्री हरि ही विराजमान है।

मूर्त्ति तथा अवतार

मूर्त्ति का प्रतीक के रूप म अध्ययन अभी हम और भी करना है । पर हम यहा पर थोडा विषय बदल देना चाहत ह । मूर्त्ति क प्रसग म आग बढने के पूव हमका मूर्त्ति का वज्ञानिक महत्त्व समझना होगा । प्रत्यक मूर्त्ति प्रतीकमय है, यह ता हमन थाडा बहुत समझा दिया है । भगवान बुद्ध तथा महावीर तीथकर की मूर्त्तिया भी प्रतीकरूप म ह । प्रत्यक मूर्त्ति के हाथा म कोई न कोई मुद्रा अकित हाता है । ऊपर को उठ हुए खुले हाथ अभय मुद्रा ह । मध्यमा तथा अनामिका का मिलाकर त्रिकाण बनाकर यानि मद्र या भग मुद्रा बनती है । बुद्ध की मूर्ति मे पथ्वी का छूती हुई उगली भूमि स्पश मद्रा है । अँगूठा तथा मध्यमा का मिला दने स पुष्प मुद्रा बनती है । य चिह्न नही ह । मुद्राए ह । मद्रा वास्तव म इशारा है किसी अय वस्तु की आर सकत करना है । प्रतीक है । इनको बिना गुरु के नही समझा जा सकता । तात्रिका के एक श्लाक की लाग बडी खिल्ली उडाते ह--

मातर्योनि परित्यज्य "

यानी माता की यानि को छाडकर पुरुष के लिए प्रत्यक यानि म विहार करने का अधिकार है । यहा पर मातयोनि से तात्पय अगूठकी बगलवाली उगली से है । जप करने वाला उपासक उस उँगली पर जप न कर । इस प्रकार की बहुत-सी बातो को लाग समझते नही । मूर्त्ति की मुद्राए चिह्न नही ह प्रतीक ह । निशान नही है इशारे ह ।[१]

प्रतीक और चिह्न का मिला देने से ही अथ का अनथ होता है । ऊपर हमन विष्णु का परिचय दिया है उनकी मूर्त्ति का प्रतीक बतलाया है । पर उतने से ही न तो लखक को सन्तोष है न पाठको को । विष्णु की जो मूर्त्तियाँ आज उपलब्ध ह वे पौराणिक युग की ह

१ चिह्न और प्रतीक में बडा अतर है । चिह्न के विषय में वात्स्यायन के कामसूत्र का श्लोक है— अधिकरण २ अध्याय ४ श्लोक ३१— राग बढाने में ऐसी दूसरी कोई वस्तु योग्य नहीं है जैसे कि नखों तथा दाँतों के निशान हैं ।"—

नान्यत्पटुतर किंचिदस्ति रागविवर्धनम् ।
नखदन्तसमुत्थाना कर्मणा गतयो यथा ॥

और उस युग की भी ह जब धम ने जडता का रूप धारण कर लिया था शव अपने को महान् समझता था और शिव को ही श्रेष्ठ देवता मानता था वैष्णव विष्णु को इत्यादि । आज के पाँच सौ वष पूव यह जडता बहुत बढ गयी थी हानिकारक सिद्ध हा रही थी । नारदपञ्चरात्र में तो यहाँ तक लिखा है कि वैष्णव को अपनी किसी भी कामना के लिए ब्रह्मा रुद्र दिकपाल गणेश, सूर्य उनकी शक्तिया आदि की उपासना नही करनी चाहिए । जिस गाँव मे विष्णु मदिर न हो वहाँ जल भी नही ग्रहण करना चाहिए । '

ऐसी मूखता की बाते मिलती ता हैं पर ऐसी बाते कम ह । महत्त्व की बातें कही अधिक ह । शिव लिग को छाडकर प्राय हर प्रकार की मत्ति या देव प्रतीक पौराणिक युग की रचना ह सूय आदि तत्त्वो को छोडकर । वेदा में विष्णु का वह वणन नही मिलता जिसको हम पुराणा में पाते ह । वष्णवमसि विष्णवस्त्वा इस प्रकार के मत्न मिलते ह । ऋक वेद मे जिस उरुक्रम उरुगाय त्रिविक्रम का वणन मिलता है वह तीन पग से विश्व को नाप लेना है ।[१] वदा के एक प्राचीन टीकाकार न इन तीन पगो की व्याख्या इस प्रकार की है कि सूय देवता के विश्व के तीन विभागो मे तीन प्रकार के रूप होते ह । पथ्वी पर अग्नि वायुमण्डल म इन्द्र या वायु तथा आकाश मे सूय–विष्णु के इन तोन रूपो के प्रतीक सूय ह । पौराणिक विष्णु के इस तीन पग को दशावतार में वामनरूप वामनावतार म दर्शाया गया है । सृष्टि के पालक विष्णु ह । इसलिए सष्टि के विकास क्रम को भी अवतार के रूप में दिया गया है । विष्णु की तीन शक्तियाँ ह––इच्छाशक्ति भक्तिशक्ति और क्रियाशक्ति ।[२] उनके छ गुण ह––ज्ञान एश्वय शक्ति बल वीय और तेज । विष्णु की मूर्त्ति यदि इन छ गुणो को प्रकट नही करती तो उसे शुद्ध मूर्त्ति नही मानना चाहिए । इन छ गुणा तथा तीन शक्तियो का मिलाकर विष्णु की चतुर्मूर्त्ति या चतुव्यूह बनता है जिसम वासुदेव, सकषण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध ह । इस चतु यूह की कल्पना मूर्त्तिकला के पडितो के अनुसार ईसा से २०० वष पूव यानी आज से २२०० वष पूव हुई थी ।[३] तीन शक्तियो तथा छ गुणो का प्रतीक चतुर्व्यूह बना । गुप्त शासन काल म विष्णु के व्यूह[४] की सख्या २४–चतुर्विशति मूर्त्ति–हो गयी । चार आदि मूर्त्तियाँ तो वासुदेव सकषण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की थी––ये आदि व्यूह थे ।

१ ऋग्वेद, १२२, अथर्ववेद ७—२६।४ ।

२ त्रिशूल की व्याख्या में इसका ध्यान रखना होगा ।

३ पातजलि महाभाष्य अ० ६ ३ ५ से सिद्ध होता है ।

४ व्यूह का अर्थ मूर्त्ति समझना चाहिये ।

वासुदेव में छ गुण वतमान ह । सकषण मे ज्ञान और बल । प्रद्युम्न म ऐश्वय तथा वीय । अनिरुद्ध म शक्ति तथा तेज है । ईसा से दो सौ वष पूव की इन चतुमूत्तियों के प्रमाण भी मिले ह । हर एक मूत्ति का अपना ध्वज होता है । बेसनगर मे प्राप्त विष्णु की मूत्ति मे गरुडध्वज वासुदेव तथा तालध्वज सकषण एव मकरध्वज प्रद्युम्न की मूत्तियाँ मिली ह । उनका भी वही निर्माणकाल है—ईसा स २०० वष पूव का । चतुर्विंशति मूत्तिया इसके तीन चार सौ वष बाद की ह—गुप्त-साम्राज्य काल की । शख चक्र गदा तथा पद्मधारी मूत्तियाँ इसी युग की ह । चतुर्विंशति मूत्तियो म चार के नाम हम दे चुके ह । शष ह—

केशव, नारायण माधव, गोविंद, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, बामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, पुरुषोत्तम, अधोक्षज नृसिंह, अच्युत, जनादन उपेन्द्र, हरि तथा कृष्ण ।[१]

किन्तु व्यूह तथा विभव म अन्तर है । विष्णु के विभव से भागवत म तात्पय अवतार से है । अवतार का अथ है किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर भगवान् का ससार म मनुष्य या पशु योनि म जन्म लेकर तब तक ससार म रहना जब तक उनका उद्देश्य पूरा न हो जाय । गीता म लिखा है—[२]

> **यदा यदा हि धमस्य ग्लानिभवति भारत ।**
> **अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मान सृजाम्यहम ।।**
> **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।**
> **धमसस्थापनार्थाय सम्भवामि युग युग ॥**

भगवान् श्री कृष्ण ने अजुन से कहा कि हे अजुन जब जब ससार मे धम की हानि होती है म अधम के विनाश तथा धम के अभ्युत्थान क लिए जन्म लेता हू । सब युगो के अवतार हो चुके अब कलियुग का कल्कि अवतार बाकी है ।

अवतारवाद केवल वष्णव सम्प्रदाय की देन नही है । वह तो हर सम्प्रदाय मे वतमान है । शवो में भी है । शवमतानुसार आदि शकराचाय शकर के अवतार थे । दुर्गा

१ पद्मपुराणमें आदि चार मूर्तियों का छोड़कर २१ नाम है जिनमें उपेन्द्र हरि तथा कृष्ण का नाम नहीं है ।

२ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ७-८ ।

सप्तशती मे महिषासुर को मारने के लिए भगवती दुर्गा का अवतरण दिया हुआ है ।[१] शुम्भ निशुम्भ को मारने के लिए देवताओ ने अपनी अपनी शक्ति को देकर एक परा शक्ति उत्पन्न की जिसके अनेक रूप थे ।[२] पर वे सब एक ही शक्ति के रूपान्तर थे । जब शुम्भ ने ताना मारा कि बहुत सी शक्तियो की सहायता लेकर मुझे मारने आयी हो तो भगवती ने कहा था—

> **एकवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।**
> **पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतय ॥ अ० १०,५**
> **तत समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।।—६**

देवी ने फिर कहा—

> **अह विभूत्या बहुभिरिह रूपर्यदास्थिता ।—८**

यानी म ससार मे स्वय एक हू । मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नही है । और ब्रह्माणी आदि सब देवियाँ भगवती के शरीर मे विलीन हो गयी म अनेक विभूतियो के रूप मे स्थित थी ।

इन श्लोका म विभूति शब्द का प्रयोग ध्यान रखने योग्य है । विष्णु के वभव अवतार ह । देवी की विभूति भिन्न शक्तियाँ ह । ये दोनो ही देवी या विष्णु के प्रतीक ह । विभूति या वभव प्रतीक मात्र ह । दुर्गासप्तशती मे देवी के जिन प्रतीका का प्रकट वणन है वे पाँचवे अध्याय में स्पष्ट ह ।
उदाहरण के लिए—

१ तनोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्तत ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मण शकरस्य च ॥१०॥ दुगासप्तशती अध्याय २ ।
अन्येषा चैव देवाना शक्रादीना शरीरत ।
निगत सुमहत्तेजस्तच्चैक्य समगच्छत ॥११॥
अतुल तत्र तत्तेज सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थन्तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयन्त्विषा ॥१२॥
(सब तेजो को मिलाकर "एकस्थ"—एक नारी हो गयी)

२ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥ अ० ५ १५ १६
(सब प्राणियों में जो विष्णुमाया के नाम से प्रसिद्ध है ।)

१	या देवी सव भतषु बुद्धिरूपेण सस्थिता	—	बद्धि
२	निद्रा	—	निद्रा
३	क्षुधा	—	क्षुधा
४	छाया	—	छाया
५	शक्ति	—	शक्ति
६	तष्णा	—	तष्णा
७	क्षान्ति	—	क्षान्ति
८	श्रद्धा	—	श्रद्धा भक्ति
९	लक्ष्मी	—	लक्ष्मी धन
१	वत्ति	—	जीविका
११	दया	—	दया कृपा

इस प्रकार जीवन की सभी भावनाए दवी का स्वरूप ह प्रतीक ह । हि दू धमशास्त्र म प्रतीक का निराकार भी माना गया है । बिना आकार का भी प्रतीक होता है । इसलिए प्रतीक तथा सकत और चिह्न म बडा अन्तर है । इसी प्रकार अवतार भी देवता के वभव ह अर्थात प्रतीक ह ।

विष्णु के अवतार कितने हुए ह इस विषय म निश्चित सख्या देना कठिन है । महा भारत न उनके तीन प्रारम्भिक अवतार गिनाय ह—वाराह वामन नसिह ।[१] उसके बाद वासुदेव कृष्ण भागव राम (परशुराम) दाशरथी राम का जिक्र है । किन्तु उसी अध्याय म[२] जो पूरी सूची दी गयी है वह इस प्रकार है—

हस कूम मत्स्य वाराह नारसिह वामन राम (परशुराम) राम सात्वत् (वासु देव या बलदेव—दोनो एक ही जाति क ह) तथा कल्कि ।

इस प्रकार अवतार तो दस ही हुए पर इनम बुद्ध का नाम नही ह । वायुपुराण म दशावतार का वणन है जिनम पाँचव अवतार का नाम नही है । व दस नाम ह—यज्ञ नारसिह वामन दत्तात्रय पञ्चम (नाम नहा है) जामदग्न्य राम (परशुराम) दाशरथी राम वेदव्यास वासुदेव कृष्ण और कल्कि ।[४] बुद्ध का नाम इसम भी नही है । भागवत

१ महाभारत द्वादश सर्ग, अध्याय ३४९—३७ ।
२ वही सर्ग, अध्याय ३८९, श्लोक ७७-९० ।
३ श्लोक १ ४ ।
४ वायुपुराण, अ० ९८, श्लोक ७१

पुराण मे तीन स्थानो पर अवतारो का जिक्र है। प्रथम मे[1] २२ की सख्या है द्वितीय म[2] २३ है तथा ततीय[3] म १६ है। प्रथम २२ मे बुद्ध का नाम है—पुरुष वाराह नारद नर और नारायण कपिल दत्तात्रेय यज्ञ ऋषभ पृथु, मत्स्य, कूम, धन्वतरि मोहनी नारसिह वामन भागव राम वेदयास, दाशरथी राम बल राम कृष्ण बुद्ध तथा कल्कि।

पुराणो के ही अनुसार (अवतारा ह्यसख्येया) अवतार असख्य ह। पर मत्स्यपुराण ने लिखा है कि चूकि भृगु ने अपनी पत्नी शुक्र की माता की हत्या करने के अपराध मे विष्णु का शाप दिया था कि तुमको सात बार मनुष्य योनि मे जन्म लेना पडेगा इसलिए विष्णु क सात अवतार ह।[4] पञ्चरात्रसहिता अहिबुध्न्यसहिता आदि मे भिन्न सख्याए दी गयी ह। दूसरीवाली सहिता म विष्णु के ३६ अवतार ह जिनमे ३८वा अवतार कल्कि का है तथा ३६वा पातालशयन अवतार है।[5]

किन्तु विष्णु के दशावतार ही अधिक मान्य तथा प्रचलित और प्रसिद्ध ह। वाराह तथा अग्निपुराण ने इनकी जो सूची दी है वह प्राय सवमान्य है। यह सही है कि वेदो मे अवतार का जिक्र नही है। जिन अति प्राचीन ग्रन्थो म प्रजा के कल्याण तथा सृष्टि के विकास क लिए अवतरित होने का उल्लख है वे ह शतपथ ब्राह्मण तथा तत्तिरीय सहिता। इनम लिखा है कि प्रजापति ने उपरि लिखित उद्देश्य से मत्स्य (मछली) कम (कछुआ) तथा वाराह (सूअर) का रूप धारण किया। कुछ सहिताओ न विष्णु के अवतारो के दो भाग कर दिये ह—१ मुख्य तथा २ गौण। इनके अनुसार ब्रह्मा, शिव बुद्ध व्यास अजुन परशुराम वसु यानी पावक—अग्नि तथा कुबेर ये गौण अवतार थे।

किन्तु विष्णु के दस अवतारो मे जिन प्रारम्भिक अवतारो को शतपथब्राह्मण भी स्वीकार करता है वे मत्स्य कूम तथा वाराह और चौथा नृसिह फिर वामन—इत्यादि उस विष्णु के वभव ह जिसने सष्टि को उत्पन्न किया तथा जो सृष्टि का पालन करने

१ भागवत १ ३ ६ २२।
२ वही २ ७ १।
३ वही ११ ४ ३।
४ मत्स्यपुराण—अध्याय ४७ श्लोक ४६।
५ F O Sarkar— Introduction to the PANCARATRA AND AHIRBUDHNYA SAMHITA—pages 43-44.

वाला तथा विस्तार करनेवाला है । यहाँ पर हम यदि यह कहे तो क्या अनुचित होगा कि परमात्मा के प्रतीक विष्णु ह और इस सष्टि का विकास जिस प्रकार हुआ है हर एक अवतार उस विकास का प्रतीक है । हमारा तात्पय दशावतार से है । प्रारम्भिक अवतार केवल सष्टि के विकास के प्रतीक ह और बोधक ह । बाद के मानव शरीरधारी अवतार महापुरुषा की ईश्वरी शक्ति क प्रतीक ह । यह बात सिद्ध करने के लिए थाडा विषया तर तो होगा पर हम आधुनिक विज्ञान के द्वारा निर्धारित सष्टि का विकास समझ ल ।

विज्ञान के अनुसार सृष्टि का विकास

हजारो वर्षों से पश्चिमी विज्ञान सष्टि के विकास की कहानी को ठीक तरह से समझने समझाने का प्रयास कर रहे ह । फिर भी यह कहानी अभी तक अधरी है । अभी तक जितना पता चला है उससे यह अनुमान लगाया जाता है कि इस सृष्टिमण्डल में कम स कम ३ ०० ०० ००,००,००० तीन अरब सूय ह जिनके चारो ओर असख्य तारे परिक्रमा कर रहे ह । हिन्दू शास्त्र के अनुसार हर ग्रह पर देवताओ का वास तथा उनका राज्य है । आज का विज्ञान कहता है कि बहुत सम्भव है कि अनेक ग्रहो पर सजीव प्राणी हो और भूमण्डल से अधिक उन्नत सभ्यता भी हो । शुरू मे केवल रजकण थे गस थी, अधकार था । करोडो वष पूव ये कण तथा परमाणु तारिकाओ से प्राप्त क्षीण प्रकाश के दबाव से एकत्रित होने लगे । वे शून्य ब्रह्माण्ड मे भयकर गति से परिक्रमा करते-करते गुरुत्वाकषण के कारण कुछ स्थिरता प्राप्त करने लगे । भयकर वेग से परिक्रमा करने के कारण भयकर सघषण से भयकर ज्वाला उत्पन्न हुई । उसका एक अश बहुत ही तीव्र ज्वाला का पिण्ड बनने लगा । इस प्रकार हमारे सूय का निर्माण प्रारम्भ हुआ । इस वहत कण पिण्ड के और भी टुकडे होते गये । इन्ही बडे बडे टुकडो ने ग्रहो का रूप धारण किया । हर एक ग्रह अपने आकषक से अनगिनत उपग्रहो को खीचता रहा पर सबमे बडे अग्निपिंड सूय क आकषण मे सभी ग्रह उपग्रह रहे । इस प्रकार सूय मण्डल का जन्म ठास रूप धारण करता रहा । ठण्डा भी पडता रहा । हमारी पथ्वी भी धीरे धीरे शान्त हो चली पर इसकी तह पर विशाल ज्वालामुखियो का ढेर था । उनसे विशाल वाष्प-पुज निकल रहे थे । भाप ने भयकर वर्षा तथा जल का रूप धारण किया । लाखो वर्षों तक वृष्टि होती रही । रासायनिक पदाथ तथा नमक बह-बह कर जलागार समुद्र मे जाने लगा । बडी बडी नदियाँ तथा समुद्र बन गये । इस प्रकार भूगभ के निर्माण म कम से कम एक अरब वष समाप्त हो गये । अब गरम तथा खनिज और रासायनिक पदाथ से सयुक्त जल के पेट में यानी समुद्र के गभ मे सजीव प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ । प्रकाश तथा जल के सयोग से जीवन का स्रोत बना । जब अधकार था शून्य था तब परब्रह्म का आदि रूप था । प्रकाश ही परम शिव है । जल ही परम

शक्ति है। शिव तथा शक्ति क सयोग से सृष्टि होन लगी। शिव लिग पर जल चढाना इसी सष्टि सजन का प्रतीक है।[१]

प्रकाश की महत्ता का प्रकट सत्य है। इसकी शक्ति महान है। वर्षा के बाद इन्द्र धनुष को देखिए? वर्षा के करोडा बिन्दु सूय की किरणा क साता रगा के टुकडे टुकडे करके बिखेरकर उन्ह समेट लते ह। सूयकिरणा के सात रग का ही हमारे पुराणा मे सूय के रथ के सात घोड कहा गया है। सष्टि म कार्बन तत्त्व की बहुतायत है। इसक करोडा रूप तथा अवयव ह। इस कार्बन क आधार से ही उस चीज का जन्म हुआ जिसे हम पापक तत्त्व या प्रोटीन कहते ह। इसी तत्त्व स जीवन का शृखला प्रारम्भ हुई। यह जीवन पहल बुन्दुदे की तरह बि दु क रूप म प्रारम्भ हुआ। यही बीज है। तान्त्रिक मत्र के भीतर बठा हुआ बीज ○ है। फिर उसन घास की तरह पौध का रूप लिया। उन पौधो क पापक तत्त्व स पहल मछली क आकार का बिना कान आंख नाक का कीडा बना। वह उभयलिगी था जस जाक। पुरुष तथा स्त्री दाना एक साथ। धीरे धीर इसन मछली का रूप धारण किया। मछली से ही एसा जानवर बना जो पानी तथा सूखी भूमि दाना म ही रह सक। इस प्रकार सष्टि क बीजारापण क बाद पहला समूचा प्राणी बना मत्स्य यानी मछली। फिर उसके बाद कूम हुआ याना कछुआ। कछुआ घडियाल इ यादि जानवरो दरिन्दा तथा परिन्दा क विकास का लम्बा कहाना दन का यहाँ पर स्थान नही है। पर पशु जगत के विकास म उस समय बड पशुआ म क द

१ देवीभागवत में सृष्टि का वणन इस प्रकार है—

आविर्भूता तिरोभूता सनन्दा च पुन पुन ॥ १४ ॥
आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलापर्युपस्थिता।
प्रलये च तिरोभूता जलस्याऽभ्यन्तरे स्थिता ॥ १५ ॥
प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसयुता।
सप्तसागरसयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता ॥ १६ ॥
हेमाद्रिमेरुसयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसयुता
ब्रह्मवि णुशिवाद्यश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया ॥ १७ ॥

..

पातालसप्त तदधस्तदूर्ध्व ब्रह्मलोकन।
भुवर्लोकश्च तत्रैव सव विश्व च तत्र वै ॥ १९ ॥

श्री देवीभागवत के ९वें स्कन्ध के ९वें अध्याय के ये श्लोक जल से पृथ्वी की उत्पत्ति सात समुद्र, सात द्वीप सूय चन्द्रमा, ग्रह आदि का विकास स्पष्ट करते हैं।

मल पर जीवित रहनेवाल वाराह (सूअर) का आविर्भाव हुआ। फिर सिंह आदि का। फिर आधा पशु आधा मनुष्य—नसिंह और तब मनुष्य ने जन्म लिया जो पहले वामन के रूप मे बौना रहा होगा। बौने के बाद पूण मनुष्य हुआ। ग्रहो पर क्या है उपग्रहो की क्या सत्ता है इन सबकी बात तो छोड दीजिए। केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि सष्टि के विकास की वैज्ञानिक खोज के साथ हमारे अवतारो की कथा तथा तान्त्रिक यत्रो का मेल कितने सुन्दर रूप म होता है। इसलिए यदि अवतार को सृष्टि के विकास का प्रतीक मान ल यदि विष्णु के मुख्य तथा गौण रूप को सष्टि के इतिहास तथा सभ्यता का द्योतक सकेत प्रतीक मान ले तो पौराणिक इतिहास में सन्निहित गूढ तत्त्व समझ में आ जाता है। किन्तु यह बात तब तक स्पष्ट न होगी जब तक हम दवताओ की मूर्त्ति का थाडा परिचय न प्राप्त कर ल।

मूर्त्तिकला तथा प्रतीक

शख चक्र गदा पद्मधारी विष्ण की मूर्त्ति की कल्पना पहल पहल पुराणा द्वारा हुई यह ता निर्विवाद प्रतीत होता है पर उसकी रचना कब हुई कब से शुरू हुई यह कहना कठिन है। महजोदाडो तथा हडप्पा की खुदाई से यह तय हा गया है कि ५ ०० वष पहले देवी देवताओ की मूर्त्तियाँ प्रचलित थी। यह भी मान न कि उससे दा हजार वष पहल स मूर्त्ति का प्रचलन रहा हागा। पर पुराणा मे इस विषय म निश्चित जानकारी नही हा सकती। वेद म शिव लिग तथा शकर क रूप का किंचित वणन ता है पर उससे मूर्त्तिकला सम्बन्धी काम नही चलता। महाभारत म मर्त्ति का वणन मिलता है। पर एक ही व्यास न समूचा महाभारत लिखा तथा सभी पुराण बनाये यह सन्देहजनक है। देवीभागवत के अनुसार २८ व्यास हुए ह।[1] फिर ता समयनिर्धारण बडा कठिन है। प्राचीन ग्र था म केवल हयशीषसहिता तथा वखानससहिता म मूर्त्ति का कुछ वणन मिलता है पर उनका समयनिर्धारण कठिन है। एक लखक क अनुसार ईसा के ६०० से ८०० वष बाद यानी शताब्दी मे कम से कम १४ १५ सहिताए लिखी गयी थी।[2] इसलिए इनमे प्राप्त वणन उतना पुराना नही हा सकता जितनी पुरानी मूर्त्तियाँ मिलती ह पर एक विद्वान लेखक के अनुसार वष्णव आगम म सबसे पुराना ग्रथ वखानस सहिता है। इसमे विष्णु की ३६ मूर्त्तिया का वणन है। साधक की जसी इच्छा हा जसी कामना हो उस प्रकार की मूर्त्ति की उपासना करे। योग भोग वीर अभिचारिका—भिन्न प्रकार के भगवान के रूप ह।[3] इसी लखक के अनुसार शवागम का सबसे प्राचीन ग्रन्थ कामिकागम तथा कारणागम ह जो नवी शताब्दी के बाद के ह।[4] डा० जितेन्द्रनाथ बनर्जी के कथनानुसार शाक्त तन्त्रो में वर्णित मूर्त्तियाँ

१ F O Schroedar— Introduction to Pancarātra Ahirbudhnya Samhita ' page 19

२ T A G Rao—Elements of Hindu Iconography—Vol I

३ वही खण्ड १ भाग १, पृष्ठ ७८ ८०

४ वही, पृष्ठ ५६ ५७

और भी बाद की हैं। शाक्त तन्त्र के ऐसे ग्रन्थ ६वीं से १०वीं शताब्दी के भीतर के है।[1] डा० बनर्जी के अनुसार मूर्त्ति का वणन करनेवाले प्राचीन भारतीय शास्त्रीय ग्रन्थ ईसा से २०० से ४०० वष पूव से अधिक पुराने नही हैं। इसी युग मे और विशेष कर गुप्त साम्राज्य के युग मे भारतीय मूर्त्तिकला बहुत उन्नति करने लगी थी जो बाद की दस शताब्दी तक सौदय तथा भावुकता मे बहुत ऊँचे पहुच गयी थी।

मत्स्यपुराण अग्निपुराण कल्किपुराण विष्णुधर्मोत्तर, विश्वकर्मावतार शास्त्र वृहत्सहिता आदि मे विष्णु की मूर्त्ति का जसा वणन है, वैसी मूर्त्तिया उत्तर तथा दक्षिण भारत मे बराबर प्राप्त होती ह, यद्यपि वे ७०० ८०० वष से अधिक पुरानी नही प्रतीत होती ह। इनमे सूय का भी रूप दिया गया है यद्यपि भगवान सूय सम्बन्धी तीन प्रसिद्ध ग्रन्था—अशुमदभेदागम शिल्परत्न तथा सुप्रभेदागम' मे सूय की मूर्त्ति नही वर्णित है। मत्स्यपुराण के अनुसार विष्णु की प्रतिमा के दोनो तरफ श्री तथा पुष्टि खडी ह।[2] इन दोना देवियो के हाथ म कमल है। इस प्रकार विष्णु की शक्तियो का प्रतीक कमल हुआ। परम ऐश्वयशाली विष्णु के दोनो ओर ऐश्वय की शक्तियाँ श्री तथा पुष्टि ह और कमल उनका प्रतीक है—आयुध है—सकेत है—और यो भी कह सकते ह कि चिह्न है। कल्किपुराण मे लिखा है कि विष्णु के दाये श्री ह जिनके हाथ में कमल है तथा बायें सरस्वती ह जिनके हाथ मे वीणा है। वीणा स्वर लहरी, वणमाला मातका तथा सगीत का प्रतीक है यह आज पश्चिमी पडित भी मानते ह। अग्निपुराण मे भी यही श्री तथा सरस्वती दाये बाये कमल तथा वीणा धारण किये हुए ह। यहाँ तक लिखा है कि दोनो शक्तियो की मूर्त्ति विष्णु की मूर्त्ति की जघाओ से ऊपर लम्बी न हो।[3] जो हो मूर्त्ति के निर्माण तथा शृगार के सम्बन्ध म सबसे रोचक साहित्य मत्स्यपुराण मे प्राप्त होता है। उसीमे लिखा है कि नटराज की मूर्त्ति कैसे बनायी जाय।[4] सूय की मूर्त्ति के सम्बन्ध मे मत्स्यपुराण मे बडी रोचक वार्ता है। लिखा है कि विश्वकर्मा (देवो में सबसे बडे कलाकार मूर्त्तिकार तथा इजीनियर) ने सूय की मूर्त्ति बनायी पर अधूरा पर बनाकर छोड दिया अतएव जो उनका पूरा पर बना देगा उसे कोढ हो जायगा।[5]

१ Dr Jitendra Nath Banerjea—'The Development of Hindu Iconography —Calcutta University—1956 पृष्ठ २७।

२ मत्स्यपुराण, २५८ १५ "श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पाश्वयो पद्मसयुते।"

३ अग्निपुराण, अध्याय ४४।

४ मत्स्यपुराण, बगवासी सस्करण, पृष्ठ ३१।

५ बृहत्सहिता में भी लिखा है कि सूर्य की मूर्त्ति कमर के ऊपर तक की ही रहे। किन्तु, सुखवास पुर में प्राप्त सूर्य की मूर्त्ति में दोनों पूरे पैर बने हैं।

बहृत्संहिता मे मूर्त्ति के विषय में बडे ब्यौरे से दिग्दर्शन कराया गया है---कितने हाथ हो कितन पर हो क्या आयुध हो हाथो मे क्या हो इत्यादि।

कार्याऽष्टभुजो भगवाञ्श्चतुभजो द्विभुजा एव वा विष्ण[१] स्थानक विष्णु की जो मूर्ति प्राप्त हुई है उसम उनकी आठ भुजाए ह। चार दाहिने हाथो म चक्र बाण (शर) गदा तथा खडग है और तीन बाय हाथो म शख खेटक तथा धनु है। चौथा बाया हाथ सामने की ओर कमर पर विश्राम कर रहा है--- कटिहस्त मुद्रा है। सभी मूर्त्तियाँ शुद्ध भारतीय कला की प्रतीक नहीं ह। यूनान से घनिष्ठ सम्पक होन के बाद हमारी मूर्त्तियो पर विशषकर गाधार की मूर्त्तियो पर यूनान की मूर्त्तिकला का बडा प्रभाव पडा है।[२] इसलिए यह कहना उचित न होगा कि सभी मूर्त्तियाँ शास्त्र की विधि या वणन के अनुसार बनी ह। किन्तु इन सभी मूर्त्तियो के विषय म एक अकाटच सत्य है---वह यह कि सभी मर्त्तिया इसी विचार को सामने रख कर बनायी जाती थी कि देवता मे सभी प्रमुख प्राकृतिक तथा मानवीय गण विशिष्टता तथा भावना का समावेश करा दिया जाय। देवता इन भावनाओ तथा मकता की समष्टि का प्रतीक बन जाय।[३] यही बात बगाल मे प्राप्त होनेवाला मूर्त्तियो क सम्बन्ध म श्री भट्टसाली ने लिखी है। किन्तु उनक कथनानसार बगाल में उपलब्ध मूर्त्तिया अधिकाशत या प्राय १००० से १२०० इसवीय सन के बीच के काल की ह।[४]

मर्त्तियो के सम्बन्ध म हमारा बहुत कुछ अध्ययन अधूरा होने का कारण यह है कि हमारी अनगिनत मूर्त्तिया नष्ट हो चकी ह खडित हो चुकी ह। हमारा यह अनुमान नितान्त भ्रमपूण है कि मर्त्तिपूजा क विरोधियो ने या मुसलमानो ने मूर्त्तियो तथा देवालयो को नष्ट भ्रष्ट किया है। मूर्त्तियो को चुराने वाले मर्त्ति म लगी आख आदि निकाल कर बच डालने वाले देवालयो पर अधिकार कर उसे गिरा कर मकान बना लेने वाल अधिकाश हिन्दू ही मिलते ह। इसी प्रकार सकडो वष पूव भी देवालयो को नष्ट कर मकान बना लने वाले या दवालयो म रद्दोबदल कर मकान बनाने वाले हिन्दू थे। मूर्त्तियो को खडित कर देने वाले भी हिन्दू थे। शव वष्णव आदि साम्प्रदायिक

१ वही बृ स अध्याय ५७ श्लोक ३१ ३५ तक।
२ Grunwedel and Burgess---Buddhist Art in India---pages 124 125
३ J N Banerjea--- Development of Hindu Iconography ---page 394
४ Nalini Kanta Bhattasali---Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum pub Dacca Museum Committee---1929 page XVII

झगडा मे एक सम्प्रदाय वालो ने दूसरे के मन्दिर तथा मूर्त्तियाँ नष्ट की ह । भारतीय मूर्त्तिकला तथा उसके सहार पर प्रकाश डालते हुए डा० बनर्जी लिखते हैं—

'ब्राह्मणयुग के आदि तथा बाद के यानी मध्ययुग मे प्राप्त मूर्त्तियो की वास्तुकला से यह प्रकट है कि वे पूरी तरह से भिन्न ग्र थो मे वर्णित परिचय आदेश के अनुकूल बनायी गयी थी । उनसे मिलती जुलती ह । पर ऐसी बहुत-सी मूर्त्तियाँ ह जो आशिक रूप से मिलती ह अथवा एकदम नही मिलती अनगिनत मूर्त्तियाँ जिनमे धार्मिक कला की अमूल्य कृतियाँ थी मूर्त्ति ध्वसको की बबरता द्वारा नष्ट हो गयी जिनकी क्षति पूर्ति असम्भव है । इन प्राचीन कला कृतियो के सहार का दाष केवल अय धर्मावलम्बी तथा मूर्त्ति विरोधियो के सिर मढ देने से काम नही चलेगा । प्राचीन तथा मध्यकालीन युग क ऐस अनेक भग्नावशेष पडे हुए ह जिनको युगो से लोग (देवालयो म) अपने रहने के उपयोग में लाते ह ।[१]

मर्त्ति हमारे धम तथा शास्त्र का बडा ही महत्त्वपूण अग है । इसका उपयोग केवल उन दैवी या प्राकृतिक विभूतिया को प्रतीक रूप मे दर्शाना है जो अ यथा अव्यक्त रह जाती । मूर्त्ति शब्द का प्रयोग देवीभागवत में भी बडे महत्त्व के स्थानो मे हुआ है ।[२] भगवती की प्राथना करते हुए विष्णु भगवान ने मधु कटभ राक्षसो को सष्टि के आदि काल मे मारने के प्रसग मे भगवती से शक्ति प्राप्त करने के लिए स्तुति की है[३] ।

नमो देवि महामाये सृष्टिसहार कारिणि ।
अनादिनिधने चडि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिव ।।

सष्टि की रचना के समय सष्टि कर्त्ता विष्णु भगवान को महा अविद्या तथा तमिस्रा रूपी राक्षसो से जब सघष करना पडा उस समय उन्होने परा शक्ति का आवाहन किया । उनके दोनो रूप ह—निराकार तथा साकार सगुण तथा निगुण । उनकी व्याख्या है—

सगुणा निगुणा चैव कायभेदे सदव हि ।
अकर्त्ता पुरुष पूर्णो निरीह परमोऽव्यय ।।

(देवीभा० ३ स्क०, ६ अ०, ३४ श्लोक)

कायभेद से वह सगुण निगुण है । अकर्त्ता है । पूण पुरुष है । इच्छारहित है । परम अव्यय है । उस महादेवी ने जब शरीर-रूप धारण किया तो उसकी मूर्त्ति के विकास का रोचक वणन है । काली के सम्बन्ध मे लिखा है—

१ Development of Hindu Iconography—pages 32 33

२ वाराहावतार के प्रसग में ९वाँ स्कध, ९वाँ अध्याय, श्लोक ३ —"कृत्वा रतिकला सर्वा मूर्त्तिं च सुमनोहराम्'।

३ देवीभागवत, प्रथम स्कध, ९वाँ अध्याय, श्लोक ४० ।

निःसतायान्तु तस्या सा पार्वती तनु व्यत्ययात ।
कृष्णरूपाऽथ सञ्जाता कालिका सा प्रकीर्त्तिता ।।
मसीवर्णा महाघोरा दैत्याना भयवर्धिनी ।
कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।।
अम्बिकाया पर रूप विरराज मनोहरम ।
सर्वभूषणसयुक्त लावण्येन च सयुतम ।।
(देवीभा० ५, स्कध २३, अ० श्लोक ३५ तक)

स्याही के रगवाली महाकाली का भूषण लावण्य आदि से युक्त कितना सुमनोहर रूप है । यदि काली की मूर्त्ति बने और उसमे वे गुण न हो तो मूर्त्ति ठीक नही कही जायेगी ।

आज के नये पढे लिखे लोग हिन्दू शास्त्र की इन प्राचीन बातो को न तो वैज्ञानिक मानते है और न किसी महत्त्व का । मूर्त्ति की बात तो दूर रही यत्र या मत्र शक्ति पर वर्ण की महत्ता पर मातृका के देवी प्रतीक पर तो अधिकाश नये पढे लिखे लोगो का बिलकुल आस्था नही है । हा यदि पश्चिमी विद्वान कुछ समर्थन कर दे तो विश्वास जमने लगता है । इसीलिए वर्ण तथा शब्द की महत्ता पर हम आगे चलकर फिर प्रकाश डालगे । यहाँ पर मूर्त्ति के प्रकरण म हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वे विशिष्ट देवी या आध्यात्मिक भावनाओ की प्रतीक ह । चकि अन्ततोगत्वा प्रतीक तथा सकेत म कोई भेद नही रह जाता इसलिए हम यदि मूर्त्तियो का प्रतिमाओ का सकेत मान तो कोई आपत्ति न होगी । यह निश्चय रूप स मान लेना चाहिए कि जहा जहाँ हमने मूर्त्ति शब्द लिखा है वह प्रतिमा के अर्थ म है । केवल अपनी बात का सरलता पूर्वक समझाने के लिए मूर्त्ति शब्द का उपयोग किया गया है ।

अस्तु प्रतिमा अत्यधिक भावुकता तथा मानसिक भावना की प्रतीक है । सकेत को समझने म तभी भ्रान्ति पैदा होती है जब बुद्धि कुछ और कहती है और प्रत्यक्ष कुछ और कहता है ।[1] भ्रान्ति तब और बढ जाती है जब हम प्रतीक को अपनी व्याख्या का दास बना लेते ह । वह सकेत सकेत नही है वह चिह्न चिह्न नही है वह प्रतीक प्रतीक नही है जो हमारी व्याख्या या हमारी परिभाषा की अपेक्षा करे उस पर निर्भर करे । उसका जो उद्देश्य है उसी उद्देश्य को पूरा करता है हम समझें या न समझे । जब हम उसे नीचे उतारकर अपनी परिभाषा मे गूथने लगते ह तभी भ्रान्ति तथा शका पैदा होती ह ।

१ C K Ogden—The Meaning of Psychology –1926—Chapter II

यदि प्रतीक को वह वस्तु मान लें जो क्रियाशक्ति को सकलित कर व्यक्त करे — तो बात ज्यादा आसानी से समझ मे आ जायगी ।[१]

जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो उच्चारण के पूर्व बहुत-सी ध्वनियाँ बहुत से अक्षर हमारे मस्तिष्क मे घिर आते ह उत्पन्न हो जाते हैं । उनको हम अपनी बुद्धि से देख लेते ह ग्रहण कर लेते ह । इसी प्रकार जब हम किसी वस्तु का नाम लेते ह जसे चारपाई—तो हमारे मन के अन्तरिक्ष मे चारपाई के सभी अवयव उसकी बुनावट उसका उपयोग सब कुछ आ जाता है । स्पष्ट है कि प्रत्येक सकेत प्रत्येक चिह्न के भीतर उसकी उपयोगिता तथा उपादेयता सन्निहित है । इनके द्वारा मनुष्य एक दूसरे से अपने विचारो को तात्पर्य को आशय को प्रकट कर सकता है । इसीलिए मानव-समाजमे इनका खास स्थान है । ऐसे चिह्नो को सकेतो को शब्दो को शब्दो के नियमन को (मन्त्र), प्रतिमाओ को, इशारो को ध्वनियो को तथा रेखा चित्रणको हम प्रतीक कहते ह ।[२] प्रतिमाएँ हमारे वतमान तथा भविष्य के आचरण का अति उपयोगी प्रतीक ह ।[३]

किन्तु भारतीय प्रतिमाए आचरण या व्यवहार की प्रतीक ह ऐसी बात मान लेना भारतीय शास्त्र तथा दशन के प्रतिकूल होगा । प्रतिमाएँ (भारतीय) भावना की प्रतीक ह । वस्तु स्थिति की प्रतीक ह । ठोस सत्य की प्रतीक ह । जसे बगाल तथा देश के अन्य स्थानो मे प्राप्त भगवान बुद्ध की पचध्यान मूर्त्ति (प्रतिमा) को लीजिए । श्री भट्टसाली के अनुसार ये मूर्त्तिया नीचे लिखी बात व्यक्त करती ह—[४]

पाचध्यानी बुद्ध—

	नाम	तत्त्वा के द्योतक	इन्द्रिय	रग
१	वरोचन	आकाश	शब्द	स्वेत
२	अक्षोभ्य	वायु	स्पश	नीला
३	रत्नसम्भव	अग्नि	दृष्टि	पीला
४	अमिताभ	जल	स्वाद	लाल
५	अमोघसिद्धि	मिट्टी	घ्राण	हरा

१ Dr Jelliffo— The Symbol as an Energy Condenser in the Journal of Nervous and Mental Diseases December 1910

२ C K Ogden and I A Richards— The Meaning of Meaning Pub—Kegan Paul—Trench Trubner & Co New York 1927—Page 23

३ वही, पृष्ठ २३ ।

४ Bhattasali—Iconography of Buddhist & Brahmanical Sculptures—pages 18 21

बौद्धा के आदि बुद्ध तथा आदि प्रज्ञा—जिसे प्रज्ञा पारमिता भी कहते ह हिन्दू धम के परम पिता तथा परम शक्ति पुरुष और प्रकृति शिव शक्ति परम शिव तथा बीज के द्योतक ह । ये पाँचो बुद्ध भिन्न मद्राओवाले ह—मुद्राएँ हाथ पर के सकेत का कहते ह । हाथ की मद्राएँ जिनका तत्रशास्त्र म बडा गम्भीर विवेचन है भिन्न सकेत ह जो वास्तव में प्रतीक का काम करते है । इन प्रतिमाओ से जो भिन्न मुद्राएँ या सकेत प्राप्त हाते ह वे इस प्रकार ह—

वरोच्य — उत्तरबोधि मुद्रा या धमचक्र मुद्रा ।
अक्षोभ्य — भूमिस्पश मुद्रा ।
रत्नसम्भव — वरद मुद्रा ।
अमिताभ — समाहित मुद्रा (ध्यानमग्न) ।
अमोघसिद्धि – अभय मद्रा ।

हिन्दू धम म बिना शक्ति के देवता नही होता । यदि विष्णु ह तो लक्ष्मी भी होगी । शिव के साथ पावती का होना आवश्यक है । उसी प्रकार पचध्यानी बद्ध की भी अपनी शक्तिया ह—

वरोचन — वज्रधात्वीश्वरी
अक्षोभ्य — लोचना
रत्नसम्भव — मामरी
अमिताभ — पाण्डरा
अमोघसिद्धि — तारा ।

तत्र शास्त्र म तारा की उपासना का बडा ही महत्त्व है । बडा ऊचा स्थान है । बौद्धिक तत्र मे तारा ही प्रधान शक्ति है ।[१] बिना मुद्रा के कोई प्राचीन मूर्त्ति नही है, प्रतिमा नही है । समझनवाला चाहिए । बगाल म शकर का एक खटवाग प्रतिमा मिली है जिसम उनके एक हाथ म छडी है जिसपर एक भयावना मस्तक बना हुआ है । एक हाथ वरद मद्रा का है । वे वरदान दे रहे ह । इसका अथ यही है कि वह मस्तक मृत्यु है । मृत्यु के स्वामी शकर है । वे अपने भक्तो का मत्यु मे वरदान दे रहे ह—मत्यु से निभय कर रहे ह ।[२]

१ इस विषय में अधिक जानकारी के लिए पढ़िये—Waddell—Buddhism of Tibet—pages 337 49 350

२ Bhattasali—page 11 12

इसीलिए प्रतिमा की महत्ता को समझने के लिए आचरण तथा व्यवहार की सीमा मे न बांधकर उनसे ऊपर उठकर भावना को समझना चाहिए। आचरण मूलत वातावरण को लक्ष्य करके होता है।[१] मन मे जैसी प्रेरणा होती है शरीर भी उसी के अनुकूल हो जाता है।[२] मछली खाने की इच्छा हुई तो तालाब की मछली ध्यान म आ जायेगी और हाथ मछली पकडने के सामान की ओर बढ जायगा। किन्तु ऐसा विचार किस प्रेरणा से उत्पन्न हुआ ? भूख के कारण तालाब के निकट रहने के कारण या मछली का चित्र देखकर ? काय और कारण का सम्बन्ध सनातन है। दोनो एक दूसरे पर निभर करते ह। पर जिसने कभी मछली देखी न हो मछली खायी न हो वह मछली पकडने की सोचेगा ही क्या ? यह सही है कि अनुभव से काय प्रारम्भ होता है काय होता है तथा काय से अनुभव होता है। पर किसी भी काय की पुनरावत्ति अनुभव के कारण ही होती है।[३] मछली खाने की इच्छा मछली पकडने की इच्छा मछली पकडन का काय, यह सब अनुभव से हुआ। चिह्न तथा सकेत भी अनुभव से उत्पन्न होते ह। केवल विचार काय कारण से नही। इसीलिए हम कहते ह कि प्रेरणा मे अनुभव छिपा हुआ है। अनभव तथा प्ररणा से भावना उत्पन्न हाती है। भावना से प्रतीक बनता है। जिस प्रतिमा म काय-कारण का समुचित सम्बन्ध बन जाता है तथा जिसम भावना का पूण प्रतिबिम्ब हाता है वही सच्ची प्रतिमा है। वही प्रतिमा सच्चा प्रतीक हागी जिसमें इनकी उचित मात्रा हागी। उसमें सत्य का अश होगा।[४] यदि यह कह दिया जाय कि हर एक बात की व्याख्या परिभाषा हा सकती है तो इसका ता यही तात्पय हुआ कि प्रत्येक चीज का कोई मनोवज्ञानिक आधार है। यह मान लेना चाहिए कि व्याख्या या परिभाषा का मतलब ही होता है पुनरावत्ति पूव का अनुभव पूव की पहचान।[५] बहुत सी इकाइया के इकट्ठा हो जाने पर एक घटना बनती है। इसलिए जब भी वसी इकाइयाँ हागी वसी ही घटना बनेगी। इसलिए अनुभव घटनाओ की कल्पना कर लेता है। प्रतीक भी घटनाओ तथा अनुभवो से उत्पन्न होता है। अतएव जिसे अनुभव नही है वह प्रतीक को समझ नही सकता बिना प्रेरणा के प्रतिमा का निर्माण नही होता। हर एक की प्रेरणा एक समान नही हाती। किसी वस्तु को देखकर सबको एक समान प्रेरणा हो यह सम्भव

१ E B Holt— The Freudian Wish —page 168—होल्ट ने वातावरण इच्छा व्यवहार पर काफी समीक्षा की है।
२ वही, पृष्ठ २०२।
३ The Meaning of Meaning page 55
४ Laton—Symbolism and Truth—1925—page 23
५ The Meaning of Meaning page 56

नही है। जिसका समान प्रकारेण अनुभव होगा उसको समान प्रकार की प्रेरणा होगी। किसी प्रतिमा का देखकर सबका एक ही प्ररणा नही हो सकती। सत्तरहवी शताब्दी म फ्रेंच यात्री तर्वनियर भारत आये थे। इन्हाने अपनी यात्रा के अनुभव लिखे ह। इनकी पुस्तक इतालियन भाषा मे १६६० ईसवीय सन् में बोल्गेना म प्रकाशित हुई थी।[१] तर्वनियर वाराणसी भी गय। वहाँ क प्रसिद्ध बनीमाधव बिन्दुमाधव के मदिर को उन्हान भारत म जगन्नाथ (पुरी) के मन्दिर के बाद श्रेष्ठ मदिर कहा है। जब वे मूर्त्ति का दशन करन गय वह वस्त्र पहन हुए थी अतएव उनको गला तथा मस्तक ही दिखाई पडा। उन्हान लिखा है कि यह मूर्त्ति बनीमाधव नामक बडे देवता के शक्ल-सूरत की तथा उनकी यादगार म बनायी गयी है। पास मे स्वण का गरुड रखा हुआ था जा उनको आधा हाथी आधा घाडा प्रतीत हुआ। अब इस प्रतीति से मूर्त्ति का प्रतिमा की महत्ता ता कम नही हुई ? तर्वनियर न भी वही भूल की जा अनगिनत लाग कर रहे ह। दवताओ की मूर्तिया उनके असली सूरत शक्ल की तस्वीरे नही ह। व उनकी शक्तियो का प्रतीक मात्र ह। जा मूर्त्ति निरदृश्य है ठीक स बनी नही है उसका न बनना ही अच्छा है।[२] प्रतिमाओ म जा विभिन्नता है वह प्रत्यक्ष म तो उनके रूप मे विभिन्नता प्रतीत हाती है पर यह विभिन्नता वास्तव म उनके प्रतीक की विभिन्नता है। उनक मूल मे जा एक आदि तत्त्व एक महान सत्य छिपा हुआ है शिव तथा शक्ति की जा व्याख्या छिपी हुई है उसक अनक उपकरणा का जो रहस्य छिपा हुआ हे वह जानन तथा समझन की वस्तु है। किन्तु एसे मनुष्य कम नही ह जा इन प्रतिमाओ की विभिन्नता स जीवन की विभिन्नता की बात साचा करत ह[४] जा सदव भ्रम म पडे रहत ह। अन्यथा राम या कृष्ण या दुर्गा या हनुमान या गणेश की प्रतिमाएँ भिन्न हो सकती ह उनका तात्त्विक गुण एक ही है। उनका मूल आधार वही एक परम शिव है।

विभिन्नता वस्तु स नही उत्पन्न हाती है। उसकी व्याख्या से उत्पन्न होती है। अधिकाश व्यक्ति बिना मन मे चित्र बनाये कुछ भी नही साच सकते। यदि उन्हान कही आग लगने की बात सोची तो उनके मन म आग लगने की तस्वीर बन जाती है। पानी पीन की सोची तो सामन पानी दिखाई पडता है। जो दिखाई पडता है उसका हम अथ

१. Tavernier—Viaggie Nella Turchia Persia C Indie Bologue 1690

२ Mr Murray Aynsley—Symbolism of the East and West—Pub George Redway London 1900 pages 183 185

३ The Meaning of Meaning—page 61

४ वही, पृष्ठ ६६।

मतलब लगाते ह । यदि आख में चकाचौंध हो गयी तो हम अपने सामने प्रकाश, उसकी गहराई रग आदि सब देखकर अर्थ निकाल लेते ह । अथ निकालने की क्रिया प्रसग के अनुसार होती है । इसीलिए स्वप्न मे देखी हुई चीजो का भी प्रसग के अनुसार अर्थ निकाला जाता है । इसोलिए कहते ह कि मनोवैज्ञानिक रूप से अर्थ का अथ है तात्पय है प्रसग है ।[१] हमारी भावनाएँ भी प्रसग के अनुकूल अथ निकालती रहती ह मूर्त्ति बनाती रहती ह । जब किसी एक प्रसग से एक प्रतीक समझ मे आ जाता है तो हम हर एक प्रतीक में उसी प्रसग को जोड देते ह ।[२] इसी जोड-तोड के कारण हम प्रतीक की मर्यादा भी नही समझ पाते । भारतीय प्रतिमाओ के प्रतीक तथा पश्चिमी मूर्त्तिकला में यही बडा अन्तर है । उनके प्रतीक स्पष्टत समझ म आ जाते ह । हम आगे चलकर पश्चिमी मूर्त्तिकला पर प्रकाश डालेंगे पर यहाँ दो एक उदाहरण दे दें । ऐंट्री माटेना[३] तथा रोसो[४] की चित्रकला मे पुण्य[५] का सबसे बडा शत्रु अविद्या[६] (अज्ञान) बतलाया गया है । रोसो के अनुसार अज्ञानी दुष्ट से अधिक बुरा है क्योकि प्रथम जानता ही नही कि उचित क्या है । दूसरा यानी दुष्ट तो जानता है पर उचित करना नही चाहता । इनके प्राचीन चित्रो मे अज्ञान या अविद्या की बडी मोटी भद्दी सूरत बनायी गयी है । वह दोनो आँखो से अधा है । पुण्य को पराजित कर अज्ञान उसके ऊपर बठ जाता है । अज्ञान के तथा सम्पत्ति के दो प्रतीक ह—पशु का शरीर तथा मनुष्य का मुह और रुपयो की थली ।[७] ऐसे प्रतीक तो आसानी से समझ मे आ जाते ह ।

पर भारतीय प्रतिमाओ के प्रतीक हमारे यत्र हमारे मत्र कही अधिक गूढ ह । देश के किसी कोने मे चले जाइए प्राचीन प्रतिमाओ का एक वैज्ञानिक निरूपण मिलेगा । उनकी निर्माण कला साधारण नही है । ससार के अन्य किसी देश में उस एक बात का ध्यान नही रखा गया है जिसका हम आगे चलकर उल्लेख करगे । यो तो सभी कलाकार हाथ पैर मुह को नाप जोखकर बनाते ह पर भारतीय प्रतिमाए एक आध्यात्मिक सतुलन पर बनती थी । उनका निर्माण साधारण आदमी का काम नही था । अत बिना जानकारी के मूर्त्ति को देखकर उसका रहस्य भी नही समझा जा सकता ।

१ वही, पृष्ठ १७४ १७५ Psychologically Meaning is context
२ वही पृष्ठ, २०२ identity of the references symbolized by both
३ Andre Mantegna
४ Rosso ५ Virtue ६ Ignorance
७ Dora and Erwin Panofsky—Pandora s Box—The Changing Aspects of a Mythical Symbol—Pub Routledge and Kegan Paul Ltd London, 1956—page 45-46

मूर्त्ति का निर्माण

सच्चे सनातनी हिन्दू के लिए मूर्त्ति या प्रतिमा साध्य नही है साधन है—ऐसा साधन जिसके द्वारा अभ्यास करके साध्य को इष्ट को भगवान को प्राप्त किया जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास

(योगदर्शन १ १३)

स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ भूमि

(यो० द० १, १४)

अर्थात् वैराग्य म स्थिति प्राप्त करन के लिए यत्न का नाम अभ्यास है, पर अभ्यास तभी दृढ होगा जब कि लम्बे समय तक बराबर श्रद्धा के साथ किया जाय। साध्य को प्राप्त करने का एक साधन मूर्त्ति है। प्रतिमा है। उसकी उपासना है। पर उसे भगवान् नही समझकर भगवान् का प्रतीक समझना पडगा। मूर्त्ति के दशन से भगवान के दर्शन नहा होते यह तो उपनिषदो से ही स्पष्ट है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू—स्वाम।

(कठोपनिषद १ २ २३)[१]

अर्थात जिस स्वय दशन करने की इच्छा होती है तथा भगवान का जब स्वय दर्शन देने की इच्छा होती है तभी उसका दर्शन होता है। उसी भगवान की जब साकार रूप मे कल्पना की जाती है तो प्रतीक के रूप म प्रतिमा की कल्पना करके लिखा है[२] कि भक्त भगवान से प्राथना करता है कि शरद् ऋतु के कमलदल की शोभा का तिरस्कृत करनेवाली अपने चरणो की छवि के दर्शन का सौभाग्य मुझे भी द। माया से घिरे अज्ञानी जीव क हृदय में बैठ अधकार को दूर करनेवाली कोमल अरुणिम नख पक्ति का दर्शन मुझे भी दे। अपने आश्रितो पर सहज कृपा करनेवाल तथा अपने आश्रितो के समस्त

१ देखिए—मुण्डकोपनिषद् ३ २ ३।

२ श्रीमद्भागवत, ४ २४ ५२।

भय आदि दोषो को दूर करनेवाले अपने चरणकमलो का आस्वाद इस भक्त को भी दें।

बिना अज्ञान का अधकार नष्ट किये वासुदेव भगवान का दशन नही होता—

वासुदेवस्तमोऽन्धानां प्रत्यक्षो नैव जायते ।
अज्ञानपटसवीतरिन्द्रियर्विषयप्सुभि ।।

(शङ्खस्मृति ७ २० ।)है

जब अज्ञान का पर्दा नही होगा या कम होगा तो आपस में मूर्त्तिपूजक या भिन्न सम्प्रदायवाले झगडा नही करेगे। सभी मूर्त्तियो का आदर करेगे। गुप्त साम्राज्य म और मध्ययुग के आदिकाल मे ऐसी धार्मिक एकता थी।[1] ईसा से दो तीन सौ वष पूव तथा तान चार सौ वष बाद तक सभी देवताओ की प्रतिमाएँ स्थापित थी।[2] मदिर थे। मनुस्मति मे देवताओ की मूर्त्तियो के लिए दवतम श द आया है।[3] कौटिल्य ने प्रतिमा' श द का प्रयोग किया है।[4] गुप्तचर लाग अपने गुप्त काय मे इन प्रतिमाओ के प्रतीक स काम ल—ऐसा आदेश चाणक्य का था। इन मन्दिरो की रक्षा का भार राजा पर था।[5] अशोक के समय सभी धर्मों के आचार्यो की सभा समाज हुआ करती थी। अशाक के समय बहुत से मदिर थे और उनका वणन दि यानि रूपाणि शिलालखो मे मिलता है। यह वणन प्रतिमाओ के लिए है। सम्राट हषवधन की प्रयाग की वार्षिक सभा प्रसिद्ध है। मदिरो के लिए मनु ने देवालक शब्द का प्रयोग किया है। गृह्य सूत्रो मे तथा स्मतियो में देवता शब्द आया है। दूसरी सदी मे कार्त्तिकेय की प्रतिमाओ तथा उनके पूजन की प्रधानता क पर्याप्त प्रमाण मौजूद ह। यक्षा के देवता वश्रवण यानी कुबेर या जय त का भी काफी प्रचार था।[6] पतजलि न पाणिनि के सूत्र भाष्य मे अपने समय में पूजित सम्प्रतिपूजाथ शिव स्क द, विशाख आदि देवताओ का वणन किया है।[7] महाभारत में बहुत-से देवताओ का वणन है। पुण्डरीकतीथ मे शालग्राम

१ Banerjea—Development of Hindu Iconography—Chapter III
२ वही, पृष्ठ ८९
३ मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ३९।
४ 'देवध्वजप्रतिमाभिव' कौटिल्य-अर्थशास्त्र अध्याय अपमर्पप्राणिधि।
५ कनिष्क के समय के एक शिलालेख में "तोष्ये पतिमा"—तोषकी प्रतिमा का जिक्र है। प्रकट है कि प्रतिमा का अपभ्रश पतिमा हो गया था।
६ आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, अध्याय ७-२० ३।
७ अपण्य इत्युच्यते। तत्रेदम् न सिद्धयति। शिव स्कन्द विशाख इति। किं कारणम्। मौर्या हिरण्यार्थिभि अर्चा प्रकल्पित "—पाणिनिसूत्रभाष्य, अ० ५-३-९९।

इति ख्याता ---शालग्राम विष्ण की प्रतिमा थी ।[१] ज्येष्ठिलनीथ म विश्वेश्वर की---शकर पावनी की प्रतिमा थी---

तत्र विश्वेश्वरम दृष्टवा देव्या सह महाद्युतिम् ।
मित्रावरुणयोर्लोकानाप्नोति पुरुषषभ ।।[२]

धम की प्रतिमा का जिक्र है । धम की मत्ति का छून स अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है---

धम तत्राभिसस्पश्य वाजिमेधमवाप्नुयात ।।[३]

ब्रह्मा की मूर्त्ति भी--- तता गच्छत राजन्द्र ब्रह्मस्थानमनुत्तमम ।[४] मत्ति श द का प्रयाग महाभारत म है---

नन्दीश्वरस्य मूर्ति दष्टवा मच्यन किल्विष ।[५]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र क दुगनिवेश अ याय म किले क भीतर नगर की रचना मे केन्द्र मे जिन देवताओ के मन्दिर बनान का जिक्र किया है वे ह अपराजिता अप्रतिहत जयन्त वजयन्त शिव विश्रवण और अश्विन तथा देवी मदिरा । एक यूनानी लेखक ने एमसा क अन्तानिनस नामक नरेश (शासनकाल २१८ स २२ ईसवीय सन) के समय म एक भारतीय की सीरिया यात्रा का जिक्र किया है । उसमे अद्धनारीश्वर (शिव तथा दुर्गा) की प्रतिमा का जिक्र है ।[६]

प्रतिमा तथा प्रतीक का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिमाओ के इतिहास से ही प्राप्त हाता है । वदिक युग क देवताओ की प्रतिमाए बहुत कम उपलब्ध ह या कहिय कि बिरल ही उपलब्ध ह । उस युग के देवताओ की प्रतिमाए मनुष्य क शरीर क रूप म नही प्रतीक के रूप मे होती थी जसे---सूय के लिए ◯ तथा चन्द्रदव के लिए ◡ बना दते थे । कुछ वदिक देवताओ की प्रतिमाए---जसे इन्द्र आदि की ईसा स सौ दा सौ वष पूव स पहले नही बनी । किन्तु यदि महाभारत का युग ईसा से ५००० वष पूव मान लिया जाय तो उसम वर्णित प्रतिमाए तो रही हागी यद्यपि इतनी पुरानी मत्तिया का कोइ प्रमाण उपलब्ध नही है । ऐसा

१ महाभारत ३-८४-१२४ ।
२ वही, ३-८४-१३५ ।
३ वही ३-८४-१ २ ।
४ वही, ३-८४-१०३ ।
५ वही १२-२५-२१ ।
६ Banerjea—Hindu Iconography—page 99

प्रतीत होता है कि प्रतीकरूप में प्राप्त वे मूर्त्तियाँ नष्ट हो गयी। फिर भी प्रतीक के रूप में देवताओ को अंकित तथा चित्रित करने की परिपाटी बनी रही। कई विद्वानो का मत है कि बौद्धो ने शक्र (इन्द्र) तथा ब्रह्मा की मूर्त्तियो का सबसे पहले उपयोग किया। जानवरो के रूप मे यानी पशुओ को देवताओ का प्रतीक बनाने की परिपाटी भी बौद्ध कालीन है। डा० ब्लाश का कथन है कि सारनाथ मे प्राप्त अशोकस्तम्भ पर जो हाथी बल सिंह तथा घोडा बना हुआ है वह भिन्न देवताओ का वाहनरूपी स्वय देवता का प्रतीक है। तात्पय यह है कि भगवान बुद्ध ने अपने नियम के अपने विधान के अन्तगत उन सब देवताओ को बाध लिया। उन देवताओ ने भगवान बुद्ध की महत्ता स्वीकार कर ली। ब्लाश के अनुसार अशोककालीन मूर्त्तिया तथा स्तम्भो पर जो पशु अंकित है वे निम्न परिचायक ह[१]—

सिह	दुर्गा
हाथी	इन्द्र
बल	शिव
घोडा	सूय

लका म बौद्ध विहारो पर ऐसे ही पशु अंकित ह तथा अनुराधपुर म प्राप्त स्तपो पर भी है।[२]

१ वही पृष्ठ ९६।

२ वही पृष्ठ ९६—Archeological Survey of Ceylon—1896, page 16 से उद्धृत।

प्रतिमा-निर्माण-कला तथा विज्ञान

प्राचीन काल म शुरू शुरू मे पत्थर या धातुओ की प्रतिमाएँ नही बनती थीं। वे प्राय मिट्टी की या फिर लकडी की होती थी। वदिक काल मे यज्ञ के समय लकडी क यत्र प्रयोग में आते थे तथा मिट्टी की या मिट्टी के इटो की वेदी बनती थी। वदिक ऋचाओ म लकडी का बडा महत्त्व है। यहा तक लिखा है कि विश्वकर्मा ने किस लकडी से पथ्वी तथा आकाश का गढा है—

किमस्विद्वनम कौ स वृक्षासयतोद्यावापथ्वी निष्टतक्षु
(ऋग्वेद १० ८१ ४)

वागहमिहिर की बहत सहिता[1] के ५८ व अध्याय—वनसम्प्रवशाध्याय म पूरे ब्यौरे के साथ दिया गया है कि किस प्रकार की लकडी से कौन वणवाली प्रतिमा बनाये। उसके अनुसार—

ब्राह्मण के लिए — देवदार चन्दन समी तथा मधुक लकडी
क्षत्रिय के लिए — अरिष्ट अश्वत्थ खदिर तथा विल्व लकडी।
वश्य के लिए — जीवक खदिर सिन्धूक तथा स्पन्दन।
शूद्र के लिए — तिन्दुक केशर सरज अर्जुन अमडा तथा साल।

किन्तु लकडी काटने क पहले वृक्ष की उपामना का भी बडा विधान था।[2] भविष्यपुराण मे **प्रतिमाविधि** पर बडा अच्छा विवचन है।[3] **विष्णुधर्मोत्तर** मे दवालयो क काम मे आने याग्य लकडी के परीक्षण का विधान है।[4] मत्स्यपुराण ने **दार्वाहरणविधि** पर विस्तार से लिखा है।[5] महाकवि भोजदेव नरेश न भी **प्रतिमानामथ ब्रूमो लक्षणम द्रव्यमेव च**[6] लकडी की प्रतिमा का उल्लेख किया है। किन्तु जिस प्रकार की मिट्टी का प्रयोग प्रतिमा

१ सुधाकर द्विवेदी सस्करण।
२ नमस्ते वृक्ष पूजेयम विधिवत् सम्प्रगृह्यताम ।वृ० स ५८—(१ ११)
३ प्रथम ब्रह्मपर्व अध्याय १३१, भविष्यपुराण।
४ देवालयाथ दारुपरीक्षणम्—खड ३ अध्याय ८९ विष्णु ।
५ वास्तुविधानुकीर्त्तनम्—मत्स्य , अ २५७।
६ भोज० द्वितीय खड, अ० १, श्लो० १—गायकवाड ग्रन्थावली।

के लिए होता था वह साधारण मिट्टी नही होती थी । उसमें लोहा तथा पत्थर भी पीस कर मिलाते थे इसका भी प्रमाण मिलता है । ऐसी मजबूत मिट्टी का प्रयोग यूनानी लोग अपनी मूर्त्तियाँ बनाने मे करते थे । तीसरी से पाँचवी सदी में प्राप्त गाधार देश की मूर्त्तियाँ भी ऐसी ही मिट्टी की होती थी ।[१] पत्थर का उपयोग बिलकुल नही होता था ऐसा भी नही है । हयशीष-पचरात्र मे पाषाण शब्द आया है पर लकडी का महत्त्व अधिक अवश्य था । आज भी बगाल मे **नित्य पूजा** के काम में आनेवाली मूर्त्तिया लकडी की बनायी जाती ह । पुरी मे जगन्नाथजी सुभद्राजी तथा बलभद्रजी की विशाल प्रतिमाएँ लकडी की ह । वे हर बारहवे साल बदल दी जाती ह । पुरानी मूर्त्तियाँ जमीन म गाड दी जाती ह । प्राचीन लकडी की मूर्त्तियाँ अब इसीलिए नही मिलती कि वे समय पाकर नष्ट हो गयी ।[२] उनकी रगाइ उनका बदला जाना नही हुआ । बृहत् सहिता के बाद के ग्रन्थो मे पत्थर की प्रतिमा का वणन मिलता है, जैसे अग्निपुराण में । जन ग्रथ अतगद दसाआ मे पत्थर लकडी आदि की प्रतिमा का जिक्र है । जन तथा बौद्ध ग्रथ जमे **आयमजुश्रीमूलकल्प, महामयूरी, समण्णफलसुत्त, सयुत्तनिकाय** आदि मे कई प्रकार की मूर्तियो का जिक्र है जिसम लकडी पत्थर चुनार का पत्थर काला पत्थर सभी कुछ है । ईसा से ३ ४ सौ वष पुरानी पत्थर या लोहे या अ य धातुओ की मूर्त्तियाँ प्रतिमाएँ प्राप्य नही ह ।[३] बाद मे काँसे की मूर्त्तिया भी बनने लगी । पर मिली-जुली धातु की मूर्त्तिया का वणन मत्स्यपुराण में भी प्राप्य है ।

कि तु हि दू बौद्ध तथा जन धर्मो मे से प्रत्येक मे प्रतिमानिर्माण का निश्चित विज्ञान था । बिना नाप जोख की मूर्त्ति अशुद्ध समझी जाती थी । बौद्ध ग थ आत्रेय तिलक म तो यहाँ तक लिखा है कि यदि शास्त्रविरुद्ध मूर्त्ति का मुख बना तो परिवार का सबसे बडा बूढा मर जायगा ।

अशास्त्रेण मुख कृत्वा यजमानो विनश्यति ।[४]

(आ० ति०-१०)

प्रतिमाओ की नाप जोख अगुलि में दी गयी है । एक अगुलि की नाप हथेली का चौथा भाग होता था ।[५] पुराना माप दण्ड जहाँ तक प्रतिमाआ का सम्ब घ है एक समान

१ Banerjea—Hindu Iconography—pages 210 11

२ वही, पृष्ठ २१२ ।

३ वही, पृष्ठ २१३ ।

४ आत्रेयकृत—प्रतिमामानलक्षणम् ।

५ पल्लवाना चतुर्भागो मापनाङ्गलिका स्मृता । श्लो० ४ ।

नही है । पहले तो जिस परम शिव को जिसे वेदा ने पुरुष कहा है हम माप दण्डम ला ही नही मकते वह पुरुष समूच विश्व म व्याप्त हाते हुए भी उमसे दस अगुल ऊपर है ।

स भूमि विश्वतो व वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम ।

शतपथब्राह्मण म लिखा है कि प्रजापति अपनी उगलिया स यनवेदी का नापते ह । पौराणिक युग म भी अगुलनाप बनी ही रही । यह माप तीन प्रकार की होती थी । मालागुल मात्रागुल तथा देहलब्धागुल । बृहतसहिता म जा माप दी गयी है वह काफी सूक्ष्म है । उसक अनुसार छद मे से मूय की जा किरण आती ह उनवा एक कण ही परमाणु है । धूल की एक कणिका जिस **रज** कहते ह आठ परमाणआ का मिलाकर बनती है । आठ रजा का मिलाकर एक **बालाग्र** (एक क्श क आग का भाग) बनता है । ८ बालाग्रा की एक लिक्षा[2] बनती है । ८ लिक्षाआ का एक यक उना । ८ यका का एक यव (जौ का दाना) बना । ८ यवा का एक अगुल । यह ता वहतसहिता का माप हुइ । शुक्रनीतिसार म एक मुटठी क चौथाई भाग का अगुल कहत ह ।[4] आत्रय न हथेली का चतुर्थाश एक अगुल बतलाया है । इसलिए दाना एक ही माप हुइ । पर किसकी हथेली हो—कलाकार की उपासक की या पुराहित की ? शुक्रनीति स स्पष्ट हा जाता है कि प्रतिमा का ही अगुल मानना चाहिए । प्रतिमा जिस पर खडी या बठी ह यानी उमक पीठ या वेदी का छोडकर उसकी समची लम्बाई का १२ भागा म विभाजित कर फिर ९ भागा म । इसे विभाजन मे प्रत्येक भाग एक अगुल के बराबर हुआ । उत्तम श्रेणी की प्रतिमा १२० या १०८ अगुल की हानी चाहिए मध्यम श्रेणी की ९५ अगुल की तथा निम्न श्रेणी की ८४ अगुल की । १०८ अगुल का प्रतिमा का चेहरा १२ अगुल का हाना चाहिए । प्रतिमा का समूचा ऊचाई उसकी **ताल** हुई और वही उसका **देह लब्धागुल** हुआ । २७ **मानागुल** एक धनुमुष्टि के बराबर हुआ । ४ धनुमुष्टि का एक **दण्ड** बना ।

आत्रेय तिलक म बाद्ध प्रतिमाआ का जो माप दण्ड दिया है वह नीच क पाच श्लाका स स्पष्ट है—

एकाङ्गुलि शिर कुर्यान्मुख द्वादशमङगलम ।।१२३।।

१ ऋग्वेद पुरुषसूक्त, १ —९ ।
२ लिक्षा लीख को कहते है ।
३ यूक—ढील या चिल्हर ।
४ स्वस्थमुष्टेश्चतुर्थांशो ह्यगुलम् परिकीर्त्तितम । — शुक्रनीति, अध्याय ४, खड ४, श्लो० ८२ ।

ग्रीवा एकाङ्गुल विद्धि देहो द्वादशमङ्गुलम्
अर्द्धांगुल नितम्बञ्च कटिमेकाङ्गुलम मतम् ।।१२४।।
नवाङ्गुल भवेदूरुर्जानु एकाङ्गुल स्मतम ।
जङ्घा नवाङ्गुला ज्ञया गुल्फमर्द्धांगुलम भवेत ।।१२५।।
अधोभागा प्रकर्त्तव्या एकाङ्गुला प्रकीर्त्तिता ।
चतुष्कलञ्च विज्ञया हिक्का नासाग्रमेव च ।।१२६।।

चतुस्ताल माप क सम्ब ध म इन श्लोको का अथ हुआ—

सिर१ अगुल चेहरा१२ गदन१ गदन के नीचे स कमर तक १२ चूतड १।२ ऊर १ जघा ९ घुटना १ पेडुली ९ अगुल एडी १।२ चरण १ अगुल होना चाहिए ।

बहत सहिता मे दूसरे ढग स माप दी हुई है । उसम लिखा है—

नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरङ्गलास्तथा कर्णौ ।
द्व अगुन च हनुनी चिबुक च द्वयङ्गुल विततम ।।

यानी नाक मस्तक ठोढी गदन कान सब४ अगुल के हो। जबडे दो अगुल चौडे हो । ठाढी की चौडाई दो अगुल हो ।

बृहतसहिता मे प्रतिमा का ठीक से न बनाने का भयकर परिणाम दिया है । लिखा है—

कृशदीर्घं देशघ्न पार्श्वविहीन पुरस्य नाशाय ।
यस्य क्षत भवन्मस्तके विनाशाय तल्लिगम ।।५७ ५५ ।।

अथात यदि शिव लिंग अनुपातरहित लम्बा तथा पतला है ता जहा पर बनाया गया है उस स्थान का (देश को) नष्ट कर देगा । जिस शिव लिंग का अगल बगल का हिस्सा ठीक नही है वह जिस नगर म स्थापित हागा उसे नष्ट कर देगा। जिस शिव लिंग के मस्तक म छिद्र है वह प्रतिमा या मर्त्ति या लिग स्वामी का सहार कर देगा ।

प्राचीन शास्त्र से तथा प्रतिमा निर्माण कला से परिचित लाग आजकल जा मूर्त्तियाँ बनवात ह या बनाते ह वे प्राय अशुद्ध होती ह । इसीलिए उनके पुजारी तथा पूजक की साधना निरथक होती है । मूर्त्ति भी निष्प्राण बनी रहती है । मूर्त्ति या अवतार देखने म ऊपर से चाहे भिन्न आकृति तथा कलवर के प्रतीत हा पर वास्तव मे वे सब एक ही परम शिव या परा शक्ति जो कहिए के प्रतीक ह । ललिता सहस्रनाम[1] में लिखा है—

निजाङ्गुलि–नखोत्पन्ना नारायणदशाकृति ।

१ ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि भण्डासुर के साथ ललिता के युद्ध मे सभी अवतार निकले हैं ।

भगवती की दसा उगलियो के नख से नारायण के दस अवतार हुए । दसो अवतारो का पौराणिक क्रम इस प्रकार है—

मत्स्य कच्छप वाराह नसिंह वामन परशुराम राम बलराम बुद्ध तथा कल्कि ।

अस्तु प्राचीन प्रतीक तथा प्रतिमा के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए हमे अभी और भी लिखना है । पश्चिम के विद्वाना ने इस विषय म इतनी भ्रान्ति पदा कर दी है कि उन शकाआ का निवारण तो करना ही पडेगा । पहले हम यह स्पष्ट कर दे कि वदिक देवता कौन थे वेदो म देवता की भावना क्या तथा किस प्रकार की थी ।

वैदिक देवता

बहुत-से पाश्चात्यो का तथा कुछ कम पढे लिखे भारतीयो का भी ऐसा विश्वास है कि वदिक देवता प्राकृतिक तत्त्वो के प्रतीक ह और उनकी उपासना का तात्पय केवल उन प्राकृतिक तत्त्वो की उपासना करना है । ऐसी बात नही है । इस विषय पर प० अलख निरञ्जन पाण्डेय ने अपने एक गवेषणापूण लेख मे बडा अच्छा प्रकाश डाला है ।[१] ऊपर हमने लिखा है कि सभी देवी देवता एक ही परम शिव के प्रतीक ह । श्री पाण्डेय ने भी यही सिद्ध किया है कि देवता की भावना आध्यात्मिक तथा दाशनिक है । सभी एक परब्रह्म से उत्पन्न हुए ह और वे प्रकृत तत्त्वो के प्रतीक नही ह । बृहद् देवता के कथनानुसार सभी देवता एक ही आत्मा अग्नि से उत्पन्न हुए ह । सूय की रश्मियो से रस लेकर वायु से गति प्राप्त कर जो ससार मे वृष्टि करता है उसे इन्द्र कहते ह ।

> **पृथक पुरस्तात्ते तूक्ता लोकादिपतयस्त्रय ।**
> **तेषामात्मव तत्सव यद्यदभक्ति (प्रकीयते) ॥**
> **रसान रश्मिभिरादाय वायुनाऽय गत सह ।**
> **वषत्येव च यल्लोके तेनेन्द्र इति स्मृत ॥[२]**

निरुक्त मे आया ह कि अपने अपने भिन्न कार्यों के अनुसार देवताओ के भिन्न रूप हो गये, पर वास्तव में हर एक देवता एक दूसरे का मौलिक रूप है ।[३] देवता आत्मजन्मा (आत्मजन्मान) हाने के साथ ही कमजन्मा (कमजन्मान) भी ह । किन्तु वास्तव मे देवताओ के भिन्न रूप मे एक ही आत्मा विद्यमान है । महाभाग्यात देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते ।[४] गह्य सूत्रो से स्पष्ट है कि वदिक देवताओ की सख्या ३३ है । बहस्पति देवताओ के गुरु ह । मुख्य वदिक देवता नीचे लिखे जा रहे हैं—

१ Alakh Niranjan Pande— Role of the Vedic Gods in the Grihya Sutras —Journal of the Ganganath Jha Research Institute Allahabad Vol XVI Parts 1 2—pages 91 to 133

२ बृहद् देवता १ ७३ ६८ ।

३ एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति ॥

४ निरुक्त ७ ४ ९ ११ ।

अग्नि— निरुक्त तथा गह्य सूत्रो के अनुसार दवताओं के नेता तथा देवताओं मे प्रधान अग्नि ह ।[१] प्ररणा शक्ति बुद्धि ज्ञान तथा दवी सम्पदा क आधार तथा प्रदाता अग्नि ह । दीर्घायु प्रदान करनवाल सकट से जीवन की रक्षा करन वाले अग्नि ह । ऋग्वद के अनुसार वे मनुष्य क कार्यों के द्रष्टा ह । वदाध्ययन क प्रारम्भ म अग्नि का आवाहन (जातवेद) होता है । उपनयन सस्कार म इनस प्राथना की जाती ह कि हम प्रज्वलित करो जिससे हमारा विकास हो ।

इन्द्र— जो अन्न का वितरण कर या जो अन्न प्रदान कर (इरा + द या इरा + दा) जो भोजन धारण कर (इरा + धारय) या जो भोजन भज (इरा + दारम) वह इन्द्र है । अग्नि क बाद इन्हो का महत्त्व हे । शारीरिक शक्ति म व अग्नि से बड ह । अग्नि क समान इनको भी नित्य पूजा प्राप्त होती है । बुद्धि शक्ति वभव आदि क य भी प्रदाता ह । वज्र पाणि ह । इनका वज्र समची बुराइयो का दूर करता है । नष्ट करता है । वज्र दुष्टो तथा दुष्टताओ क सहार का प्रतीक है । उपनयन सस्कार म वटु को दण्ड धारण करना पडता हे । यह दण्ड इन्द्र क वज्र का बुराइयो का नष्ट करन वाल वज्र का, प्रतीक है ।

वरुण— वदिक दवताओ म यद्यपि वरुण मध्यम श्रेणी क दवता ह पर इनक आवरण या प्रभाव की मर्यादा म सब कुछ है ।[२] व विश्व क शासक ह प्रबन्धकता ह । अपराधो के लिए दण्ड देत ह । पापी को वरुण पाश म बधना पडता है । सदाचार क स्वामी ह । उपनयन सस्कार क समय गुरु वटु का हाथ वरुण क हाथ म द देते ह ताकि वह सदाचार म रहे । वदिक पूजाओ म मित्र तथा वरुण की पूजा साथ साथ होती है ।

विष्णु— विष्णु शब्द विश धातु से बना है । इसका अथ है आच्छादित करना विषित अथवा व्यश धातु से बना हे—इसका अथ है अन्त प्रवश ।[३] किन्तु गह्य सूत्रो मे इनका स्थान अग्नि इन्द्र प्रजापति साम आदि दवताओ क समान ऊचा नही है । फिर भी व कल्याणकारी देवता ह और ऋग्वद क अनुसार उनके तीन पग म विश्व नाप लने से जनसमह तथा विश्व का बडा कल्याण हुआ था ।[४]

१ अग्नि कस्मात् अग्रणीभवति । अग्र यज्ञेषु प्रणीयत—निरुक्त ७ ४ ।

२ वरुणो वृणोतीति सत ।—निरुक्त

३ निरुक्त १२—१८ ।

४ यजुर्वेद में लिया ह —
इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । ममूढमस्य पासुरे । (यजु ५ १५)

सप्तपदी मे विवाह के समय विष्णु का ही मुख्यत आवाहन होता है। प्रथम रात्रिमिलन में भी विष्णु का आवाहन हाता है।

प्रजापति– प्राणिया के रक्षक तथा पालक देवता प्रजापति ह[१]। देवताओ को अमरत्व इन्ही ने प्रदान किया[२]। इन्हाने ऊपर मुख करके श्वास लिया, उससे देवता उत्पन्न हुए[३]।

जीवन धन, वभव सम्पदा परिवार के रक्षक प्रजापति ह। जातकम-सस्कारा मे इनका बडा महत्त्वपूण स्थान है। देवता तथा असुर दोना के उत्पादक पिता, प्रजापति ह। इसीलिए असुर सप आदि की बाधा से रक्षा के लिए भी इनकी पूजा हाती है।

अश्विनीकुमार—ये दोना भाई सबमे व्याप्त ह। एक मे द्रव पदाथ है दूसरे में प्रकाश। एक आकाश है दूसरा पृथ्वी[४]। एक दिन है दूसरा रात्रि[५]। एक सूय है दूसरा चद्रमा। इनके रथ मे घाड जुते ह। बडे अच्छे सारथी ह। इसीलिए रथ पर, सवारी पर चढत समय अश्विनीकुमार का आवाहन किया जाता है। इनकी भुजाओ मे बडा बल है। गाय के स्तन तथा स्त्री के स्तना के ये रक्षक ह।[६]

रुद्र—यह देवता दौडते ह घार नाद करते ह इसीलिए रौति—द्रवति—रुद्र ह[७]। इनका सबस बडा काय गो तथा पशु की रक्षा तथा पालन है। ये सत्रामक रागा से रक्षा करते ह। किन्तु इनका स्वभाव बडा उग्र है। ये भीम ह। गाभिल-गृह्य सूत्र ने इनको असुर तथा राक्षस की श्रेणी म रख दिया है। शत्रु को इस प्रकार मार गिराते ह जसे बिजली पड का[८]। इनके केश काले गुच्छे ह। व्यापार की सफलता मे भी इनका पूजन आवश्यक है।

बृहस्पति—ऋग्वद क अनुसार वे युद्ध के भी देवता ह[९]। पर सभी वदो तथा गृह्य सूत्रो के अनुसार वे देवताओ क गुरु विद्या बुद्धि सदाचार के स्वामी मत्र द्रष्टा और ऋचाओ के प्रणेता ह। धन सम्पत्ति तथा वभव के भी स्वामी ह[१०]।

१ प्रजापति प्रजाना पाता पालयिता वा।—निरुक्त, १०-४३।
२ शतपथब्राह्मण, १० ४-३ से ८
३ वही ११ १ ६ ७।
४ ५ द्यावापृथिव्यावित्येके। अहोरात्रावित्येके—निरुक्त—१२ १।
६ हिरण्यकेशिनसहिता।
७ रुद्र रौति सत, रोरूयामाणो द्रवतीति या रोदयतेर्वा—निरुक्त १० ५।
८ हिरण्यकेशिन—१ ५ १६।
९ ऋ० २ २४ ३ १४।
१० वही, २, २३, ५।

सोम—यज्ञ की आत्मा—आत्मा यज्ञस्य ।[१] शक्तिवद्धक भोजन के स्वामी तथा दाना जल मे विहार करनेवाले वन म गरजनवाल पथ्वी तथा आकाश के पिता[२] तथा शरीर के रक्षक धन के स्वामी बहुत सी पत्नियो वाले सोम देव वदिक देवताओ मे बडा ऊचा स्थान रखत ह ।

सविव—अग्नि क समान ये भी प्रकाश तथा वभव के पुञ्ज ह । दहिक सासारिक आध्यात्मिक तथा स्वर्गीय सुख के दाता ह । समूचा प्राणि जगत इनसे अनुप्राणित हो रहा है[३] । ये प्रेरणा या स्फर्ति प्रदान करत ह[४] ।

सूय—जो गति कर जो अनुप्राणित कर वह **सू** धातु है और **स्वीर** कल्याणदायक है । देवताओ के वभव तथा देवो की ज्याति का **प्रतीक** सूय है[५] । अग्नि का प्रतीक सूय है । नेत्र का प्रतीक सूय है[६] । यदि सूर्योदय क समय नीराग व्यक्ति सोता रहे या कोई अनुचित काम करे ता मौन रहकर वदिक ऋचाओ स उनका पूजन करे । सूय वभव तथा सम्पत्ति के प्रदाता ह[८] । वदपाठ म पहल इनका पूजन कर । वे प्रतिज्ञा क देवता ह[९] । सब बुराइया तथा बाधाओ को दूर करने वाले ह । अग्नि तथा वायु के साथ इनका आवाहन पूजन हाता है ।

वायु—वायु[१०] देव वायु के देवता ह सोम रस क शौकीन, सोम देव क रक्षक अग्नि देव के समान मनुष्य के प्रत्यक काम के साक्षी प्रतिज्ञा क साक्षी तथा शत्रु के विनाशक (हवा म उडा देने वाले) (ऋ० १ १३४ ५) देवता मध्यम श्रेणी के श्रेष्ठ देवता ह ।

मरुत—इनका ऋगवेद मे प्रधान स्थान है । ये नियमित वभव (मितरोचना) नियमित नाद (मितरुविणी) तथा बहुत अधिक दौडनवाले देवता ह । इनके हाथ म चमकते हुए भाले ह । वे सूय क साथ आते ह । हल चलाने के समय खेती के काम म इनका पूजन होना चाहिए ।

१ वही ० २ १ ।
२ हिरण्यकेशिन १ ६ १९ ७
३ सविता सर्वस्य प्रसविता—निरुक्त १० ३१ ।
४ गोभिल० १–३–४ ।
५ ऋक० १ ११५ १ ।
६ गोभिल० ३ ४ २१ ।
७ ऋक १० ३७ ९ ।
८ गोभिल० ४ ५ ।
९ हिर १ २ ७ १० ।
१० वा—वहना वी—हिलना, ई—जाना ।

मित्र—सच्चरित्रता, वभव तथा शक्ति के प्रदाता मित्र देवता ऋग्वेद में प्राय वरुण देवता के साथ एक ही मन्त्र या ऋचा में प्राप्य है। एक गृह्य सूत्र से तो यह स्पष्ट है कि वे सूय देवता के रूपान्तर हैं।[१] उपनयन सस्कार मे आचाय जब बटु का दाहिना हाथ पकडते है तो वे कहते ह—मित्र ने तुम्हारा हाथ पकड लिया[२]।

पृथ्वी—माता पथ्वी तथा पिता आकाश की कल्पना या भावना प्राय सभी प्राचीन धर्मों मे है। ऋग्वेद के अनुसार माता पृथ्वी पिता आकाश प्राणियो की भय तथा विपत्ति से रक्षा करते ह[३]। माता पथ्वी देवता पथ्वी के सभी प्राणियो की जननी है। सन्तान की रक्षा के लिए इनकी उपासना के मत्र हैं[४]।

भग—साख्यायन के अनुसार नववधू जब नवीन रगे कपडे पहने तब भग देवता का मत्र पढना चाहिए। हिरण्यकेशिन सूत्र मे अयमा पुरन्ध्री तथा सवित्र देवता के साथ भग देवता का आवाहन होता है। गाभिलसहिता के अनुसार हल चलाने के समय इनका मत्रोच्चार करे। गह्य सूत्रो मे ये साधारण कोटि के देवता है पर ऋग्वेद तथा निरुक्त[५] के अनुसार ये सूय देवता' ही ह या समानान्तर ह।

वदिक देवताओ की सख्या हमने ऊपर ३३ लिखी है। इनमे से कुछ देवताओ का ही परिचय देकर हम आगे बढेगे। वसे तो अनक देवी देवता वदिक युग के ह जिनसे हम परिचित ह जसे इन्द्राणी राका अदिति अनुमति काम अयमा इत्यादि पर प्रतीक के अध्ययन के सिलसिले मे इनका महत्त्व बहुत कम है। भिन्न देशो में प्राप्त प्रतीक का ऊपर परिचय कराये गये देवताओ से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हम उनका ऊपर लिखा परिचय देकर ही यह अध्याय समाप्त करते ह। परिचय अगले अध्याय मे बडा काम देगा। हमे न भूलना चाहिए कि वदिक आदेश के अनुसार सभी देवताओ का भिन्न कलेवर उनके भिन्न कार्यों के कारण है अन्यथा सबमे एक ही आत्मा विराजमान है। इसीलिए एक दूसरे के गुण भिन्न न होकर प्राय एक समान हैं। हमारे इस तत्त्व को न समझ सकने के कारण ही पश्चिमी विद्वान गहरी भूल कर जाते ह। हमने आरम्भ मे ही लिखा है कि सष्टि का आविर्भाव अव्याकृता परा—श्री सच्चिदानन्द से हुआ। अव्याकृता—परा से ही पश्यन्ती व्याकृता पश्यन्ती का आविर्भाव हुआ जिसे व्याकरण कहते है। यह तो हुई

१ हिर० १ १ ४ ६।
२ वरुण देवता की सभी शक्तियाँ मित्र देवता में भी उपलब्ध हैं।
३ ऋ० १ १८५।
४ पार०—१ ६ १७।
५ नि० १२—१३।

शब्द श्रेणी । दूसरी उत्पत्ति थी अर्थ श्रेणी की । इससे प्रतिभा की उत्पत्ति हुई । इस प्रतिभा का सदन द्य लोक– मित्र सदन कहा जाता है । सूर्य का प्रथम चरण यहीं पड़ा ।

इसके बाद **शब्द श्रेणी** में मध्यमा **वाणी** तथा **अर्थ श्रेणी** में बुद्धितत्त्व विकसित हुआ । उसका स्थान अन्तरिक्ष है । यहाँ सूर्य ने वरुण रूप धारण किया और विद्युत् के रूप में देखे गये । शब्द श्रेणी में चार प्रकार की वाणियाँ हुई—परा पश्यन्ती मध्यमा तथा वैखरी ।

चत्वारि वाक परिमिता पदानि
परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी ।

प्रथम तीन तो गुहा में निहित हैं । मनुष्य वैखरी वाणी बोलते हैं ।[१] पर वे वाक तत्त्वों को नहीं जानते ।

वाकतत्त्व ते न जानन्ति

अन्न श्रेणी में मन की उत्पत्ति हुई । इसका स्थान पृथ्वी है । पृथ्वी को अग्नि सदन कहते हैं । आकाश को मित्र सदन । अग्नि सदन को तेज के रूप में ही हम देख रहे हैं[२] । वैखरी वाणी[४] से ही चार वेद छः अंग आठ दर्शन आठ उपदर्शन चार उपवेद तथा फिर इसके बाद धर्मशास्त्र इतिहास आदि की उत्पत्ति हुई । वाणी और देवता शब्द तथा अर्थ ज्ञान तथा बुद्धि—सब एक ही परा शक्ति से उत्पन्न हुए । सब की आत्मा सब का आधार एक ही है । वाणी तथा शब्द के महत्त्व को पश्चिमी विद्वान भी मानते हैं । सृष्टि में परा शक्ति का सबसे बड़ा प्रतीक वाणी है ।

१ चत्वारि वाक परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।—ऋ० म० १ ३ २२ ।

२ मित्रस्य वरुणस्य अग्ने—दिवि अन्तरिक्षे पृथिव्यां ।

३ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥
—यजु० वा० स० ७ ४२ ।

४ या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिपष्टि
वर्णानन्त प्रकरणे प्राणसङ्घात् प्रसूत ।
ता पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां
वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरी च प्रपद्ये ॥
—भागवत, स्क० ११ अ० १२–श्लो० १७, श्रीधरी टीका ।

पश्चिमी विचारधारा मे वाणी

डा० मलिनास्की के अनुसार आरम्भकाल म वाणी का उपयोग मन म उठनेवाले विचार को -यक्त करनेवाला चिह्न या सकेत के रूप मे नही हुआ। उनके कथनानुसार असभ्य लोगो की वाणी क अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ म वाणी काम करने का तरीका मात्र है। भाषा की रचना के काफी समय बाद -याकरण का विकास तथा आविर्भाव हुआ। जब वाणी तथा भाषा का विकास हो जाता है वह साहित्यिक तथा भावो का -यक्त करने और विचारो के आदान प्रदान का काम करती है। इसीलिए किसी देश की भाषा को समझने के लिए उस देश के रहनेवाला की मनावज्ञानिक स्थिति को भी समझना चाहिए[१]। डा० मलिनास्की ने पापुआ तथा मलानीशियन भाषाओ के अध्ययन म यह अनुभव किया कि उनक किसी एक शब्द का दूसरी भाषा मे समाना-तर या निकटतम शब्द दे देने से काम नही चलेगा। हर भाषा के हर एक शब्द के अ-तगत एक विशिष्ट भावना रहती है। उस भावना का समझना पडगा[२]। प्रत्यक भाषा को समझन के लिए उस देश की भाषा के बालनेवालो की सभ्यता तथा सस्कृति को जानना जरूरी है। इस प्रकार डा० मलिनोस्की ने हमारे इस कथन को स्वीकार कर लिया है कि वाणी भावना का प्रतीक है। लाग वखरी वाणी जानते ह पर- वाकतत्त्व ते न जानते- वाक्तत्त्व को नही जानते। मत्र जानते ह मत्र का अथ नही समझते। मलिनोस्की ने तोब्रिया- जाति के जगलियो का एक वाक्य दिया है। उसके हर एक श-द का हि-दी मे निकटतम अथ हम दे देते ह। पर क्या इन अर्थो से वाक्य भी स्पष्ट हुआ ?—

तसकाउलो	—	हम दौड रहे है
कयमतना	—	सामने की लकडी
यकीदा	—	हम सब लोग
तवौला	—	हम पतवार चला रहे है

१ Bronislaw Malinowski— Tec Problem of Meaning in Primitive Language —Appendix I in the 'Meaning of Meaning —pages 297—298

२ वही, २९९।

श्रोवान	—	स्थान पर
तसीविला	—	हम मुडे
तगीन	—	हमने देखा
सादा	—	हमारे साथी
इसकाउला	—	वह भागा
हाऊउवा	—	पीछे की लकडी
श्रालीविकी	—	पीछ
सिमितावग	—	उनके सामुद्रिक—हाथ
पिलोल	—	पिलाल

तोब्रियाद भाषा के दो चार वाक्य यदि शाब्दिक अर्थ के रूप में अनुवाद किये जाय तो इनका कोई भी अर्थ न होगा।[१] जो लोग उस जाति की सभ्यता शिष्टता साहित्य तथा भाषा से परिचित नहीं है वे कदापि सही अर्थ न लगा सकेंगे। भाषा का संकेत तथा भाषा का प्रतीक अपनी शिष्टता तथा सभ्यता के अनुसार बनता है। ऊपर लिखे शब्दों के उच्चारण के साथ एक घटना एक कहानी एक इतिहास मिला हुआ है। किसी समय वे लोग समुद्र में अपनी छोटी नौकाए लेकर व्यापार करने के लिए निकले। मार्ग में नौकाओं में होड लगी। एक दूसरे से तेजी से भगाने लगे। सब अपनी बहादुरी बखानने लगे। डींग हॉकने लगे। ललकारने लगे। अब इतनी बाते केवल शब्दों से प्रकट नही हुई। शब्दों के पीछे लगे इतिहास से ज्ञात हुई। इसीलिए हम कहते है कि हमारी सभ्यता तथा शिष्टता से अपरिचित होने के कारण ही पाश्चात्य विद्वान हमारे भारतीय प्रतीकों को अथवा पूर्वीय देशों के प्रतीकों को ठीक से समझ न सके और अर्थ का अनर्थ कर बैठे।

भारतीय तथा यूरोपियन भाषाओं में प्रयोग में आने वाले शब्दों की धातु अर्थ प्रयोग तथा व्याकरण में रूप का स्पष्टत पता लग जाता है। वैदिक देवताओं के परिचय वाले अध्याय में हमने शब्द की धातु तथा अर्थ को भी दिया है। पर असभ्यों की भाषा के शब्दों में इस प्रकार धातु अर्थ तथा व्याकरण बनाना सम्भव नही होता। उनके बहुत से शब्द तो उच्चारण मात्र है।[२] वे आवश्यकतानुसार शरीर की क्रियाएँ है। हू ही ही—ये शब्द नही है संकेत है। इसलिए सभी उच्चारण न तो शब्द है न प्रतीक है। इसलिए यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वाणी अपनी संस्कृति के अनुसार बनती

१ वही, पृष्ठ ३०१।
२ वही, पृष्ठ ३०३।

है ।[१] असभ्य लोगो की भाषा अपने मौलिक रूप मे कभी भी निश्चित विचार या भावना को व्यक्त नही करती । वह कुछ क्रियाओ या शरीर के कार्यों को प्रकट करती है[२] । यही बात हर एक बच्चे की आरम्भिक भाषा के लिए ठीक है । बच्चा जब शब्दो का उपयोग करना सीखता है तो वह उनके अर्थ पर नही जाता । उनके द्वारा होने वाले कार्य की ओर जाता है[३] । जब वह कहता है मार तो उसके मन मे मारने की भावना के बजाय मारने की क्रिया होती है ।

डा० मलिनोस्की ने भाषा की उत्पत्ति की तीन श्रेणियाँ बतलायी है । उनके अनुसार[४]—

प्रथम श्रेणी—

ध्वनि की प्रतिक्रिया (प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित) घटना

द्वितीय श्रेणी—

क्रियाशील ध्वनि (सम्बन्ध रखने वाली) निर्दिष्ट वस्तु
(कुछ अस्पष्ट या स्पष्ट)

ततीय श्रेणी—

(अ) वाणी का उपयोग

क्रियात्मक प्रतीक (उपयोग में) निर्दिष्ट विषय

(ब) घटना को व्यक्त करने वाली वाणी
कल्पना का कार्य

प्रतीक (अप्रत्यक्ष सम्बन्ध) निर्दिष्ट विषय

(स)
जादू टोना की भाषा
(परम्परागत विश्वास के अनुसार)

१ वही, पृष्ठ ३०७ ।
२ वही, पृष्ठ ३१७ ।
३ वही, पृष्ठ ३२१ ।
४ वही पृष्ठ ३२४ ।
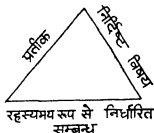
इस प्रकार डा मलिनोस्की न अनजान म ही हमारे पिछले अध्यायो मे वर्णित वण--मातका का विकास उनका प्रतीकात्मक रूप तथा तान्त्रिक त्रिकाण का समथन किया है। वाणी का प्रतीक के रूप म वखरी का प्रतीक का आधार स्वीकार करन म एक प्रकाण्ड पश्चिमी विद्वान् स भी सहायता मिल गयी। हमन पिछल अध्यायो म वण शक्ति, मातका शक्ति पर जार दिया है। मत्रशक्ति पर लिखा है। जगली जातिया के जादू टोना वाल मत्रो का जिक्र करते हुए मलिनास्की न भी जादू क शब्दा की अदभुत क्रिया शक्ति का जिक्र किया है[1]। बिना क्रियाशक्ति के श द प्रतीक नही बन सकता।

यह बात इसलिए भी सही ह कि जब तक वस्तु विचार तथा शब्दा का सामञ्जस्य न हो जाय श द प्रतीक बन नही सकता। डा० कुकशक न लिखा हे कि पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान को विज्ञान इसलिए नही कहना चाहिए कि अभी तक उसके आधार सिद्धा ता की याख्या नही हुई है। जब तक वस्तु विचार तथा श द का एक दूसरे के साथ सम्ब ध न स्थापित हा जाय।[2] अपनी बात की पुष्टि मे डा मर्सियर का उद्धरण देत हुए[3] वे कहते ह कि हम लाग बीमारी (राग) दूर करने चले ह पर आज तक हमने रोग[4] शब्द की व्याख्या नही की। फलत राग से क्या ता पय है यह नही कहा जा सकता। डा० कुकशक क अनुसार इनफ्लुएजा ज्वर किस रोग का प्रतीक है यह नही कहा जा सकता। डा० साहब तो यहाँ तक लिख गये ह कि आदतन शब्दो का दुरुपयोग करन से हम अपनी बडी हानि करते ह। जसे हमने समझ रखा है कि राग

१ वही पृष्ठ ३२५।

२ Di F G Crookshanl Supplement II— Meaning of Meaning page 338-39

३ Science Progress 1916 17

४ Disease

कोई प्राकृतिक वस्तु है । यह धारणा रोग शब्द के दुरुपयोग से हुई है । चिकित्सा विज्ञान मे तब तक प्रगति न हो सकेगी जब तक यह विश्वास दूर न हो जायेगा कि रोग नाम की काई चीज़ वास्तव में है । [१] यानी रोग की सत्ता नहीं है यह विश्वास होना चाहिए । इस प्रकार पश्चिम के विद्वान भी शब्द के महत्त्व तथा उसकी मर्यादा का जानना-पहचानना अत्यावश्यक समझते ह । बिना जाने बूझे कोरे शब्दो को सुनकर उनसे कोई लाभ न हागा । कोई जानकारी न होगी । शब्द के पीछ बुद्धि होती है । बुद्धि का माप दण्ड हाता है । इसीलिए फ्रेजर ने लिखा है—

यदि हम एक ही देश तथा एक ही पीढी के पर विपरीत बौद्धिक प्रतिभा के दो व्यक्तिया के मस्तिष्क को फाडकर उनके विचारा को पढने की चेष्टा करे तो सम्भवत हमको एक दूसरे के विचार इतने प्रतिकूल मिलगे मानो वे दोना भिन्न प्रकार के जन्तु ह अध विश्वास आज भी इसलिए कायम ह कि एक तरफ समझदार लोग उनको बिलकुल नापसन्द करते ह ता दूसरी तरफ ऐसे बहुत से लोग ह जिनके विचारो तथा भावनाओ के वे अनुकूल ह जो यद्यपि अपने से श्रेष्ठ लोगो के कारण सभ्य लोगा की श्रणी म खाचकर ले आये गय ह पर मन क भीतर अभी तक बबर और असभ्य बने हुए ह । [२]

इसीलिए सब स्वीकार करते ह कि शब्द की बडी महिमा है । सभ्य लोगो मे इशारे क स्थान पर चिह्न के उपयोग क लिए शब्दो की रचना हुई होगी ऐसी बात भी प्राय सभी स्वीकार करने लग ह । ईसवीय सन् १०० से २५० तक के बीच म यूनानी दार्शनिक अनीमिदमस[३] तथा यूनानी डा० सेक्सटस ने इस विषय पर काफी विचार किया था । प्लेटो और अरस्तू तो शब्दा को प्रतीक रूप मे मान लेने की भावना तक पहुच गये यद्यपि इस सम्बन्ध म उनके विचार स्पष्ट नही हो पाये थ । अरस्तू ने तो यहाँ तक कहा था कि स्वभावत या प्राकृतिक रूप से स्वत किसी विशिष्ट वाणी (बात) का महत्व नहीं होता । उसके साथ तथा उसमें निहित रूढि प्रथा चलन से उसकी मर्यादा बनती है ।

किन्तु ये सब बात भाषा के विकास के सम्बन्ध मे ऊपर लिखी उक्तियाँ हमको वाणी क वण के मातृकाओ के उस रूप को पहचानने मे सहायक नही हो सकती, जहाँ तक बिना पहुचे हम शब्द ब्रह्म या नाद ब्रह्म की कल्पना भी नही कर सकते । केवल वज्ञानिक समीक्षा से वखरी वाणी या शब्द की महत्ता नही समझी जा सकती । जिन

१ Dr F G Crookahank— Influenza —1922 page 12 61, 512
२ J G Frazer—Psyche s Task—page 160
३ Aenesidemus

लागा ने शब्द की उत्पत्ति को इशारे या चिह्न के स्थान पर काम म आने वाला उच्चारण के रूप मे लिखा है वे उसके दाशनिक महत्त्व को नही पहचान सकेंगे । ईसा से कई सौ वष पूव के यूनानी दाशनिका ने जितना समझा था उतना डा० सेक्सटस एसे यनानी पडित तथा जगली जातिया की भाषा के विशेषज्ञ डा० मलिनास्की भी नही समझ सके । भाषा के विकास का वनानिक आधार तो बहुत कुछ वे सही बतला गये पर उस आधार स भाषा को हम सकेत तथा चिह्न ही कह सकते ह प्रतीक नही । जहाँ भाषा केवल सकेत के रूप म ली जाती है वहा लोग अधविश्वास मे पड जाते ह । वहाँ भाषा से अधविश्वास का काम लिया जाता है जसे कोई यह कहे कि अमुक नाम बडा मनहूस है जिसका नाम अमुक हागा वह अवश्य दुष्ट या चोर होगा । प्राचीन रोमन लोगो म ऐसा अधविश्वास था । रोम म सिपियो नामक एक बडा विजेता हा गया था । प्रसिद्ध रोमन विजेता सीजर ने सिपिया नामक एक अज्ञात व्यक्ति को इसीलिए स्पेन म सेनापति बना दिया था कि उसका नाम वडा शुभ था । रोम म जब जनगणना होती थी तो चेष्टा की जाती थी कि पहला नाम ऐसा शभ हो कि मनहूसियत न आवे-- और वे शुभ नाम हाते थ सालवियस वलेरियस विक्टर फेलिक्स फास्तस इत्यादि । उसी रोम म आगे चलकर फास्त नाम का एक बडा लम्पट तथा शतान का शागिद भी रहा हुआ था । रामन सम्राट मेवेरम की पत्नी जुलिया बडी व्यभिचारिणी थी । सम्राट उसके दुराचार पर इसलिए खामोश रहते थे कि प्रथम रोमन आगस्तस की घोर दुराचारिणी लडकी का नाम भी यही था । ईसाई धम ने ऐसे अध विश्वास को दूर किया था क्योकि उनके मतानुसार भी प्रारम्भ म शब्द था और शब्द के टुकडे होकर ही सष्टि बनी । पर अध विश्वास आसानी से जाता नही । ईसाइया के सबसे बडे धमगुरु पोप एड्रियन ६ व जब पाप की गद्दी पर बठ तो बड पादरियो ने उनसे आग्रह किया कि व अपना नाम बदल द क्योकि उस नाम क जितन पोप गद्दी पर बठे थे वे एक साल के भीतर मर गये थ[१] । पाप एड्रियन ६वे ने ऐसा नही किया । वे एक वष मे मरे भी नही ।

शब्दो के प्रति इसी अधविश्वास के भय से प्रो० बाल्डविन ने उनकी व्याख्या मे प्रयागात्मक तक का उपयाग किया है । वे शब्द के चिरस्थायी अथ को नही मानते थे । वे यह जानना चाहते ह कि इस समय उस शब्द का क्या अथ है ।[२] उन्होने भी शब्द को अन्तोगत्वा सकेत माना है । बाल्डविन के अनुसार जिस समय शब्द का उपयोग किया

१ F W Farrar Language & Languages—pages 255 36

२ Baldwin—Thought and Things—Vol II Chapter VII—' What it now means

जाता है उस समय के अनुसार उसका अथ होता है। उनके अनुसार उस शब्द के उच्चारण के समय मनुष्य के मन मे क्या है यह समझना चाहिए।

प्रो० पियस भी बाल्डविन के मत के थे। पियस भी तकशास्त्री थे। अमेरिकन विद्वान् थे। उनके कथनानुसार यह तर्कशास्त्र का काम है कि प्रतीको की सत्यता की औपचारिक स्थिति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करे। पर बाद म उन्होने स्वीकार किया कि किसी भी विज्ञान का काम सिद्धान्त बनाना नही, खोज करना है जाच करना है[1]। पर वे अपने इस निणय पर टिक न सके। उन्होने चाहा तो था कि प्रतीक की सत्यता को पहुच जायँ पर वे सकेत तथा चिह्न के आगे बढ न सके। उन्होने प्रतिमाओ को भी चिह्न अथवा सकेत माना है। उन्होंने चिह्न की तीन श्रेणियाँ बना दी ह।

१ विचारो तथा सकेतो द्वारा जिनकी अनगिनत रूप मे व्याख्या की जा सके।
२ वास्तविक अनुभव से ही जिनको समझा जा सके।
३ जिनको उनके प्रकट रूप से अथवा भावना की सीमा की परिधि म समझा जा सके।

तात्पय यह कि सकेत को समझने के लिए भावना तथा बुद्धि चाहिए हम यह स्वीकार करते ह। यह बात सकेत के लिए सही है प्रतीक के लिए नही। प्रतीक को न समझ न वाला चाहे जो समझे। अधा यदि हाथी की सूड को ऊचा खम्भा समझ ले तो सूड खम्भा नही हो जायेगी। उसी प्रकार प्रतीक अपने स्थान पर अचल है। जिस काम के लिए है वही काम करता है।

औगडन और रिचाड स भाषा या शब्द को प्रतीक नही मानते[2]। वे कहते ह कि यद्यपि भाषा को एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम माना गया है पर वास्तव मे ऐस माध्यम का वह एक साधन मात्र है। और ऐसे अन्य साधना के समान यह भी ज्ञानेन्द्रिया द्वारा एक परिष्कृत अथवा विकसित रूप है। जिस प्रकार आख की पुतली किसी चीज को देखते हुए भी गलत ढग से देख सकती है जसे चेहरा किसी का हो और समझ मे किसी का आये या दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का तरीका चित्र या फोटो से भी आदमी के रग रूप के बारे मे गलतफहमी हो सकती है उसी प्रकार भाषा तथा शब्द के विषय मे भी ज्ञानेन्द्रियाँ भूल कर सकती ह। इसीलिए इन लेखको के अनुसार

१ C S Peirce—Paper in Arts & Science Boston—VII 1868—Page 295
२ The Meaning of Meaning—page 98

भाषा तथा शब्द का प्रतीकात्मक रूप दोषपूर्ण होता है । बिना सांकेतिक परिस्थिति की पूरी जानकारी के प्रतीकों से भ्रम ही बढ़ता है । क्या सही क्या झूठा प्रतीक है यह समझना बडा कठिन है । बडे विशेषज्ञ ही यह बतला सकते हैं ।[१]

ओगडन और रिचार्ड्स के अनुसार जो शब्द जिस वस्तु के लिए होता है उसका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष होता है और यह सम्बन्ध भी कारणवश होता है । फिर भी प्रत्येक शब्द किसी विशिष्ट घटना या वस्तु का प्रतीक होता है । जिस विशिष्ट घटना या वस्तु का वह प्रतीक होता है उससे अधिक वह व्यक्त नहीं करता । जब हम किसी विशिष्ट घटना का जिक्र करते हैं या उसके बारे में सोचते हैं तो हमारे मन में कुछ प्रतिक्रिया होती है कुछ भावनायें उठती हैं कुछ चित्र या मूर्ति बन जाती है पर ये बडे विश्वसनीय संकेत नहीं होते । संकेतों की अविश्वसनीयता के कारण ही प्रतीक की आवश्यकता होती है जैसे किसी ने कहा कि कल १ २ फल थे आज १० । इसमें हमारे मन में बहुत से संकेत और चित्र बन गये—फल फूल तरकारी—न जाने क्या क्या । पर जब कहने वाले ने कहा कि आम तब पूरी स्थिति समझ में आयी । इसलिए संकेत से उत्पन्न भावना का बिना प्रतीकीकरण किये कोई बात समझ में नहीं आ सकती । पर हम पूरी तरह से अपने प्रतीकों की कृपा पर निर्भर नहीं करते ।[२] अक्सर ऐसा भी होता है कि अपने सभी प्रतीकों में सहायता लेने पर भी बात समझ में नहीं आती । उस समय बहुत से सांकेतिक चिह्नों का सहारा लेना पडता है । फिर भी भावना में जो बात आसानी से ग्राह्य नहीं होती उनके स्थान पर प्रतीक का उपयोग अनिवार्य है ।[३] प्रतीक निर्देश करने के काम का प्रतीकीकरण है । इसी प्रकार जब कोई प्रतीक मुँह से कहा जाता है सुनने वाले के लिए निर्देश करने के कार्य का संकेत बन जाता है ।[५]

शब्द और प्रतीक का सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह लेखक लिखते हैं कि यद्यपि पहले लोगों का विश्वास था कि शब्दों का स्वतः कोई अर्थ होता है पर वास्तव में अब यह स्थापित हो गया है कि शब्दों का स्वतः कोई अर्थ नहीं होता । जब कोई सोचने वाला उनका उपयोग करता है किसी काम के लिए तब उस काम के सम्बन्ध में उनका अर्थ हो जाता है । वे निर्देश करने के साधन मात्र हैं । इसलिए विचार शब्द तथा वस्तु

१ वही पृष्ठ ९४ तथा ९१ ।
२ वही पृष्ठ १८८ ९ ।
३ वही पृष्ठ २०३ ।
४ वही पृष्ठ २०३ ।
५ वही, पृष्ठ २ १ ।

का सम्बन्ध निर्धारित करना पडेगा। इन तीनो मे जो अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है उसे निश्चित करना पडेगा। इसे उन लेखको ने एक त्रिकोण बनाकर सिद्ध किया है।—

विचार और निर्देश म प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार का सम्बन्ध होता है। जसे हम एक चित्र देखे तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया। पर प्रतीक और निर्देश मे कभी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता। प्रतीक का प्रयोग किसी निर्देश के लिए ही होता है। प्रतीक तथा निर्देश का सीधा सम्बन्ध नही होता। हम ऐसा सम्बन्ध बना लेते है।'[१] इसलिए विशिष्ट परिस्थितियो में एक ही प्रतीक का भिन्न अर्थ हो सकता है।[२] इसीलिए प्रतीक हो अथवा भाषा दोनो के अध्ययन का मनोवैज्ञानिक आधार तथा विश्लेषण होना चाहिए।[३]

पश्चिमी विद्वानो की ऊपर लिखी विचार धारा स स्पष्ट है कि बहुत अधिक वैज्ञानिक ऊहापोह मे पड जाने के कारण शब्द तथा भाषा की व्याख्या करते करते वे काफी भ्रान्ति म पड गये ह और शब्द की रचना के आदि महातत्त्व को वे पकड नही सके। फिर भी उनके मन मे यह बात है कि शब्द का आध्यात्मिक रूप है। ओगडन और रिचाड स लिखते ह—

आरम्भ काल से ही मनुष्यो ने अपनी सोचन की क्रिया म सहायतार्थ प्रतीको स काम लेने का तथा अपनी काय सिद्धि को लिपिबद्ध करने—अकित करने—का जो काय किया है वह बडे आश्चय तथा भ्रान्ति का विषय रहा है प्राचीन मिस्र निवासी तथा आज के कवि के रूप मे शायद ही कोई अन्तर हो। इसीलिए वाल्ट ह्विटमान ने लिखा है कि सभी शब्द आध्यात्मिक ह। शब्दो से अधिक आध्यात्मिक वस्तु और कुछ

१ वही, पृष्ठ ११।
२ वही पृष्ठ २१३।
३ इसी पुस्तक में डा० अर्नोट के विचार, पृष्ठ २३२।

भी नही है । शब्द आये कहाँ से ? हजारो लाखो वर्षों स ये चले आ रहे ह । हमारी जिन्दगी म सबसे मुस्तकिल ताकत शब्द शक्ति है । [१]

वे आगे चलकर लिखते ह कि दवी या मानवी सब कुछ श द शक्ति के अ तगत ह । इसलिए वास्तविकता के समूचे ढाँचे की आत्मा का दूसरा रूप भाषा है या भाषा छाया आत्मा है ।[२] यूनानी दाशनक अरस्त का यह कहना भ्रमपूण है कि मूलत भाषा मानसिक भावनाओ का सकेत मात्र है ।[३] उनसे भी पूव के दाशनिको ने—यूनानियो ने— आत्मा के स्वभाव का प्रकट करन वाली वस्तु का नाम भाषा कहा था और भाषा वह वस्तु है जिसे जिस काम के लिए सीमित रखना चाहिए उस काम तक सीमित रखने की बात भी बहुत से लोग माच नही सकते । आत्मा का वणन उसका परिचय केवल वाक्या द्वारा ही हा मकता है । यदि भाषा का उपयोग केवल शरीर तथा उसके गुणो के लिए किया जाय तो यह मूखता हागी । [४]

आत्मा की ही याख्या करत हुए बौद्ध दाशनिको ने भाषा के भ्रमात्मक उपयोग की निदा की थी । वे लिखते ह कि उस सत्त कहिये अत्त कहिये जीव कहिये या पुग्गल (यक्ति) कहिये इसस कुछ नही होता क्याकि ये तो नामकरण उपकरण ससार म उपयोग म आने वाल वाक्य प्रबध मात्र ह । जो लाग सत्य का जानते ह वे ही असली तत्त्व समझते ह । वे नाम दाष स भटक नही जाते[५] ।

ओगडन और रिचाड स ने पवित्र श द ऊ का सूफी मत्रो का योगदशन मीमासा याय तथा यानवल्क्य आदि का भी जिक्र किया है । इस प्रकार उन्होने बिना अध्ययन क भी हमारे वण तथा मातका सम्बधी प्राचीन सिद्धात ॐ का ब्रह्माड यापी महत्त्व तथा मत्र शक्ति को स्वीकार किया है । डा० मलिनोस्की आदि ता छिछले पानी मे रह गय । जगलियो की भाषा के अध्ययन म जगली भावनाओ के जगल मे फस गये । पर ऊपर लिख दोनो लेखक सत्य के बहुत कुछ निकट पहुच गये । उन्होने स्पष्ट लिख दिया है कि आरम्भ म शब्द प्रतीक रूप म था[६] । बाद म उसका भावनामय रूप हुआ ।

१ The Meaning of Meaning—Chapter II—pages 24 25
२ वही पृष्ठ ३१ ।
३ वही, पृष्ठ ३५ ।
४ Whittaker—The Neo Platonists page 42
५ C A F Rhys Davids—Buddhist Psychology page 32
६ The Meaning of Meaning page 42

इसी प्रारम्भिक शब्द को मत्रो मे हमारे ऋषियो ने बाँधा । आगम शास्त्र ने तत्र में यत्र मे बाँध दिया—जो विश्वव्यापक था उसे रेखाओं के दायरे में बाँध दिया गया। विश्व व्यापी शब्द की महान् शक्ति है। महान् महिमा है। लाओ त्से[१] ने सच कहा था— जा जानता है बोलता नही। जो बोलता है वह जानता नही।[२]

१ चीनी ताओ–वाद धर्मके प्रवत्तक।

२ 'He who knows does not speak he who speaks does not know — Lao Tse

मन, बुद्धि तथा विचार

ऊपर के अध्याय म हमने विचार भावना सकल्प तथा शब्द का मल उनका सम्बन्ध बतलाने का प्रयास किया है। प्रेरणा तथा भावना से काय होता है या काय तथा भावना से प्ररणा उत्पन्न हाती है हम इस बारीक तक म न पड कर मन बद्धि तथा विचार का प्रतीक से सम्बन्ध सिद्ध करना चाहत ह। यदि इन तीनो म एक स्वरता न हो एकता न हाता शन्द की शक्ति नहा विकसित हागी तथा प्रतीक निर्जीव तथा निरथक हा जायगा। शिक्षा का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए श्री क्लाक ने व्यक्ति तथा विज्ञान की एकता के बारे म जो कुछ लिखा था वह इस सम्बन्ध म भी लाग होता है। व लिखते ह कि व्यक्तिवाद तथा विज्ञान दाना को मिलाकर एक सम्पूण वस्तु बननी चाहिए जो विभिन्न हाते हुए भी एक म मिलकर ठास बन जाय। व्यक्तिवाद म हमे ठामपन ता मिलता है पर उसम एकता रहित विभिन्नता होती है। विज्ञान म एकता है पर उसम ठासपन नही है। इसलिए मानव कल्याण के लिए यक्तिवाद तथा विज्ञान म सामञ्जस्य उत्पन्न करना आवश्यक है।[१] जिसे वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करनी है उस मानव विचारधारा की प्रगति की जानकारी हासिल करनी चाहिए। इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक बाजाक का कथन है कि तुम ससार के बनाने वाल नही हा वह स्वय तुम्हार स्वभाव से तुमका अवगत कराता रहता है।

हमने ऊपर बार बार लिखा है कि निर्विकल्प ब्रह्म से ही यह सष्टि हुइ इस ब्रह्माण्ड की रचना हुइ। किन्तु यदि वह निर्विकल्प है ता फिर न ता वह कर्त्ता है न कम है। उसे स्पष्ट रूप मे ज्ञान ज्ञाता नय, कुछ भी नही कहा जा सकता। स्पष्टत उसकी काई व्याख्या नही है। वह शब्दा स समझाया नही जा सकता। अध्यारोपवाद से उसे सृष्टि का कर्त्ता भी नही सिद्ध किया जा सकता[३]। हम एक धारणा बनाकर

१ F Clarke— Essays in the Politics of Education —Oxford University Press 1923 page 11

२ वही पृष्ठ, १७।

३ A J Mukerji— The Nature of Self —Indian Press Ltd Allahabad 1945 page 338

चलते है कि वही सृष्टि का कर्त्ता तथा कारण है। हमे उस परम शिव का बोध शरीर के भीतर बैठी आत्मा से होता है। यह आत्मा की चेतना है। चेतना तथा आत्मा एक ही वस्तु है। शकराचाय का यही मत है[1]। ब्रह्म निर्विकल्प है[2]। जल मे प्रतिबिम्बित होकर सूय ब्रह्म का प्रतीक बन जाता है। ब्रह्म भी उसी प्रकार सष्टि मे प्रतिबिम्बित हो रहा है। यह विश्व ही ब्रह्म का प्रतीक है। जिस प्रकार चन्द्रमा जल में प्रतिबिम्बित होकर अनगिनत प्रतीत होता है उसी प्रकार एक ही आत्मा ससार मे अनगिनत मालूम होती है[3]। प्रत्येक के शरीर म एक ही आत्मा विराजमान है। यह आत्मा न तो सोचती है न चलती है फिर भी यह चलनशील तथा विचारशील है। इस आत्मा के ही ऐसे नाम तथा उपकरण है जो समूचे विश्व के विस्तार के बीजरूप है। वे ह माया शक्ति तथा प्रकृति। इन्ही को हम विचार सकल्प तथा प्रेरणा कह सकते है। इन तीनो चीजो की एकता आत्मा म है। परिस्थितियाँ बराबर बदलती रह सकती ह पर आत्मा अपनी व्यक्तिगत सत्ता कायम रखती है।[4] अन्त करण मे आत्मा निर्विकल्प निर्लेप तथा किसी वस्तु से सम्बन्धित नही है। वह असग है। फिर एसी आत्मा ऐसे ईश्वर का बोध भी कैसे हो जो कल्पना ज्ञान जानकारी व्याख्या इत्यादि के परे हो? इसीलिए वात्सायन अपने कामसूत्र मे लिखते है—

ईश्वर प्रत्यक्षानुमानागम विषयातीतम क शक्त उपपादायितुम्

हीगल ऐसे पश्चिमी पडित इसी कारण उस परम शिव को नही मानते जिसकी निश्चयात्मक रूप से व्याख्या न की जा सके। ईश्वर आत्मा पदाथ बुद्धि—जो भी कुछ वास्तविक है उसकी व्याख्या होनी ही चाहिए। उनका काय कारण सम्बन्ध होना चाहिए।[5] यदि ब्रह्म के लिए आत्मा के लिए ठास प्रमाण की आवश्यकता है जसे किसी वक्ष या मेज कुर्सी के लिए तो यह प्रमाण कदापि नही मिल सकता[6]। प्रमाण के अभाव मे हमको ईश्वर की कल्पना ही छाड देनी चाहिए। इसीलिए हीगलने हमारी ब्रह्म की कल्पना की भत्सना की है। पर वे एक सम्पूण अथवा परम आत्मा को मानते ह जो न तो अनिश्चित है और न सम्बन्ध रहित। यह परम आत्मा ही सभी प्रकार के सासारिक

१ वही पृ० ३३९।
२ सवविकल्पासहो निर्विकल्प —तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य।
३ वही, ३, २, १८।
४ The Nature of Self page 341
५ वही, पृष्ठ ३४५।
६ वही, पृष्ठ ३४५।

सम्बन्धो का समन्वय है। यही परम आत्मा दो रूपो म प्रकट होता है—आत्मा तथा अनात्मा। इन दोना के भेद का दूर कर एकता का प्राप्त करना ही सबसे बडी सफलता है।[१]

किन्तु यह सब विवाद वही समाप्त हो जाता है जब हम यह समझ ल कि हमारे दशन म परब्रह्म की कल्पना नही की गयी है। उसे कल्पना से पर माना गया है। ससार म जो कुछ है उसका वर्गीकरण हा सकता है। उसका एक दूसरे स सम्बन्ध जोडा जा सकता है। ऐसी सभी वास्तविकताए जो अस्थायी ह उनकी सीमा होती है। हर वर्गीकरण के विपरीत वर्गीकरण भा हाना है। हर एक सासारिक पदाथ की अनेकता हाती है। इन सब भिन्न वर्गीकरण तथा अनेकता मे जा एकता स्थापित करे वही आत्मा है। अ और ब नामक दो पदाथ ह। ब की सत्ता वही तक है जहाँ तक अ भी कायम है। यदि अ न रहे ता ब हो अ और ब दाना हा जायगा। अतएव अ और ब की विभिन्नता को पहचानन वाला तथा दाना को एक मे मिला कर एका स्थापित करने वाला आत्मा है[२]। इसीलिए हमारे शास्त्र म आत्मा का द्रष्टा कहा है। यदि आत्मा अ और ब से भिन्न न हा ता वह स्वय अ और ब—दा म स किसी की श्रणी म आ जायेगा। इसीलिए हम उसे द्रष्टा कहते ह। वह किसी भी श्रेणी मे नही है।

ब्रह्म ज्ञान हा वास्तविक विद्या है। पर ब्रह्म मनुष्य के लिए बोधगम्य नही है। फिर भी शकराचाय ने तक स ब्रह्म की सत्ता का सिद्ध करने का प्रयास किया है[३]। हम उस गूढ तक म न पडकर केवल यह लिख देना चाहत ह कि आत्मा द्रष्टा है। पुरुष तथा प्रकृति—परम शिव तथा पराशक्ति के सयोग से सष्टि हुई। उसम प्राणी का आविर्भाव हुआ। उस प्राणी के अन्त स्तल म एक ही आत्मा विद्यमान है। जब तक आत्मा अथवा चेतना अविद्या म पडी है इस ससार की सत्ता है अन्यथा ब्रह्म का ज्ञान होते ही विद्या प्राप्त हाती है।

इस परमात्मा का काय म किसने प्रेरित किया? यजुर्वेद[४] म भी यही प्रश्न किया

१ वही, पृष्ठ ३४७।

२ वही पृष्ठ ३४९।

३ वही पृष्ठ ३८५ शकराचाय ने स्वीकार किया है कि शब्दों स ब्रह्म की व्याख्या नहीं हो सकती—'शब्देनापि न शक्यते विरुद्धोर्थ प्रत्याययितुम्'।

४ यजुर्वेद के तीन चरण हैं। इसमें राजा, प्रजा कत्तव्य आदि की इतनी अधिक समीक्षा है कि इसे 'राजनीतिक' वेद भी कह सकते हैं। पतञ्जलि के अनुसार इसकी १०१ शाखाएँ है—'एकशत मध्वर्यु शाखा'।

गया है। तत्तरीयोपनिषद[१] मे भी ऐसा ही प्रश्न है। यजुर्वेद में पूछते है— हे पुरुष तू जानता है कि तुझको कार्यों में कौन प्रयुक्त करता है ? वह परमेश्वर ही तुझको उत्तम कार्यों मे प्रेरित करता है। तुझको वह परमेश्वर किस प्रयोजन के लिए नियुक्त करता है ? हे स्त्री पुरुषो ! वह परमेश्वर ही तुम दोनो को उत्तम काय करने के लिए प्रेरित करता है। वह तुम दोनो को सब शुभ गुणो व विद्या को प्राप्त करने के लिए या सब-्यापक परमात्मा को प्राप्त करने के लिए नियुक्त करता है।[२]

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्म त्वा युनक्ति
तस्म त्वा युनक्ति, कमण वा वेषाय वाम ।।

यजु० ६ अ० १

आगे चलकर उसी परमात्मा को प्रेरक बतलाया गया है।[३] लिखते ह कि जगत् व समस्त प्रकाशमान पदार्थों को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर सुख, प्रकाश और ताप को प्राप्त करने या देने वाल विद्वानो एव दि-य गुणो सूक्ष्म दिव्य तत्त्वो को अपनी धारणा शक्ति और क्रियाशक्ति से तेज के साथ युक्त करके बडे भारी प्रकाश या विज्ञान को पदा करने वाले उनको उत्तम रीति से प्रेरित करता है[४]। छान्दोग्य उपनिषद् मे इसी प्रेरणा को सकल्प का रूप दिया गया है। लिखा है—

तदक्षत बहु स्या प्रजायेयेति । तत्तजोऽसृजत । तत्तेज ऐक्षत ।
बहुस्यां प्रजायेयति । तदयोसजत । तस्माद्य त्र क्क च शोचति स्वेदते
वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यायो जायते ।। (प्रपाठक ६ खड २ प्रवाक ३)

अर्थात् उस सत (ब्रह्म) ने ज्ञानरूप सकल्प किया कि म सब समथ हूँ। अत मै जगत् का सजन करूँ। ऐसा सकल्प कर उसने तेज का सजन किया। पुन उस तेजस्वी ब्रह्म ने ज्ञान रूप सकल्प किया कि म समथ हू। अत जगत् का सजन करूँ। ऐसा सकल्प

१ तित्तिरिणाप्रोक्तमधीयते तैत्तिरीया—तित्तिर (एक पक्षी) आचार्य से कहे प्रवचनको पढ़ने वाले छात्र तैत्तरीय कहलाये।

२ जयन्तेश शर्मा—यजुर्वेद सहिता, भाषा भाष्य, आर्य साहित्य मडल, अजमेर, पृष्ठ ५ देखिये शतपथ ब्राह्मण, १, १, १, ११ २२।

३ युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतोधिया दिवम्।
बृहज्ज्योति करिष्यत सविता प्रसुवाति तान् ॥
—स० ३, अ० ११—म० ३।

४ यजुर्वेद सहिता, पृष्ठ ४०१

कर उसन जल का सजन किया । इस कारण जिस किसी स्थान या काल मे प्राणी सतप्त या स्वेदित हाता है वहा तेज स ही जल उत्पन्न हाता है ।[१] ब्रह्म के सकल्प स ही जल की उत्पत्ति हुई । उसके सकल्प से ही अन्न (पथ्वी) का सजन हुआ । जल स ही अन्न और खाद्य हात ह[२] । इन भूता[३] क तीन ही बीज होते ह—अण्डज (पक्षी आदि) पिण्डज (मनुष्य पशु आदि) तथा उद्भिज्ज (वक्ष इत्यादि) । अण्ड हमार शास्त्र म बडा महत्त्व का प्रतीक है । इसका वणन हम आगे चलकर करगे । यहा पर अण्ड की गोलाई को ○ बीज मान ल । इनम तीनो बीज—अण्जड, पिण्डज उदिभज्ज शामिल ह । इन तीनो बीजा के मध्य एक एक का त्रिवत (त्रिगुण) करू (ऐसा ज्ञान रूप सकल्प उस परम देवता ने किया और इस प्रकार स सकल्प करक) वह परम देवता इन तीनो देवताओ में इम जोवात्मा के साथ स्वय भी माना प्रविष्ट हो उनके नाम और रूप को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करन लगा[४] ।

तासा त्रिवत त्रिवतमेकका करवाणीति (छा० ६ २ ३)

बीज और त्रिकाण का आगम शास्त्र ने बीज—त्रिकोण यत्र म बाँध दिया है । इसका उल्लेख हम ऊपर कर आय ह । इम प्रकार नीचे लिखे उपासना के मत्र सृष्टि के आरम्भ और रहस्य क प्रतीक ह ।
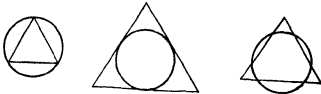
ब्रह्म स बीज हुआ । बीज स सष्टि । पर सष्टि क प्राणी नही जानते कि वे स्वय ब्रह्म ह । इसका उदाहरण छान्दाग्य क नवम खण्ड म दिया है[५] । लिखा है कि जसे

१ शिव शकर शर्मा—छान्दोग्योपनिषद् भाष्य—वैदिक यन्त्रालय अजमेर सवत् १९९३, पृष्ठ ७४२ ।
२ ता आप ऐक्षन्त । ता अन्नम् असृजन्त तद् यन्न जायत (छा ६ २ ४ ।)
३ अन्न शब्द का अर्थ लक्षणा मे पृथ्वी है । पृथ्वी से अन्न उत्पन्न होना है । जल इसका निमित्त कारण है । (छा० भा य, पृष्ठ ७४५) ।
४ वही, पृष्ठ ७४८ ।
५ वही, पृष्ठ ७८१ ८२ ।

भ्रमर मधु बनाते है अर्थात नाना वक्षो के रसो को इकट्ठा करके एक मधु नामक रस बना देते है[1] पर वे रस विवेक को नही प्राप्त करते कि इस वक्ष का रस है मै हूँ, वसे निश्चय ही ये सम्पूण जन सत (ब्रह्म) मे योग प्राप्त करके भी यह नही जानते कि हम लोगो का योग ब्रह्म से है[2]। जैसे समुद्र में मिल जाने वाली नदियाँ समुद्रत्व को प्राप्त करती हुई भी यह नही जानती कि यह म हूँ।[3]

छान्दोग्य की ही कथा है कि आरुणी ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा कि न्यग्रोध[4] का एक फल ले आओ। उसमे बहुत सूक्ष्म बीज है। उसमे से एक दाने को तोडो। क्या दिखाई पडा ? पुत्र ने कहा कुछ नही। तब ऋषि ने कहा कि इस बीज के जिस अणुतम भाग को तुम नही देखते हो उसी अणु भाग का (कायमत) ऐसा यह बडा न्यग्रोध वक्ष खडा है। इसम अणु मात्र स देह नही है। इसमे श्रद्धा रखो[5]। बीज से उत्पन्न सष्टि म श्रद्धा रखो।

सर्वं तत्सय स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो ।।

छा० ६ १५ ३

वह तुम ही हो। तुम ही ब्रह्म हो। किन्तु यह ज्ञान किसे होगा। जो स्वय ज्ञान का समुच्चय है जो परमात्मा है उसे ज्ञान की प्राप्ति कसी ? ब्रह्म कहिये या आत्मा वह ता स्वय प्रकाश है। वह नित्य चतन्य स्वरूप है। स्वय समूचे विश्व को प्रकाशित कर रहा है— उसे किसी प्रकाश की आवश्यकता नही है। स्पष्ट है कि आत्मा चेतना ज्ञान तथा अनुभव से जानने योग्य पदाथ नही है[6]। दाशनिक काट ने भी स्वीकार किया था कि कर्त्ता को प्रयोजन मान लेने से काम नही चलेगा, ज्ञान नही प्राप्त हो सकेगा[7]।

न्याय दशन के अनुसार बिना प्रमाण तथा प्रमेय के तत्त्वज्ञान नही हो सकता। बिना उपमा तथा उपमेय के असली बात मालूम नही होती। न्याय दशन ने आत्मा को

१ तथा।
२ छान्दो प्रपाठक ६, खण्ड ९ प्रवाक १ २।
३ इयम् अहम् अस्मि—वही, ६, १०, २।
४ बट (बरगद)।
५ छा० भाष्य० पृष्ठ ७९० ९१ ६, १२, १ २।
६ The Nature of Self page 373
७ वही, ३७।

दो प्रकार का बतलाया है। पहला तो वह जो ससार म व्याप्त है सवज्ञ है। दूसरा वह जो कर्मों का फल भोगने वाला है जिसके भोग का आयतन (मकान) यह शरीर है। और भोग के साधन रूप इद्रिया ह और भोग पदाथ अर्थात जो इद्रियो के विषय ह—वे ह जो इद्रिया द्वारा अनुभव किये जाते ह। और भोग-बुद्धि अर्थात् ज्ञान है। सब पदाथ इद्रिया से नही जाने जा सकते। अत परोक्ष पदार्थों का अनुभव करने वाला मन है। आर मन म राग-द्वेष दो प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं जो दोष कहलाते है[1]। किन्तु इस कथन का यह अथ नही है कि आत्मा के दो टुकडे हो जाते ह। एक परम ज्ञानी दूसरा अज्ञानी। तात्पय केवल शरीर के मकान म रहने वाली चेतना तथा उसके सूक्ष्म रूप मन से है। जब मन मर जाता है आत्मा स्वय प्रकाश मे विलीन हो जाती है। याय दशन के अनुसार ऐसी दूसरी आत्मा के लक्षण ह—

इच्छा, द्वष, प्रयत्न, सुख, दु ख ज्ञाना यात्मनो लिङ्गम[2]

ये छ लक्षण ह। जहा बठकर इद्रिया पदाथ के लिए चेष्टा करती ह उसे शरीर कहते ह[3]। जिससे गध रस स्पश और शब्द का ज्ञान होता है वे क्रमश घ्राण (नाक) रसना (जीभ) चक्षु (नेत्र) त्वचा (खाल) और श्रोत्र (कान) कहलाते ह। भूमि जल अग्नि वायु और आकाश ये पाँच भूत ह। बुद्धि उपलब्धि और ज्ञान—यह अलग वस्तु नही ह[4]। एक काल म दो ज्ञान का ज्ञान पदा न होना यह मन का लक्षण है। मन इद्रिय और शरीर का काम म लगना प्रवत्ति कहलाती है—

प्रवत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति।—याय० १–१७

किन्तु यह भ्रम हो सकता है कि मन ही आत्मा है। इसलिए गौतम ने स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा का लिग ज्ञान है। आत्मा का लक्षण ज्ञान है। ज्ञान लिगत्वादात्मना (२ २३)। पर आत्मा और मन के सम्बध के बिना प्रत्यक्ष ज्ञान का उत्पन्न होना असम्भव है। नात्ममनसो सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्ति—२ २१ मन-बुद्धि से प्रवत्ति उत्पन्न होती है। प्रवत्ति और दोष से उत्पन्न जो सुख दु ख का ज्ञान है वह फल कहलाता है। मन को जिस वस्तु की इच्छा हो उसके न मिलने का नाम दु ख है। बाधनालक्षण दु खम। १ २१।

१ न्याय दशन—भाष्यकार दशनानन्द सरस्वती—पुस्तक मदिर मथुरा, १९५८ पृष्ठ १५।
२ न्याय० अ० १ १०।
३ वही १ ११।
४ वही १ १५। बुद्धिरुपलब्धिज्ञानमित्यनथान्तरम्॥

व्यास ने वेदान्तदर्शन में सष्टि के आरम्भ में प्रकृति की सत्ता स्वीकार की है। उन्होंने ब्रह्म जीव तथा प्रकृति तीनो की पथक सत्ता स्वीकार की है। ब्रह्म और जीव का भिन्न माना है--भेदव्यपदेशाच्चान्य । १-१, पाद २१। ऋग्वेद भी यही कहता है--

> द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानवृक्ष परिषस्वजाते ।
> तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।
>
> --ऋ० मण्डल १, सूक्त १६४-मंत्र २०

दोनो अपने जसे अनादि वृक्ष प्रकृति के काय ससार मे रहते हैं जीव उसके फलो को भोगता है। ब्रह्म सदव साक्षी देखता है। भोगता नही।[1] तीनो अनादि तथा पथक प क ह।[2] जीव आनन्दमय नही है--चूकि उसे आनन्द की कामना इच्छा होती है। इच्छा उसी वस्तु की होती है जो अप्राप्य है। कामाच्चानुमानापेक्षा। १-१८। कवल ब्रह्म ही आनन्दमय है[3]। किन्तु जीव ब्रह्म से उसी प्रकार भिन्न नही है जिस प्रकार आँख म से सुर्मा। यह जीव आत्मा मन के अनुसार होता है। जसी मन की वृत्ति होती है वसा जीव अपने को समझता है[4] जानता है। इसलिए ब्रह्म से प्राथना की जाती है कि वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा करे अर्थात दुष्कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों की ओर लगावे तथा प्रकृति की ओर से हटाकर आत्मा की ओर लगावे।

> छन्दोऽभिधानान्नेति[5] चेन्न तथा चेतोर्पण निगदात्तथाहि
> दशनम १-१, पाद २५।

मन का सुख दु ख ब्रह्म को नही लगता। स्थूल वस्तु के गण सूक्ष्म वस्तु मे नही जा सकते। मन आदि ब्रह्म से स्थूल हैं। अतएव इनमें रहनेवाले सुख दु ख ब्रह्म मे नही हो सकते। सम्भोगप्राप्तिरितिचेन्न वशेष्यात। १ २ ८। मन बुद्धि आदि सबसे पथक होकर जीव अपनी सत्ता का म हू --ऐसा अनुभव करता है। स्वतत्र जीवात्मा को इच्छा है चाहे वह प्रकृति का नाटक देखता रहे या ब्रह्मानन्द म मग्न हो जाय।[6]

१ वेदान्तदर्शन--भाष्यकार आनन्द सरस्वती--प्रेम पुस्तक भडार, बरेली १९५७--पृष्ठ ५९।
२ अजामेकाम्--श्वेताश्वतरोपनिषद अ ४ मत्र ५।
३ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति--तैत्तरीय० ब्रह्मवल्ली अनु० ८।
४ वेदान्तदर्शन, पृष्ठ ६६।
५ छन्दोभिधानात्--गायत्री छन्द वर्णन करने से।
६ वेदान्तदर्शन, पृष्ठ १ ।

जनी लोग जीवात्मा को नित्य मानते ह । वे ब्रह्म की सत्ता नहीं स्वीकार करते । उनके मतानुसार प्रत्येक जीव भिन्न भिन्न है । बौद्ध लोग मन को मारकर निर्वाण' प्राप्त करते ह । दीपक बुझ जाता है ।

आत्मा कहिए चेतना कहिए मन ही उसके बधन तथा मोक्ष का कारण होता है ।

मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो --मनु०

फिर प्रश्न उठता है कि मन क्या है ? छान्दोग्य म कथा है कि नारद न सनत्कुमार से कहा कि म मत्रवित हू । आत्मवित नहीं हू । आत्मवित शोक से तर जाता है ।'[१]

सोऽह भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविद्भूत

मत्र यानी शास्त्रों को जानता हू । आत्मा को नहीं । नारद ने कहा कि वेद आदि सब नाम ह । ब्रह्म इत्यादि सब नाम ह । नाम से जो मन प जहा तक गति हो सकती है वहीं तक मनाय जाता है । नाम से अधिकतर क्या है ?[२] सनत्कुमार ने कहा कि नाम से अधिक **वाणी** है ।

वाग्वाव नाम्नो भयसि । ७ ४ । वाणी ही वेद आदि को बतलाती है । इसलिए वह नाम से बडी है । इसलिए जो वागविद्या का अध्ययन करता है उसकी वहा तक गति होती है ।[३] वाणी से भी अधिकतर मन है । जैसे दो आमलक फलों को या दो बेरों फलों को या दो बहेड़े के फलों को हाथ की मुठी अनुभव करती है वैसे ही वाणी और नाम का अनुभव मन करता है[४] ।

मनो वाव वाचो भूयो यथा व द्व वाऽऽमलके द्वे वा
कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येव ७ ३ १

जो कोई उपासक मन को ब्रह्मप्राप्ति का साधन मानकर मन की उपासना करता है वह जहा तक मन की गति होती वहा तक जाता है । नारद ने फिर पूछा कि मन से बड़ा क्या है ? सनत्कुमार ने कहा कि---

१ छा प्रपा ७ खण्ड १---प्रवाक ३---भाष्य पृष्ठ ८०८ ८ ९ ।
२ छा ७ १ ५ पृष्ठ ८११ ।
३ छा ७ २ २ ।
स य वाचम् ब्रह्म इति उपास्ते यावत् वाच गतम् तत्र अस्य यथाकामाचार भवति ।
४ वही पृष्ठ ८१६ ।

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदावै सङ्कल्पयतेऽथ
मनस्यत्यथ वाचमीरयति ताम् नाम्नीरयति
नाम्नि मन्त्रा एक भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ।
छा० ७ ४ १

यह बहुत ही महत्त्वपूण सूक्त है । इसको समझ लेने से ऊपर हमने जो मत्र प्रतीक की व्याख्या की है वह सब स्पष्ट हो जाती है । सनत्कुमार ने कहा कि सकल्प ही मन से अधिकतर है । जब सकल्प करता है तद तर मनन करता है । उसके बाद वाणी की प्रेरणा करता है और उस वाणी को नाम मे प्रेरित करता है । तब नाम में मत्र एक होते ह और मत्र म कम एक होते ह ।[१] मन आदिक सकल्परूप एक आश्रयवाले ह । सकल्पस्वरूप ह । सकल्प मे ही प्रतिष्ठित ह ।[२] द्युलोक और पथ्वी सकल्प को करती हुई सी है । वायु और आकाश सकल्प करते हुए के समान विद्यमान ह । जल और तेज मानो सकल्प कर रहे ह । पृथ्वी के प्रति उनके सकल्प के कारण वर्षा हाती है । वर्षा के सकल्प के कारण अन्न उत्पन्न होता है । अन्न के सकल्प से प्राण समथ होता है । प्राणो के सकल्प के निमित्त मत्र समथ होते ह । मत्र के सकल्प निमित कम समथ होते ह । कम से लोक लोक से सब समथ होता है ।[३] नारद इस सकल्प का अध्ययन करो । किन्तु सकल्प कौन करता है ? सकल्प से बडा क्या है ? चित्त आत्मा है । चित्त प्रतिष्ठा है ।

चित्तमात्मा चित्त प्रतिष्ठा । —छा० ७ ५ २

कि तु ध्यान वाव चिनाद भूयो ध्यायतीव पृथिवी ७ ६ १ चित्तसे बडा ध्यान है । पथ्वी भी ध्यानावस्थित जल आकाश सभी ध्यानावस्थित प्रतीत होते ह । पर ध्यान से भी बडा विज्ञान है । विज्ञान वाव ध्यानात् ।

सष्टि का रहस्य समझना बडा कठिन है । वेदा त मे उसे मयूराण्डरस याय से समझने का उपदेश है । यानी मयर—मोर जसा सु दर रग बिरगा सु दर पक्षी का अण्डा, जिसमे केवल एक रस रूप तरल पदाथ है उससे विचित्र रूप से ऐसा सुन्दर पक्षी बन जाता है अथवा एक पक्षी के रूप रग से भिन्न उसी के साथ जुडे हुए उसके डने होते है,

१ वही भाष्य, पृष्ठ ८१९ ।
२ तानि ह वै तानि सङ्कल्पैकायनानि सकल्पात्मकानि सकल्पे प्रतिष्ठितानि, छा० ७ ४ २ ।
३ छा० भाष्य—८२१—कर्मण १० सक्लृप्त्यै लोक सकल्पते लोकस्य सक्लृप्त्यै सर्व सकल्पते ॥—
७ ४ २ ।

वस हो यह विचित्र सष्टि उस बीजस्वरूप परा शक्ति से उत्पन्न हुई है। उसका क्रम छान्दोग्य के अनुसार इस प्रकार हुआ—

ब्रह्म आत्मा चतना जीव नाम वाणी मन सकल्प चित्त ध्यान दिज्ञान।

मोक्ष के समय वाणी मन म मन प्राण म प्राण आत्मा के तेज म तथा तेज परा देवता म लीन हो जाता है[1]। जन्म मरण स छटकारा पाने के लिए वाणी तथा मन दोनों को लीन करना पडेगा। पर इन सबका साधन है विज्ञान। विज्ञान से ही ध्यान प्राप्त होता है। ध्यान म ही सब कुछ प्राप्त होता है। ध्यान के लिए जो साधन जुटाये जाते ह उनम सबस प्रमख वाणी है तथा दूसरा स्थान प्रतीक का है। बिना प्रतीक के ध्यान नहीं हो सकता। बिना वाणी के प्रतीक की शृखला नही बनती। इसी लिए शास्त्रकारो ने वाणी प्रतीक का सब प्रधान माना है। ज्ञान की उत्पत्ति मन स है। ज्ञान मन का लक्षण है।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्

ऐसा कणाद ने वैशेषिक म लिखा है। मन के पश्चात वाणी है। वाणी वाक्—मातका—शक्ति। शब्द के विषय म अपनी वाक्यपदी म भर्तृहरि ने लिखा है—

अनादि निधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत ॥

वाणी और मन वसे ही मिले हुए ह जसे शब्द और अर्थ। कालिदास के शब्दो म—

वागर्थाविव सम्पक्तौ

मन और शब्द का मन और विचार तथा शब्द का सम्बन्ध स्थापित करना ऊपर लिख पदो म बडे अच्छे ढंग से स्पष्ट हो गया। छान्दोग्य के अनुसार बिना विज्ञान के ध्यान पूरा नहीं हो सकता। ब्रह्म निर्गुण निर्विकल्प है। उसका ध्यान कसे हो? उसम चित्त कसे लगे? इसलिए उसके प्रतीक बना लिये गये ह। कठिन से कठिन वस्तु का प्रतीक बनाया जा सकता है। वेदो म कही हुई हर एक बात को समझ सकना कठिन है। इसलिए जैमिनि के अनुसार बहुधा वेदो म रूपक अलकार से वर्णन है—

रूपात्प्रायात[2]

१ [illegible] यत्नास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मन प्राणे प्राणस्तेजसि
तेज परस्या देवतायामथ न जानाति—छा० ६ १५ २।

२ मीमांसादर्शन १ सूत्र ११।

अलकार रूप से प्रयुक्त भाषा भी प्रतीक बन जाती है । मीमासा मे ही दिया गया है कि—

अपराधात्कतुश्च पुत्रदशनम् ।।[१]

इसका अथ तो यह हागा कि मोटी दृष्टि के अपराध से अज्ञायत क्रिया से कर्त्ता सूय का पुत्र अर्थात् कायरूप से और चक्षु का कारणरूप से दशन होता है । यह ता अथ हुआ । भावाथ है— चक्षु और सूय परस्पर पिता-पुत्र ह अथवा चक्षु सूय का कारण अथवा सूय चक्षु का काय नही है । किन्तु परमात्मा सबके पिता ह । और केवल स्थूल दृष्टि से सूय चक्षु का काय प्रतीत होता है । यथाथ म एसा नहा है[२] । वदो का सम्बोधन स्थान स्थान पर जमिनि ने शब्द कहकर किया है । वे वेद का स्वत प्रमाण मानते थे अतएव वद के अतिरिक्त ब्राह्मण आदि शास्त्रा को नही मानते थे । वेद की शब्द सज्ञा देखिए—

धमस्य शब्दमूलत्वात शब्दमनपेक्ष्य स्यात ।।

—मीमासा० अ० १, पाद ३ सूक्त १

मीमासा मे लिंग शब्द का प्रयोग चिह्न तथा लक्षण के अथ मे हुआ है जसे लिगभावाच्च नित्यस्य (१ ३ १८) । वेद की विद्या में अथ सहित शब्द का अथ जानकर अध्ययन करना चाहिए—

विद्याऽवचनसयोगात ।। मी० १–२–४८

छान्दोग्य ने विज्ञान को सबसे बडा बतलाया है । जमिनि कहते ह कि वद के मन्त्रो का अथ जानना ही परम विज्ञान है और अथ न जानना ही अविज्ञान है । सत परमविज्ञानम । ४६ तात्पर्य यह हुआ कि वेद ही विज्ञान है । वेद ही शब्द है । वेद ही अथ है । वेद स्वत प्रमाण ह । शब्द को भतृहरि आदि ने अनादि अनन्त माना है । जमिनि ने उसे अनित्य तथा नाशवान् माननेवालो का उदाहरण दिया है । उनके कथनानुसार अस्थानात् (१–७) जो एक स्थान पर ठहर न सके कराति शब्दात (१–८) किसी ने शब्द किया, आवाज लगायी । पर इस लौकिक उदाहरण से भी यही साबित होता है तथा प्रकृति विकृत्योश्च (१–१०) यानी प्रकृति या विकृति के कारण शब्द नित्य ह । पर पूव पक्ष

१ वही १३ ।
२ जैमिनि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र सबका अधिकार वेदों में समान रूप से माना है । वे लिखते है—सर्वेत्वमधिकारिकम्—।। १, १६ ।

म ंमा लिखने के बाद वे ही लिखते ह कि श द यदि अनित्य न होते तो उनमे वद्धि कसे होती । वद्धिश्च कतृ भूम्नास्य ११ । एक श द का अनक दशा म समकाल म होना सूय के समान समझना चाहिए । आदित्यवद्यौगपद्यम १ १५ । श द नित्य है । अनित्य नही । उसका उच्चारण श्राता के ज्ञान के लिए है । नित्यस्य स्याद्दशनस्य पराथत्वात् १-१८ ।

परमात्मा न सक प किया कि म बहुत सा हो जाऊ—बहु स्या प्रजायय इति—और इस सकल्प के कारण सष्टि हुई । सकल्प मन का गुण है । मन और बुद्धि ही सब उत्पात के कारण ह । चित्त का वश म रहने से मन भी वश म हो जाता है । कि च धारणासु योग्यता मनस[1] । परमश्वर और मन के बीच धारणा होन स मोक्ष पय त उपासना योग्य और ज्ञान की क्षमता बढती जाती है । योग क्या है—केवल चित्त की वत्तियो का निरोध है । योगश्चित्तवत्तिनिरोध[2] । जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है तब इ द्रियो को जीतना अपने आप हो जाता है । त परमावश्यतेन्द्रियाणाम[3] । इसीलिए उपासक भगवान से प्राथना करता है कि आप अपनी कृपा से जो अत्य त उत्तम सत्य विद्यादि शभ गुणो को धारण करने क योग्य बद्धि है उसम युक्त हम लोगो को कीजिये[4] । बुद्धि के लिए मधा श द का प्रयोग शास्त्रो मे बराबर आया है—

या मेधा देवगणपितरश्चोपासते तयमामद्य मेधयाग्ने
मेधाविनं कुरु स्वाहा ।। यजु० अ० ३२-म० ३४

अस्तु सकल्प का स्थान चित्त मन बद्धि है । इस सकल्प का विचार इच्छा प्रेरणा कह ल तो भी कोई आपत्ति नही । प्रेरणा सकल्प का व्यक्त रूप श द है । सकल्प अनादि है । ब्रह्म से इसका प्रारम्भ हुआ । श द अनादि है । ब्रह्म से वह भी निकला । इस प्रकार मन बुद्धि अहकार (म हू मरा है) सबका व्यक्त करने वाला रूप वाणी है । श द है । सकल्प आदि तथा व्यक्त वाणी का एक साथ पिरोकर प्रकट करने वाली चीज मत्र है । इसी लिए मत्र म महान शक्ति है । मत्र समूची सष्टि के रहस्य का प्रतीक है । जीव का प्रसार सक प और मत्र । का प्रतीक मत्र है । इसी लिए भारतीय दशन में मत्र का इतना ऊचा स्थान है । हमारा गायत्री मत्र हो या तिब्बत के बौद्धो का मत्र—

ॐ मणिपद्मेऽहम

[1] पतञ्जलि योगदशन, अ १ पा २ सू ३ ।
[2] वही अ १ १ २ ।
[3] वही अ १ २ ५ ।
[4] स्वामी दयानन्द—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वैदिक यन्त्रालय अजमेर पृष्ठ १५६ ।

हो महिमा तथा महत्त्व समान है। बौद्ध दशन मे शरीर का पोषण करनेवाले चार पदाथ हैं।[१] १ खाद्य पदाथ २ फस्स (स्पश) ३ मनो सचेतना (बुद्धि का मचार) तथा ४ विज्ञाण (चेतना)। जीवन में सबसे मुख्य चीज अहकार है। म हूँ—मेरा है—जिससे शरीर का सब काय तथा ससार का सब भ्रम हो रहा है। अहकार से ही मन का सतुलन समाप्त हो जाता है जिससे अविज्जा अज्ञान उत्पन्न होता है। **अविज्जा** से ही **तन्हा** इच्छा पदा होती है।[२] मन में मोह के कारण ही **विचिकिच्छा** स देह उत्पन्न होना है और सद्धा श्रद्धा जाती रहती है। मन क सतुलन अर्थात् तत्रमज्झत्तता के अभाव मे मन तथा चेतना की शाति पस्सद्धि (प्रसादि) जाती रहती है। पस्सद्धि के अभाव मे विचिकिच्छा पदा होती है। मन में ज्ञान होने से सत्ति से माह का नाश होता है।[३] *जीवन में ज्योति तथा प्रकाश पाने के लिए आवश्यक है कि मन मे धम विचार हो,* पस्सद्धि—सौम्यता हो ससार के प्रति उपेख्खा—उपेक्षा हो तथा समाधि हो। इस सत्यमाग (सत्त बोज्झगा) का आठवाँ पथ है सम्म समाधि—जिसमे मन को—चित्त का[४] एकाग्र कर लिया जाता है। हर एक चित्त की भमि पथक होती है। विकास की श्रेणी पथक होती है। चित्त के विकास का क्रम एक अण्डाकार चक्र के समान होता है।[५] उमका—उस अण्डाकार विकास का रूप चित्त के विकास पर निभर करता है। इसलिए चित्त का विकास ही प्रधान मानकर बौद्ध तत्र मे अण्ड रूप का यत्र प्रतीक बनाया गया था। इस अण्ड प्रतीक को ही हिदू बीज प्रतीक कहते ह। बौद्ध मत के अनुसार हर एक को अपन चित्त विकास के अनुसार अपना कल्याण करना है। इसलिए रूढियो के चक्कर मे न पडकर प्रत्येक को अपनी मुक्ति के लिए अपन भीतर का दीपक जलाना चाहिए। अपने भीतर को प्रकाशित करना चाहिए। यह पूणत सम्भव तभी है जब मनुष्य बोधि चित्त को प्राप्त करे।[६] भगवान् बुद्ध बोधि-सत्त्व थे।[७] बोधिचित्त के लिए ऐसा ज्ञान होने के लिए बौद्ध शास्त्रकारो ने **पण्णत्ती** का बडा सहारा लिया है। इस शब्द का अथ है जिसके द्वारा जनाया जाय (पण्णापियत्ता)—वाक्य, नाम या प्रतीक के द्वारा।

१ अभिधम्मथ्थ सघ अ० पत्थान, भाग ७।
२ Anagarika B Govinda—The Psychological Attitude of Early Buddhist Philosophy Patna University 1936 37 pages 7 ' 73
३ वही पृष्ठ १६७।
४ वही, पृष्ठ ९४।
५ वही पृष्ठ १२२ २३।
६ वही, पृष्ठ ५६।
७ जर्मन भाषा में इस स्थिति को Schauung कहते है।

जिस प्रतीक से जनाया जाय—प्रकट किया जाय—उसे पण्णापनत्ति कहते हैं। ध्वनि चिह्न प्रतीक सना आदि के प्रतीक को सद्धपण्णत्ति यानी शब्दप्रमाण कहते हैं[1]। इस प्रकार बौद्ध दर्शन ने मन चित्त शब्द का बोध करने के लिए प्रतीक को जरूरी माना है।

बौद्धों ने बुद्धि तथा मन के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जैन बौद्ध पारसी ईसाई किसी भी मजहब के माननेवाले हों बुद्ध महावीर शंकराचार्य ईसा पैगम्बर साहब को, भी मगान विभूति तथा धर्म प्रवर्तक हों अमरीका चाल्डिया मिश्र मेक्सिको पेरू कहीं का भी प्राचीन धर्म हो सबने तथा सबमें एक महान अनन्त सत्ता तथा नश्वर आत्मा—जीव का प्रतिपादन है। भगवद्गीता ने तो यहां तक कह दिया है कि अपने को पहचानो। तुम्हारा उद्धार मोक्ष तुम्हारे भीतर है। तुम्हीं अपने मित्र हो। तुम्हीं अपने शत्रु हो —

> **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।**
> **आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।।**—गीता ६–५

इस आत्मा को पहचानने के लिए इन्द्रियों के सब दरवाजे बन्द करके योगाभ्यास द्वारा प्राणवायु को मस्तक में चढ़ाकर मन को हृदय में अवस्थित करे—

> **सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।**
> **मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।**
>
> —गीता ८।१२

आत्मा तथा परमात्मा का रहस्य समझे बिना प्रतीक का रहस्य भी नहीं समझा जा सकता। कोरे भौतिकवाद से हम वाणी मन बुद्धि चित्त संकल्प इन सबको कदापि नहीं समझ सकते। इस नासमझी के कारण ही पश्चिम के विद्वानों ने प्रतीक के विषय में मनमानी भूल की है। इसी लिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि सृष्टि के रहस्य को समझने के लिए धर्म बुद्धि होना चाहिए। धर्म के नाम से घबराने की कोई जरूरत नहीं है। जो समस्त संसार को अपने नियमों में धारण किये हुए है वही धर्म है। इन नियमों को कभी तोड़ा जाये तो संसार छिन्न भिन्न हो जायेगा। इस धारण करनेवाले धर्म के विषय में लिखा है कि—

> **लोकान् धरति यः सर्वानात्मानं चापि शाश्वतम्।**
> **यः साक्षादात्मरूपोऽसौ ध्रियते च बुधैः सदा।**
> **धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।।**

[1] वही पृष्ठ ४४२।

धम का लन्षण तथा उसका प्रतीक भी बहुत सीधा सादा तथा बोधगम्य है। धर्य क्षमा नियत्रण अचौय पवित्रता इन्द्रियो को वश मे रखना, बुद्धि विद्या सत्य अक्रोध धम के ये दस लक्षण है प्रतीक है—

घृति क्षमा दमोस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहम्।
धोर्विद्या सत्य अक्रोध दशक धमलक्षणम।।—मनु०

ऊपर हमने लिखा है कि हमको धर्म बाधे हुए है। ससार को नियमो मे जो बाँधकर रखता है वह धम है। अग्रेजो मे धम का किन्ही अशो मे पर्यायवाची शब्द रेलिजन है[१]। यह शब्द जिस लटिन भाषा के शब्द से बना है उसका अथ है बाँधनेवाला। जाति रग योनि सब भावनाओ से ऊपर उठकर प्राणिमात्र के हृदयो का बाधनेवाली वस्तु धम है। मानव के हृदय को उस अनन्त सत्ता से बाँधने वाला धम है। मनुष्यो के हृदय को सभी आदर्शों से बाधनेवाला अतीत अज्ञात भविष्य मे आस्था उत्पन्न करानेवाली आनेवाली पीढी के कल्याण के लिए काय करानेवाली तथा अज्ञात और अदृश्य युग के कल्याण के लिए काय करानेवाली वस्तु का नाम धम है। आजकल भविष्य के समूचे काय समूची महत्त्वाकाक्षाए मानव के समूचे प्रयत्न चेतन या अचेतन काय सबका सञ्चालन करनेवाला धम है। जब हमारे मन मे सहचार तथा सहयोग की भावना होती है जब हम एक साथ मिलकर किसी अच्छे काय मे लग जाते है तो वह वास्तव मे धार्मिक प्रवत्ति है। आत्मा की एकता ही धम है[२]।

सष्टि के रहस्य को धम ने सदव प्रतीकरूप मे समझाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए हमने पिछले पष्ठो म ब्रह्माण्ड शब्द का प्रयोग किया है ब्रह्म अण्ड। सष्टि के आदि मे हिरण्य गभ था[३]। यह लोक अण्डे के रूप मे है। पथ्वी ग्रह आदि सभी अण्डाकार ह। इन सब चाजो के समझने के लिए हमारे ऋषियो ने अण्ड प्रतीक बनाया। श्रीमती एनी बेसेन्ट के थियासोफिस्ट सम्प्रदाय वालो ने इस प्रतीक को अपनी उपासना मे मुख्य स्थान दिया है। इस अण्ड का ही आधार मानकर प्राचीन काल मे शिव विष्णु तथा ब्रह्मा के अण्ड प्रतीक बने थे[४]।

१ Religion
२ प्रयाग में ११ जनवरी, १९११ को हुए स्वर्गीय डा० भगवानदास के एक भाषण का साराश।
३ "हिरण्य गर्भ, समवर्तताग्रे भूतस्य जात परिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवी "
४ Schrab H Suntook in More about Egg symbol in Theosophy in India Vol VIII No 4 (April 1911) page 105
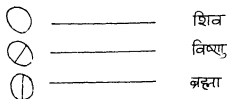
हिरण्यगर्भ—सोने के अण्डे से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। इस अण्डे के भीतर ही ईसाइयों का पवित्र धार्मिक प्रतीक क्रास बनता है। इसी के भीतर स्वस्तिक बनता है। इसी के भीतर चतुष्कोण यन्त्र बनता है त्रिकोण बनता है—

इसी के भीतर त्रिशूल इत्यादि सभी प्रमुख प्रतीक बन जाते हैं। अण्ड प्रतीक पर श्री मोहनराव एच० सनूक लिखते हैं— अण्डे प्रतीक बहुत ही रहस्यमय है। श्रीमती एनी बीसेन्ट तथा श्री लेडबेटर ऐसी अवतारी विभूतियां इस प्रतीक का प्राय उपयोग किया करती थीं। स्वर्गीय जीवन तथा कर्म शीर्षक अपने लेख में[1] श्री लेडबेटर ने अण्ड प्रतीक पर लिखा था— अण्डे के ऊपर का छिलका हमारे मन के ऊपर के छिलके के समान है। छिलके को बिना फोड़े हुए अण्डे के भीतर के पदार्थ तक पहुंचने के दो ही उपाय हैं—या तो दिव्य दृष्टि से काम लिया जाय या ऐसी शक्ति उत्पन्न की जाय जो ऐसा कम्पन उत्पन्न करे कि बिना छिलके के परमाणुओं को बिखेरे भीतर तक पहुंचा जाय। मन के खोल की भी यही दशा है। उसी को अणो के किसी पदार्थ द्वारा कम्पन उत्पन्न कर उसे बेधा नहीं जा सकता। किन्तु अपनी अस्मिता के शक्तिशाली कम्पन द्वारा ही उसका भेदन हो सकता है। इस प्रकार ऊपर की ज्योति से ही काम चल सकता है। —अण्ड के दोनों पार्श्व बराबर होते हैं पर ऊपर का हिस्सा चौड़ा और नीचे का कुछ सकरा होता है।

१ वही पृष्ठ १०६।

इसीलिए वह सृष्टि का प्रतीक भी है। दोनो पक्ष—दाहिना तथा बायाँ हिस्सा बराबर है—सत् असत् प्रकाश अंधकार भला बुरा पुरुष तथा प्रकृति, ये दोनो ही समान ह समान रूप से सतुलित है। यद्यपि इसी समूची सष्टि मे एक उच्च तथा एक निम्न भाग होता है, एक ऊपर की तथा एक नीचे की श्रेणी होती है और जैसा ऊपर होता है वसा नीचे होता है' फिर भी हम देखते ह कि निचला हिस्सा सदव ऊपर के हिस्से से सकरा, पतला होता है उच्च श्रेणी से निम्न श्रेणी निम्न होती ही है। अण्ड का ऊपरी तथा नीचे का भाग एक प्रकार से गोलाकार है पर ऊपर वाला गोला अधिक चौडा है।'[१]

अण्ड के ऊपरी भाग से त्रिकोण बनता है। त्रिकोण है आत्मा बुद्धि मन। अण्ड के निचले हिस्से से अविद्या अहकार आदि चतुष्कोण बनते ह—
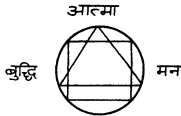
इस रहस्य को योगिराज कबीरदास ने अपने एक दोहे मे बडी बारीकी से समझाया है[२]—

जना चार मिलि लगन सधाई, जना पाच मिलि मडप छाई।
सग न सूती स्वाद न जान्यो, गयो जोबन सुपन की नाई॥

पाँच तत्त्वो (क्षिति जल पावक गगन समीरा) के मडप के नीचे चार अविद्याओ की तीन (आत्मा मन बुद्धि) से शादी हुई। पर म अपने पति से दूर रही उनका साथ नही किया इसलिए विवाह का सुख भी नही जाना और देखते देखते जवानी समाप्त हो गयी। दूल्हन की यह भूल इसलिए हुई कि न तो उसने अपने को पहचाना और न अपने पति को। बिना अपने का पहचाने यह जीवन निरथक हो जाता है। अपने को पहचानने के लिए हो अण्ड प्रतोक है। डा० भगवान्दासजी ने अपने को पहचानने पर बहुत जोर दिया है।[३] कबीरदासजी कहते हैं—

१ वही पृष्ठ १०७।
२ वही, नवम्बर, १९१०, पृष्ठ ५०८९।
३ वही पृष्ठ ३४ ४४ मार्च, अप्रैल, १९१२ "The order of the Star in the East

मोको कहाँ तू खोज बंदे मैं तो तेरे पास।
हाड माँस में हौं मैं नाहीं मैं आतम बिस्वास।।

पंजाबी मुसलमान फकीर शाह बुल्ला लिखते हैं—

ढूंढनहार न ढंढ खा तू।
पया पग्त द घर दा रस त नूं।।
किथ त हीन होवे यार सब दा।
फिरे ढूंडता जंगलां बिच्च जिन नूं।।

इस प्रकार दर दर भटकना दूसरे के घर ढूंढना व्यर्थ है। अपने मन में।

कह नानक बिन माया चीन्हे
मिटे न भ्रम की काई।

भ्रम का काई आत्मविश्वास को जानने से मिट सकता है। हमारे अज्ञान को ही दूर करने के लिए प्राचीन परिपाटी प्रतीक बना देने की थी। उसकी जानकारी बिना गुरु के नहीं हो सकती। गुरु की महत्ता में विश्वास न करनेवालों ने ही प्रतीक की मर्यादा को भंग किया है। बिना गुरु के बिना बतलानेवाले के भ्रम की काई नहीं मिट सकती। इसीलिए कबीर ने लिखा था—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन्ह गोबिंद दिया बताय।।

आज की सभ्यता में हर एक चीज अविश्वास से प्रारम्भ होती है। हम तो अब ऋषियों, अवतारों तथा देवताओं की सत्ता में भी अविश्वास करते हैं। श्रीमती एनी बेसेंट ने एक बार अपने व्याख्यान में कहा था कि जो बात हमारे प्राचीन ग्रंथों में हो, वे अविश्वसनीय क्यों हैं? तब फिर प्रभु ईसा के होने का भी क्या प्रमाण है? उनकी मृत्यु के १८० वर्ष उपरान्त के पहले का क्या कोई भी प्रमाण उनके विषय में है? इसलिए अविश्वास न कर विश्वास की भित्ति पर यदि काम किया जाय तो वास्तविक जानकारी हासिल होगी। वास्तविक ज्ञान होगा।[१]

मजहरुल्ला देहरा सारा निबंध है[२] कि पैगम्बरों का हृदय या मन रहमान (खुदा) की दया से उत्पन्न हुआ है। ईश्वर सर्वव्यापक है। बुद्धि को वही प्रकाशित करता है।

१ वही जुलाई १९११ पृष्ठ १७२ ७३।
२ वही नव० १९१०—पृष्ठ ३ ४ ६।

ईश्वर अपने को तथा अपनी प्रकृति को उसके मन मे भर दता है । हज़रत बयज़ीद बुस्तमी कहते ह कि यदि अश (आकाश) को दस करोड गुना भी बडा कर दे ता भी वह महापुरुषो के हृदय के एक कोने को भी नही धारण कर सकता । हज़रत जुनद कहते ह कि मन जब अनन्त की आर जाता है तो नश्वर चीज़ा से वह मुँह माड लेता है । मन मे जितना प्रकाश होता है उतना ही वह विकसित होता है । उसका सकोच विकाच प्रकाश (ज्ञान) की मात्रा पर निभर करता है । सष्टि मे बहुत स पदाथ आँख क सामने आते ह बहुत-से अदृश्य ह । रहमान की कृपा से बुद्धि का अदृश्य या अज्ञात पदार्थों को ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त हाती है । ईश्वर जब अपने तथा सेवक के बीच मे से पर्दा उठा देता है तभी ज्ञान होता है ।

अनान के इस पर्दे का कौन हटायेगा ? ईश्वर । ईश्वर की जानकारी बिना ज्ञान हो नही सकता । ज्ञान की इच्छा होना सकल्प है । सकल्प का व्यक्त रूप शब्द है, वाणी है । शब्द का सतुलित रूप मत्र है । मन वचन कम स काय की गति हाना है । ससार चलता है । इनके द्योतक इनका प्रकट करनेवाल साधन को ही हम प्रतीक कहत ह ।

पश्चिमी विचार मे मन-वचन-प्रतीक

मन का म्_त हा भौतिक रूप म समझनवाला की याख्या है लक्ष्य की पूर्ति के लिए ग्रान का उसके ग्रनुकूल बना लेन की क्षमता —मन का यही सबसे बडा गुण है। इस दृष्टि स प्र येक जीव म मन का सत्ता है।[१] अचेतन वनस्पतियो म तथा सचेतन पशु जावन म भी। धूप तथा छाया म हर दशा म अपनी रक्षा करन का प्रबन्ध पौधा कर लेता है और परिस्थिति के ग्रनसार पत्तिया पदा करता है। एक बच्चे की हड्डी टूट जाती है। मन की प्ररणा स वह टूटी हुई हड्डी वढकर जुड जाता है। भूख लगी है। खाना नही मिल रहा है। मन शरीर के भीतर क पाचक पदार्थो के कोष स रस खीचकर शरीर का काम चलाता है। मन क दो गुण ह—प्रवत्ति या सहज बुद्धि तथा बुद्धिमत्ता। शरीर म मन बीज मात्र है। इस बीज मात्र से हा बद्ध ऐसे विज्ञा की बुद्धि बनी है। मन के दा सहज स्वभाव ह—प्रवत्ति तथा बद्धिमत्ता। वास्तविक प्रेरणा अर्न्तनिहित है।[२] वह अनुभव पर निर्भर नही करता। जहा प्रवत्ति काम नहा दता वही पर बुद्धिमत्ता आग आती ह। बुद्धिमत्ता अनुभव म उत्पन्न हानी है। वह अनुभव का सहारा लेती है। मन का प्रथम गुण प्रवत्ति है—अत प्ररणा है। बुद्धिमत्ता लौकिक अनुभव से आती है। मन की प्रवत्ति स ही सकल्प बनते ह। मनुष्य प्रवत्तिया या प्ररणाओ का समच्चय है। उसी से उसम उत्तजना स्फर्ति तथा क्रियाशक्ति का उदय होता है।[३] मन को ही प्रकाश की शरीर की क्रियाओ की तथा शब्द की अनुभति प्राप्त होती है।[४] सवसाधारण बद्धि इद्रिया स प्राप्त अनुभति को उस वस्तु का गुण मान लेती है। गुण का परिणाम नही मानती। जसे शब्द या रग के विषय म हम उनको बाहरी चीजो का गुण मान लते ह। हमको काटा छू लता जहा पर छूया गया हम समझते ह कि वह अनुभव उसी स्थान का है। हम यह भल जाते ह कि स्पश हान क बाद मस्तिष्क को जो सूचना

१ I C Bose – Introduction to Juristi Psychology Thacker Spink & Co Calcutta 1917 page 6

२ वही पृष्ठ ८ ।

३ वही पृष्ठ ११ ।

४ वही पृष्ठ ६५ ।

मिली उसका मन पर जो प्रभाव पडा उसी की अनुभूति वह स्पष्ट ज्ञान है जो उस स्थान का अनुभव नही है । ऐसा ही भ्रम हमको शब्द रूप रग आदि के बारे मे होता है । ऐसी धारणा मन की प्रवत्ति तथा बुद्धिमत्ता दोनो के विपरीत है ।[१] सचेतन बुद्धि अथवा मन के विकास मे, मन के धुँधले प्रकाशमय जीवन से उसके परम प्रकाशमय जीवन तक पहुँचने का क्रम निर्धारित करना बडा कठिन है ।

मन की गति बडी विचित्र है । इसको आसानी से समझा भी नही जा सकता । ऐडम स्मिथ ऐसे विद्वान् लेखक ने अपनी एक विख्यात पुस्तक मे मन की गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न किया है । उन्होने लिखा है कि मन की जो भावना शब्दो से व्यक्त होती है उसकी असलियत का पता शब्दो के अर्थ से या चेहरे की आकृति से नही लग सकता । उन्होने उदाहरण दिया है कि मान लीजिए हम किसी व्यक्ति पर क्रोध कर रहे हो हमारे मन म उसके प्रति उग्र विचार उठ रहे हो । पर, केवल क्रोध करना भी या केवल बुरा कहना भी क्रोध तथा निन्दा का कारण नही हो सकता । हो सकता है कि दूसरे व्यक्ति के प्रति सहानुभूति या उसके प्रति दयावश भी हमको क्रोध आ सकता है । अतएव क्रोध क शब्द क्रोध की आकृति—ये दोनो ही प्रेमवश हो सकते ह । इनका रहस्य जानने के लिए परिस्थिति को समझना होगा ।[३]

प्राचीन यनानी तथा रोमन पडितो का विश्वास था कि इस सष्टि को एक अच्छे तथा बुद्धिमान देवता ने बनाया है । अपने काम में सहायता के लिए उसने अपने अन्तगत छोटे छोटे देवता भी बना रखे ह । दुनिया मे जो कुछ रचना है उसमे दुष्टता को छोड कर सब कुछ भगवान का बनाया हुआ है । जेनो तथा क्राइसिप्पस ऐसे विद्वानो का कथन था कि ससार मे जो कुछ हो रहा है वह विधाता के आदेशानुसार । ससार में अच्छाई तथा बुराई का वसे ही साथ है जैसे प्रकाश तथा अन्धकार का । यदि अच्छे व्यक्ति के साथ बुराई होती है तो यह नही समझना चाहिए कि वह किसी अपराध का दण्ड है पर विधि के किसी विधान का परिणाम है । फिर हम जिसे बुरा कहते ह वह हमारा भ्रम हो सकता है । बुरा नही भी हो सकता है ।[४]

१ वही, पृष्ठ ७० ७१ ।

२ वही, पृष्ठ १२३ ।

३ Adam Smith (जन्म सन् १७२३)— Theory of the Moral Sentiments Part I 'Of the Propriety of Action"

४ Alexander Bain— Mental & Moral Sciene —Part II Longman Green & Co London 1884 pages 516-22

बहुत सी चीजे ऐसी है जिनकी परिभाषा करना कठिन है। व्याख्या करने चलिए तो एक पर एक तर्क निकलता चलता है। सुकरात ने सत्कार्य की व्याख्या करनी चाही। व्याख्या करते करते वे इस तक पर पहुंचे कि सत्कार्य का अर्थ है साहस। साहस क्या है? किसे कहते है? बस बात उलझती चली गयी। सुकरात की दृष्टि से संसार में केवल एक ही व्यक्ति बुद्धिमान है--वह है भगवान। प्लेटो सत्कार्य की व्याख्या करने चले तो उन्होंने कहा कि जिससे दूसरे का लाभ हो और अच्छा काम हो। पर दूसरे का लाभ किसमें है? लाभ की व्याख्या के तर्क में पड़िए।[1] बहुत से लोग पीड़ा से मुक्ति को ही लाभ समझते है सुख की परिभाषा समझते है। पर सुख की खोज में मनुष्य अपने को कितना पीड़ित करता है। ऐसी स्थिति में ताप परम सुख में कहा गया है। इसलिए लाभ की सही व्याख्या होना चाहिए।[2] दार्शनिक कांट ने मन की संकल्प शक्ति पर जोर दिया है और सत्कार्य में मन की स्वातन्त्र्य की हिमायत की है। किन्तु सचेतन मन संकल्प करता है या अचेतन? जब वह सचेतन वस्तु होगा तभी संकल्प कर सकेगी। डा० अलेक्जेन्डर बेन के कथनानुसार मन एक अद्भुत सचेतन वस्तु है। मन की शक्ति का कारण चेतना है। नैतिक शास्त्र का मुख्य तथ्य है मानव की सुख समृद्धि। मन का संकल्प इसी तथ्य की पूर्ति करता है।[3]

अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में प्रो० मल्लिक कहते है कि संसार में आज जो भी विपत्ति है वह केवल अस्ति तथा नास्ति का झगड़ा है।[4] एक पक्ष कहता है कि हम जो कुछ दिखाई पड़ता है जो कुछ अनुभव होता है वह वास्तव में है। उसकी सत्ता है। दूसरा पक्ष कहता है जो कुछ है सब माया है मिथ्या है नहीं है भ्रम है। एक तीसरा पक्ष कहता है कि है भी और नहीं भी है। चौथा पक्ष कहता है कि बिना है के नहीं नहीं हो सकता। बिना नहीं के है नहीं हो सकता। मल्लिक लिखते है कि शुरू से जितने दार्शनिक हुए तथा जितनी दार्शनिक विचारधाराएं निकली है सबका एक ही परिणाम हुआ है--मानव के विचार में भयंकर भ्रान्ति पैदा हो गयी है। विचारों का गड़बड़झाला हो गया है। जिन लोगों ने अपनी प्रतिभा से ऐसी गड़बड़ी दूर करने का प्रयत्न किया वे स्वयं भयानक भ्रान्ति में पड़ गये। संशयात्मा लोगों के मन में ना विचार साथ ही साथ उभड़ते रहते है--

[1] वही, पृष्ठ ४६४ ६५

[2] वही पृष्ठ ५२७

[3] वही पृष्ठ ४२ ४३१

[4] B K Mallik— The Real and the Negative George Allen & Unwin Ltd London 1940 page 17

एक तो यह कि ससार मे जो कुछ है सब मिथ्या है । दूसरा— वास्तविकता के रहस्य इतने गूढ है कि उनका पता नही चल सकता । [१] इसलिए मानव की विचारधारा का नियम जहाँ तक अस्ति का सम्बध है 'है तथा वास्तविकता का सम्बध है—दो भागो मे विभाजित है—

अ—वास्तविक सत्यता का क्षेत्र ।

ब—सम्भावना का क्षेत्र ।

हमारी समूची मनावज्ञानिक क्रिया इसी के भीतर होती रहती है ।[२] किन्तु, जो कहता है कि है सम्भव है नही है —सभी एक स्थान पर मिलते है— है' या नही है या सम्भव है —सभी विचार के लाग निश्चयात्मक रूप से बात करते है । यानी काई भी अपने सिद्धान्त को अनिश्चित दशा में नही छोडना चाहता । सभी निश्चित रूप से निणय कग्ना चाहते ह । प्रत्येक विचार का लक्ष्य किसी निश्चय' पर पहुँचना है । विचार ही मन का दूसरा नाम है । विचार का अथ है मन ।[३] यदि मन का काय विचार करना मोचना न हो ता मन की जरूग्त ही क्या है । प्रसिद्ध फ्रेंच दाशनिक देकार्ते[४] का कथन था कि यदि मनुष्य को बुद्धि सशयात्मक न हो तो उसे मन की आवश्यकता ही नही है । मन की भूमि पर सभी सदेह तथा शकाए क्रीडा करती ह ।[५] शका और सन्दह के बीच से ही मन असलियत तक पहुच पाता है । पर यह प्रश्न उठता है कि जब असलियत तक पहुच गये तब क्या मन की जरूरत ही नही रह जाती ? क्या मन की सत्ता समाप्त हो जाती है ? विचार करते रहने की मन म अन्तर्निहित शक्ति है । मल्लिक कहते ह हम इतना ही कह सकते ह कि नियमित रूप से सशय की क्रिया करते रहने पर भी तथा सशय की क्रिया समाप्त हो जाने पर भी मन बना रहता है । इससे अधिक कुछ कहना कठिन है । [६] मन को मारने की बात तो भारतीय दशन मे बार बार कही गयी है । पर विचारा की गति को राक लन को ही चित्तवृत्तिनिरोध' कहा गया है । चित की वत्तिया का निरोध करने पर भी चित्त बना रहता है । इसी दशा का गीता म स्थितप्रज्ञ कहा है तथा बौद्धो ने बोधि सत्त्व कहा है । पश्चिमी विद्वान् मन तथा चित्त के भेद को नही समझते । इसी लिए वे सशयहीन मन की सत्ता भी नही समझ पाते ।

हम जो कुछ विचार करते ह उसके तीन ही रूप होगे—

१ वही, पृष्ठ १८ । २ वही, पृष्ठ १९४ ९५ । ३ वही, पृष्ठ ३३ ३४ ।
४ Descartes ५ वही, पृष्ठ ३२ । ६ वही पृष्ठ, ३५ ।

(अ) वास्तव में ऐसा हो सकता है।

(ब) वास्तव में यह सम्भव हो सकता है।

(स) इसकी आवश्यकता है।

सभी विचार घूम फिरकर इसी दायरे में रहते हैं।[1] निश्चित रूप से क्या होना चाहिए या करना चाहिए इसका निर्णय न होने से ही मन का समूचा संघर्ष उसके भीतर की आपाधापी होती है।[2] अस्ति और नास्ति के बीच में जिस मन में एक-स्वरता तथा समन्वय का भाव पैदा हो गया है उसी को ऐसी मन की शान्ति मिल सकती है।

मन के भीतर के ऐसे ही संघर्षों को लेकर व्यक्ति पनपता है या बनता है। एक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति से इसी मानसिक संघर्ष की समानता या एक स्वरता के कारण है। हमारे मन में जो शंका है दूसरे के मन में जब शंका होती है तो उसी के द्वारा हम एक दूसरे के मित्र या शत्रु बन जाते हैं। विचारों अथवा आदर्शों की समानता से ही मनुष्य एक दूसरे के निकट आते हैं। इसी प्रकार सभ्यता तथा संस्कृति तथा सामाजिक एकता बनती है। यह सृष्टि अनादि है। प्राणी अमर है। चूंकि वह निरन्तर सन्देह में पड़ा हुआ है उसने अपने अविश्वास तथा सन्देह को मूर्तिमान राक्षस बना रखा है।[3] उसे जो कुछ बुरा मालूम होता है उसको उसने आसुरी शक्ति का ही परिणाम मान रखा है। असल में यह राक्षस स्वयं उसके भीतर है उसका निजी सन्देह का भाव है। मानवस्वभाव निरन्तर एकता की ओर एक भावना तथा विचार की ओर बढ़ता चलता है बढ़ता चल रहा है। इसमें व्याघात भी होता रहता है। उसके भीतर का राक्षस अनैक्य तथा संघर्ष भी उत्पन्न करता रहता है। मन के भीतर के संघर्ष का परिणाम है कि सृष्टि के आरम्भ में दो ही प्रकार के प्राणी रहे—एक तो वे जो अपने संशय तथा सन्देह से सदैव संघर्ष करते रहे यानी योद्धा। दूसरे वे जो एक निश्चित विश्वास लेकर उसी पर सत्व मनन करते रहे जैसे साधु। योद्धा तथा साधु (तपस्वी) के अतिरिक्त संसार में और किसी श्रेणी का मानव नहीं पैदा हुआ है न होगा।[5]

जाने या अनजाने संसार के बन्धनों से छुटकारा पाना ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य रहा है।[6] हर एक व्यक्ति सौन्दर्य शान्ति तथा सत्य की खोज में है। यह खोज ही मनुष्य का प्रारम्भिक संकल्प रहा है। इस संकल्प के लिए ही ऐसे मुख से शब्द निकले या

१ वही पृष्ठ १८[illegible]। २ वही पृष्ठ [illegible]। ३ वही पृष्ठ २८७।
४ वही पृष्ठ १२८। ५ वही पृष्ठ [illegible]६। ६ वही पृष्ठ [illegible]९९।

मन के भीतर वाणी हुई[1] जिसे मन्त्र कहते हैं। मनुष्य ने अपने से ऊपर एक सर्वशक्तिशाली सत्ता को एक परमात्मा को स्वीकार किया। यह सत्ता उसके लिए भय, श्रद्धा तथा प्राप्ति का कारण बनी। इसे प्रसन्न करने या प्राप्त करने के लिए उपासना पूजा का विधि विधान मनुष्य ने बनाया। ऐतिहासिक दृष्टि से सौंदय, शांति तथा सत्य के विचार तथा भावना की ओर यानी दवी शक्ति की जिस वस्तु में निकटतम रूप से मनुष्य ने प्रतिष्ठा की उनका प्रतीक बनाया वह है प्रतिमा। ईश्वर की सत्ता को निश्चयात्मक रूप मे कलेवर प्रदान करनेवाली प्रतिमा है। यह यानी प्रतिमा केवल विचारजन्य वस्तु है स्वयं सत्य नहीं। इसे हम ईश्वर के साथ सम्बन्धित सत्य शांति तथा सौंदय का प्रतीक मान सकते हैं उपकरण मान सकते हैं स्वयं सत्य शांति तथा सौंदय नहीं कह सकते।[2] प्रतिमा की उपासना उस वस्तु मे स्वयं दवत्व उत्पन्न करना या दवत्व प्रदान करने का प्रयत्न मात्र है।[3] मन के संशय ने संकल्प को जन्म दिया। संकल्प ने वाणी को जन्म दिया। वाणी से उपासना पदा हुई। उपासना ने प्रतीक के रूप मे प्रतिमा बना दी। प्रतिमा सत्य नहीं है। सत्य का प्रतीक है। इसके द्वारा मानसिक संघर्षों मे एकता विचारों में एकता तथा सामाजिक भावना में एकता पदा होती है। इस एकता या संघर्ष के बीच एक स्वरता पदा करने के लिए हर एक देश मे मानव ने अपनी अन्तःप्रेरणा मे प्रतिमा का प्रतीक स्थापित किया।

प्रतिमा में विश्वास कसे पदा हुआ? विश्वास केवल इन्द्रियों से ही नहीं उत्पन्न होता।[4] इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान के कारण ही विश्वास नहीं उत्पन्न होता। विश्वास केवल तर्क मे बहस मुबाहसे से ही नहीं पदा होता।[5] विश्वास कल्पना से भी पदा होता है।[6] आग के छूने से हाथ जलता है ऐसा विश्वास आग के छूने से या यह तर्क करने से कि चूंकि आग का गुण है जलाना इसलिए आग हाथ को भी जला सकती है—या इस कल्पना से कि आंचवाली आग हाथ को जलायेगी ही—विश्वास बन सकता है। बात घूम फिरकर हमारे मन में उठनेवाले विचार पर निर्भर करेगी या नहीं?[7] क्या हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया मन मे उठनेवाले विचारों के कारण ही होती रहती है? यह सभी जानते हैं कि मन स्वयं अस्थिर वस्तु है। विचार भी अस्थिर है। मन घोड़े की तरह से दौड़ता रहता है। मन मे उठनेवाले विचार इतने अस्थिर तथा गतिशील हैं उसमे हर

१ वही पृष्ठ ५००। २ वही पृष्ठ ४९७। ३ वही पृष्ठ ४९७।

४ David Hume— A Treatise on Human Nature Clarendon Press Oxford 1927 pages 188 193

५ वही पृष्ठ १९३। ६ वही, पृष्ठ १९४। ७ वही पृष्ठ ११९।

एक चीज की विशेषकर भले-बुरे की मूर्तियां इतना अधिक चक्कर काटा करती हैं कि वह (मन) मन्द भागता फिरता है इसलिए यदि मनुष्य मन में उठनेवाले प्रत्येक विचार पर कार्य करता रहे तो उसको (मन को) एक क्षण के लिए भी शान्ति तथा स्थिरता न प्राप्त हो सकेगी।[१]

इसी लिए प्रकृति ने एक ऐसा माध्यम बना दिया है कि जिससे हर भले-बुरे विचार के उठने पर कार्य करने की इच्छा को प्रेरणा नहीं मिलती तथा साथ ही इच्छा एकदम ऐसी प्रेरणा से रहित भी नहीं होती।[२] हम अपने अनुभव से देखते हैं कि किसी भी विचार के साथ एक धारणा भी पैदा हो जाती है। यह धारणा उस विचार से सम्बन्धित ऐन्द्रिक अनुमति तथा दृष्टिकोण से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। धारणा का दृष्टिकोण से तथा दृष्टिकोण का विश्वास तथा आस्था से सम्बन्ध होता है। इसलिए धारणा के प्रभाव से विचार विश्वास के साथ बंध जाता है। जब मन ऐसा न होने पर मन में इच्छा हो सकती है कि किसी की जेब से पैसा निकाल लो। पर इस क्रिया में विश्वास बाधक होता है। विश्वास विचार को समझा देता है कि जेब काटना बुरी बात है। इसी प्रकार हमारे जीवन में विश्वास विचार को अपने दायरे में रखता है। विश्वास अच्छा और बुरा दोनों ही हो सकता है। विचार तथा विश्वास के बीच की कड़ी धारणा है। धारणा से ही भ्रम बना है। इसलिए जहाँ पर भ्रम ने विश्वास को प्रभावित किया वहीं से आदमी अच्छे मार्ग पर चलेगा।

किसी वस्तु को बराबर देखते रहने से उसके विषय में अनुभव दृढ़ होता है।[३] तभी यह पता चलता है कि किसी चीज के और बाहरी रूप वास्तविकता में अन्तर होता है।[४] मिट्टी का बना हुआ फल बिना अनुभव किये दूर से असली फल ही मालूम होगा। मूर्ख व्यक्ति जो कुछ देखने में आता है उसी को सत्य मान लेता है। कल्पना में हर एक भावना सत्य प्रकट होती है। पर बिना अनुभूति की भावना विश्वसनीय नहीं होती। अपने अज्ञानवश मनुष्य यह नहीं सोचता कि यह चीज देखने में ही ऐसी लगती है।[५] किन्तु दृष्टि अनावश्यक वस्तु नहीं है। हम किसी चीज को देखकर उसकी मूर्त्ति बनाकर मन के सामने रख देते हैं। तभी मन को उस चीज की जानकारी होती है।[६] दृष्टि केवल आँखों की ही नहीं होती। आँख स्पर्श स्वाद (स्वाद) आदि से भी देखा जाता है। इसलिए स्पष्ट है कि विचार कल्पना भावना दृष्टि अनुभूति इन सबके सम्बन्धित

१ वही, पृष्ठ ११९। २ वही पृष्ठ ११९। ३ वही, पृष्ठ १९४।
४ वही पृष्ठ १९९। ५ वही पृष्ठ १९ ९१ ६ वही पृष्ठ २३९।
७ वही पृष्ठ २३६।

समुच्चय को मन कहते हैं ।[१] मन एक प्रकार की नाटयशाला है जिस पर हर प्रकार के विचार अपना अभिनय कर रहे ह ।[२] यह एक प्रकार का वाद्य यन्त्र है जिसमें राग की—विकार की—ध्वनि जब तक होती रहती है, वह बजता ही रहता है । ज्यो ज्यो राग-द्वेष का विकार कम होता जाता है, झकार कम होती जाती है ।[३]

डेविड ह्यूम की बडी पुस्तक का निचोड हमने ऊपर दे दिया । अब उससे यह स्पष्ट हो गया कि वे भी भारतीय दशन के समान मन को एक रगशाला मानते हैं जिसमे विचारो को रग बिरगी तस्वीरें नाचती रहती है । उस मन का सृष्टि का रहस्य वास्तविकता विश्वास तथा धारणा के दायरे मे बाँधने के लिए एक ओर मत्र है तो दूसरी ओर यत्र है प्रतीक है प्रतिमा है । जो ~यक्ति जिस भाषा को समझता है, उसी भाषा म उससे बात करनी चाहिए । मन तस्वीरो की मूर्त्तियो की भाषा समझता है । अतएव उसके लिए प्रतीक से बढकर बोधगम्य और कुछ नही हो सकता । प्रतीक का शास्त्र मन की शिक्षा का शास्त्र है ।

यहाँ पर एक प्रश्न हो सकता है । यदि मन के रगमच पर चित्र बनते और बिगडते रहते ह तो क्या ऐसे चित्र बना लेना मन का सहज स्वभाव है या धारणा तथा अनुभूति विश्वास तथा धारणा का परिणाम है ? यह कहना तो बहुत कठिन है कि मन के अन्त पट पर पहला चित्र कब तथा कसे बना । बच्चे के मन पर जब पहला चित्र बना होगा उस समय उसे कैसा अनुभव हुआ होगा ? पर यह कोई नही कहता कि ये चित्र स्थिर ह निश्चित है । अस्थायी तथा अनित्य वस्तु किसी-न किसी रूप मे अनुभव से ही प्रारम्भ होगी । अनुभूति ही आगे चलकर स्वभाव का अग बन जाती है । जो चीज़ स्वभाव म आ जाती है जिस चीज़ की आदत पड जाती है उसमें इच्छा या सकल्प की आवश्यकता नही होती । हमारे जीवन म ऐसे अनगिनत काम होते ह जिनके लिए इच्छा करने की आवश्यकता नही होती सब आप-से आप होता रहता है । इसका एक उदाहरण डा० बेटस न अपनी पुस्तक मे दिया है । व कहते है कि एक पर्दे पर छ कोणवाला सितारा बना दीजिए। उसे एक आइने के सामने इस प्रकार टागिए कि आप पर्दा तथा आइने के बीच मे बैठे पर सितारा आइने मे प्रतिबिम्बित होता रहे । अब उस पर्दे पर बने सितारे को आइने म देखते रहिए और सामने पेंसिल कागज़ रख लीजिए । कागज़ की ओर बिना देखे सितारे का चित्र बनाइये । पहले कई भूल होगी । दो चार बार के अभ्यास के बाद आइने म बिना देखे कागज़ की ओर बिना देखे ही, उँगलियाँ आप से आप सितारा बना देगी

१ वही, पृष्ठ ६३६ । २ वही, पृष्ठ २५३ । ३ वही, पृष्ठ ५७६ ।

जिसमे कोई भूल नही होगी । यह काम उगलिया न मत्रवत किया । न तो मन म कोई इच्छा करनी पडी न कोई चित्र देखना पडा और न मन के अन्त पट पर कोई चित्र बनाना पडा ।[1]

चित्रा मे सोचनेवाला मन के सामने एक चित्र रखकर उस चित्र को स्वभाव का अग बनाकर फिर चित्र की सत्ता को मन मे समाप्त करने का काय प्रतीक करता है । प्रतीक चिह्न लक्षण सबकी यही महिमा है । प्रतीक के रूप मे यन्त्र लिखाकर मन्त्र दकर या प्रतिमा बनाकर फिर इन तीनो को समेट कर मन के अन्त पट को शून्य बनाकर आत्मा म लीन कर देने की कला ही **प्रतीक शास्त्र** है ।

मन की पहेली बडी विचित्र है । डा बटस ने स्पष्ट लिखा है कि ससार के जो भौतिक पदाथ हम दिखाई पडते ह जिनको इन्द्रियो के द्वारा समझा तथा जाना जा सकता है वे तो समझ मे आ सकते ह पर मन की गुत्थी सुलझाना कठिन है । वह न तो दिखाई देता है न इन्द्रियो के द्वारा नापा-तौला जा सकता है । मन के साथ चेतना लगी हुई है । चेतना भौतिक पदाथ नही है । हम अपने मन को किसी प्रकार जान सकते ह पर दूसरे के मन को न तो हम जान सकते ह और न पहचान सकते ह ।[2] हमारे और आपके मन के बीच म जो बडी भारी खाई है इसे कसे पार किया जाय ?[3] मन क्या है चेतना क्या है--इन दोनो चीजो को समझाया नही जा सकता । स्वय अपने मन के भीतर बैठकर अपनी चेतना के भीतर ही टटोलने से जानकारी हो सकती है ।[4] जिसे हम दिमाग या मस्तिष्क या अग्रजी म ब्रेन (Prain) कहते ह वह मन से भिन्न वस्तु है । मस्तिष्क से मन नही बनता । मस्तिष्क मन को नही पैदा करता । मन

१ George Herbert Bett Ph D The Mind and its Education —D Appleton & Co New York 1925 pages 326 327

२ वही पृष्ठ १ । ३ वही पृष्ठ २ । ४ वही, पृष्ठ २ ।

मस्तिष्क के यत्र से काम लेता है ।[१] मन कोई वस्तु नही है क्रिया है प्रणाली है विधान है ।[२] इस मन मे विचारो की तरगे अनरवत रूप से उठती रहती है । जो तरग सबसे ऊपर उठ गयी वही विचार उस समय मन को सबसे अधिक प्रभावित करता है और मन उसी के अनुकूल मस्तिष्क को आदेश देकर काम लेता है । मन की चेतना की तीन श्रेणियाँ हुईं—[३]

१ देखना—द्रष्टा—परिस्थिति इत्यादि को देखना ।

२ जानना—ज्ञाता—वस्तु स्थिति की जानकारी तुलनात्मक विचार याद रखना कल्पना करना इत्यादि ।

३ विशिष्ट अनुभूतियाँ—जसे उदासीनता दु ख सहानुभूति, दया सदभावना, क्रोध इत्यादि ।

इन सब चीजो को मिलाकर एक पर एक विचार तरग उठती रहती ह । कि तु ऐसी तरग केवल विचारा की ही नही होती । इद्रिया की अनुभतियाँ भी तरगमय ह । सूय की रश्मिया की अरबा किरणे एक साथ हमारी आंखा की पुतलिया पर पडती ह । तुरत चक्षु इद्रिय म गति उत्पन्न हा जाती है और प्रकाश की ये किरणे पुतलियो मे पठकर देखने की शक्ति पदा करती ह । ऐसी ही गतिशीलता एसी ही तरग शब्दा से उत्पन्न ध्वनि से भी पदा होती है । ध्वनि से उत्पन्न कम्पन की गति ४० ००० तरग प्रति क्षण होती ह । उसी कम्पन से कान की इद्रिय सुनने लगती है । एसे ही कम्पन ऐसी ही तरग हमारी इद्रियो को क्रियाशील बनाकर मन का भी प्रभावित करती रहती है ।[४]

देखन छून सुनने या अनुभव से हमारे मन में सुख या दु ख की भावना पदा होती है । यदि चिन्ता पदा हुई ता चि ता के बाझ से दबी चेतना अथवा मन भी बोझिल हो जाता है । उसके बोझ की जानकारी मस्तिष्क को हो जाती है । फलत मारे चिन्ता के हमको रात भर नीद नही आती इसलिए कि इद्रिया को शान्त कर सुला देने का काम मस्तिष्क नही कर रहा है ।[५] बच्चा जब पदा हाता है तो उसकी चेतना उसका मन सुप्त अवस्था में रहता है । मा के पेट से वह रोता चीखता नही निकलता । बाहर निकलन के कुछ क्षण बाद पीडा की अनुभूति से वह रोना शुरू करता है । पदा होने के समय वह अधा बहरा, स्पर्श आदि की भावना से शून्य रहता है । इन्द्रियाँ सभी वतमान रहती हैं चेतना भी है मन भी है मस्तिष्क भी है । पर बाह्य जगत की कुछ भी अनुभूति न होने के कारण

१ वही, पृष्ठ ३२ । २ वही, पृष्ठ ५ । ३ वही, पृष्ठ १० ।
४ वही पृष्ठ ४५ से ४९ । ५ वही, पृष्ठ ६२ ६३ ।

वह ज्ञान शून्य रहता है । धीरे धीरे उसम प्रकाश की अनुभूति होती है । वह दखन लगता है । फिर सुनन की ताकत आती है । स्पश का अनुभव और भी बाद म होता है ।[१] इसस यह स्पष्ट हो गया कि चेतना का जगान क लिए मन में गति उत्पन्न करन के लिए भौतिक पदाथ बाहरी चीज दिखाई सुनाई पडनवाली चीज जरूरी ह । इसी लिए मनुष्य के नान क लिए आंख से दिखाई पडनवाल प्रतीक की आवश्यकता है । जो बाहरी चीजे चेतना का जाग्रत करती ह वही सुला भी सकती ह । जो मन में गति उत्पन्न करता है वही मन को शान्त भी कर सकता है । प्रतीक गति उत्पन्न करता है ज्ञान पदा करता है और विचार की तरगो के झाक से उसे बचाकर एकाग्र कर देता है ।

किन्तु ससार म हर एक काय सोच समझ कर विचार करके या प्रेरणावश या आपसे आप नहीं हो जाता । ऐसी भी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती ह जब मन कुछ कहता है विचार कुछ कह रहा है परिस्थिति कुछ और कह रही है और हमारा स्वभाव कुछ कह रहा है फिर भी हम अनायास अपन मन का बाध्य कर इन सबके अलावा कोई काय करा लेते है ।[२] दो आदमी लड रहे ह । हमन यह उचित समझा कि इनका झगडा निपटा द । प्रेरणा हुई कि झगडा निपटान का प्रयास किया जाय । शरीर ने आज्ञा का पालन किया । हम उन लडनवालो के बीच म कूद पड । किन्तु झगडा निपटाने के लिए जानेवाला स्वय झगडने लगता है । सिर फोडने से रक्षा करनवाला स्वय दूसरे का सिर फाड देता है । ऐसी दुबल परिस्थितियो स मन का बचान क लिए ही चित्त का सयमित करने की शिक्षा दाशनिको ने दी है । सयम का सबसे बडा साधन चिन्तन है । आत्म चिन्तन हर एक की शक्ति के बाहर है । इसी लिए पूजा पाठ द्वारा चिन्तनशक्ति पदा की जाती है । पर यह शक्ति आसानी से नहीं आती । इसे प्राप्त करन क लिए सहारे की जरूरत होती है । मानव क इतिहास म चित्त का सयमित करन के लिए सबस महत्त्वपूण साधन प्रतिमा को बनाया गया । प्रतिमा की कल्पना ही मन का सयम का प्रतीक प्रदान करन के लिए हुई ।

हर देश तथा सभ्यता के मनुष्यो का मन सम्बन्धी समस्या एक प्रकार की थी है और रहेगी । इसी लिए उस समस्या का सुलझान क लिए उनके उपायो म भी बहुत कुछ समानता मिलती है । प्रतिमा के सम्बन्ध म प्रतीक के सम्बन्ध म चिह्न तथा लक्षण के सम्बन्ध म भी ऐसी ही बात पायी जाती है । प्राचीन देशो का इतिहास इसका साक्षी है ।

१ वही, पृष्ठ ३३ । २ वही पृष्ठ ३२८ ३ ९ ।

प्राचीन देशों की समान विचारधारा

मानव के इतिहास तथा सभ्यता के इतिहास की जबसे जानकारी है ससार मे दो ही जातिया पायी जाती है—आय तथा अनाय । लोकमान्य तिलक ने आर्यों का आदि देश साइबेरिया प्रदेश माना है[१] डा० सम्पूर्णानन्दजी भारत ईरान की भूमि मानते ह ।[२] किन्तु इस विवाद में पडने की जरूरत नही है । आय लोगो ने ससार में चारो ओर फलकर अपनी सभ्यता का विस्तार किया । कृण्वन्ता विश्वमायम। अनार्यों तथा असभ्यो को सभ्य बनाया । किन्तु अनार्यों की भी अपनी सभ्यता तथा सस्कृति थी । वे एकदम असभ्य तथा जगली सब जगह नही थे । श्रीमती मरे आसले का यह कथन एकदम गलत है कि भारत मे जो अनाय ह वे एकदम असभ्य ह । उनमें न तो आत्मसम्मान है और न स्वाभाविक बुद्धि ।[३] यह अवश्य है कि आय अनाय के रूप रग नाक नक्शा में बडा अन्तर है ।

श्रीमती मरे आसले की मृत्यु ७२ वष की उम्र म हुई थी । वे ब्रिटिश महिला थी । इन्होन पचास वर्षो तक यूरोप एशिया के कोने कोने की परिक्रमा कर इनकी सभ्यता तथा शिष्टता का अध्ययन किया था । सन् १८७५ से १८६७ तक इन्होने दस बार भारत की यात्रा की थी । इसलिए इनके अनुभव तथा ज्ञान की गहराई मे किसी को सन्देह नही हो सकता । पूव तथा पश्चिम के प्रतीक पर इनकी पुस्तक अपने विषय की अनमोल पुस्तक है । जाज बडउड के कथनानुसार अपनी भारत की यात्रा मे श्रीमती मरे ने स्वस्तिक प्रतीक पर बहुत अधिक सामग्री सकलित की थी—बौद्ध मुसलमान तथा हिन्दुओ से ।[४] वे लिखती ह—

१ Tilak Arctic Home of the Vedas

२ डॉ० सम्पूर्णानन्द—आर्यों का आदि देश।

३ Mrs Murry—Ayusley Symbolism in the East & West George Redway London 1900 page 2

४ George Birdwood—Introduction to the Symbolism of the East & West page XV

स्कन्दिनविन देशो में[1] जिसे पत्थर का युग[2] कहते थे न्यूजीलैण्ड के आदिम निवासियों में आजकल भी तथा अफ्रीका के कतिपय भागों में वर्तमान समय में जो कला या रीति रिवाज पाये जाते हैं (पत्थर के युग से लेकर आज तक) उनमें बहुत कुछ समानता है यद्यपि वे भिन्न देशों के भिन्न वर्ग तथा जाति के लोगों की चीज हैं। किन्तु उनकी कला वहाँ तक विकसित हो पायी है जहाँ तक कि वह उनके जीवन की नितान्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। किन्तु जहाँ तक मध्य एशिया तथा यूरोप की अधिक सभ्य जातियों का सम्बन्ध है ऐसा प्रतीत होता है कि इनका रीति रिवाज कला आदि का आधार स्रोत एक ही रहा है।[3]

श्रीमती मरे के अनुसार आज के ३ से ५ हजार वर्ष पहले पत्थर का युग था। लोग केवल पत्थर का उपयोग करना जानते थे लोहा इत्यादि का नहीं। उन लोगों की निशानी अब भी फिन लैप्स न रो एस्किमो जातियाँ यूरोप में पायी जाती हैं जिनके आजकल के भी औजार इत्यादि पाँच हजार वर्ष पुराने के समान हैं। इस सामानों को स्कंडिनविया की प्राचीन कब्रों तथा दलदलों में से आज भी प्राप्त किया जा सकता है। जिन लोगों को धातु का उपयोग नहीं मालूम था जो केवल पत्थर का ही उपयोग करते थे वे ही अनार्य हैं।[4] ऐसी आरम्भिक जातियाँ यूरोप एशिया में हर जगह मौजूद थीं। ये लोग पत्थर की प्रतिमाओं की पूजा करते थे। उस समय आर्य भी मौजूद थे परन्तु कुछ लोगों के इस कथन को श्रीमती मरे नहीं मानती कि आर्यों की प्राचीन शिवलिंग उपासना करनेवाले (वे प्राचीन शैवों को अनार्य समझती हैं) साइबेरिया तथा रूस के घने जंगलों के मार्ग से यूरोप पहुँच और उन्हीं की सभ्यता के द्वारा पत्थर की प्रतिमा का पूजन यूरोप पहुँचा। किन्तु वे यह स्वीकार करती हैं कि ऐतिहासिक काल के पूर्व की कला के जो अवशेष डेनमार्क नार्वे तथा स्वीडन के अजायबघरों में प्राप्त हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि हजारों वर्ष पूर्व मध्य एशिया से आर्यों ने यूरोप के लिए दो बार विशद अभियान किया था। दो बार आर्य जाति की धारा मध्य एशिया से यूरोप की ओर बहकर आयी। पहली धारा ईसा से १००० वर्ष पूर्व आयी होगी। इसी को केल्टिक जाति[5] कहते हैं। ये लोग साइबेरिया तथा रूस के मार्ग से यूरोप पहुँचे। ये लोग पत्थर के बजाय काँसे का प्रयोग करते थे। उस वक्त के उनके जो आभूषण यूरोप में मिलते हैं वे आज भी एशिया में उपयोग में आनेवाले सोने चाँदी के गहनों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। काँसे के युग के लोग स्वर्ण के उपयोग से परिचित थे इसका काफी प्रमाण है। आर्यों की दूसरी धारा में लोहे के हथियारों का

१ स्वीडन और नार्वे। २ Stone Age ३ वही पुस्तक पृष्ठ १।
४ वही पृष्ठ २। ५ Keltic Race

उपयोग सिद्ध होता है । वे लोग भी सोना चाँदी काम मे लाते थे । इन आर्यों के प्रभाव से ही *स्वेडन तथा नार्वे में आज से हजारा वष पूव भी स्वण का काफी उपयोग होता था*—गहना बनाने मे पूजा के बतन बनाने मे मृतकसस्कार में तथा यापार के लेनदेन में । सोने के टकडे काटकर वे साथ में रखते थे—सामान खरीदने के लिए । सिक्के के उपयाग का यह आरम्भिक रूप था । स्वेडन नार्वे मे लौह-युग के लोगो को गोथ[1] जाति कहते है । इनका समय ईसा के १०० वष बाद का है । ईरानी इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार आय लोग दाढी रखते थे । जिनके दाढी नही थी वे अनाय थे । महेजोदडो तथा हडप्पा की (सि ध मे) खुदाई से बिना मूछ पर दाढी रखनेवाल खिलौने तथा मूर्त्तियाँ मिलती ह ।

देश विदेश के लोगा मे समानता की अनेक बाते मिलती है । अनार्यो म फिन लाप्प एस्किमो आदि की सूरत शक्ल, हजारा मील का फासला होने पर भी बहुत कुछ मिलती जुलती है । कई हजार मील दूरी पर हिमालय के गभ में रहनेवाले स्पिती तथा लाहुल घाटिया के निवासिया की सूरत शक्ल ऊपर लिखे लोगो से बहुत मिलती जुलती है । स्वडन नार्वे की कासे के युग की प्राचीन कब्रा म ऊनी बुना हुआ सामान मिला है । आज भी उन देशो मे किसानो की स्त्रियाँ वैसा ही बुनती ह । भारत में कुलू घाटी मे स्त्रिया को जा वेश भषा है वसी ही सहारा (अफ्रीका) के रेगिस्तान मे घम तू जाति की स्त्रियो की पोशाक है । प्राचीन तथा अर्वाचीन गहना म ता बहुत ही समानता पायी जाती है । *पश्चिमी तिब्बत में तथा लद्दाख मे बौद्ध भिक्षु यानी लामा लोग एक विशेष नत्य करते है ।* इस अवसर पर वे जसा रग बिरगा जडाऊ आदि का कपडा पहनते है वसी ही पोशाक दक्षिण भारत के विशाल म दिरो के मुखद्वार पर बने द्वारपालो की है । लका मे बौद्ध लोग एक ऐसा धार्मिक नृत्य करते थे जिसे शतान का नाच कहा जाता था । ऐसे अवसर पर नाचनेवाले विभिन्न प्रकार के चेहरे (मास्क) लगा लेते थे । चेहर पर एसी आकृतिया बनी रहती थी जिनसे भिन्न प्रकार की शारीरिक पीडाओ की पहचान होती थी । किसी आकृति से रोग का किसी से अधेपन का किसी से शरीर मे कम्पन का पता चलता था । ऐसे पुराने चेहरे लका की राजधानी कोलम्बो के अजायबघर में अब भी देखे जा सकते है । *यूरोप के आस्ट्रिया राज्य के डाइराल नामक प्रदेश मे १९वी सदी तक* जो धार्मिक नृत्य होते थे उनमे भी चेहरा या नकाब[2] लगायी जाती थी । उनपर भी भारतीय चेहरे ' जसे ही प्रतीक बने रहने के प्रमाण मिले ह । उन पर बनी तस्वीरे चीन की चित्र कला से बहुत मिलती जुलती है ।

१ Goths २ Papier Mache

श्रीमती मरे आसले एक दूसरी मिसाल पश करती ह । वे लिखती ह कि श्याम देश के लोग चाय का बहुत अधिक उपयोग करते ह । घर म जो भी मिलने आता है उसे बिना चाय पिलाय नही जान दते । चाय का प्याला जितनी बार खाली होता है उसे भरते रहते ह । चाय परसनवाली गहणी कभी भी पूरा प्याला नही भरती । यह अशिष्टता होगी । मेहमान क सामन यदि पूरा प्याला भर दिया जाय तो इसका मतलब यह होगा कि बस अब और नही । इसलिए प्याला थोडा खाली रखा जाता है । मेहमान जब तक प्याला सीधा रखेगा उसम चाय पडती जायगी । इसलिए तप्त होकर वह प्याला उलटकर रख देता है । ठाक यही प्रथा इग्लण्ड मे कुछ छोटे वग के लोगो मे पायी जाती है ।[1] प्याला उलट देने की रीति बहुत जगह है ।

ऊपर लिखी बाता म यह स्पष्ट है कि आय सभ्यता का ससार के हर कोन मे विस्तार हुआ था और उसके साथ ही अनाय सभ्यता भी एक-दूसरी के सम्पक म आती रही । और सबस बडी बात है कि मन विचार सकल्प धारणा तथा काय की मनोवज्ञानिक धारा प्राणिमात्र म मौलिक रूप म समान रही है । हर एक दहधारी का मन उसकी चतना उसका वाणी का विकास एक ही सिद्धान्त के एक ही विज्ञान के एक ही महान् सत्य के नियमा क अनुसार हुआ ह । इसलिए हर दश काल म मन की गति भी एक ही रही है । अत भारत से लकर यूरोप अमरिका के लोगा क मानसिक तथा बौद्धिक विकास का क्रम एक हा रहा है । और उसम ऊपर बात यह है कि आय जाति का प्रधान स्थल भारत वष था । भारत म प्राप्त ज्ञान तथा कला का आर्यों न विश्व म विस्तार किया प्रचार किया इसी लिए हमारे प्रतीक हमारी प्रतिमाए तथा हमारे धार्मिक विश्वास ससार के कोन कोन म फल गय । एक स्थान से प्रतीक दूसरे स्थान को किस प्रकार यात्रा करत थे इसका कोट (राजा) अलवोला ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक म प्रतिपादित किया है ।[2] अब भारत तथा अनक देशो म प्राप्य एक एक मुख्य प्रतीक को लेकर हम अपनी बात की पुष्टि करग ।

१ वही पुस्तक पृष्ठ १३ ।

२ Count Goblet D Alviella — Migration of Symbols

वृक्ष प्रतीक

पश्चिम के लोग और नये पढे लिखे भारतीय भी हमारे देश मे तथा अन्य देशो में प्रचलित वृक्ष पूजा का बडा मज़ाक उडाते ह ।[1] हमको पेड पत्ते का पुजारी कहा जाता है । पर वृक्ष की पूजा हँसी की चीज़ नही है । तुलसी का पूजन हर हिन्दू घर में होता है । तुलसी के पौध का स्वास्थ्य तथा मन पर कितना बडा प्रभाव पडता है इस सम्बन्ध मे आजतक नयी नयी बाते मालूम हो रही ह । लोक पालक विष्णु है । आयुर्वेद के आचाय विष्णु ह । धन्वन्तरि को विष्णु का अवतार कहते ह । सकडो रोगो की दवा तथा घर की गन्दी हवा को दूर करनेवाला तुलसी का पौधा है । तुलसी का विष्णु से विवाह एक प्रतीक मात्र है । इसी तरह से पीपल के पेड मे वासुदेव का पूजन करते ह । वासुदेव अजर और अमर ह । ससार मे पीपल का ही एक वक्ष एसा है जिसमे कोई राग नही लग सकता । कीडे प्रत्येक पेड म तथा पत्ती मे लग सकते ह, पीपल मे नही । वट-वक्ष की दाशनिक महिमा है । यह उध्व मूल है । यानी इसकी जड ऊपर शाखा नीचे का आती है । ब्रह्म ऊपर बठा है । यह सष्टि उसकी शाखा है । वट वक्ष ब्रह्म का प्रतीक है । उसके पूजन का बडा महत्त्व है । ज्यष्ठ के महीने मे हमारे देश मे वट-सावित्री का बडा पव होता है । इस त्योहार को अपभ्रश रूप में हम बरगदाई कहते ह । आवले के सेवन से शरीर का काया कल्प हो जाता है । आँवले के वृक्ष के नीचे बठने से फफडे का रोग नही होता । चमडे की कोई बीमारी नही होती । कार्तिक के महीने में कच्चे आवले तथा आँवले के वृक्ष का स्वास्थ्य के लिए विशेष महत्त्व है । इसी लिए कार्तिक मे आँवले के वृक्ष का पूजन आँवले के पेड के नीचे भोजन करने की बडी पुरानी प्रथा हमारे देश मे है । कार्तिक शुक्ल पक्ष मे धात्री-पूजन का विधान है । इस पूजन मे आजकल आँवले के वृक्ष के नीचे विष्णु का पूजन होता है ।

शकर को विल्वपत्र चढाते ह । शकर ने हलाहल विष का पान किया था । समुद्र मथन के समय जहाँ एक ओर अमृत आदि निकले वही हलाहल विष भी निकला । इस विष की आग से आँच से ससार तप्त हो गया । तब शकर भगवान् ने इसे पी लिया । पर गले के नीचे नही उतरने दिया । उनके हृदय में विष्णु का यानी लोक रक्षात्मक

१ ईसाइयों में बड़े दिन का Christmas tree भी वृक्ष पूजन है ।

शक्ति का वास था। उसको मारना नही था। अतएव गल म ही विष पडा रहा। इसी लिए उनका गला नीला पड गया। वे नील कण्ठ हो गय। नीलकण्ठ पक्षी को शकर का प्रतीक मानकर उसका पूजन करना उस नमस्कार करना--यह प्रथा भारत मे हर कोन म मिलगी। नीलकठ पक्षी नीलकण्ठ शकर भगवान का प्रतीक है।

शकर न विषपान किया अतएव उसका गर्मी स व तप्त ह। हर एक नशा विष होता है। किसी के लिए सखिया विष का काम करता है किसी के लिए नशे का काम करता है। बहुत गहरा नशा करनवाल जब कुचला सखिया सब कुछ हजम कर जाते ह तो व नागिन पालत ह और अपनी जीभ म उसस रोज कटवा-डसवा लेते ह। तब कुछ नशा जमता है। नशा का उतारन के लिए सबस अच्छी दवा विल्व (बेल) का पत्ता है। कितना भी भग चढी हो जरा सा बिल्व पत्र कूचकर उसका अक पिला देन से नशा हिरन हो जाता है। हलाहल विष का पान करनवाल शकर के मस्तक पर या शिव लिग पर बिल्वपत्र चढान का नियम है। जो लोग बिल्वपत्र का गुण नही जानते व उसका महत्त्व नही समझत।

बिल्वपत्र तथा बिल्ववक्ष का और भी महत्त्व है। नवरात्र म सप्तमी के दिन बिल्व पत्र म देवी को अभिमन्त्रित करना चाहिए। रावण के वध के लिए तथा राम की सहायता के लिए ब्रह्मा न बिल्ववक्ष म देवी का आवाहन किया था। बिल्ववक्ष भगवती का प्रतीक माना जाता है।

विजयादशमी की शाम का शमी वक्ष के पूजन का विधान है। शास्त्रवचन है कि शमी पाप की शामक है। अर्जुन का महाभारत म अस्त्र शस्त्र शमी न धारण कराय थ। राम की प्रिय बात शमी न मनायी थी। यात्रा को निर्विघ्न बनानेवाला शमी है अत पूज्य है। यात्रा के समय यात्री के हाथ म शमी की पत्ती देन की पुरानी परिपाटी हमारे देश म है। गणश पूजन म गणशजी को दूवा (दूब) के साथ शमी भी चढाते ह। कुश भी पूजा के काम आता है। विधान है कि अमावस्या की काली रात्रि म भाद्रपद (भादो) के महीन म कुश उखाडना चाहिए (कुशोत्पाटनम)। शास्त्र वचन है कि दर्भ तज होन के कारण श्राद्ध के योग्य होत ह।

ऊपर हमन वट तथा पीपल के पूजन का जिक्र किया है। ज्यष्ठ शुक्ल पूर्णिमा या अमावस्या को सावित्री पूजन का विधान है। वट मूल म सावित्री सत्यवान का पूजन सौभाग्य के लिए स्त्रियाँ करती ह। वैष्णवों के आचार म वट में विष्णु का वास माना गया है। वट को नमस्कार करन का आदेश है। वट वृक्ष पर चढना मना है। पीपल के लिए तो यहाँ तक लिखा है कि--

कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम् ।
कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयुः ।।

(गौ को पीछे से सहलाकर फिर स्नान कर पीपल के नीचे भगवान की पूजा करे तो दुर्गति नहीं होती ।)

सिसली निवासी पीत्रो नामक एक यात्री ने सन् १६२३ में भारत की यात्रा की थी । उसने हारमुज के निकट ईरान के तटपर और भारत में कैम्बे नगर के बाहर 'बर' (बट) के वृक्षों की पूजा देखी थी । उसके कथनानुसार भारत में यह वृक्ष महादेव की पत्नी 'पार्वती' को समर्पित है । वट सावित्री का जिक्र हम ऊपर कर आये हैं ।

चैत्र मास शुक्ल पक्ष अष्टमी को पुनर्वसु नक्षत्र में जो लोग अशोक की ८ कली को (उसके अर्क को) पीते हैं उनको कोई शोक नहीं होता । अवश्य इस अशोक कली का कोई आयुर्वेदिक महत्त्व होगा जिससे रोग दोष नष्ट होता होगा ।

अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रमासे सितेऽष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ।।

दौना (दमनक) की पत्तियाँ कितनी मीठी सुगन्ध देती हैं । चैत्र मास में अपने इष्ट देवता को दौने की पत्ती चढ़ायी जाती है । दौने की महक से बल वीर्य भी बढ़ता है । इसी लिए यह ऋषि गंधर्व आदि को मोहित करने वाला तथा कामदेव की पत्नी रति के मुख से निकले हुए भाप की सुगन्धि से युक्त कहा जाता है । कहते हैं कि इसमें कामदेव का वास है—

कामभस्मसमुद्भूतरतिबाष्पपरिप्लुत ।
ऋषिगन्धर्वदेवादि विमोहक नमोऽस्तु ते ।।

आम के वृक्ष तथा आम के फूल के जिसे मंजरी कहते हैं पूजन की अनेक विधियाँ हैं । वसन्त पञ्चमी के दिन इसका पूजन होता है । चैत्र कृष्ण प्रतिपदा—धुरड्डी के दिन मंजरी पान का विधान है ।

यदि मकान में कोई दोष हो या आदमी की तीसरी शादी हो या कन्या को विधवा होने का दोष (भय) हो तो मदार के साथ विवाह (अर्क विवाह) करने का विधान है ।

अस्तु किस समय किस ऋतु में किस नक्षत्र में कौन-सी जड़ कन्द पौधा वृक्ष लगावे या खोदे इसका हमारे यहाँ बड़ा भारी शास्त्र है विज्ञान है जो कपोल कल्पित नहीं है । चरक की काष्ठ औषधियाँ सृष्टि के अन्त तक मानव का कल्याण करती रहेंगी । चरक के समय में वृक्ष विज्ञान बहुत ऊंचे उठ गया था । चरकसंहिता का या चरक का समय क्या

था यह विवादास्पद प्रश्न है। चरकसहिता म लिखा है[1]— अग्निवेशकृते तन्त्रे चरक-प्रतिसस्कृते। अग्निवश ही इस ग्रथ के मूल रचयिता ह। अग्निवेश पाणिनि से पुराने ह। महान् व्याकरणपडित पाणिनि के व्याकरण में, सू० ४१–१०५ मे अग्निवेश का जिक्र है। चिकित्सा सम्प्रदायाचाय आत्रेय पुनवसु के छ शिष्यो म प्रथम अग्निवेश थे—

अग्निवेशश्च भलश्च जतुकणपराशर।
हारित क्षारपाणिश्च जगहस्त युरव च।।

ऋग्वेद म (५–३४–६) अग्निवश की सन्तान के रूप म आग्निवेशि की चर्चा मिलती है। शतपथब्राह्मण म (१४) आग्निवेश्य वश का वणन है। शतपथ ब्राह्मण का रचनाकाल ईसा स ८ ६ सौ वष पूव का माना गया है। अतएव वे आज से दो हजार वष पुराने तो हुए ही। आयुर्वेदीय विश्वकोषकार[2] ने लिखा है कि धन्वन्तरि और आत्रेय से लकर आग के काल का हम सहिताकाल का आषकाल कहगे। आज के २५०० वष पूव यह समय था।

उस अग्निवश न आयुर्वद क सम्बन्ध म जिसम वक्ष तथा फूल पत्ता का काफी महत्त्व है— अग्निवशतत्र का रचना की। चरक न इस ग्रथ का प्रतिसस्करण किया। १६वी सदी म प्रसिद्ध वद्य भाव मिश्र न अपन ग्रथ भावप्रकाश म चरक का शषनाग का अवतार माना है। आचाय परमानन्द का मत है कि आत्रय सम्प्रदाय क चिकित्सका को चरक की उपाधि मिलती आयी है। इन चरक उपाधिधारी आयुवद के विद्वानो ने अग्निवेशतत्र का सस्करण बार बार किया है।

चीनी बौद्धा न राजा कनिष्क के जिनका शासनकाल १ ईसवीय सन था राज वद्य का नाम चरक बतलाया है।[3] पर ब्राह्मण ग्र था से पता चलता है कि पतञ्जलि का ही दूसरा नाम चरक था।[4] नागाजन ने अपने ग्रथ उपायहृदय म सुश्रुत की चर्चा की है चरक का नही। कनिष्क काल क इस ग्र थ म स्पष्ट है कि उस समय राजा कनिष्क के राजवद्य सुश्रुत थ चरक नही। चरक इससे भी पुराने थे। श्री सुरेन्द्रनाथ दास ने चरकाचार्य को न्यायसूत्रकार गौतम का पूववर्ती माना है यानी चरक गौतम (न्यायदशन के प्रणता) क पूवकालीन थ।[5] इससे यह सिद्ध हो गया कि चरक को ढाई हजार वष

१ धन्वन्तरि—चरक चिकित्साङ्क विजयगढ, अलीगढ—लख चरक का समय' लेखक परमानन्द शास्त्री सिम्ब १९५८।
२ भाग २ पृष्ठ १०९९—आयुर्वेदीय विश्वकोष
३ Sylvan Leclie—In Asiatic Journal Paris, 1896 pages 447 480
४ A B Kieth— History of Sanskrit Literature page 406 पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य तथा चरकसहिता की शैली में बडा अन्तर है।
Surendra Nath Das—'History of Indian Philosophy Part I

पूव का ही समय था तथा अग्निवेश ऋग्वेद-युग के व्यक्ति थे। निश्चयत हमारा वृक्ष-विज्ञान काफी प्राचीन है। वृक्ष की उपासना का एक महत्वपूण मत्र यजुर्वेद मे है—

आज्य वहन्तीरमृनम् पय कीलालम् परिस्रुतम्। स्वधास्थतपयत मे पितृन—३४।

हे आप आप्त पुरुषो, प्राप्त पुत्रादि जनो तथा जल के समान स्वच्छ उपकारक पुरुषो को उत्तम रस रोगहारी जीवनप्रद तेजोदायक घृत पुष्टिकारक दूध अन्न और सब प्रकार से स्रवित रस से युक्त पके फल एव औषधि विधि से तयार किये उत्तम रसायन आदि को धारण करते हुए मेरे पालक वृद्ध जनो को तृप्त करो। आप सब स्वय अपन आपको और अपने वद्ध पालक सत्कार योग्य पुरुषो को भी अपने बल पर धारण-पोषण करने में समर्थ हो।[१]

हजारो वष पूव हमने वक्षो की जो महत्ता स्थापित की थी वह ससार में सब जगह फल गयी। मानव हर जगह एक सा है। उसका एक-सा स्वभाव है। डॉ० मेसन ने सत्य लिखा है कि मानव जाति हर जगह हर समय एक समान है। इतिहास का मुख्य उद्देश्य है मानव स्वभाव के विश्व व्यापी समान सिद्धान्तो की जानकारी करना।[२]

वक्षा के विषय मे भी यही बात है। जाज वडउड ने वृक्षो की विश्व व्यापी उपासना के काफी उदाहरण दिय ह। फ्रान्स में अठारहवी सदी के मध्य मे एक विश्वकोष प्रकाशित हुआ था। पश्चिमी देशो का यह प्रथम विश्वकोष था। इसमें भी वृक्ष सम्बन्धी मानव की श्रद्धा का अच्छा परिचय मिलता है।[३]

स्वग में प्राप्त पारिजात वृक्ष (हर शृगार) की बात तो हर एक हिन्दू जानता है। कृष्ण को कदम्ब वक्ष बडा प्यारा था। आज भी कदम्ब का पूजन होता है। हिमालय पवत पर कुलू तथा सतलज नदी की घाटियो मे देवदारु का वक्ष पूजनीय है। उसमे देवता का वास कहा जाता है। ग्रेट ब्रिटेन मे गेलिक बोली मे देवदारु को दरक"[४] कहते है। उस देश मे भी बलूत के वृक्ष (Oak) की पूजा होती थी। वह पवित्र समझा जाता था। स्वेडन तथा नार्वे म यह वक्ष अग्नि देव को बडा प्रिय माना जाता था, इसलिए कि इसकी छाल लाल होती थी। मेक्सिको तथा मध्य अमेरिका में साइप्रस तथा खजूर के वृक्ष बहुत पूजित थे। इनके सामने धूप दान होता था। रोम में साइप्रस वृक्ष को प्लूटो देवता का प्रिय तथा खजूर का पेड 'विक्टरी (विजय) देवता का प्रिय समझा जाता था।[५]

१ यजुर्वेदसहिता पृष्ठ ६३
२ Dr S F Mason— A History of the Sciences —Routledge and Kegan Paul Ltd, London page 259
३ French Encyclopedie'—1751 1777
४ Darack ५ Symbolism of the East & West pages 113

बोधगया में जिस वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध को ज्ञान — 'बोधिसत्त्व' प्राप्त हुआ था, वह आज तक विश्व के बौद्धो के लिए पूजा की वस्तु है। सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र इसकी एक शाखा लका के बौद्धो के लिए ले जाना चाहते थे। समस्या यह थी कि वृक्ष की टखनी को चाकू से काट नही सकते थे। कथा है कि उसके नीचे सोने की थाली लेकर लोग खडे हो गये और एक शाखा टूटकर स्वय गिर पडी। वह शाखा आज लका में लहलहा रही है। एक शाखा महाबोधि सोसायटी द्वारा सारनाथ मे लगायी गयी है?[१]

जाज बडउड् के कथनानुसार[२] यारकन्द के कालीनो पर तथा भारतवष की दस्तकारी में वृक्षो पत्ता के बनाने का बडा रिवाज था पीत्रा ने वट के पेड के तने को सिन्दूर से रगने का तथा उसे पान के पत्ते की माला पहनाने का जिक्र किया है। स्वेडन की राजधानी म अजायब घर मे एक मिट्टी का बतन रखा है जिस पर सूय के साथ वृक्ष बना हुआ है। डा० बर्साये ने इसे जीवन का वृक्ष साबित किया है।[३]

वृक्षो को प्रतिमाओ को तथा मन्दिरो के सामने भेट चढाने की प्रथा बडी पुरानी है। पीपल तथा वट के पेडो मे मनौती (मनोकामना) मानकर कपडा लपेटन की प्रथा अभी तक है। फतेहपुर सीकरी म चूँकि फकीर सलीम चिश्ती की कृपा स अकबर बादशाह को सलीम (जहाँगीर) नामक बेटा पदा हुआ था इसीलिए आज तक उनकी मजार की खिडकिया म सन्तान की कामना करनवाली स्त्रियाँ चीथडा बाँधती ह। वहाँ पास के पेड में भी कपडा बॉध देती ह। शिमला से ४० मील उतर नागकधा नामक स्थान मे झाडियो में अनगिनत चीथड बँध मिलगे। दुगम पहाडी पर सुगमता स यात्रा करने की कामना करके यात्री लोग इन वक्षो में झाडियो म चीथड बाँध देते ह। फारस मे खास बीमारियो से छुटकारा पान के लिए खास झाडियो म चीथड बाधने का रिवाज था[४] स्वेडन तथा नार्वे में पीपल के पेड से मिलता जुलता एक पेड होता है जिसकी आज तक पूजा होती है। एक गिर्जाघर म[५] बड दिन म इसम बियर शराब चढाते है। फारस में एक दरख्त जिसे फज़्ल–ए–दरख्त कहते हैं बडा पवित्र समझा जाता है। शेख सादी ने अपने गुलिस्ता में एक ऐसे पवित्र वृक्ष का जिक्र किया है जिसके पास लोग अपनी फरियादें लिखकर ले जाते थे और वही छोड आते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि वक्ष

१ Pietro Della Valle
२ George Birdwood—Industrial Arts of India
३ Kamer Hou Dr Worsaae
४ Sir William Ousely— Travels in the Fast more particularly Persia— 1821
५ Panish of Sognedal in the diocese of Bergen

उनकी प्रार्थना सुन लेगा। प्राचीन पारसी धर्म (जरतुश्त द्वारा प्रचलित धर्म) में वृक्षो की उपासना होती थी और उनका यहाँ तक विश्वास था कि साधु-सन्तो की आत्मा वृक्षो में रहती है।

दक्षिण अमेरिका में वक्ष की उपासना पुराने समय से चली आ रही है। कहते हैं कि वहाँ जिस वृक्ष की सबसे ज्यादा पूजा होती थी वह इतना मोटा था कि जमीन से छ फुट ऊँचे उठने पर उसके तने की गोलाई ९० फुट होती थी। यूरोप में बहुत-से वृक्षो को 'पवित्र तथा देवता' कह कर पूजा जाता था। प्राचीन यूरोप मे यदि किसी पेड के नीचे बैठकर किसी मुकद्दमे का फैसला न हो तो वह निर्णय गैर-कानूनी हो जाता था। अफ्रीका में कागो के निवासियो में भी पेड के नीचे बैठकर ही पचायत तथा राजसभा होती है। इग्लण्ड मे आज तक बलूत के पेड को बडा पवित्र मानते ह। गिर्जाघर की चहारदीवारी बलूत के पेडो की होती है। ऐसे पेडो के लगाने के लिए रग बिरगे कपडे पहनकर बच्चो का जलूस भी निकाला जाता था। लगभग पचास वष पूव तक डेनमाक मे यह प्रथा थी कि बीमार बच्चो को एक विशेष पेड के तने के पेट में सूराख बनाकर खडा कर देते थे। विश्वास था कि इससे रोगी अच्छा हो जायगा। इग्लैण्ड के यार्कशायर नगर मे सेट हेलेन का कुआँ है। इसमें अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए एक कटीले झाड में चीथडा बाँधकर फेकने का रिवाज था।[१] आयरलण्ड मे भी पवित्र कुओ के पास में लगे हुए पेडो में कुएँ के जल में कपडा भिगोकर पेड मे बाँधने की प्रथा प्रचलित है। वहाँ एक पवित्र कुएँ के द्वार पर लिखा है—'ईसवीय सन ५५० मे साधु कोलम्बा ने यहाँ पर पवित्र ग्रथ का प्रचार किया गिर्जा बनवाया तथा इस पवित्र कूप का जल पीया। यही पर देवगण मेरी पवित्र कोठरी में, मेरे अखरोट तथा सेवो का कूप में आनन्द लेगे।'

ग्रेट ब्रिटन से प्राचीन विश्वास धीरे धीरे समाप्त होते जा रहे ह। मई दिवस किसानो का पव है। उसमे ब्रिटिश किसान मदान के बीच में एक खम्भा गाडकर उसमें रग पोत देते ह और प्राय लाल तथा अन्य रग के कपडे के टुकडो से सजा देते है। फिर उसके चारो तरफ नाच होता है। श्रीमती मरे आसले का कहना है कि ठीक वैसा ही नृत्य उन्होने दक्षिण भारत में देखा था। लाल रग हिन्दुओ का पवित्र रग है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पव हमने भारत से सीखा।[२] बीच का खम्भ केवल वृक्ष का प्रतीक है। बोर सेस्टरशायर मे यह अधविश्वास है कि यदि किसी बीमार आदमी की खाट उसके कमरे में

१ Henderson—Folk lore of Northern Countries of England
२ Symbolism of the East & West, पृष्ठ १२३।

इस प्रकार हो कि किसी दूसरे कमरे की छत को लाँघ रही हो तो खाट को तुरत ठीक कर देना चाहिए वरना रोगी मर जायगा। वहाँ पर यह भी विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति झाडू की एक टहनी मकान म ले आवे तो साल भर के भीतर उस मकान मे कोई-न-कोई मौत होगी ही।

आस्ट्रिया के टाइरोल प्रदेश म लोग कुछ वृक्षो का इतना आदर करते ह कि उनके सामने नगे सिर रहते ह। मग्न नगर के वर्दिस कस्बे म पेड काटकर उसके तन पर तीन क्रास बना देते ह ताकि दुष्ट आत्माए उस पर विश्राम न करने लग। अदीग घाटी की एक कथा है कि वहा बड जोरो का प्लग आया। हजारो व्यक्ति मर गये। एक किसान कही एकात मे खडा था। उसे एक वृक्ष पर बैठी चिडिया की आवाज सुनाई पडी कि क्या तुमने जुनियर के बेर खा लिये ह जो अभी तक नही मरे? किसान ने तुरत इशारा समझ लिया। उसने स्वय भी वे बेर खा लिये तथा औरो को खिला दिये। फिर प्लग से कोई नही मरा।

वृक्ष जीवन का प्रतीक है। शाखाएँ जीवन की समस्याए ह। इसकी उपासना बहुत प्राचीन है। बडउड ने लिखा है कि यह अति प्राचीन पूजा है। मिस्र मसोपातामिया यूनान रोम सब जगह इसका प्रचलन था।[१] ईसाई देशो म अब भी इसका काफी प्रचार है। २५ मार्च का अवर लेडी ड का त्योहार २४ जून के सेण्ट जान ड का त्योहार पहली मई का मई दिवस का त्योहार स्वेडन का २३ जून का त्योहार २३ अप्रल का कोरिन्थिया का सेण्ट जाज ड त्यौहार हालण्ड इत्यादि देशो का ऐसा ही त्योहार और कुछ नही केवल वृक्ष फूल पत्त का त्योहार है जो हमारे वन महोत्सव से थोडा बहुत मिलता जुलता है।

उत्तरी अमेरिका में सबस पहल वृक्षपर्व १० अप्रल १८७२ को नेब्रास्को म मनाया गया। वह वृक्षारोपण पर्व था। सन १८७६ स मिचिगन प्रदेश म तथा १८८८ से न्यूयाक प्रदेश मे वृक्ष महोत्सव चालू हुआ। सयुक्त राज्य अमेरिका मे १ अप्रल से ३१ मई तक भिन्न प्रदेशो की ऋतु के अनुसार वृक्ष पर्व मनाया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका की देखा देखी कनाडा ने भी वृक्ष पर्व प्रारम्भ किया। सन् १८९६ से स्पेन मे यह पर्व प्रचलित हुआ। वृक्षारोपण पर्व इग्लण्ड म भी काफी उत्साह से मनाया जाता है। वृक्ष मनुष्य के लिए उसकी रक्षा के लिए उसके जीवन के लिए उसकी खेती तथा वर्षा के लिए नितात आवश्यक है। इनकी पूजा कर मानव इनकी महत्ता को प्रतिपादित करता रहता है। इनकी रक्षा का सकल्प लेता है।

१ वही जार्ज बर्डउड की भूमिका में, पृष्ठ XIX

सूर्य-प्रतीक

वैदिक देवताओ के वणन में हमने एक प्रचलित पश्चिमीय विश्वास का खण्डन किया है कि प्राचीन देवगण प्रकृति के तत्वो के प्रतीक थे द्योतक थे तथा उनका कोई आध्यात्मिक रूप नही था । हमने सूय अग्नि वरुण आदि देवताओ के आध्यात्मिक रूप पर प्रकाश डाला था । इस अध्याय के पाठको को हमारे उस अध्याय से मिलाकर पढने में सहायता मिलेगी ।

प्राचीन धर्मों का कभी एक ही स्वरूप रहा होगा वह देश काल के अनुसार बदलता गया । आर्यों ने वेद का तथा वदिक सभ्यता का प्रचार चारो ओर किया । उस सभ्यता का रूपा तर होता चला गया । उदाहरण के लिए वैदिक देवता प्रजापति को लीजिए । प्राणिमात्र के वे रचयिता ह । यूनान में प्राणिमात्र के रचयिता देवता प्रामेथियस थे । प्रजापति से इनका नाम भी मिलता जुलता है । इसी देवता ने मिट्टी तथा जल से एक बडी सु दर स्त्री की प्रतिमा बनायी जिसका नाम पादोरा रखा गया । इस प्रतिमा को सभी अ य देवताओ ने अपनी-अपनी विभूतिया प्रदान की (दुर्गासप्तशती में भगवती को सभी देवताओ की विभूतियाँ प्राप्त करने की कथा हम लिख आये ह) । कुछ देवताओ ने इस देवी को हानिकारक विभूतियाँ भी दी जैसे अफ्रोदाइत तथा हर्मीज देवता ने । इसी लिए इस मूर्त्ति—इस देवी का नाम सु दरी दूषण पड गया । अभी तक पादोरा स्वग में ही रहती थी । हर्मीज दवता इनको पथ्वी पर ले आये । वहाँ आकर इन्हाने अपने निर्माता देवता प्रामेथियस के भाई एपिमेथियस से विवाह कर लिया । इनकी स तान से सृष्टि शुरू हुई । इस प्रकार पादोरा ससार में पहली महिला थी । पृथ्वी पर देवो ने एक बतन में सभी बुराइयो को बन्द करके रख दिया था । सबको मनाही थी कि कोई उस बर्त्तन को न खोले । स्त्री सुलभ चञ्चलता से पादोरा ने उस बर्तन को खोल दिया । फिर क्या था, ससार में चारो ओर हर प्रकार की बुराइयाँ फल गयी । केवल एक वस्तु उस पात्र में, उस बतन मे बची रह गयी । वह थी 'आशा ।[१]

१ Dora & Erwin Panosky— Pandora's Box Pub Routledge & Kegan Paul Ltd London 1956-pages 7 8

पादोरा को यदि मायावती पद्मा—लक्ष्मी का रूपान्तर—मान ले प्रामेथियस को प्रजापति या ब्रह्मा मान लें तथा उनके भाई को विष्णु मान ले तो माया और पुरुष का विवाह हुआ और ममता मोह के सघष के बीच मे है केवल आशा की जीवन-दायक ज्योति—और है क्या मनुष्य के लिए ?

सूय की उपासना भी प्राचीन काल म भारत से फलकर देश देशान्तर मे व्याप्त हो गयी। हर सभ्यता तथा सस्कृति प्रतीको से ओतप्रोत होती है। निजी व्यवहार भी, व्यक्तिगत व्यवहार भी प्रतीक से ओतप्रोत होते ह।[१] भारतीय सस्कृति के साथ इसी लिए सूय तथा अन्य देवताओ का प्रतीक चारो ओर फल गया कि प्रतीक सभ्यता की सबसे बडी देन है। सूय की उपासना को श्रीमती मरे ने प्राचीन अध विश्वासो मे सबमे प्राचीन माना है। उनक कथनानुसार इस समय वह भारत में ही प्रचलित है।[२] पहल यह उपासना फोयेनीसिया चाल्डिया मिस्र, मेक्सिको पेरू इत्यादि सभी देशो में प्रचलित थी। मेक्सिका के सभ्य तथा असभ्य दोनो प्रकार के लोगो मे सूय तथा अन्य दवी शक्तियो की पूजा बहुत प्राचीन काल म थी। मेक्सिका मे सूय का नाम तोम तिक था जिसका शाब्दिक अथ था चार प्रकार की गतिवाला सूय। तोम शब्द हमारे सस्कृत के शब्द तम यानी अधकार का द्योतक है। मेक्सिकन लोग जब युद्ध करते थे तो शत्रु सेना से अधिक से अधिक व्यक्ति पकडकर सूय के सामन बलिदान करते थ। प्राय वे मनुष्य के शरीर के बराबर आख कान नाक युक्त चेहरेवाला सूय प्रतिमा बनाते थ। भारतवष म जिस प्रकार सूयवशी तथा चन्द्रवशी राजा होते थ उसी प्रकार पेरू म सूय तथा चन्द्र से वश परम्परा जोडनेवाले नरेश होते थ। प्राचीन ईरान म सूय की उपासना का बडा विधान था। दारा के लडके अत्तरक्षीज ने सूय की देहधारी प्रतिमा बनवायी थी। इसी नरेश न अबिलान आदि म कामन्देवी की प्रतिमा स्थापित करायी थी। अग्नि का सूय का प्रतीक मानकर उसकी पूजा होती थी। ईरान मे अग्निपूजक बहुत थे। अग्नि के प्रधान उपासक मागी लोग थे जो मूर्त्तिपूजा क घोर विरोधी थ। वे अग्नि प्रज्वलित कर उसका पूजन करते थ। किन्तु मूर्त्तिपूजक ईरानियो न मागी जाति को ही समाप्त कर दिया। एक यूनानी लखक ने[३] प्रसिद्ध विजेता ईरानी नरेश दारा की युद्ध यात्रा का वणन करते हुए लिखा है कि नरेश के साथ सूय की प्रतिमा चलती थी तथा चादी के पात्र मे अग्नि। नरेश क रथ पर सात चादी की बडी बडी मूर्त्तिया बनी हुई थी और सबसे ऊपर सूर्य

१ Ldward Sapir Symbolism in Encyclopaedia of the Social Sciences page 494

२ Mrs Murray Aunsley page 14

३ Quintus Curtius

(वेलूस) प्रतिष्ठित थे । पारसी धम के अधिष्ठाता जरतुश्त सूर्य देवता को "मित्र" देवता कहते थे । मित्र देव के दो रूप थे । एक तो अहिरमन्द यानी पुण्य शक्ति, दूसरा अहिमीन यानी पाप शक्ति । किन्तु मित्र देवता तो एक ही थे । पर समय पाकर पाप शक्ति शैतान की अलग सत्ता बन गयी और आर्मीनिया, सर्बिया बल्गेरिया आदि मध्य यरोपीय देशो में सूय इन्ही दो रूपों में पहुँचाये गये । एशिया मे दिग्विजय करनेवाले पाम्पे महान् ने अपनी विजययात्रा से लौटने पर इटली में भी मित्र देवता को पहुँचा दिया । इटली में त्राजन नरेश के शासनकाल में (ईसवीय सन् ६८ मे ये गद्दी पर बैठे थे) उस देश में मित्र पूजा का बडा रिवाज चल पडा था । इन मित्रपूजको का तात्रिक अचन भी था और वे कन्दराओ म लुक छिपकर अपनी तान्त्रिक साधना करते थे ।

मित्र की तात्रिक उपासना मे दीक्षा प्राप्त करनेवालो की कठिन परीक्षा होती थी । जिस कन्दरा म यह साधना होती थी उसमे घुसने के समय नये उम्मीदवार को रास्ते भर तलवारो की चोट सहनी पडती थी । उसके शरीर मे कई घाव हो जाते थे । उसके बाद उसे भयकर आग में से कई बार गुजरना पडता था । फिर उसे ५० दिन का कठोर व्रत—उपवास करना पडता था । तब उसे दो दिन तक बराबर कोडे से पीटते थे । फिर बीस दिन तक उसे गदन तक जमीन मे गाड देते थे । इतनी यातना में सफल होनेवाले शिष्य के सीने पर स्वण का सप रखा जाता था । जिस प्रकार वसत ऋतु मे अपना केचुल बदलकर सप नया शरीरधारी बनकर निकलता है उसी प्रकार इस व्यक्ति का भी नया शरीर हो गया । यह प्रतीक इसका भी द्योतक था कि जिस प्रकार सूय की उष्णता हर साल ताजी होती चलती है उसी प्रकार सप की तरह यह व्यक्ति भी ताजा हो गया ।

चौथी शताब्दी मे जब रोमन नरेश कास्तेताइन ने ईसाई मजहब स्वीकार किया तो उन्होने ईसाई धम के अलावा अन्य सभी धर्मों का रोमन साम्राज्य में निषेध कर दिया ।[१] पाँचवी सदी के एक इतिहासकार ने[२] लिखा है कि सिकन्दरिया के कुछ ईसाइयो को मित्र तान्त्रिको की एक बन्द गुफा का पता चला । उन्होने उसे खुलवाया तो भीतर बहुत नर ककाल तथा खोपडयाँ मिली । यह सिद्ध होता था कि मित्र देवता के लिए नरबलि होती थी । यहाँ पर यह स्पष्ट कर दें कि इटली के लोग मित्र देवता को स्वय सूय देवता मानते थे । ईरान में सूय देवता को प्रधान मानते थे । सूय को प्रसन्न करने के लिए मित्र देवता साधन मात्र थे । जरतुश्त ने सूय का ही दूसरा नाम मित्र रखा था । रोम में दो पहाडियों[३]

१ Murray s Symbolism—pages 19-20 21
२ Ecclesiastical History by Sokrates
३ Between the Viminal and the Quirinal Hills

के बीच म, १६वी सदी के अन्त में एक सूय मन्दिर का पता चला जिसमे सूय तथा अग्नि, दोना देवता प्रतिष्ठित थे। सूय अर्थात मित्र देवता की चार फुट लम्बी मूर्ति (सगमरमर की) स्थापित थी। उनका चेहरा शर जसा था। दोनो हाथ छाती से चिपटे हुए थे। समूची मूर्ति को जीवन का प्रतीक तथा सूय क चारा ओर के राशिमडल का प्रतीक सर्प लपेटे हुए था। हाथा मे दो चाभिया थी जो सूयलाक से सष्टि की रचना तथा इहलोक और परलाक पर सूय म प्रभुत्व की परिचायक थी--प्रतीक थी। रोम मे मित्र देवता के सामन भसे की बलि देत हुए एक युवक की सगमरमर की मूर्ति मिली है। मित्र की पूजा यूनान से दक्षिणी फ्रास पहुची। इग्लण्ड म नार्थम्बरलण्ड मे सन १८२१ म मित्र उपासको की एक कन्दरा मिली। याक नगर म सूय के अनेक प्रतीक प्राप्त हुए ह।

मित्र की उपासना म आग में से गुजरन की प्रथा अनेक दशो मे थी। एरुत्रियन लोग अपोलो की पूजा म भी ऐसा ही करते थे। इब्रानी (हिब्र) लाग दो तरफ आग जला कर बीच म स लडका को निकालते थे। यह एक शुभ समाराह समझा जाता था। उत्तरी भारत म दम मदार के जसी प्रथा थी। दम मदार की क्रिया ऐ सप या बिच्छ क विष से रक्षा प्राप्त हाती थी। दम मदार क्रिया क आचाय शख मदार सीरिया म रहते थे। व जादू टाना म बड प्रवीण थे। उनकी मत्यु ईसवी सन १४३४ म हुइ।[१]

फ्रास म नामडी प्रदश म अब भी ऐम रिवाज ह जा प्राचीन सूयपूजा तथा अग्निपूजा से चल आय प्रतीत हाते ह। नार्वे म ट्राझम नगर म मध्य गर्मी म सूयास्त के समय जो रात्रि म ११ २० पर होता है पहाडी पर खब आग जलायी जाती है। आतशबाजी छूटती है। एक बड बाँस म एक बडा ड्रम बाध दिया जाता है। उसमे जल्दी आग पकडने वाल सामान भर दिय जाते ह। फिर उसम आग लगायी जाती है। इस ड्रम का मुख ठीक उस तरफ होता है जिधर से दूसरे दिन सूर्योदय होगा। इस अवसर पर समूची आबादी समाराह म भाग लती है। इग्लण्ड म २१ जून को सबसे लम्बा दिन हाता है। अब ता पहल जसा नही हाना नही तो स्टोनहज नगर म उषाकाल म जनसमूह बाहर निकलकर सूर्योदय का दशन करता था। बाच मे एक गोलाकार पत्थर इस अन्दाज से रखा जाता था कि सूय की किरणें पहल उसी पर पड। आयरलण्ड क कनाट स्थान मे तथा अन्य ग्रामो म भी एक विशष दिन (सट जॉन ईव) रात भर आग जलाते ह— सूर्योदय तक। ऐसे अवसर पर माताए अपने बच्चे की दीर्घायु के लिए उसे आग म घुमाकर आँच देती है।[२]

१ Murray s Symbolism page 24   २ वही, पृष्ठ २५२

आज बर्डउड की राय में सूर्य के रथ के बाहर धुरीवाले पहिये की चार धुरियों को लेकर ही स्वस्तिक प्रतीक बना है। थ्रेसिया मे मेसेम्ब्रिया नामक एक नगर था। इस शब्द का अर्थ ही है 'दोपहर का सूर्य'। यहाँ के जो प्राचीन सिक्के मिले हैं, उन पर स्वस्तिक बना हुआ है।[1] दसवी सदी में अबू सफन का एक गिर्जा था जिसमे बीच में एक आट की चक्की है। इसमें एक लम्बा खम्भ ऊपर निकला हुआ है जिस पर ईसाइयो की त्रिमूर्ति[2] का प्रतीक है और बगल में स्वस्तिक बना हुआ है। वह सम्भवत इस बात को व्यक्त करता है कि इस ससार में प्रत्येक सजीव वस्तु गतिशील है और सबकी सत्ता ईश्वर मे निहित है। यह बडे मार्के का प्रतीक है।[3]

पश्चिमी हो या पूर्वी, जिन देशो मे ईश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ और बढ़ता गया वहाँ पर ईश्वरीय सत्ता तथा विभूति का सबसे निकटतम प्रतीक सूर्य माना गया और सूर्य की पूजा शुरू हुई। किन्तु इस सीधी सादी बात को न मानकर जो लोग हर एक चीज को विज्ञान तथा शास्त्र के तराजू पर तौलना चाहते है उनके विषय में आज से १७०० वर्ष पूर्व यूनानी विद्वान सेनेका ने[4] लिखा था कि दार्शनिक पोसीडोनियस तो करीब-करीब यहाँ तक कह गये कि जूता मरम्मत करने का पेशा भी दार्शनिको की ईजाद है। बात भी कुछ ऐसी है। सभी बात तर्क से सिद्ध नही की जा सकती। ईश्वर भी ऐसा ही कठोर सत्य है। प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य तथा पश्चिमी देशो को 'गुरुत्वाकर्षण शक्ति'—पृथ्वी की आकर्षण शक्ति—की जानकारी करानेवाले आइज़ाक न्यूटन ने लिखा था कि ससार में सभी वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को हट सकती हैं पर परम पिता ही एक मात्र अचल वस्तु है। ऐसा कोई स्थान नही जो उससे खाली हो जाय या भर जाय। वह सबमें व्याप्त है और प्रकृति की अनन्त आवश्यकता के अनुसार हर एक पदार्थ में जितना होना चाहिए वर्तमान है।[5]

साधारण जीवन मे भी हम सब-गुण सम्पन्न तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति को 'सूर्य के समान तेजस्वी' कहते है यानी सूर्य तेजस्विता का प्रतीक हुआ। ऐसे प्रतीक में वैज्ञानिक लोग भी विश्वास करते है। रक्त-सचार के सिद्धान्त को हमारे शरीर के भीतर

१ वही, पृष्ठ XVI

२ ईश्वर, मरियम, ईसा (पिता माता पुत्र)।

३ वही पुस्तक, पृष्ठ XVII

४ Seneca जन्म ईसवी सन् ३, मृत्यु ६५। quoted by Dr S F Mason— A History of the Sciences'—Pub Kegan Paul 250 London—page 252

५ वही, पृष्ठ १६३। Isaac Newton जन्म सन् १६२४, मृत्यु १७२७।

खन किस प्रकार दौड रहा है इस विषय पर सवप्रथम लिखित[1] प्रकाश डालनेवाले श्री विलियम हार्वे ने अपनी पुस्तक सम्राट चाल्स प्रथम को समर्पित की थी और समपण में लिखा था— मेरी दुनिया क सूय। सन् १६६६ मे जब फ्रच सम्राट लुई चौदहव बालिग हुए और राज्य का सब अधिकार उन्ह सौपा गया जनता ने उन्हे सूय नरेश[2] कहकर आदृत किया था।[3] ग्रह मण्डल म जिस प्रकार सूय विराजमान ह उसी प्रकार अपने मन्त्रिमण्डल के बीच म महारानी एलिजावथ प्रथम शोभित हो रही ह ऐसी मिसाल सन १६०० म इग्लण्ड म जॉन नार्डेन नामक एक पादरी न दी थी।[4]

यूरोप के मध्ययुग म केवल तीन ही ऐस विषय थे जिनमें विश्वविद्यालयो मे डाक्टरट की उपाधि तक की शिक्षा दी जाती थी। ये विषय थे साहित्य धमशास्त्र तथा चिकित्सा। इस युग म हर शहर म नाई ही चीर फाड के डाक्टर का काम करते थे।[5] उस यग में भी बेकन एसे पडित ने यह ढढ निकाला था कि उष्णता (गर्मी) की प्रधान देन है गति। जहां भी कही गनि दिखाई पडे समझ लना चाहिए कि उसमें उष्णता है।[6] शरीर जब निर्जीव हो जाता है तो हम कहते ह कि ठण्डा हो गया उसकी गर्मी समाप्त हो गयी।

ब्रिटिश महारानी एलिजाबथ का ग्रहा म सूय क समान माननवाल जान नार्डेन ने उनको इग्लण्ड को गति प्रदान करनवाली मुख्य शक्ति भी माना है। सूय के रथ के पहिये म १२ धरियाँ बारह महीनो का प्रतीक ह। बारह महीन म पृथ्वी सूय की परिक्रमा करती है। प्राचीन यूरोप तथा एशिया म ऐसे रथ की कल्पना थी।

गणित की सुविधा के लिए मनुष्य ने अक-सख्या का प्रतीक बनाया। डा० मेसन ने अको का प्रतीक माना है। वे लिखत ह कि ईसा से ३००० वष पूव मिस्र के लोगो में १० तक की सख्या की इकाई मानकर उसके अनुसार अक प्रणाली प्रचलित थी। दस के भीतर की सख्या को वे एक एक छाटी रेखा द्वारा जसे तीन के लिए ।।। अकित करते थे। इसी रखा प्रणाली से रोमन अक जसे पाच क लिए V तथा छ के लिए VI बन। अस्तु मिस्री लोग ९ तक की सख्या क लिए ९ रखाएँ ।।।।।।।।। बना देत थ। १० १०० १०००

१ सन् १६२८।
२ Le Roi Soleil
३ वही, पुस्तक पृष्ठ १४५।
४ वही पृष्ठ
५ वही, पृष्ठ १६९।
६ वही, पृष्ठ ११३।
७ वही, पृष्ठ १४५। जान नार्डेन का जन्म सन् १५४८ में तथा मृत्यु १६२६ में हुई थी।

आदि के लिए उन्होने भिन्न भिन्न 'प्रतीक' बनाये थे।[१] ईसा से २००० वर्ष पूर्व मेसोपोतामिया (एशिया मध्य) में मन्दिरो द्वारा परिचालित पाठशालाओ में न केवल दशमलव जैसे ६० आदि सिखाये जाते थे बल्कि सख्या के टुकडे का 'तीर' से सकेत करते थे जैसे १→६० यानी १।६० या १→३६०० यानी १।३६००[२]। यूनान के शुरू शुरू के दार्शनिको मे से एक व्यापारी दार्शनिक थेल्स[३] ने मिस्र जाकर ज्यामिति[४] तथा मेसोपोतामिया जाकर ज्योतिष शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। ईसा से २००० वष पूव बबीलोन देश मे ३६० दिन का वर्ष माना जाता था। ३० दिन के बारह महीने होते थे। महीनो को सप्ताह में सात दिन मे विभाजित किया गया था। हर एक दिन का एक एक ग्रह पर नाम रखा गया था। सूय को प्रधान मानकर पहला दिन सूय के नाम पर, दूसरा दिन चन्द्रमा के नाम पर तीसरा दिन पृथ्वी के सबसे निकट के ग्रह मगल के नाम पर—इसी प्रकार अ य चार ग्रहो के नाम पर सप्ताह के दिन रखे गये थे। बैबीलोनिया के महीने चन्द्रमा की गति के अनुसार बनाये गय थे—जैसे हि दुओ में अब भी तथा मुसलमानो मे तो एकमात्र चा द्रायण मास चलता है।

मुसलिम कलेण्डर मे 'मलमास या एक अधिक महीना जोडकर चा द्रायण मास का दोष मिटाने का रिवाज नही है पर हिन्दुओ के चा द्रायण मास मे समय समय पर एक अधिक मास जिसे मलमास कहते ह, जोडा जाता है। ठीक यही प्रथा बैबीलोनिया मे भी थी।[५] ग्रह नक्षत्रो की गति आदि के सम्ब ध मे रोमन सभ्यता के महान काल मे विशेष प्रगति न होने का मुख्य कारण थी रोमन जनता की विलास प्रियता। वे लोग सडक मकान जलाशय स्नानागार थियेटर विहार स्थल आदि मे अधिक दिलचस्पी लेते थे। जनता की बुद्धि को ठीक रखने का काम[६] केटो तथा लार्को[७] ऐसे लोगो के जिम्मे था। ये लोग यूनानी विद्या तथा ज्ञान के पीछे डण्डा लिये घूमा करते थे।[८] तब रोमन लोगो का ज्ञान बढ़ता भी कैसे ?[९]

१ वही, पृष्ठ ८।
२ वही, पृष्ठ ७।
३ वही, पृष्ठ १४ Thaales of Miletus जन्म ईसा से पूर्व ६२५, मृत्यु ई० पू० ५४५।
४ Geometry
५ वही, पृष्ठ ८।
६ Gensor
७ केटो का जन्म ई० पू० २३४, मृत्यु १४९।
८ लार्को का जन्म ई० पू० ११६ तथा मृत्यु ईसा से पूव २७ वें वर्ष में यानी इनकी ११० वर्ष की उम्र थी।
९ पृष्ठ ४३

अस्तु, हम थोडा सा विषयान्तर कर बठ । हम बात कर रहे थे सूय की । सूर्य की महिमा को अनक रूपो में पुराने पश्चिमीय पडित स्वीकार कर चुके ह । केपलर ने लिखा था कि केवल अपनी मर्यादा तथा शक्ति के कारण ही हमारे ऊपर सूय है । ग्रहो में सञ्चार उत्पन्न करने का काम वही कर सकता है । गतिशीलता की शक्ति उसी में है । वास्तव में वह स्वत ईश्वर बनन के योग्य है ।[१] आजकल हर एक चीज की आवश्यकता से अधिक छानबीन करनवाले सत्य को भी भूल जाते ह खा देते ह । शायद प्रत्येक युग म अविश्वास करनेवाले युवक वर्गो की मनोवत्ति यही रही होगी । प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस (५५५ ४७६ई०पू०) ने सबका सलाह दी थी कि पुरानी रीति तथा परिपाटी को अनावश्यक समझकर मत छाड दो। प्रसिद्ध चीनी धम ताओ वाद के प्रवतक लाओत्से ने (ईसा स ६०० से ४०० वष पूव) लागा का सलाह दी थी कि वतमान सभ्य समाज को त्यागकर पुरानी सयत सभ्यता को लौट चले । लाओ-त्से के अनुसार पुरानी जगली सभ्यता आज की सभ्य सभ्यता से कहा अधिक अच्छी थी ।[२]

अपने अज्ञान म पश्चिम के विद्वान् बहुत-सी चीज लिख गय ह । फ्रेजर[३] सूय को उत्पादन शक्ति का देवता मानते ह । बाद म चलकर यही सूय चन्द्र दवता के रूप मे पूजे जाने लग क्योकि प्लुटाक एसे विद्वानो न यह सिद्ध कर दिया था कि ससार म पशु तथा पौध की उत्पत्ति चन्द्रमा से होती है । सूय से अन्न होना है । वर्षा हाती है—दुनिया चलती है । इस रूप में यदि फ्रेजर उनको उत्पादक देवता मानते ता ठीक था । पर वे तो उसको दूसरे ही रूप म ले गय । फ्रेजर के कथनानुसार सूय की उपासना के कारण ही वषभ (बल) की उपासना लागो में आयी । कटनर अपनी पुस्तक म लिखते ह कि बल गाय का गभवती करता है इसलिए वह उत्पादक शक्ति का प्रतीक है ।[४] आदिम निवासियो को अपनी सत्ता कायम रखन के लिए भयानक सघष करना पडता था । इसलिए वह उत्पादक शक्ति पर बहुत जार देता था ।[५] मिस्र में वषभ को एपिस कहते थ । यनान म भी इसकी पूजा हाती थी । इसे कडमस कहते थे । यहूदी लाग भी सोन का बछडा बनाकर पूजत थ । पर वही कटनर लेखक यह भी लिखते ह कि ५००० वष पूव सूय वषभ राशि म आया इसलिए वषभ की पूजा सूय के प्रतीक रूप में शुरू हुई ।

१ वही, पृष्ठ १४४।
२ वही, पृष्ठ ५५।
३ J (Frazer— The Golden Bough —Book One
४ H Cutner— A Short History of Sex Worship —1940 Edition
५ वही पृष्ठ २।

बाद मे सूय जब मेष राशि में आया[१] तो मेढ़े मेमने की पूजा शुरू हुई। उसे "ईश्वर का मेमना' कहा जाने लगा। बाद में मिस्र में मेमने के बजाय बकरी की पूजा होने लगी। हेरोडटस[२] नामक इतिहासकार के कथनानुसार बकरी पान" नामक देवता का प्रतीक है क्योकि 'पान देवता की जाँघें और पैर बकरी जसी हैं। पान देवता परियो के पीछे भागते फिरते हैं ताकि उनको गर्भवती करें। वे उत्पादन के देवता हैं। जुपिटर देवता के मढ़ जैसे सीग हैं, यूनानी बाक्कस देवता की जाँघें बकरी जैसी है। मेढ के सीग सूय देवता की उत्पादक शक्ति का बोध कराते है उसके प्रतीक है। चूंकि ये सीग सूय के प्रतीक है इसी लिए यहूदी लोग नववष के दिन मेढ़ के सीग से ध्वनि करते है।

हेरोडोटस ने अपने इतिहास मे बडी विचित्र बातें लिखी है। जो कुछ लिखा है आँखो देखा या कानो सुना है। वे प्राचीन मिस्र या रोम के जितने मन्दिरो में गये वहाँ पूजा करन के लिए जितनी स्त्रियाँ थी उनक साथ विलास करने के लिए उतने ही पुरुष दशनार्थी मौजूद थे। इस लेख के कथनानुसार सूय की उपासना का आरम्भिक रूप शनि देवता की पूजा थी। शनि देवता वास्तव म उनके कथनानुसार सूय देवता थे। हम लोग शनि को सूय का पुत्र मानते ह। शनि देवता की रोमन कथा है कि उन्होन अपने पिता यरेनस की जननेन्द्रिय को ही काट लिया था। सूय का प्रतीक बकरी तथा वृषभ सभी जगह पूजित था। जिस बकरे या वृषभ का लिंग जितना अधिक बडा होता था वह उतना ही अधिक पूजनीय होता था। हेरोडोटस के कथनानुसार मिस्र मे स्त्रियाँ भक्तिवश बकरे से सभोग करती थी। रोम साम्राज्य के समय म तो देववाणी हुई थी कि हर एक रोमन स्त्री बकरे के द्वारा गभ धारण करे। रोम में बकरी की खाल का कोडा बनाकर स्त्रियो को पीटते थे—और वह सब सूय' की उपासना का ही परिणाम था। सूय की उपासना का ऐसा ही अनथकारी रूप कटनर ने समझा है। वे लिखते ह कि स्वर्ग में गभ धारण करने योग्य स्त्रियो' के प्रतीकस्वरूप पृथ्वी के लोग सूय का प्रतीक बनाकर पूजा करते थे।[३] वेस्ट्रोप ने लिखा है कि पथ्वी पर सबसे पहले सूर्य तथा पृथ्वी देवता की पूजा शुरू हुई।[४] इन दोनो की पूजा लिंग रूप मे होती थी। पुरुष की जननेन्द्रिय का प्रतीक कोई भी खडी चीज चाहे तलवार हो भाला हो कुछ भी हो मान ली जाती थी। ऐसे ही मूख लोग

१ सूर्य एक राशि में ९९ वष रहता है। ९९ वष बाद राशि-परिवर्तन होता है।

२ Herodotus समय ईसा से ४८० वष पूर्व।

३ Cutner—Sex History—page 157

४ Westropp—' Primitive Symbolism '

कच्छप तथा उसके खोल को स्त्री के शरीर में योनि का प्रतीक मानते थे। जहाँ कहीं कच्छप बना देखा यही अर्थ लगा लिया।[1]

किन्तु प्राचीन देशा का दशन शास्त्र वसा कामुक तथा वासनामय नही था जैसा कि कुछ यूरोपीय विद्वान समझते ह। प्लटो[2] ने यूनान को अध्यात्मवाद की शिक्षा दी थी। अरस्तू[3] न अपन गुरु प्लटो के सिद्धात को तक द्वारा पूरी तरह से प्रतिपादित किया। अरस्तू ने सिद्ध किया कि सष्टि का रचयिता स्वय स्थिर है। वही सबको गति प्रदान करता है। प्राणिमात्र नश्वर है। हर एक नश्वर वस्तु से भूले हो सकती ह। नश्वरता का स्वाभाविक गुण है भूल करना। आकाश म जो ग्रह-नक्षत्र तारे हैं सब निरतर रूप से गतिशील हैं चल रहे ह।[4] इन सबको चलानेवाला परमात्मा है। अरस्तू ने जीव विज्ञान का बडा अध्ययन किया था और उन्होने स्वत ५०० पशुओ का निरीक्षण किया ५० की चीर फाडकर परीक्षा की और रेखाए खीचकर उनका वणन किया है। उन्होने सूय को गतिशील वस्तु माना है। कटनर की तरह स्वग मे गभधारण करनेवाली योनि का प्रतीक नहो।[5] अरस्तू के जीव विज्ञान का यूनानी विचारधारा या यूनान पर बडा प्रभाव पडा। उनके एक प्रकार से समकालीन सामोस नगर के अरिस्ताकस (जन्म ई० पू० ३१ —मत्यु ई० पू० २३०) ने पथ्वी से सूय तथा चन्द्रमा की दूरी नापने का प्रयास किया। उन्होने यह सिद्ध किया था सूय पथ्वी से कही अधिक बडा है।[6] उस जमाने में यह बात साबित करना ही बडी भारी बात थी।

इस विषय में और भी जो कुछ अनुसन्धान पुराने जमाने में हुए थे उनका रोचक इतिहास आज हमे बहुत ही ठिकाने स प्राप्त होता यदि अधविश्वास तथा राजकीय मूखता ने ससार का वह हानि न की होती जो इतिहास की बौद्धिक विपत्तिया म बहुत ही महान् विपत्ति तथा दुघटना समझी जाती है। ईसा से ३३२ वष पूव मिस्र में सिकन्दरिया (अलेक्जड्रिया) नामक नगर की स्थापना प्रसिद्ध यूनानी विजेता सिकन्दर (अलेक्जडर) ने की थी। ईसा से ३० वष पूव मिस्र की अन्तिम यूनानी महारानी क्लिओपात्रा का देहात

१ Inman के मतानुसार।
२ प्लेटो का जन्म ई पू ४२७ मृत्यु ई० पू० ३२७।
३ अरस्तू का जन्म ३८४ ई० पू, मृत्यु ३२२ ई० पू०।
४ Sir William Cecil Sampir— A History of Sciences and its Relations with Philosophy and Religion —Cambridge University, 4th Editiaon 1948-page 45
५ Cutner page 157
६ सर विलियम की पुस्तक, पृष्ठ ११ तथा ३१।

हो गया। इस सिकन्दरिया नगर में यूनानियों ने एक विशाल 'म्यूजियम'[1] पुस्तकालय स्थापित किया था। ईसवी सन् ३९० में एक ईसाई पादरी ने 'अविश्वासियो के इस विष भरे सग्रह को' जला डाला। शताब्दियो तक सिकन्दरिया का पुस्तकालय ससार में आश्चर्यमय चोज था। इसमें यूनानियो ने चार लाख पुस्तके एकत्रित की थी। पर ईसाइयो ने तथा बाद में मुसलमानो ने इसे एकदम नष्ट कर डाला।[3] भारत में नालन्दा विश्वविद्यालय को एक मुसलिम शासक ने जलाकर ससार का महान् अकल्याण किया है। नालन्दा मे इतनी अधिक पुस्तकें थी कि ६ महीने तक १० ००० आदमियो की पल्टन का दोनो वक्त का भोजन केवल पुस्तको के इधन से बनता था। यदि सिकन्दरिया का पुस्तकालय बचा रहता[4] तो प्राचीन यूनान मे प्लोटिनस ऐसे दाशनिकों की परब्रह्म की कल्पना[4] को हम वदिक प्रसाद सिद्ध कर देते। ओरिजेन[5] ने सिद्ध किया था कि ईश्वर मे कोई परिवतन नहो हो सकता। वह अनन्त है। सृष्टि के ग्रह-नक्षत्र उसी सृष्टि के आवश्यक अग ह। आत्मा चिरन्तन है।[6] सदैव विद्यमान है। हर एक सजीव वस्तु मे आत्मा व्याप्त है। सर विलियम सेसिल का मत है कि यूनानी दशन के ही प्रभाव स प्रतीकवाद तथा प्रतीको की रचना प्रारम्भ हुई। प्लेटो के बाद जो प्रतीकवाद चल पडा था[7], उससे जनसमूह काफ़ी प्रभावित था। अतएव ईसाई ग्रन्थ बाइबिल के पुराने तथा नये रूप[8] मे सामञ्जस्य पदा करने के लिए तथा प्रचलित विचारधारा का मेल खाने के लिए पुरान ईसाई पादरियो ने प्रचलित प्रतीको को अपना लिया, उनमें विस्तार किया। प्राकृतिक तथा धमग्रन्थ में लिखी बातो मे जहाँ मेल खाता हो उसे तो सत्य मान लेना चाहिए। जहाँ एसा न हो उसे प्रतीकरूप में ही समझना चाहिए।[9] यूनानी दशन का मुख्य लक्ष्य जीवन की नश्वरता का तथा सुखो की अनिश्चितता को सिद्ध करना था। जीवन नश्वर है। सासारिक सुख क्षणिक ह। जीवन का परिणाम दु ख है। दु खान्त जीवन के इस यूनानी सिद्धान्त को रोमन लोगो ने अपने न्याय विधान में भी अपना लिया

१ Museum—यह शब्द Muses हजरत मूसाके नाम से बना है।
२ Sir William s—A History of Scinces, page 46
३ सिकन्दरिया के पुस्तकालय को ईसवी सन् ६४१ में मुसलमानों ने एकदम नष्ट कर दिया था।
४ वही, पृष्ठ ६२।
५ Origen—जन्म ईसवी सन् १८५, मृत्यु २५४।
६ वही, पृष्ठ ६४।
७ वही, पृष्ठ ६५
८ Old Testament & New Testament
९ वही, पृष्ठ ६५।

था। इसी भावना से भाग्य' पर नियति पर निर्भरता की धारणा चली।[१] जो कुछ होना है होकर रहेगा। भाग्य है या नही आत्मा या परमात्मा है या नही इसका विवेचन सकडो वर्षो तक वज्ञानिको तथा भौतिकवादियो के मन मे भी चलता रहा। यदि आत्मा अमर है जीव मरता नही तो मनुष्य अपने गुण धम-स्वभाव को भी जन्म जन्मा तर से लकर आता है। कुल परम्परा का भी मनुष्य पर कोई प्रभाव पडता है या नही ? डार्विन[२] ऐसे प्रकृतिवादी तथा बन्दर से मनुष्य के विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित करनेवाल न भी स्वभाव तथा परम्परा की सभ्यता को एक प्रकार मे स्वीकार कर लिया है। यूरोप म कला तथा साहित्य के पुन जागरण के युग में[३]—जो इटली मे १४ वी सदी म प्रारम्भ हुआ था—विज्ञान तथा दशन की कडी टूटनी शुरू हुई। भौतिक वाद ने प्रबलता प्राप्त करना शुरू किया और दाशनिको का कानूनी महत्त्व काफी समय तक बना रहा पर जनसमूह पर से उनका प्रभाव सौ-दो सौ वर्षों म समाप्त हो गया। भौतिकवाद न अध्यात्मवाद पर विजय प्राप्त कर ली।[४] आरम्भकाल मे ईसाइया ने प्राचीन दशन तथा अध्यात्मवाद का जो स्फूर्ति दी थी वही काय अत्यधिक गति के साथ पगम्बर साहब के मरन के दो सौ वष बाद इस्लाम धम न किया। भारतवष का अक विज्ञान अक प्रतीक तथा गणितशास्त्र इत्यादि सुदूर देशो म फल चुका था। भूगोल ज्योतिष तथा दशन के पडित अलबरूनी[५] न भारत म रहकर अकशास्त्र तथा अक प्रतीक का अध्ययन किया था।[६]

इस्लाम के धार्मिक विद्वानो ने भारतीय बौद्धो के अणुवाद सिद्धान्त से प्रभावित होकर सृष्टि के रहस्यो की तथा काल और सीमा गति तथा आकाश के रहस्य की छानबीन शुरू की। ईसाई विज्ञान के पतनकाल के समय इस्लामी विज्ञान का अभ्युदय शुरू हुआ। आठवी सदी के पिछले अद्धयुग म तथा ६वी सदी में विज्ञान तथा खोज काय का नतृत्व यूरोप से छिनकर निकट पूव-मध्य एशिया के हाथो म आ गया था। इस्लाम की खोज से ईश्वर की सत्ता पर विश्वास और भी दढ हुआ। पश्चिमी वज्ञानिक भी इधर

१ Dr A N Whitehead— Science and the Modern World Cambri dge University 1927 pages 11 15
२ Charles Robert Darwin—जन्म १८०९ मृत्यु १८८२।
३ The Period of Renaissance
४ Sir William s History of Science पृष्ठ २९१।
५ Al Beruni—जन्म ९७३ ईसवी सन्, मृत्यु १०४८।
६ वही पुस्तक पृष्ठ ७५।
७. वही पृष्ठ ७१ ७२।

उधर से भटककर 'अनन्त परमात्मा' की ओर आ ही जाते थे। सन् १८६३ में ब्रैडले की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उन्होंने स्वीकार किया था कि इस दुनिया में जो कुछ जैसा दिखाई पड़ता है, वास्तव में वैसा नहीं है। विशेषकर समय तथा सीमा के सम्बन्ध मेंहमारी जो धारणाएँ हैं वे परस्पर-विरोधी हैं। कोरी कल्पना ह। यह तक सिद्ध प्रतीत होता है कि वास्तविक जगत् एक ध्रुव सत्य है। अ ततोगत्वा एक ऐसी पूण शक्ति को मानना पड़ता है जो काल तथा सीमा के परे है।[१]

पूर्वी देशो के विज्ञान की जानकारी न होने के कारण ही पश्चिमी विद्वान् बड़ी गलत धारणाएँ बना लेते हैं जसे हमारे चरक तथा सुश्रुत की जानकारी न होने से ही पाचन क्रिया के ठोस सिद्धान्त को सन् १८०७ मे प्रतिपादित करनेवाले बोयेरहाव[२] को आधुनिक चिकित्सा जगत् का सबसे महान् व्यक्ति मान लिया गया।[३] पूर्वी सभ्यता से अपरिचित लोग हमारे दशन शास्त्र अथवा प्रतीक किसी चीज़ को भी नही समझ सकते। एडिंगटन ने सन १९३२ मे यह कहा था कि विश्व का आयतन १०६८० लाख प्रकाश वर्षों का है—यानी १ ८५ ००० मील प्रति सेकेण्ड की गति से यात्रा करनेवाला प्रकाश १०६८० वर्षों में विश्व की परिक्रमा कर सकेगा।[४] हमारे ज्योतिषशास्त्र ने इनके बहुत पूव इन सब बातो की जानकारी कर ली थी। प्रसिद्ध ब्रिटिश कवि मिल्टन[५] ने सत्रहवी सदी मे लिखा था कि हमारे सूय के अतिरिक्त ऐसे बहुत-से सूय हैं जिनके साथ अपना पथक नक्षत्र राशि ग्रह-मण्डल है। श्री रिचाडस ए० प्राक्टर ने लिखा था कि हमारे जगत् के अलावा और भी जगत् है। ये चीज़ें जानकारी और ज्ञान से ताल्लुक रखती ह। डा० मायर तथा अपलेटन ने अपनी रोचक पुस्तक में पूर्वीय प्रकाश तथा ज्ञान का स्वीकार किया है।

डा० मायर का कहना है कि १५ ००० वष पूव प्रारम्भिक मनुष्य की समूची भावनाएँ भय तथा अनिश्चित परिस्थिति से सचालित होती थी।[६] किन्तु अरिस्तू ऐसे विद्वान्

१ वही, पृष्ठ ४५७।

२ Boerhave in his Institutines Medicae —1708— Digestion was more of the nature of solution than of fermentation "

३ C Singer A Short History of Medicine-Oxford University 1908 page 104

४ Sir William's History of Science page 451

५ John Milton—'Paradise lost'—जन्म १६०४, मृत्यु १६७४

६ Joseph Myer and D Appleton— The Seven Seals of Scince — Century Co, New York 1936-page 7

ने यह ढूंढ़ निकाला कि जिसे हम भावना समझते है वह भावना नही भी हो सकती। भ्रम हा सकता है।[१] प्लेटो तो कवल आन्तरिक प्रेरणा को असली चीज समझते थे। अरस्तू आल्कमियान के इस कथन से सहमत नही थे कि मनुष्य के शरीर में समूची भावना कल्पना तथा अनुभूति का आधार मस्तिष्क होता है।[२] प्लेटो हर एक चीज को गणित के द्वारा प्रमाणित करके तभी उस पर विश्वास करते थे। उनकी पाठशाला के दरवाजे पर लिखा रहता था कि जिसको गणित तथा ज्यामिति म रुचि न हो वह यहां पर आन का कष्ट न करे।

ऐसे ही विद्वानो की परम्परा के कारण ईसा से ५१७ वष पूव हिकातियस[४] ने सबसे पहले पथ्वी का मानचित्र बनाया जिसमे पृथ्वी को गोल दिखाया गया था। इस मानचित्र को बनाने में मिस्र बेबीलोनिया आदि में प्राप्त सामग्री के आधार पर काय हुआ था। इनके भी पूव ईसा से ६४० वष पूव यूनानी उपनिवेश मिलेटस के नागरिक थालीज[५] न पता लगा लिया था कि चन्द्रमा में स्वत प्रकाश नही है। वह सूय के प्रकाश से चमकता है और जब पृथ्वी सूर्य चन्द्र के बीच में आ जाती है तब चन्दग्रहण लगता है। इसी विद्वान् ने पहले पहल कहा था कि साल म ३६५ दिन होते ह।[६]

६ठी सदा मे हिन्दू यूनानी सभ्यता समूचे एशिया में फली हुई थी विशेषकर मध्य एशिया में।[७] हिन्दू गणित तथा विज्ञान स्पन तक मे पढ़ाया जाता था। जिसे अलजेबरा (बीज-गणित) कहते है उसके प्रतीको का नियमित रूप से सकलन तथा प्रचार १२वी सदी म भारतीय विद्वान भास्कराचाय ने किया।[८] इतालियन पिसानो तथा दान्ते न हिन्दू गणितशास्त्र का दुनिया में प्रचार किया।[९] पन्द्रहवी सदी म एक विद्वान् इतालियन न मगल ग्रह के सम्बन्ध म काफी खोज की। पृथ्वी से उसकी दूरी नापने का प्रयास किया। ग्रहो द्वारा सूय की परिक्रमा का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।[१०] किन्तु उस अधविश्वास के युग मे ऐसी बातें सोचना भी गुनाह था। सूय का परिक्रमा करने से कार्पानिकस के सिद्धान्त में विश्वास रखने के अपराध म ईसवीय सन १६०० में लियार्दनो ब्रूनो को रोम म जिन्दा जला दिया गया था।[११]

किन्तु यह तो बहुत बाद की बात हुई। ईसवीय सन् के हजारो वष पूव भारतीय विचार भारतीय धम तथा भारतीय प्रतीक एशिया-यूराप मे फल चुके थे। कुछ लोगो

१ वही पृष्ठ १४। २ वही, पृष्ठ २९ ३०। ३ वही, पृष्ठ ३१।
४ Hecataeus ५. Thales ६ वही पुस्तक पृष्ठ १८ २०।
७ वही पृष्ठ ५०। ८ वही, पृष्ठ ५१। ९ वही, पृष्ठ ५५।
१० वही, पृष्ठ ६३—Nicholas Copernicus ११ वही, पृष्ठ ६९।

के मन में यह शका होती है कि उस समय समुद्र का मार्ग आज जैसा नहीं था, तब चारो ओर फैल जाना दुष्कर रहा होगा। किन्तु हजारो वष पूर्व के ससार के भूगोल में और आज के भूगोल में बडा अन्तर है। श्री ह्वीलर ने सिद्ध किया है कि ईसा से २५०० से १५०० वष पूव प्रागैतिहासिक काल में हिन्दुस्तान और एशिया इतना मिला हुआ था कि अरेबियन सागर के तट पर स्थित सलकागेन-दोर नामक स्थान से जो पाकिस्तान की राजधानी कराची से ३०० मील पश्चिम में है, हिमाचल प्रदेश की शिमला की पहाडियो के चरणो में स्थित रुपड ग्राम तक—१००० मील से अधिक लम्बी यात्रा भूमाग से परो से की जा सकती थी और इस १००० मील के भीतर स्थान-स्थान पर अच्छी खासी बस्तियाँ मिलती थी।[1] ऐसे माग से प्रतीक तथा विचार को यूरोप पहुँचने मे कितनी देर लगती ?

ह्वीलर के अनुसार मानव-सभ्यता बहुत पुरानी है। आज के ४ लाख से २ लाख साल पहले आदमी लकडी काटने का औजार बना चुका था।[2] आज के ५ ६ हजार वष पहले सिन्धु नदी के किनारे रहनेवाले जो पोशाक पहनते थे वही पोशाक यूनान तथा रोम म भी थी। पुरुष घुटने तक की लगी पहनते थे। स्त्रियाँ छोटा घाघरा पहनती थी। महजोदडो तथा हडप्पा में प्राप्त मूर्त्तियो से यह पता चला है। वेश्याएँ एकदम नगी रहती थी।[3] पर बाहर नगी घूमती थी या घर में यह कोई नही कह सकता। समाज के एसे बहुत से नियम है जिनका आशय समझना कठिन है। यदि प्राचीन काल म कुछ जगनो जातियो में रिवाज था कि पुरुष एकदम नग्न रहते थे और अपनी जननेन्द्रिय को लाल रग मे रग देते थे[4] और यह प्रथा इगलण्ड में रहनेवाल असभ्य लोगो में भी थी तो इससे कोई एक निन्दात्मक सिद्धान्त नही बन जाता। ससार में प्रतीक ही एसी वस्तु है जो एक देश का दूसरे से पुरातन सम्बन्ध सिद्ध करती है। हम लोग माता की पूजा मातृत्व की पूजा को अपने देश की सबसे बडी देन समझते है। प्रकृति की माया की कल्पना सबसे पहले वदिक आर्यों ने की। आय धम के प्रचार के साथ माता की पूजा भी चारो ओर फैला दी। समय के प्रवाह में उपासनाए भ्रष्ट होकर अध विश्वास का रूप भले ही ले लें पर मौलिक सत्य छिपता नही। एक विद्वान् लेखक ने

१ R E M Wheeler—'Five Thousand years of pakistan" Pub- Christopher Johnson Ltd London 1950-page 24

२ वही पृष्ठ १५ १६।

३ वही पृष्ठ २९।

४ Ivan Block— Sexual Life in Eugland'—Pub Francis Alder— London, 1938—page 328.

सिद्ध किया है कि यूनानी सभ्यता के समय में कितने अधिक राज्यो में माता की पूजा प्रचलित थी। फोयनिशियन लोग देवी अस्र्ताती के रूप में फिजियन लोग सिबेली के नाम से थेसियन ब्रन्दीस (बन्दी देवी) के नाम से क्रेटन निवासी र्‌ही (माय बीज मन्त्र ह्रीँ) के नाम से एफसियन लोग आर्त्तमिस के नाम से इरानी लोग अनाइतीज (अनन्त) नाम से तथा कप्पोडिसियन लोग मा के नाम से जगज्जननी माता की पूजा करते थे। इन देवियो की पश्चिमी लोग जिस किसी निन्दनीय रूप से समीक्षा करें, वह और कुछ नहीं केवल माता की पूजा है। मौलिक आधार वही है।[१] उत्पत्ति तथा प्रजनन का सूय देवता के साथ यूनान म कभी सम्बन्ध नही रहा। इसके देवता तो उनके यहाँ एरोस तथा देवी डेल्फी थी।[२] तो फिर खीच-तानकर सब कुछ सूय के जिम्मे करके उनकी प्राप्त प्रतिमाओं की मर्यादा को खण्डित करने से क्या लाभ है ?

बहुत अधिक तक वितक करना मन का दोष है। पुरुष स्वय कुछ नही है। पुरुष मन है मनोमयाग्य पुरुष । पुरुष का मन हृदय में जौ या चावल के एक दो दाने की तरह पडा हुआ है और यह एक दाना ही मनुष्य मात्र का शासक है स्वामी है।[३] मन ने ही कही पर वृषभ-बल-नन्दी को सूय के साथ राशि मडल का द्योतक बना लिया, कही पर उसे शकर का वाहन बनाकर वर्षा तथा अन्न का प्रतीक बना दिया। पर हमारे शास्त्रा म कही भी वृषभ को जनन शक्ति या पुत्रोत्पादन का प्रतीक नही माना है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वृषभ की व्याख्या की है—

वर्षति कामान पूरयति इति वृषभ ।
वर्षति मूत्रेण भूमिं सिञ्चति इति वृषभ ।

अपने मूत्र से जो भूमि का सिचन करे वह वृषभ है। भूमि का सिंचन सूय के द्वारा प्राप्त जल से होता है। अतएव दानो का गुण एक ही होने के कारण वृषभ को सूय के साथ भी बिठा दिया गया है। हमारे देश मे ही नही ससार में जल का मानव-जीवन के लिए महान महत्त्व बार बार धार्मिक रूप से प्रतिपादित हुआ है। इसी लिए अन्न अर्थात प्राण का दाता भी जल है वृष्टि है जो सूय से प्राप्त होती है। लोकपालक विष्णु को भी जल से उत्पन्न तथा जल का निवासी जल म शयन करनेवाला माना गया है । विष्णु

१ L R Farnell—Cults of the Greek State—Clarendog Press—1909 Edition

२ Cutner—page 240

३ Dr E Roer—The Twelve Principles oI Uapnishads'—Vol II—1931—page 391

को नारायण भी कहते है । नारा का अथ है आप । आप का अर्थ है जल । जल में जिसका पहले घर था, वही नारायण–विष्णु–लोकपालक है–

> आपो नारा इति प्रोक्ता आपो व नरसूनव ।
> ता यवस्यायन पूव तेन नारायण स्मृत ।।
> –मनु० १–१०

सूय का ठीक से अथ न समझने के कारण ही पाश्चात्यो ने उनके प्रतीक के बारे में भी भूले की है । वैदिक शब्दो का अथ बिना अच्छे ज्ञान के नही समझा जा सकता । उदाहरण के लिए यज्ञ शब्द को लीजिए । ऋग्वेद में ही इस शब्द का प्रयोग शासन' के लिए हुआ है ।[१] यदि हम केवल हवन के अथ में लें तो हमारा ही दोष है । यजुर्वेद मे अन्न को अग्नि का स्वरूप माना है तथा जल को सोम का शरीर । ये दोनो वस्तुएँ प्रजा के लिए अत्यावश्यक है । इन दोनो यानी अन्न तथा जलवाले ससार मे व्यापक तथा प्रजा के रूप मे पूजा रूप से रहनेवाले––विष्णवे त्वा–विष्णु ह । इसी लिए वे प्रतीक रूप में ससार के पालक कहे गये ह । ईश्वर की वे पालक शक्ति है ।

> अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि [२]।

इसमें जल तथा अन्न दोनो के दाता पथक देवता है । कही भी दोना के लिए एक ही देवता हो ऐसा प्रकट नही होता । पर कई पश्चिमी विद्वानो ने सूय तथा अग्नि को एक ही देवता माना है और पारसी धम मे तो अग्नि पूजन को सूय का पूजन माना है । वदिक देवताओ के वणन में हम सूय की तथा अग्नि की पथक सत्ता स्थापित कर चुके हैं । अग्नि और सूय में एक ही चीज़ समान रूप से पायी जाती है––वह है ज्योति । कि तु इस समान गुण के होते हुए भी उनको पथक देवता माना गया है । यजुर्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है कि अग्नि ज्योति स्वरूप है । समस्त ज्योति अग्निस्वरूप है । यह ज्योति स्वरूपता ही अग्नि की अपनी महिमा का प्रत्यक्ष वणन है । सूय ज्योति है । ज्योति ही सूय है । यही उसके अपने महत्त्व का उत्तम स्वरूप है । इस देह में अग्नि ही तेज है । ज्योति ही तेज है । यही उसका अपना उत्कृष्ट रूप है । सूर्य तेज है । ज्योति ही तेज है । यही उसका अपना महत्त्वपूण रूप है । ज्योति सूय है और सूर्य ही ज्योति है । यही उसका

१ देखिए पृ० १––९९––१९––"विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।" सब पर तू सब प्रकार से समर्थ अधिकारी होकर शासन कर ।

२ यजुर्वेदसहिता, पञ्चम अध्याय मन्त्र १, पृ० १४४ ।

यथाथ महत्त्व है। [१] इस प्रकार यही प्रतिपादित हुआ कि अग्नि ज्योति रूप है। सूय ज्याति रूप है। सूय मे ज्याति का गुण प्राप्त कर अग्नि देव को प्रतिष्ठित किया गया होगा। पर दोनो देवता भिन्न ह। इनके प्रतीक भी भिन्न ह। अग्निपुराण के प्रारम्भ में ही लिखा है—

विष्ण कालाग्नि रुद्रोऽह विद्यासारवदामिते।

ऋग्वेद म कमभेद से पाच सौर (सूय से सम्बधित।) देवता ह। इनमें एक की सज्ञा मित्र है। मित्र देवता सूय क कार्यो म हितकर्ता के रूप में वर्णित है। प० बटुक नाथ शास्त्री खिस्ते नामक धुरधर विद्वान का कहना है कि भारतीय-ईरानी काल से चलकर मित्र देवता ऋग्वेद का अपना रूप छोडकर मित्र वरण देवता बन गये। ऋग्वेद म भी केवल एक ही सूक्त मित्र देवता क विषय मे है। शेष सयुक्त दवता मित्रावरुण के विषय में ह। [२]

१ अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्नि स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योति सूर्य
स्वाहा, अग्निर्वर्चो ज्योतिवर्च स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योति
र्वर्च स्वाहा, ज्योति सूर्य सूर्यो ज्योति स्वाहा।

—यजुर्वेद—अ० ३—म० ९—मन्त्र ९

देखिये यजुर्वेदसहिता—पृष्ठ ६९।

२ श्रीमती मरे ने अपनी पुस्तक में मित्र तथा सूर्य को एक ही देवता माना है। यह उनकी भूल है।

सूर्य तथा अग्नि

सौर देवताओ में सूय प्रधान हैं । ग्रीक भाषामें सूयको हेलियस कहा गया है । इस शब्द का अथ है तेजोमय । सूय का यही अर्थ वेदो से प्रमाणित है । वेदो में कई जगह वर्णित है कि सूय देवताओ के चक्षु ह । उषा उन्हें ले आती है । सर्वसाक्षी भूमण्डल पर "सवत्र गूढ विचरण कर जीवो की मनुष्यो की गति विधियो को देखते हैं । पुण्य पाप को भी देखते है । सूय ही वेदो के अनुसार मनुष्यो को जगाकर अभीष्ट काय करने में प्रवृत्त करते ह । यही चराचर सभी की आत्मा ह 'सूय आत्मा जगतस्तुस्थुषश्च ।' सात घोडेवाले एक पहिये के रथ पर चढ कर चलते हैं । सप्त युजन्ति रथमेकचक्रम् ।

अग्नि के समान ही सूय के विषय मे मनोरम कल्पनाएँ वेद में प्राप्त है । कही उषा का गोद में खेलनेवाला बालक ह । कही सूय उषा के पति ह । सूय को आरोग्य का देवता शत्रुओ का नाशक काल सवत्सर, मास ऋतु आदि का विभाजक माना गया है । श्रीतत्रालोक में उनको रात्रि दिन का विभाजक माना गया है[1]—

> श्रीत्रयम्बकसन्तानवितताम्बरभास्कर ॥६–८८
> दिनरात्रिक्रम मे श्रीशम्भुरित्थमपप्रथत ॥ ६ ८६

सूय का एक वैदिक गुण दु स्वप्नो को मिटाना भी है । सूय सुवण के समान हैं । उनका रथ भी सोने का है । देवता उन्हें अग्निरूप से स्वगलोक में धारण करते ह । सुप्रसिद्ध गायत्री मत्र भी सूयपरक है (३–६२–१०) । इन सब बातों से स्पष्ट है कि जहाँ तक सूय तथा अग्नि के एक ही देवता होने का सम्बन्ध है वैदिक प्रमाणो में वे नितान्त भिन्न हैं । दोनो में मूलत भेद है । कही कही एक ही समान गुणधर्मी होने के कारण तुलना या अभेद किया जा सकता है । पुराणो में तो दोनो में नितान्त भेद है ।

वैदिक साहित्य में विशेषत ऋग्वेद में इन्द्र के बाद महत्त्वपूण देवता अग्नि को माना गया है । लगभग २०० मत्र अग्नि के विषय में हैं । अग्नि का स्वरूप यज्ञ की अग्नि के रूप में वर्णित है । अग्नि के नीचे लिखे पाँच विशेष नाम हैं—

१ श्री अभिनव गुप्ताचार्य—श्रीतत्रालोक—चतुर्थ भाग, प्रकाशक, कश्मीर सरकार, श्रीनगर, सन् १९२२—पृष्ठ ७७-७८ ।

(१) घृत पष्ठ–घत पर जलनेवाला।
(२) शोचिष्केश—ज्वाला केश।
(३) रक्त श्मश्रु—लाल मछोवाला।
(४) तीक्ष्ण दष्ट्र—बडे तीखे दाँतोवाला।
(५) रुक्मदन्त—सोने के दातोवाला।

वेदा म अग्नि की अनेक उपमाएँ दी गयी ह। कही पर उन्ह गरुड, कही पर श्येन[१] तथा कही हस के समान कहा गया है। इन्ह इतना महान स्थान दिया गया है कि इनको देवताओ का मुख कह दिया है—

अग्निमुखा व देवा।

ऋग्वेद के अनुसार अग्निदेव दिन में तीन बार भोजन करते ह। उनकी उत्पत्ति तीन स्थानो से होती है—

१ काष्ठ से। २ जल म। ३ द्युनाक (आकाश) से। ऋग्वेद के अनुसार अग्नि के पाँच गुण विशेषण और भी हैं—

(१) सहस्रशृङ्ग — हजार सीगोवाले, यानी परम बलवान।
(२) यविष्ठ — जवान।
(३) मेध्य — पवित्रतर।
(४) कवि शस्त्र — बुद्धिमानो के प्रियपात्र।
(५) दमुना — गह के कार्यों में सहायक।

अग्नि की लोकप्रियता उनकी दो उपाधियो से और भी सिद्ध होती है। एक उपाधि है वैश्वानर जिसका अथ हाता है—ससार के सभी प्राणियो का प्रिय। दूसरा उपाधि है नाराशस यानी सभी नर जिसकी स्तुति करते ह।

अग्नि की उपाधियो तथा प्रशसा के पढन से यह स्पष्ट है कि उनका गुण सूय स पथक है लेकिन जो कुछ भी गुण है वह आग का ही गुण है। आग सभी को चाहिए। इसलिए वह नाराशस है यानी सभी नर इसका स्तुति करते ह। आग से ही पोषण होता है। अतएव यह वश्वानर है। हू हू कर जलनेवाली आग जवान भी होगी। पवित्र से पवित्र होगी। वगी तथा भयकर भी होगी। आग की लाल लपटे होती ह अत वे उसकी लाल मूछ कही गयी हैं। इस प्रकार अग्नि के गुणो को प्रतीक रूप मे मानकर उसे पृथक देवता माना गया है। आधुनिक विद्वान ता यहाँ तक कहते ह कि अग्नि शब्द या नाम ही इडो यूरोपीयन है। लटिन भाषा म इसे इग्नि तथा स्लवोनिक भाषा में ओग्नि कहते ह।

१ हलायुधकोश के अनुसार श्येन का अर्थ है भयकर, लम्बकर्ण, रणप्रिय, क्रूर, वेगी इत्यादि।

इग्नि तथा श्रोग्नि दोनो शब्दो का श्रथ है फुर्तीला । श्राग में फुर्ती न हो तो वह श्राग कैसी ? पुराने जमाने में दो लकडियो को रगडकर श्राग पैदा की जाती थी । ऐसा करने मे–रगडने में–काफी ताकत लगती होगी । इसी लिए श्रग्नि को 'सहस पुत्र' यानी ताकत का बेटा कहा गया है ।

दो श्ररणि दण्डो से प्राचीन काल में श्रग्नि पैदा होती थी । श्रब भी उन स्थानो में जहाँ दियासलाई नही पहुची है वैसे ही रगडने से पैदा होती है । इसलिए श्रग्नि का एक गुण श्रौर बन जाता है । जिन दो लकडियो की रगड मे–पिता माता के द्वारा–श्रग्नि पैदा होती है, उसे ही वह मार डालती है यानी वे दोनो लकडियाँ जल जाती हैं । पुराणो में श्रग्नि को माता पिता का हन्ता भी कहा गया है । वेदो के श्रनुसार श्रग्नि का रथ सोने के समान चमकता है । दो लाल घोडो द्वारा खीचा जाता है । जिस रथ पर देवताश्रो को बिठाकर यनभमि में वे ले श्राते हैं उसे द्युपुत्र या द्योष्मिता कहते हैं । कही पर इन्द्र श्रौर श्रग्नि को जुडवाँ भाई भी कहा गया है । पुगणो के श्रनुसार श्रग्नि की उत्पत्ति दस कन्याश्रो के द्वारा बतलायी गयी है । ये दस क याएँ श्रौर कुछ नही, हाथो की दस उगलियो हैं जिनके सम्मिलित प्रयत्न से श्राग पैदा होती है ।

वेदो मे श्रग्नि के दो स्थान बतलाये गये है—द्युलोक, यानी स्वगलोक तथा पृथ्वी लोक । उन्हे ऋत्विक या यज्ञ का विद्वान भी बार बार कहा गया है । उन्हें देवदूत भी कहा गया है । उषा के उदित होते ही वे पैदा होते हैं । चूँकि ये प्रात काल जाग पडते हैं श्रतएव इन्हे उषबुध भी वेद मे कहा गया है । साधुश्रो की एक तपस्या होती है चौबीसो घटे पचाग्नि सेवन करना यानी चारो तरफ श्राग जलाकर बैठना पर सर के ऊपर यानी पाँचवी श्राग कहाँ से श्रायेगी ? शास्त्रकारो ने पाँचवी श्रग्नि सूर्य को माना है । इस प्रकार दो तीन बात तो श्रग्नि तथा सूय को एक मे मिला देती हैं पर दोनो मे मौलिक भेद श्रवश्य है । पश्चिमी लेखको ने जिस प्रकार मित्र तथा सूर्य को एक ही देवता माना है, उसी प्रकार श्रग्नि को भी । पर मित्र तथा सूय का किसी रूप में सामञ्जस्य हो सकता है, श्रग्नि का नही ।

मित्र की उपासना के साथ जो तात्विक उपासना चल पडी थी वह ईरान से लेकर यूनान तथा रोम देश की ही विशेषता है । सूर्य उपासको में श्रौर कही ऐसी उपासना नही मिल सकती । यह हो सकता है कि ईरानी श्रार्यों ने सूर्य को मित्र के रूप में ग्रहण किया हो । इसी से 'मैत्रेय' सम्प्रदाय चला होगा जिसे पश्चिमी लेखको ने 'मिथ्रज' कहा है । रोम में मैत्रेय सम्प्रदाय का बडा जोर था । यूनान ने रोम पर श्राक्रमण कर उसे श्रपनी सभ्यता तथा प्रतीक दोनो ही प्रदान किये थे । रोमन सम्राट ईश्वर की तरफ से राज्य

में प्रतिनिधि बन गया था। यानी राज्य के लिए वह ईश्वर का प्रतीक था[1]। मलेयो को सम्राट से पर्याप्त सहायता मिलती थी। पर इसका यह अथ नही है कि यदि यूरोप या ईरान म सूय तथा मित्र दानो वदिक देवताओं का एक में मिला दिया गया ता वे सब जगह एक ही रूप म पूजे जाने लगे थे। हमारे देश म सूय हा अथवा अग्नि हो, उपासना का क्रम यह नही रहा है कि प्रतीक को साध्य मानकर उसी म अपनी बुद्धि का समाप्त कर दें। श्री गेडन न हिन्दू प्रतीको की व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि ससार में सबसे आदृत सबसे अधिक पूजित तथा सबसे अधिक गढ अथवाला प्रतीक ॐ है। यह ब्रह्म प्रतीक है। प्राण ही ब्रह्म है। ब्रह्मा विष्णु तथा महेश—जन्म देनेवाली, रक्षा करने वाली तथा सहार करनेवाली तीनो शक्तियो का प्रतीक तीन अक्षर अ उ म—ॐ है। सौर मण्डल म ९ ग्रहो मे हर एक का प्रतीक बनाकर उनके गुण तथा सत्ता को स्थिर रूप प्रदान किया गया है। जैसे—

सूर्य — — बीज रूप
शनि — — लोहे की कटारी
शुक्र — — चतुष्कोण
गुरु — — कमल का फूल
बुद्ध — — धनुष
मगल — — त्रिकोण
चन्द्र — — अर्द्धचन्द्र
केतु — — सर्प
राहु — — घडियाल

इन प्रतीको की हम आगे चलकर व्याख्या करेंगे। पर प्रतीक चाहे किसी भी रूप म हो सकता है। श्री गेडन के कथनानुसार प्रतीकोपासना स लक्ष्य होता है और ऊँचे की उपासना तथा स्थान को प्राप्त करना।[2]

१ Edited by James Hastings—'Encyclopaedia of Religion and Ethics Chapter— Symbolism —page 140

२ वही पुस्तक—अध्याय—"हिन्दू"—लेखक A S Gedan, पृष्ठ १४२।

अस्तु, सूय तथा अग्नि दोनो भिन्न शक्तियाँ है। सूय तथा अग्नि के पौराणिक रूप में बडा अ तर है। कूमपुराण में सूय के रथ के सात घोडे बतलाये गये हैं। आज का विज्ञान साक्षी है कि ससार को 'रग' नामक वस्तु सूर्य की किरणो से प्राप्त हुई है। सूय की किरणो में सात रग है। कर्मपुराण में इनको सात छ द कहा है—गायत्री बृहति उष्णिक, जगती पक्ति, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप्।[1] कूर्मपुराण के अनुसार सूय की अनगिनत किरणें हैं जिनमें मुख्य है—

सुषुम्ना हरिकेश विश्वकर्मा विश्वश्रवा सेंजद्वस्तु अद्धवसु तथा स्वरक।[2]

भट्टसाली ने अपनी पुस्तक मे सूय की तीन स्त्रियो का वर्णन किया है। वे हैं—सुरणु विक्षुभा तथा उषा।[3] ये तीन पत्नियाँ भी उनकी तीन शक्तियो के प्रतीक हो सकती ह—उत्पादक पालक विनाशक। उषा उत्पादक शक्ति होगी। पर इन बातो को सकुचित रूप मे ग्रहण करने के कारण या ठीक से न समझने के कारण पश्चिम के विद्वान् बडा अनथ कर बठते ह—अपनी बुद्धि को खराब करते ह।

१ कूर्मपुराण, बगवासी सस्करण, पृष्ठ १८६।

२ वही, पृष्ठ १८८।

३ Bhattasali's Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures—Dacca—1928—page 169

चन्द्रमा

हमारा वदिक वचन है— चन्द्रमा मनसो जात सूर्यो ज्यातिरजायत। चन्द्रमा मन के देवता ह तथा सूय प्रकाश के देवता ह। शास्त्रा म मन तथा बुद्धि का चन्द्रमा से बडा घना सम्बन्ध है। आधुनिक विज्ञान भी यह मानता है कि चन्द्रमा का मन पर बडा प्रभाव पडता है। चादनी रात में चन्द्रमा की ओर बहुत देर तक आँखें गडाकर देखने से बुद्धि खराब हो जाती है। पागलपन के लिए ल्यनेसी शब्द चन्द्रमा से ही बना है।[1] पुरानी बीमारियाँ अमावस्या अथवा पूर्णिमा के दिन बहुत जोर पकड लेती ह। आत्म हत्या भी एक पागलपन है। अधिकाश आत्महत्याए पूर्णिमा क दिन या एक दिन आग पीछे हाती हैं। हमारे वदा की महानता है कि जिस परिणाम पर वज्ञानिक आज इतने परिश्रम स पहुचे ह उसकी घोषणा हमन कई हजार वष पहले कर दी थी।

मुसलमान भाइयो के कुरान शरीफ म सूय चन्द्रमा का एक साथ जिक्र आया है। ३६वी सियार सूरे यासीन—म लिखा है[2]—

> **व शम्सो तज्री ले मुस्तकरिल्लहा जालिका तक़दीरुल**
> **अज़ीजिल अलीम वल क़मर क़द्दा ना हो मनाजिला इत्ता**
> **आद कल उर्जूनिल, क़दील कदीम लशशमसोयम बग़ोलध अन्।।**
> **तुजविकह क़मर वलत लयलो साविकुन्नहार व कुल्लुन फी फलकी यस बहून**

अर्थात् पाक है वह ज़ात जिसन हर तरह की चीज़ तथा इसान की किस्म म से हर चीज पैदा की है। उनको समझन के लिए हमारी एक निशानी रात है। और सूरज है कि अपन एक ठिकाने की ओर चला जा रहा है। यह मआज़कर खदा का बाँधा हुआ है, जो जबदस्त है और हर चीजो से आगाह है। और चाँद है कि उसके लिए हमन मजिल ठहरायी। यहा तक कि आखिर महीने में घटते घटते ऐसा टढा और पतला हो जाता है, जसे खजूर की पुराना टखनी। न तो सूरज ही से बन पडता है कि चाद को जाल और न

१ Lunar = चन्द्रमा का Lunacy = पागलपन।

२ कुरान शरीफ़—अनुवादक डॉ मौल्वी नजीर अहमद। ११३० हिजरी—ई० सन् १९११—अंग्रेजी सस्करण।

रात ही दिन के पहले हो सकती है । और क्या चाँद और क्या सूरज सब अपने अपने मदार (घेरे) में पड़े तैर रहे है ।

आज के लगभग १४०० वष पहले की यह उक्ति भी काफी महत्त्व रखती है । इसमें चन्द्र और सूय को भगवान की दो रचनाए स्वीकार किया गया है जो ईश्वरीय विधान से बधे हुए हैं । हिन्दू शास्त्र की बात तो जाने दीजिए मुसलिम धम में भी अर्द्धचन्द्र को धार्मिक प्रतीक के रूप मे कभी नही माना गया था । इकबाल ने अपनी शायरी में जो लिखा है—

खञ्जर हिलाल का है क़ौमी निशा हमारा

वह सितारा युक्त चाँद बना झण्डा तो हजरत पगम्बर साहब के कई सौ वष बाद अपनाया गया । मुसलिम धम में प्रतीक की व्याख्या करते हुए श्री मार्गोलियथ[1] कहते हैं कि इस्लामी भाषा मे प्रतीक का समानान्तर या पर्यायवाची[2] शब्द नही है । निकटतम शब्द हि आर या धि यार या अरबी म किनायाह प्रतीत होता है ।[3] हजरत मुहम्मद साहब ने अपनी सेना के झण्डे पर रोम साम्राज्य का बाज' पक्षी अपनाया था । बाद में अब्बासिया ने काला झण्डा बनाया जिस पर 'मुहम्मद पगम्बर है' लिखा रहता था । अलविदा का झण्डा हरे रग का था । उम्मद का झडा सफेद रग का था । टयूनीसिया के सुलतान ने रग बिरगे कपडो के झण्डे रखे ।

यह मुस्लिम प्रतीक नही है । तुर्की साम्राज्य के उदय के पूव मुसलिम मस्जिदा की मीनारो के ऊपर यह शोभा तथा शृगार के लिए बनाया जाता था ।[4] प्राचीन रोमन साम्राज्य में उनके सीनेट (राज्यपरिषद्) के सदस्य अर्द्ध चद्राकार जूता पहनते थे ।[5] पुराने तुर्की मदिरो पर भी अर्द्ध चद्र बना रहता था । असल म इस प्रतीक का अत्यधिक उपयोग प्राचीन बाइजेंटाइन साम्राज्य में

१ D S Margoliouth on 'Muslim Symbols" in Encyclopaedia of Religion and Ethics"—Page 145

२ No Equivalent for Symbol"

—वही, पृष्ठ १४५ ।

३ Roman Lagle.

४ वही पुस्तक, पृष्ठ १४५ ।

५. वही, पृष्ठ १४५ ।

होता था। उसी से तुक लोगा न इस अपनाया। बौसनिया मे भी इसी प्रतीक का उपयोग हाता था। इसलिए श्री ससाविना[1] का कहना है कि सन् १४६३ में खलीफा मुहम्मद द्वितीय ने बौसनिया पर कब्जा कर लिया और वहाँ के प्रतीक को अपना लिया। मार्गोलियथ कहत है[2] कि ईसवी सन ११५६ म अलमोहद वग ने तथा मिस्र के फातिमी वग ने अद्ध च द्र का झण्डे पर स्थान दिया। पुतनहम का कथन है कि तुर्किस्तान के सुलतान सलीम प्रथम ने (शासनकाल सन १५१२ स १५२०) इसे पहली बार अपने झडे पर स्थापित किया।[3] मार्गोलियथ ने एक बडे माक की बात कही है—

अद्ध च द्र क्रमागत बढते रहनवाल (यानी द्वितीया के) च द्र का द्योतक नही है। वह पतनशील यानी समाप्तप्राय हानवाल च द्र का द्योतक है जिसके बाद उषाकाल आता है। यानी अधकार के बाद प्रकाश रात्रि के बाद दिन की आशा का प्रतीक है। अद्ध च द्र आशा का प्रतीक है।[4]

च द्रमा को आशा का प्रतीक मानन की यह बडी मनारम कल्पना है। मुसलिम विद्वान भी इसे अपन धम का प्रतीक नही मानते। जा लाग ईद के चाद से अद्ध च द्र के प्रतीक को मुसलिम धम के साथ मिला दते ह वे भूल कर रहे ह। हि दू धम तथा साहित्य म च द्रमा के सकडा नाम ह। उसमे उनका अमृतवर्षा करनवाला शीतलता देनेवाला स्वच्छ प्रकाश देन वाला एसे अनक नाम दिये ह। कुछ रोचक नाम हैं—

औत्रधीश निशापति हिमाशु श्वनवाहन तुषार किरण सुधानिधि तुङ्गी अमृत, श्वेतद्युति शीतल मरीचि इत्यादि।

ऋग्वेद म च द्रमा का वणन है—

उतन सुद्योत्माजीराश्वा हातामन्द्र शृणवच्चन्द्र रथ ॥

ऋ० १–१४१ १२

च द्रमा का इतना ही अथ नही है। यागशास्त्र के पण्डित जानते है कि मनुष्य के शरीर मे भी सूय तथा च द्र की स्थापना है। भ्रुवो के मध्य मे जहाँ पर हम टीका अथवा च दन लगते ह वही पर च द्र मण्डल है जिसका शास्त्रीय नाम सोम मण्डल है। मानव अपने ध्यान या चित्त को इसी स्थान पर इसी मण्डल म स्थिर करता है। उस स्थान का निर्देश करन के लिए ही तथा उसकी महत्ता को याद दिलाने के लिए तथा प्रतीक रूप से समझाने के लिए उसी स्थान पर नित्य टीका रोली या च दन लगाते ह। उसी स्थान पर,

१ F Sansovino

२ वही पुस्तक, पृष्ठ १४५।

३ G Puttanham— Arts of English Poesie"

४ वही (मार्गोलियथ की) पुस्तक पृष्ठ १४६।

अपनी भुवो के बीच में मन–बुद्धि–चित्त को एकाग्र करने से शरीर में अमृत की वर्षा (वहीं से) होती है। हठयोगप्रदीपिका में लिखा है—

भ्रूमध्यभागस्य सोममण्डलम्।

इसके टीकाकार ने लिखा है—

चन्द्रात् स्रवति य सार स स्यादमरवारुणी।

च द्र नाम की एक नाडी भी शरीर में है। पद्मासन लगाकर योगी चन्द्र नाडी में प्राण को भर लेता है।

बद्धपद्मासनो योगी प्राण चन्द्रेण पूरयेत्।

हठयागप्रदीपिका की यह सूक्ति है। अत मन के देवता चन्द्रमा योग के, क्षेम के, शरीर के भी देवता ह। पर च द्रमा को योग का अमृत का शरीर की यौगिक क्रिया का प्रतीक न मानकर अज्ञानी लेखक अद्ध च द्र को स्त्री की योनि का प्रतीक मान बैठे हैं। हार्डिज लिखते ह कि च द्रमा गभ धारण करानेवाला देवता समझा जाता था। पुराने जमाने में स्त्रियाँ चादनी रात में इसलिए नही सोती थी कि चन्द्रमा अपनी रश्मियो से उनके साथ प्रसग करेगा और उनको गभवती बना देगा। बहुत से प्राचीन लोगो का यह भी विश्वास था कि सूय गभ धारण करानेवाला पुरुष है तथा च द्रमा गभ धारण करानेवाली स्त्री है।[१]

भारतवष में च द्रमा को स्त्री कभी नही समझा गया था। सौ दय की तुलना में स्त्री के प्रयोग मे च द्रमा आता है पर वह स्वय स्त्री नही है। बे पढे लिखे लोग भी आजकल अपने बच्चो को च दा मामा सिखलाते तथा दिखलाते है। च दा मामी या माता नही कहते। पर भारतीय विद्वान् रामबहादुर गुप्ते ने अपनी पुस्तक में सती दाह की प्रथा की बडी सु दर ्याख्या की है।[२] अपनी पुस्तक में सती-स्तम्भो पर चन्द्र-सूर्य को साथ साथ बने देखकर वे इस नतीजे पर पहुचे है कि 'चूँकि बुन्देलखण्ड में हर सती स्तम्भ पर सूय च द्र बना हुआ है इससे प्रकट है कि ये सच्चरित्रता के प्रतीक ह तथा सती पत्नी का अपने पति के साथ अमर-बधन प्रकट करते है।[३] स्त्री के रूप का द्योतक होने के कारण च द्र को स्त्री का प्रतीक भले ही मान ले पर सती-स्तम्भ पर सूर्य और च द्र केवल परम शिव तथा परा शक्ति या पुरुष और प्रकृति के प्रतीक मात्र है।

१ M E Hardıng— Women's Mysterıes"—Longman Green & Co London —1035

२ Raı Bahadur, B A Gupta— Hındu Holıdays and Cermonıals"— Thacker Spınk & Co, Calcutta 1916—pages 108-109

३ वही, पृष्ठ ३९।

समय काल पाकर देशो में मानव की विचारधारा तथा उसके प्रतीक बदल जाते ह। हमने ऊपर नवग्रहो का प्रतीक दिया है। मिस्र में उनका रूप बदला हुआ

था। वहाँ पर मगल को △ न बनाकर बनाते ह।

मगल मारक ग्रह है। अतएव मारने का मृत्यु का प्रतीक है।

शनि भी मारक है अत मिस्र म उसे हसिया का रूप दिया गया।

प्राचीन मिस्र मे चन्द्रमा का ◡ अर्द्ध चन्द्राकार ही बनाते थे। यह घटने बढ़ने की चन्द्रगति को प्रकट करता था। धम तथा प्रतीक दोनो ही समय तथा स्थान के भेद से अपना रूप बदलते रहते ह। ईसाई धम के विद्वानो का कहना है कि स्वय प्रभु ईसा ने अपनी माता मरियम की उपासना की बात कभी नही कही थी। ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा के जन्म दिवस का भी कोई प्रमाण नही है[१]। ईसा न अपने जीवनकाल में, सेण्ट

१ G Simpson Marr— Sex in Religion"—George Allens & Unwin Ltd London, 1936—page 107.

मथ्यू के अनुसार[1], कहा था कि जो भी उनके परम पिता के तत्त्वो का प्रचार करेगा वही उनकी माता, बहन या भाई होगा । ईसा के जन्म दिवस को २५ दिसम्बर को निश्चित करना तथा बड़े दिन में खब उल्लास मनाना ईसाइयो ने रोमन 'सैटरनालिया' त्योहार से सीखा ।[2] २५ दिसम्बर तथा उसके साथ के उत्सव का सबसे पहले पहला वणन चौथी शताब्दी में मिलता है । कुमारी मरियम की पूजा तो इसलिए शुरू हुई कि चूकि सभी धर्मों में देवी उपासना थी इसलिए ईसाई धम में भी होनी चाहिए थी । और यह पूजा पहले शुरू हुई सिकन्दरिया मे—मिस्र में—जहाँ मिस्र की देवी आइसिस की पूजा का बडा भारी केन्द्र था । कुमारी मरियम की पूजा की घोषणा ईसवी सन् ४३१ मे सिरिल ने सिकन्दरिया मे की थी ।[3] ईसा न स्वय कहा है कि ' ऐन्द्रिक दुबलता मनुष्य म ईश्वर प्रदत्त है । '[4]

पुरुष-स्त्री की इस प्रकार की कल्पना में मातृत्व के साथ ही विलास की भावना के साथ-साथ विकास में दैवदत्त ऐन्द्रिक दुर्बलता के कारण मनुष्य एक पर एक नये सिद्धान्त बनाता चले तो क्या किया जाय । कटनर लेखक का कहना है कि मिस्री लोग १० की सख्या 10 को पूण सख्या मानते थे, पुरुष का द्योतक था ० स्त्री का । इब्रानी (हिब्रू) भाषा मे उनकी वणमाला मे सबसे छोटा अक्षर योद (।०) है ।[5] यह अक्षर सब अक्षरो का पिता है । यह भी पुरुष-स्त्री का प्रतीक है । मिस्री ईरानी प्रतीक ɸ पुरुष स्त्री के योनि प्रसग का सबसे पूर्ण प्रतीक था । पुरुष अपनी पत्नी की उगली मे अगूठी इसी लिए पहनाता है कि वह अपने दोनो के पूण ससग ɸ का प्रतीक बनाता है । मिस्री लोग इसी भावना से चन्द्रमा को स्त्री का प्रतीक मानते थे और सूय को पुरुष का । वे सूय को ओम या औन कहते थे जो ॐ से मिलता जुलता है । अद्धचन्द्र ◡ को वे योनि के प्रतीक-रूप में बनाते थे चन्द्रमा को वे दैवी प्रकृति का शक्ति का प्रतीक मानकर पृथ्वी में बिल्ली को चन्द्रमा का प्रतीक मानकर पूजते थे ।[6] मिस्री लोग चन्द्र को सोम कहते थे ।

श्रीमती मरे ऐंसले ने सिद्ध किया है कि ससार के हर कोने में सूय उपासना प्रचलित थी ।[7] यूनान के औसस " देवता भारत के ' वरुण ' देवता ह । ईरानी लोग इनको स्वग आकाश तथा मेघ के जल-देवता मानते थे । जब भारतीय आर्य दक्षिण भारत पहुचे

१ वही, पृष्ठ १०७ ।
२ वही, पृष्ठ १०७ Romon Saturnalia—Saturn = शनि तथा शैतान दोनों अर्थों में । रोम में उन दिनों इसान शैतान बन जाता था ।
३ वही, पृष्ठ १०८ । ४ वही, पृष्ठ २४१ । ५ YOD (IOD)
६. H Cutner—A Short History of Sex Worship
७. Mrs. Murray Aynsley, Symbolism of the East & West—page 29

तो वहाँ जाकर वरुण पृथ्वी स्थित समुद्र तथा जल के देवता बन गये। उस समय दक्षिण भारत म सूय को वरुण देवता का नेत्र मान लिया गया। मित्र प्रकाश के देवता थे। लोगा का विश्वास था कि वे एक ही रथ पर बैठते थे। एक ही स्वणरथ पर यात्रा करते थे।[१] विवाह के समय अग्नि पूजा तथा अग्नि के सामने वर वधू का शपथ लेना यानी अग्नि को साक्षी बनाना—यह भी सूय की पूजा है श्रीमती मरे की दृष्टि में।[२] पर हम अग्निदेव की अलग सत्ता सिद्ध कर आये ह।

प्राचीन काल से पूव की ओर मुख करके पूजा करने की रीति को भी सूय उपासना का परिणाम मानते ह। सूय जिस दिशा म प्रकट हो उसी दिशा में मुख कर पूजन का विधान हमारे शास्त्रा म भी है। श्रीमती मरे का कथन है कि भारत मे बहुत-से मंदिर इस ढग से बनाये गये है कि सूय की प्रथम किरण उनके प्रवेश द्वार पर पड। सन १८०७ मे प्रकाशित श्री जेफरी की पुस्तक के[३] अनुसार पुराने समय मे ईसाई गिर्जाघर भी इस प्रकार बनाये जाते थे कि सूर्य की किरणें उनके प्रवेश द्वार पर पडे। पूव की दिशा के विषय मे लागो में काफी अधविश्वास है। यूरोप मे यदि शराब का प्याला सूय के माग से न चलकर दायें से बायें का दौर चलता है तो लोग उसे बडा अशुभ समझते ह।[४] यूरोप के दक्षिणी भाग के मुकाबले मे उत्तरी भाग मे सूय चन्द्र तथा अग्नि के प्रतीक प्रचुर तथा अधिक मात्रा में मिलते ह। उत्तर के ठण्डे प्रदेशो मे प्रकाश तथा गर्मी का कही अधिक महत्त्व है। स्वेडन तथा नार्वे में पत्थर के युग म ○ चन्द्रमा का प्रतीक[५] था

तथा ⊕ सूय का। भीतरी रेखाएँ पूव पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण की दिशाओ

की बोधक हैं। डेन्माक में सूय का एक प्रतीक मिलता है ।

कोपेनहेगन के अजायबघर में एक बत्तन मिला है जिस पर सूर्य के रथ का पहिया बना हुआ है। सूर्य के रथ के पहिये का प्रतीक हालैण्ड तथा डेन्मार्क में प्राप्त

गहना पर भी मिलता है। यह इस प्रकार है । हालैण्ड तथा

१ वही, पृष्ठ ३०।   २ वही, पृष्ठ ३१।
३ E. Jeffrey—"Antiquarian Reperto y —1807
४ श्रीमती मरे, पृष्ठ ३३।   ५ वही, पृष्ठ ३३।

डेनमार्क में तो यह भी नियम था और अब भी किसानों में पाया जाता है कि मकान तथा अस्तबल में छत पर एक पहिया (चक्र) उलटकर रख देते हैं। बेड्रन में खलिहानो तथा गिर्जाघरो में सबसे ऊपर पहिये का प्रतीक बना हुआ है।[1] बौद्धकाल में भारत में जिस चक्र" का प्रचलन हुआ वह धम्म-चक्र (धम चक्र) था। भगवान् बुद्ध ने धर्म का चक्र चलाया—इसलिए पहिया एक धार्मिक प्रतीक बन गया। आस्ट्रिया मे एक मिट्टी की वस्तु मिली है जिस पर सूय का प्रतीक बना हुआ है। चन्द्र तथा सूय के गहने तो बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। सूय का प्रतीक आयरलैण्ड तक मे पाया गया है। अलबानिया में स्त्रिया अपने हाथ पर सूय तथा चन्द्रमा का गोदना गोदाती थी। चन्द्रमा का प्रतीक स्काटलण्ड तथा इग्लण्ड में भी मिलता है। वेल्स में एक पूजा का पात्र मिला

है जिस पर चन्द्र सूय तथा स्वस्तिक तीनो एक साथ बने हुए है ।

इटली मे प्राप्त एक प्रतीक में चक्र (पहिया), स्वस्तिक चन्द्र तथा सूय सब

एक साथ बने हुए हैं । स्विटजरलण्ड में भी इसी प्रकार के

प्रतीक उपलब्ध हैं।[2]

१ वही, पृष्ठ ३४। २ वही, पृष्ठ ४३।

वहाँ से एक स्थान में कुछ ऐसे पत्थर पाये गये हैं जिनको 'बब्बरो का पत्थर'[१] कहते है। एक शिला पर जो प्रागैतिहासिक युग की कही जाती है चन्द्रमा के २४ प्रतीक बने हुए हैं। यही पास में एक ऐसी शिला है[२] जहाँ पर कहा जाता है कि नरबलि होती थी।

श्रीमती मरे ने काफी अध्ययन तथा खोज के बाद जिन प्रतीको को खोज निकाला है उनके विषय में उनकी वसी थोथी तथा छिछली राय नही है जैसी कि बहुत से पश्चिमी विद्वानो की। चन्द्रमा को सृष्टि में 'उत्पादन तथा उवरता का प्रतीक तो उन्होंने माना है पर कटनर ऐसे लेखको की तरह उसे स्त्री भग का प्रतीक नही माना है। तन्त्रशास्त्र मे भ्रूमध्य मे स्थित चन्द्रमा द्वारा शरीर के भीतर अमतवर्षा का बडा ही महत्त्वपूण विवेचन है। इस लोक तथा परलोक के लिए परम कल्याणकारी भ्रुव–मध्य–स्थित चन्द्र क्रिया के महत्त्व को प्रतीक रूप में समझाने क लिए ही चन्द्रमा का प्रतीक बना है। अम्बिका को 'अध चन्द्रिका भी कहा गया है। स्पष्ट रूप स इन यौगिक तत्त्वा का तात्त्विक क्रियाओं को हम यहाँ पर न देकर केवल इशारा मात्र कर देते है। इसलिए हम इतना ही लिख दें कि अद्ध चन्द्र वास्तव मे परा शक्ति का प्रतीक है और चूकि हमारे शास्त्र म परम शिव तथा परा शक्ति के सघट्ट से ही सृष्टि की समूची उत्पत्ति तथा क्रिया मानी गयी है इसी लिए सूय को परम शिव तथा चन्द्र को परा शक्ति का प्रतीक मान लिया गया है। चन्द्रमा चूकि अमृतवर्षा करता है और भ्रुव–मध्य म स्थित अद्ध चन्द्र यौगिक क्रिया द्वारा समूचे शरीर को अमृत प्रदान करता है इसी लिए अमृत का उदगम माता होने के कारण पुरुष होते हुए भी उसे परा शक्ति का प्रतीक माना गया है। तन्त्रालोक की टीका में लिखा है[३]—

> शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चाध चन्द्रिका
> एकैवस्य परा शक्तिस्त्रिधा सा तु प्रजायते ।।

चन्द्रमा को सृष्टि का प्रतीक अग्नि को सहार का प्रतीक तथा सूय को परम शिव का प्रतीक माना गया है—और ये सब परमेश्वर के ही विविध रूप है—

> चन्द्र सृष्टि विजानीयादग्नि सहार उच्यते ।
> अवतारो रवि प्रोक्तो मध्यस्थ परमेश्वर ।।[४]

१ In Val/d Annivers and Val/d' Moiry, Just above Gramenz—Pierre des Sauvages"—Stone of the Savages

२ La Pierree Martera

३ तन्त्रालोक भाग २—तृतीय आह्निक, श्लोक ६७ की टीका पृष्ठ ७७।

४ वही, पृष्ठ ७९।

शिव के बिना शक्ति नहीं, शक्ति के बिना शिव नहीं—इसी प्रकार सूर्य तथा चन्द्र का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

न शिव शक्तिरहितो न शक्ति शिववर्जिता ।।[१]

सूर्य तथा चन्द्र को इस यौगिक रूप में आज के हजारो वर्ष पहिले आर्य सभ्यता ने अपनाया था। तन्त्रशास्त्र आज का नही है। वेद-निगम पुराना है, आगम नया है यह कहना भूल है। वेद की प्राचीन भाषा से ही इसका निर्णय नही हो सकता। ग्रीनलेन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि केवल भाषा का विचार कर आगम (तन्त्र) को नया मान लेना भूल है। असल बात यह है कि वेद अपने मौलिक रूप में बने रहे और आगमशास्त्र में बराबर सशोधन होता रहा, अतएव उसकी भाषा परिमार्जित और आधुनिक सस्कृत होती गयी।[२] इस दृष्टि से हम सूर्य चन्द्र के प्रतीक को हजारो वर्ष पुराना तान्त्रिक प्रतीक मान ले तो किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए।

प्रतीको के सम्बन्ध में बहुत से पाश्चात्य तथा पूर्वी विद्वानो ने केवल अर्थ का अनर्थ कर दिया है। विषयान्तर न होगा यदि हम यहाँ पर पुन पैंदोरा का जिक्र करें। सृष्टि की इस प्रथम महिला का हम पिछले अध्याय मे जिक्र कर आये है। यूनान देश की आरम्भिक पौराणिक कथा मे इनका जन्म हुआ था। पहले यूनानी कल्पना थी कि पैंदोरा सबके लिए वरदान है। पर एक यूनानी शब्द म्यूनस को माइनस' समझ लेने से वही देवी सबके लिए अभिशाप बन गयी। यूनान की एक सुन्दर कल्पना को गलत ढग से समझने या गलत अनुवाद करके इटालियन लेखक बोक्कासियो ने पैंदोरा की मिट्टी पलीद कर दी।[३] फिर तो पैंदोरा का 'पतन होता गया। औरिगेन ने अपनी पुस्तक में[४] लिखा है कि यूनानी देवता जुपिटर (बृहस्पति) ने प्रोमेथियस (प्रजापति) देवता से नाराज होकर उनके पास स्वर्ग से पदोरा नामक स्त्री को भेजा जिसे एक बक्स दे दिया गया जिसमें ससार की सब बुराइयाँ भरी हुई थी। प्रोमेथियस उस परम सुन्दरी के चक्कर मे न पडे। पैदोरा प्रोमेथियस के मानस पुत्र एमेथियस के पास गयी। उनसे

१ वही, पृष्ठ ८०।

२ Dnncan Greenlen— Gospel of Narad"—Pub—Theosophical Publishing Housc Madras—page—XVIII

३ Pandora in Greek meant Omnimum Munus"— Gift to all"— Boccacio in his ' Genologia De rum"—Venice Edition 1606, page 73—made it Omnimum Minus"— 'All full of bitterness"

४ Origen's Contia Calsum—available in 1481

विवाह हो गया और वही उसने अपना बक्स खोला जिसमें से सब बुराइयाँ निकलकर ससार में फल गयी। उस दिन से ससार म पाप छा गया। पदोरा के हाथ मे केवल 'आशा नामक वस्तु रही यानी ससार मे सब कुछ अनथ तथा पाप के बावजूद भी आशा' उसे सम्हाल हुए है।[१] मनुष्य धोखा खाकर ही सम्हलता है।[२] पदोरा के हाथ की आशा ही आज मानव जाति को जीवित रख हुए है। इस एक कल्पना के आधार पर यरोप में हजारा चित्र बने प्रतीक बनें। पदोरा के हाथ में कौवा पक्षी बिठा दिया गया। कौवा काव कॉव करता है। वह असल म कहता है कल कल।[३] यानी आज न सही कल का आशा रखा। सोलहवी सदी का एक चित्र है कि पदोरा के एक हाथ मे कौवा है दूसरे म आशा।[४]

ओरिगन तथा अनेक पश्चिमी विद्वाना का कथन है कि आदम और हौवा की जो प्राचीन कथा है वह वास्तव म पदारा तथा प्रोमथियस का कथा का रूपान्तर है। प्राय हर एक धम म आदि काल क प्रथम पुरुष तथा प्रथम स्त्री की कथा है। उस समय पाप नामक वस्तु से इमान अपरिचित था। पाप का फल सेब के सुनहले फला के रूप म लगा हुआ था। ईश्वर न आदम तथा हौवा (स्त्री) का मना कर दिया था कि उसका फल न खाना। पर स्त्री विचलित हा गयी। उसने वह फल खा लिया। माया की मूर्त्ति स्त्री—दुबलता की जड स्त्री—का ऐसा चित्रण अनेक प्राचीन मतो म मिलता है। केवल भारतीय साहित्य तथा पुराण म इस प्रकार की हलकी बात या हलकी कथा नही मिलती। मनु तथा इला की हमारी कथा बडी सु दर तथा पवित्र है। देवताओ की माता दिति दत्या की माता अदिति तथा उनके पति यक्ष प्रजापति की कथा म भी छिछलापन नहा है। पर छिछली भावनावाला ने मानव जाति के उदय का ही छिछला तथा गन्दा रूप द दिया है। ओरिगेन न भी स्वीकार किया है कि आदम और हौवा की कहानी अतिशयोक्ति है। उस कथा का गूढ अथ भी है।[५] हजरत मूसा ने कहा था कि हौवा (इला) पहले कमर के नीचे नगी तथा पत्तिया म स्तन ढँके रहती थी। यह बात गलत है। पहली स्त्री कमर के नीचे पत्तिया से ढके रहती थी। ऊपर खला रखती थी। बडा अन्तर हो गया दोना बाता से। नाजियाजस क ग्रेगरी न लिखा है कि पदारा घमण्ड छल छद्म अश्लीलता आदि की मिसाल है जो पुरुष जाति का सावधान कर रही है कि क्या तुमन नही सुना है कि मृत्यु

१ Panofsky's Pandora s Box '—page 15
२ Malo Accepto stultus sapit—The Fool gets wise after having been hurt
३ Cra —Cras—Tomorrow—Tomorrow (कल-कल)
४ वही पुस्तक, पृष्ठ २९। ५ वही, पृष्ठ १३।

दायक वृक्ष के प्रथम सुवण फलो ने तुम्हारे प्रथम पूवज को धोखे में डाल दिया ? तुम्हारा प्रथम पूर्वज सुग धमय स्वग से शत्रु के विश्वासघात तथा अपनी पत्नी के परामश के कारण निकाल न्यिा गया ।'[१] स्त्री पुरुष को किस प्रकार स माग से विचलित कर विलासिता की ओर ले जाती है इसका चित्रण एरासमस नामक एक चित्रकार ने (सोलहवी सदी के आरम्भ मे) किया था । यह चित्र विलासिता का प्रतीक कहा जाता है । पुरुष एक नग्न स्त्री के वक्ष पर तथा नितम्ब पर हाथ रखे हुए है ।[२]

उस युग मे १३वी से १६वी सदी मे ऐसे अनेक प्रसिद्ध चित्रकार तथा कलाकार हो गये है जिन्हाने चित्र मे या कांसे की प्रतिमा बनाकर प्राकृतिक तत्त्वा का प्रतीक निर्मित किया था । स्वास्थ्य 'स्नेह आदि के प्रतीक मूर्ति रूप मे बनाये गये थे ।[३] रेनी बायन का एक प्रसिद्ध चित्र अज्ञान के विषय मे है । बहुत से लोग माग में चल रहे ह । उनके नेत्रो मे पट्टी बँधी हुई है । आँख में पट्टी बधना अज्ञान का प्रतीक है । अधे नही ह लेकिन आख म पट्टी बधी हुई है । मूखता तथा अज्ञान का इससे बडा और क्या प्रतीक होगा ?[४]

मरिनो नामक चित्रकार ने च द्रमा को सासारिक नरक का प्रवेश-द्वार माना है ।[५] उनके अनुसार शुक्र तथा बुध (वेनस और मकरी) देवता च द्रमा के क्षेत्र मे आते ह । वहा पर वे प्रकृति की क दरा के द्वार पर पहुँचे । इस कन्दरा के द्वार के दोना तरफ दो स्त्रिया बैठी ह । एक का नाम है आन द ।[६] दूसरी का 'दु ख ।'[७] कन्दरा के भीतर बहुत गँदले पानी की दु ख की सरिता[८] बह रही है ।

च द्रमा की पश्चिमी तथा पूर्वी कल्पना में कितना अ तर है यह ऊपर लिखित उदाहरण से स्पष्ट है । पदोरा के उदाहरण से हमने केवल यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कोरी कल्पना से प्रतीक बनाने पर एक वस्तु का कितना अनथकारी अथ हा सकता है ।

च द्रमा से भी अधिक भ्रमकारक प्रतीक सप का है ।

१ वही, पृष्ठ १२ ।   २ वही, पृष्ठ ३९ ।   ३ वही, पृष्ठ २३ ।

४ Ignorance Classic"—By Reni Boyvan—Symbol of Ignorance —वही पुस्तक, पृष्ठ १३८ ।

५ वही पुस्तक, पृष्ठ १३९—Giovanni Battista Marino in Adone Published in 1923.

६ Felicita   ७ Miseria   ८ River of Misery

सर्प-प्रतीक और उपासना

समूचे भमण्डल को भगवान् शेषनाग अपन सिर पर उठाये हुए ह । क्या सचमुच मे ऐसा है या इसका अथ यह है कि मानवशरीर के भीतर स्थित इडा पिंगला सुषुम्ना नाडिया की कुण्डलिनी के प्रतीक सप में यह समूचा मानव लोक याप्त है—उसी को श्लेषरूप में कहा गया है । श्रीकृष्ण न यमुना मे कूदकर कालिय सप को वश मे करके उस पर नृत्य किया था । क्या इसका अथ यह नही है कि हमारे योगिराज कृष्ण ने कुण्डलिनी को वश म करके परम योगी की सिद्धि प्राप्त की थी ? नागपञ्चमी का पूजन काल स्वरूप सप का भी पूजन है और मनुष्य को उसके शरीर की रचना तथा उस रचना की माँग की याद भी दिलाती है । ऐसे अनेक प्रश्न बार बार हमारे सामने आयगे ।

सप पूजा हजारो वर्षों से चली आ रही है । देशी भाषा मे हम अत्यन्त विषधर काले सप को गहुअन कहते ह । अग्रेजी मे उसे कोब्रा कहते ह । जमन भाषा मे नातर कहते है और सस्कृत में नाग कहते ह । इग्लण्ड में नाटस नामक एक स्थान है । कहते ह कि बहुत समय पहल यहाँ एक कन्दरा में भयकर नाग रहता था । वह मनुष्य तथा पशुओ का आहार करता था । एक बार एक लोहार को फाँसी की सजा हुई । उसने कहा कि उसे इस शत पर क्षमा कर दिया जाय कि वह नाग को मार डालेगा । उसने स्वय एक तलवार बनायी और नाग से युद्ध करने लगा । युद्ध में नाग मारा गया । तभी से उस स्थान का नाम नाटर्स—नातस पड गया ।[१] दक्षिण भारत मे कुग प्रदेश मे कानिया नामक जाति के लोगो को स्वत मालूम हो जाता है कि नाग कहाँ पर रहता है । मध्य एशिया दक्षिण भारत कश्मीर आदि म सप मन्दिर भरे पड ह । महाभारत में वर्णित महा नागराज मन्दिर जिसम नाग की मूर्त्ति के स्थान पर स्वय नागदेव प्रतिष्ठित थे—आज भी राजगिरि (बिहार) क जगल मे वतमान है । केवल वह नाग नही है । उस स्थान के चारो ओर बहुत सप निकलते ह । लद्दाख की स्त्रियाँ अपने सिर पर चमडे का नाग बाँधती ह जिसका मुख पीछ चोटी की तरह लटकता रहता है । सम्राट अकबर ने सन् १५५८ मे कश्मीर की घाटी पर कब्जा कर लिया था । उनके इतिहासकार अबुल फजल

१ Murray's Symbolism of the East & West'—pages 127 28

ने लिखा है कि उस समय कश्मीर में सात सौ नाग-मन्दिर थे जिनमें से १३४ नाग-मदिर शवो के, ६४ वैष्णवो के तथा २२ दुर्गा के और तीन ब्रह्मा के उपासको के थे ।[१] कुग के लोगो का ऐसा विश्वास है कि एक नाग १००० वष तक जीवित रहता है । ५०० वर्ष की उम्र हो जाने के बाद उसका ह्रास शुरू होता है । मरने के समय उसका सुनहला रग रह जाता है और सिकुडते सिकुडते वह एक गज का ही रह जाता है ।

सप पूजा पत्थर के युग में भी होती थी । प्रागतिहासिक युग में भी होती थी और आज भी होती है । हो सकता है—और शायद हो भी ऐसा ही कि मनुष्य को जिन प्राकृतिक पदार्थों से बहुत भय रहा हो, उनमें मृत्यु का बहुत बडा कारण साँप का काटना भी रहा होगा । इसलिए नागदेवता को प्रसन्न रखने के लिए नागपूजा होती थी । पर आय सभ्यता मे सप की उपासना मृत्यु की उपासना के रूप में थी । यानी सप मृत्यु का प्रतीक माना गया । मृत्यु के देवता, सहार के देवता भगवान् शकर के शरीर से सप लिपटे हुए ह । मृत्यु उनकी चेरी है । पर सर्प का उपयोग शकर आदि देवो के लिए शरीर के भीतर बठी सर्पाकार कुण्डलिनी को जाग्रत करने की शिक्षा मात्र थी । शकर महायोगिराज कहे जाते ह । अतएव सप उनके लिए आभूषण बन गया है । विष्णु लोक पालक है । वे कुण्डलिनी को वश में करके नागराज पर शयन कर रहे ह । बौद्धो ने सर्प को धर्म का इसलिए प्रतीक बनाया कि वह प्रकृति की दवी शक्ति का प्रतीक था । जिन बौद्ध कालीन या सनातनी मूर्त्तियो पर पाँच मुखवाला एक सप पाँच सप या सात सप बने है, उनका अपना भिन्न अथ है । जैसे—

१ पञ्चमुखी सप— क्षिति जल पावक, गगन समीरा' यानी पाँच तत्त्वो का बना एक शरीर ।

२ पाच सर्प—पञ्च तत्त्व ।

३ सात सप—राग काम क्रोध मद लोभ, मोह, मत्सर—सात विकार ।

सर्प डसना है । वासनाएँ डसती है । यूनानी देवता बुध को दो सप लपेटे हुए मिलते है । ये शरीर के भीतर को इडा पिंगला नाडियो के प्रतीक ह अथवा पुरुष प्रकृति के । जहाँ तीन साँप एक साथ लिपटे हुए मिलते है वे तीन शक्तियो के प्रतीक ह—ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति । मनुष्य में पहले ज्ञान हुआ । ज्ञान से इच्छा—सकल्प की उत्पत्ति हुई । इच्छा से क्रियाशक्ति काम करने की शक्ति जाग्रत हुई । इस त्रैलोक्य में यानी आकाश पाताल तथा पृथ्वी में इन तीन शक्तियो को उत्पन्न करनेवाली परा शक्ति की त्रिपुरा सज्ञा हुई ।

१ वही, पृष्ठ १२६ ।

ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ।
त्रलोक्य ससजयस्मात्त्रिपुरा परिकीर्त्तिता ॥[१]

किन्तु इन अर्थो मे न पडकर पश्चिम के विद्वानो ने सप उपासना तथा सर्प प्रतीक का एकदम उलटा ही अथ लगा लिया है । इसका जिक्र हम आगे चलकर करेगे ।

श्रीमती मरे ने विश्व यापी सप पूजा के अनेक उदाहरण दिये ह । इटली के नगर नेपुल्स मे एक जन्तर हाथ म बाधा जाता है जिस पर नागकन्या बनी हुई है । जापान में भी बहुत से लोग ऐसा जन्तर इस्तेमाल करते ह ।[२] अवध में प्राप्त नागदेवी की मूर्ति मसूर म प्राप्त नाग-मन्म्मा की प्रतिमा इटालियन या जापानी नागकन्या से बहुत मिलती जुलती है । तान्त्रिको की एक देवी शव मन्दिरो म प्राप्त नागकन्या के समान आकृतिवाली है । जापान की एक पौराणिक कथा है—बुवा नामक झील के ऊपर मि देव (मयदेव) का आश्रम है । वहा पर कियालम नामक एक ग्रामीण सुन्दरी रहती थी । मि देव के पुजारी आत्रिक उससे प्रेम करते थे । कुछ समय बाद वे दूसरी सुन्दरी के प्रेम मे पड गये । कियालम ने क्रुद्ध होकर आत्रिक से बदला लेने के लिए बुरी आत्माओ से सहायता मागी । उन्होने उसे वर दिया कि जब चाहे नाग का रूप धारण कर सकती है । नागिन का रूप धारण कर कियालम मदिर पहुची । भय की आशका से आत्रिक ने अपने को मन्दिर के विशाल घण्टे के नीचे छिपा लिया था । कियालूम ने उस घट को लपेट लिया और तब तक उसे जकड रही जब तक कि वह घटा उसके आघातो के कारण उत्पन्न गर्मी से पिघल न गया । उस गम धातु के प्रवाह म कियालूम तथा आत्रिक दोनो ही मर गये ।[३] नाग का प्रतिशोध भयकर होता है । राजा परीक्षित को तक्षक नाग ने मार डाला था जिस कारण जनमजय को नाग यज्ञ करना पड़ा था ।

इटली के अब्रूजी नामक पहाडी ग्राम म साल म एक दिन सभी किसान ज़हरीले सर्पों का विष मारकर यानी दाँत तोडकर विष रहित सर्पों को अपने गले कमर, हाथ मे लपटकर जुलूस निकालते ह । उनका ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से वे सप विष म मुक्त हो जायगे । उनकी अकाल मृत्यु न होगी तथा वे भाग्यशाली बनेगे । प्राचीन रोमन साम्राज्य के बहुत से सिक्को पर तथा मन्दिरो म साँप की मूर्ति अकित

१ तन्त्रालोक—द्वितीय भाग, पृष्ठ ७८ ।

२ La Sirena of Naples Kiya Iume of Japan—Murray's—pages 130 131

३ वही पृष्ठ १३२—Quoted from a Paper on Netuska—By Mr Mortimer Mempes—in the Magazine of Art—1889

मिलेगी। फ्रान्स में पुरानी कथा है कि वहाँ पर एक महान् नागदेव निवास करते थे जिनके सात सिर थे।[१] उनका सिर बिगोरी नगर में गदन बरेगीज नगर में, शरीर लूज की घाटी मे तथा दुम गैर्वनिक की कन्दरा मे पडी रहती थी। स्विट जरलण्ड में भी नाग सम्बन्धी बहुत सी कथाएँ प्रचलित ह तथा प्रतीक प्राप्य ह। वहाँ के जरमात तथा जाज नामक स्थानो म मप बाधा बहुत थी। एक पान्री न मत्र पढ कर सर्पों का दूर भगाया था।[२]

इग्लण्ड मे भी कही कही पर सप-प्रतीक मिल ह। श्रार्ले मे एक मूर्त्ति मिली है जिसे मित्र देवता मिथिका—यानी सूय की मूर्त्ति समझा जाता है। इसके चारो ओर एक सर्प लिपटा हुआ है।

१ Serpent D Isabıt २ वही, पृष्ठ १३६।
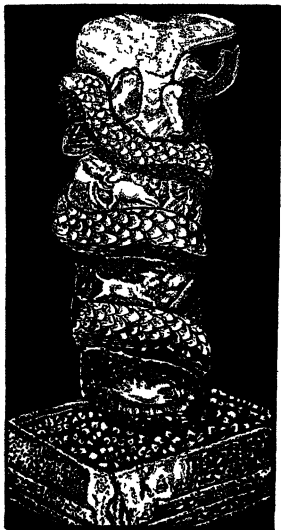
यह सप सूय के "राशि मण्डल का प्रतीक है। स्वेडन तथा नार्वे मे भी सर्प प्रतीक मिलते ह। पर यूरोप मे सप प्रतीक बहुत कम मिलन का कारण, श्रीमती मरे के अनुसार यह है कि सप की उपासना सप तथा मृत्यु से भय के कारण प्रारम्भ हुई थी। यूरोप के देशो में सांप का, विशषकर विषधर सर्प का भय काफी कम था। अतएव सप उपासना भी उधर नही बढ पायी।[१]

किन्तु डेन्माक के विद्वान डा० वार्जाई स्यात् सप प्रतीक के अधिक निकट पहुँचे हैं। डेन्माक की कला पर लिखते हुए वे कहते ह—

'यह भली प्रकार विदित है कि एशिया तथा मिस्री प्रतीका में सप का बडा महत्त्वपूण स्थान रहा है। इसका आशिक कारण यह हो सकता है कि उन लोगो की यह धारणा रही होगी कि आकाश में सूय का माग सप के समान वक्र है टेढा है और दूसरा कारण यह हो सकता है कि पृथ्वी को जल प्रदान कर अन्न प्रदान करनेवाली अग्नि का प्रकाश—यानी बिजली के कौंधने के समय उसका प्रकाश सप के समान वक्र टेढी गति से होता है। अतएव सर्प को दैवी शक्तियो का प्रतीक मान लिया गया।[२]

बर्लिन के डा० श्वाटज तथा अग्रेज विद्वान् डा० ब्रिटेन का कथन है कि बिजली के कौंधने के समय उसके वक्र प्रकाश से ही सप का प्रतीक बनाकर पृथ्वी के लिए अति आवश्यक पोषक वर्षा का प्रतीक सप है।

एल्यूसिस (यूनान) में कुछ ऐसे सिक्के मिले ह जिनमे देमेतर (आदित्य—सूर्य) के रथ में दो सप जुते हुए ह।[३] सूय के साथ सप का इस प्रकार सयोग न केवल विचारणीय है बल्कि सप सम्बन्धी हमारे सिद्धात की पुष्टि करता है। यह आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा। पश्चिमी विद्वानो ने सप को समझने में गहरी भूल की है। आदम और हौवा की कथा में स्त्री को मोह मे डालने का श्रेय दुष्टता के प्रतीक सप को दिया गया है। कटनर साहब ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि सप ने मनुष्य को पाप मे न डाला होता तो ईसा को जन्म लेने की आवश्यकता भी न पडती।[४] वे फिर लिखते ह— सप काम वासना का प्रतीक है। उसने हौवा को धोखा दिया।' वे पुन लिखते ह— बबीलोनिया की कामदेवी अस्तार्ती की (सप इनकी सवारी में भी रहता था) उपासना अन्त तक चलती रही। यहाँ तक कि वे ईसाइयो के सनातनी, यानी रोमन कथोलिक सम्प्रदाय मे भी शामिल

१ वही, पृष्ठ १३३।
२ वही, पृष्ठ १३७—Quoting Kamer Hert—Dr Worsaacs—'Danish Art"
३ वही पृष्ठ ३०।
४ Cutner—Sex Worship—page 175

कर ली गयी ।" कटनर के अनुसार पृथ्वी का पुराना प्रतीक जिसमे दानव ऐटलस समूचे भमण्डल को सिर पर उठाये हुए है वह इस बात का साक्षी है कि समूचा जगत् काम-वासना पर निभर करता है। ऐटलस स्वय हाथी पर बैठा हुआ है। हाथी कच्छप पर खडा है। कच्छप के ऊपर की हडडी का कवच स्त्री की योनि का प्रतीक है। कच्छप का सिर पुरुष लिंग का प्रतीक है। अतएव इन बातो से सिद्ध हुआ कि यह जगत शुद्ध वासनामय है। कटनर ने यहाँ तक लिख दिया है कि आदम-हौवा की कहानी मे सप का समावेश पुरुष लिंग का प्रतीक है।[1] फ्रायड एसे विद्वान् मनावज्ञानिक का भी सप के सम्ब ध में यही मत है। उन्हाने उसे काम-वासना का प्रतीक माना है।

किन्तु सप प्रतीक की ऐसी अनुचित व्याख्या को हम निरथक नही कहेंगे। जब सूय को भी 'प्रजनन का देवता' मान लिया गया तथा उन्हे उत्पादक पुरुष का प्रतीक कह दिया गया तो वासना के प्रतीक सप को उनके रथ मे जोड देने से उस भावना की पुष्टि हो गयी। पर यह नही भूलना चाहिए कि हर एक प्रतीक के एक से अधिक अथ होते ह ।[2] हर एक प्रतीक का अपना स्वत सचरणशील तथा शक्तिशाली अथ होता है और वह अपने निजी वातावरण तथा परिस्थिति से उत्पन्न होता है।[3] धम धार्मिक कृत्य मूर्त्ति प्रतिमा ये सभी ईश्वर क प्रतीक ह । धार्मिक क्रियाओ का भी प्रतीक रूप में महत्त्व है। कला भी प्रतीकात्मक होती है। यदि कोई बजर भूमि या उजाड सुनसान प्राकृतिक दृश्य बनाये तो वह सुनसान नीरस जीवन का प्रतीक मात्र है।[4] मन की यह प्रकृति होती है कि प्रतीक रूप मे अपने को अपन भाव को व्यक्त करे। मन के इस काय को ही प्रतीकवाद कहते है। बहुत सक्षप मे स्पष्ट रूप से, बुद्धि को ग्रहण करने योग्य तथा देखने मे भी भला मालूम पडनेवाले ढग से जो प्रकट किया जाय वही प्रतीक है।[5] जो हमारे मन की अचेतन या अज्ञात क्रिया का बोध कराये वही प्रतीक है।[6] किन्तु मानव-स्वभाव एक दूसरे से इतना भिन्न है उसमे इतना अतर है कि प्रतीको मे भी इतनी विभिन्नता है तथा एक ही प्रतीक को भिन्न रूप से ग्रहण किया जाता है।[7]

मानव-स्वभाव से तथा भिन्न दृष्टिकोण से यह प्रकट है कि एक ही प्रतीक को देश-काल विचार के अनुसार भिन्न रूप से लोग ग्रहण करते है या भिन्न रूप से अपनाते है। पश्चिम में सप को जिस रूप में ग्रहण किया गया, हमने अपने देश में उसके बिलकुल विपरीत

१ 'Serpent in Adam & Eve Story is the symbol of male erection"
२ Dr Km Padma Agarwal—Science of Symbols—page 57
३ वही, पृष्ठ १७। ४ वही, पृष्ठ १०।
५ वही, पृष्ठ ११। ६ वही, पृष्ठ १४। ७ वही, पृष्ठ ५३।

रूप में ग्रहण किया। हो सकता है कि यूनान या रोम में सप को विलास का प्रतीक माना गया हो। पर सप को प्रतीक बनान की बात हमारी आय तथा आष सभ्यता की देन है। केवल विदेशी उसका मौलिक आधार भूल गये। फगुसन[१] ऐसे विद्वान् भी हमारे देश के सप तथा वक्ष प्रतीक क बारे म ऐसी ही भूल कर गये। बिना भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता से घनिष्ट परिचय प्राप्त किय हमारे प्रतीको को समझना बडा कठिन काय है। इस विषय म ऐसी ही भला के शिकार श्री मक्मन भी थ जिन्होने भारत के गुप्त सम्प्रदायो पर परिश्रमपूवक एक ग्र थ लिखा है।[२]

भारत के प्रतीकों तथा उनके प्रवाह को जानने समझने के लिए भारतीय इतिहास से परिचय होना चाहिए। तभी भिन्न युगो में प्राप्त हमारी प्राचीन सामग्रियो से असली जानकारी हो सकेगी। तत्कालीन साहित्य से परिचय होना चाहिए। ईसाइयो के धम ग्र थ बाइबिल के बारे म भी हैने ने लिखा है कि अग्रेजी म जो बाइबिल पढने को मिलती है वह इब्रानी (हिब्रू) भाषा मे प्रकाशित मूल बाइबिल का उल्था नही है। बिना इब्रानी तथा सस्कृत भाषा से परिचय हुए कोई भी व्यक्ति असली बाइबिल का अथ नही लगा सकता। यदि असली बाइबिल का अनुवाद करके प्रकाशित किया जाय तो किसी के पढने लायक न रह जाय क्योंकि उसम लिंग उपासना भरी हुई है।[३] इस प्रकार वे दो बात स्वीकार करते ह—मूल बाइबिल पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव तथा हिन्दू धम म प्रचलित लिंगोपासना का प्रभाव।

अस्तु जिन दिनो हमारी सभ्यता तथा सस्कृति ने विश्व म घूम घूम कर अपना विस्तार किया था उन दिनो का युग हमारे देश का सयम तथा तपस' का युग कहा जाता है। वह विलास तथा कामवासना का युग नही था। एक ओर विद्या का प्रसार हो रहा था दूसरी ओर तलवार साम्राज्य का विस्तार कर रही थी। वह युग था गुप्त साम्राज्य का—ईसवी सदी का आरम्भिक काल। उस युग मे वाराहमिहिर ऐसे ज्योतिषी, कालिदास ऐसे साहित्यकार वसुबंध ऐसे वज्ञानिक की खोजे जिसने न्यूटन से सकडो वर्ष पहल पथ्वी की गुरुत्वाकषण शक्ति[४] का पता लगा लिया था तथा मत्स्य और वायु पुराण

१ J Ferguson— Tree and Serpent Worship in India"

२ Sir G Macmunn— Secret Cults of India

३ J B Hannay— Christianity—The Source of its teachings and Symbolism' quoted by Marr in Sex in Religion"—page—40

४ Law of Gravitation

के रचयिता व्यास परिवार के कई प्रतिभाशाली व्यास पैदा हुए थे। जिस युग में प्रयाग का लौह स्तम्भ तथा अजन्ता की गुफाएँ बनी हो, वह कामवासना का युग नहीं हो सकता। विदेशी आक्रमणकारी हूण नरेश, मिहिरकुल तथा अनेक कुशान नरेश भी यहाँ की सभ्यता में रम गये थे। वे सभी शैव सम्प्रदाय के थे। तीसरी शताब्दि मे सम्राट चन्द्रगुप्त ने विदेशी शासन को एकदम समाप्त कर देश को एकछत्र राज्य में सघटित कर दिया था। ईसवी सन् ३७६ से ४१४ तक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का शासनकाल था। भारत के इतिहास में वह स्वण युग था। पश्चिमी इतिहासकार भारत के वास्तविक इतिहास का प्रारम्भ ईसा से ७०० वष पूव का मानते हैं। यही सही पर यह कितना महान समय था। मगध साम्राज्य में ईसा से ३०० ४०० वष पूव, सम्राट अशोक ने ससार को बौद्ध धम की सभ्यता तथा सस्कृति प्रदान की थी। गुप्त साम्राज्य के बाद कन्नौज के साम्राज्य ने भी हमारी सभ्यता को और भी आगे बढ़ाया था। यशोवर्मन की मृत्यु ईसवी सन् ७४० म हुई थी। ईसवी सन् ७५० तक पल्लव नरेशो ने सुदूर दक्षिण भारत तक को एक सूत्र में बाँध दिया था। ऐसे युग में, ऐसे समय मे हमारे देश ने जिन प्रतीको को एशिया तथा यूरोप को प्रदान किया वे कामवासना के प्रतीक नही हो सकते। वासना की कितनी निन्दा थी उस समय तथा चरित्र की मर्यादा कितनी ऊँची थी इसका उदाहरण तो कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तल का यह श्लोक है—

> **येन येन वियुज्यन्ते प्रजा स्निग्धेन बधुना।**
> **स स पापादृते तासांदुष्यन्त इति घुष्यताम्॥**

महाराज दुष्यन्त ने घोषणा करा दी कि प्रजा अपने जिन जिन स्नेही बन्धुओ (भ्राता पुत्रादि) से बिछुडे उनके स्थान में केवल पापियो (या पापयुक्त सम्बन्ध जसे विधवाओ का पति होना) को छोडकर दुष्यन्त को ही समझ लें।

स्त्रियो के लिए आदश बतलाते हुए कण्व ऋषि ने शकुन्तला को बिदा करते समय कहा था कि बडो 'की सेवा करना अपनी सौतो का भी प्रिय साथी बनकर रहना पति से अपमानित होने पर भी पति के प्रतिकूल नही होना दास दासियो के प्रति उदार रहना, अपने सौभाग्य पर गव नही करना, ऐसी स्त्रियाँ ही गृहिणी पद की अधिकारिणी होती है। अन्यथा (इन गुणो के न होने पर) वे कुल कलकिनी होती ह।'

ऐसे युग का हमारा कोई भी प्रतीक वासना का प्रतीक नही हो सकता। आठवी शताब्दी के सुनहले युग के बाद के भी रचे हमारे ग्रन्थो मे प्रतीक के दर्शन तथा शास्त्र की वही मर्यादा है जो हजारो वर्ष पहले आय सभ्यता ने भारत में स्थापित की थी। सर्प के

सम्ब ध मे तत्कालीन ग्र थो के अध्ययन से पता चलता कि भारत मे सप पूजा या शकर की प्रतिमा या शिवलिंग पर सप का प्रतीक कितना महान महत्व रखता है और उसका कितना गलत अथ लगाया गया है। सम्भवत ईसवी सन् १५२६ मे कामरूप आसाम में, जो उस समय तान्त्रिक उपासना का केन्द्र था षटचक्रनिरूपण नामक ग्र थ स्वामी पूर्णानन्द ने रचा था। यह ग्र थ श्री तत्व चि तामणि नामक ग्रन्थ का छठा पटल है। इस ग्रन्थ में कुण्डलिनी तथा सप का बडा स्पष्ट सम्ब ध दिखलाया गया है। शारदा तिलक मे[1] कुण्डलिनी की प्रशसा म बहुत कुछ लिखा है। उसमे लिखा है कि शरीर में छ चक्र ह। उनको भेदना ही कुण्डलिनी को शिव से मिला देना है। शिव की प्रतिमा या शिव लिंग के साथ सर्पाकार कुण्डलिनी का सम्ब ध यक्त करने के लिए ही सप शिव पूजा का सयाग बनाया गया। शारदा तिलक ने लिखा है कि छ चक्र भेदन के साथ ही सहस्रार में प्राण का सघट्ट होता है। मोक्ष का अर्थात जीवन मरण के ब धन से छूटकारे का यही माग है।

चरक क अनुसार मानव शरीर म ३०० हड्डिया ह। सुश्रुत के अनुसार ३०६ हड्डियाँ है। गोरक्ष पद्धति के अनुसार हमारे शरीर के भीतर ७५ ००० नाडियाँ ह जिनमे मुख्य ७२ ह। इनमें से १० नाडिया प्राणवायु वहन करन वाली ह।[2] तीन नाडिया मुख्य ह—इडा पिगला तथा सुषम्मा सुषुम्मा नाडी मरु दण्ड[3] के मध्य को पिरोये हुए है। मूलाधार के त्रिकोण क मध्य–पश्चिम से प्राण होकर महार ध्र (मस्तिष्क के भीतर) पय त मृणाल त तु के समान सूक्ष्म और ज्वालासी उज्ज्वल प्रकाशमान यह नाडी है। इसी नाडी के अ दर षटचक्र है। इसी षटचक्र के भेदन से मनुष्य ब्रह्म म लीन हा जाता है। इडा पिगला तथा सुषुम्ना तीनो नाडिया मूलाधार मे अण्डस त्रिकाण है, उसी म से प्रारम्भ होती है। प्राणवायु का माग भी इन्ही तीनो म से है।

मेरुदण्ड क निचले भाग मे यानी अ तिम भाग म गुदा तथा लिंग के जरा नीचे मध्य स्थल पर सुषुम्ना नाडी तथा मूलाधार चक्र है। इस चक्र का रूप अण्डाकार चार दल वाला त्रिकोण है। इसका तत्व पथ्वी तथा रग पीला है। इस त्रिकोण के मध्य में मेरु दण्ड के अ तिम भाग मे एक लिग ब द कलिका के रूप म स्थित है।[4] उसमें बडा

१. XXV—70— The Serpent Power "

२ गोरक्ष पद्धति, श्लो० १५—२८ तक।

३ Spinal Chord

४ λ।
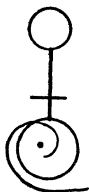
सूक्ष्म छिद्र है। इसे ही सुषुम्ना नाडी का मुख कहते हैं। इस बन्द कली के समान लिंगको स्वयभू लिंग कहते हैं। इस स्वयभू लिंग को चारो ओर से साढे तीन चक्कर मे कसकर सर्प की तरह से लपेटे तथा अपनी दुम को मुँह मे लिये हुए एव सुषुम्ना नाडी के छिद्र को रोके हुए जो महान् तेजस्वी शक्ति है उसे ही सुप्त (सोयी हुई) कुण्डलिनी कहते ह। यही कुण्डलिनी हमारी जीवनी शक्ति है।
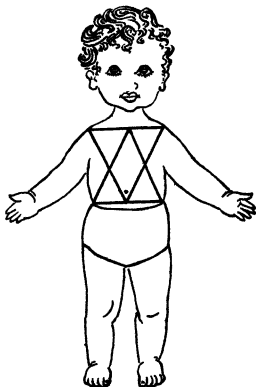
इसी के लिए लिखा है—

सर्वेषां योगतन्त्राणा तपाऽऽधारो हि कुण्डली ।[1]

[1] हठयोगप्रदीपिका, अ० ३, श्लो० २।

जो इस सुप्त कुण्डलिनी को जगा दे वही महान योगी है। इसके जागते ही बडा वेग उत्पन्न हो जाता है। उस समय जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे नाद कहते हैं। नाद ही ॐकार है। मनुष्य के शरीर में आपसे आप ॐकार की ध्वनि तथा टंकार उत्पन्न हो जाता है। इस नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिन्दु कहते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक तथा थियोसॉफिकल सम्प्रदाय की जन्मदात्री श्रीमती ब्लवटस्की का कथन है कि प्रकाश की गति विज्ञान के अनुसार १८५००० मील प्रति सेकेण्ड है, पर जाग्रत कुण्डलिनी से उत्पन्न नाद तथा प्रकाश की गति ३४५००० मील प्रति सेकेण्ड है। इस कुण्डलिनी की सत्ता को पश्चिमी विद्वान भी मानते हैं।[1] हठयोगशास्त्र के अनुसार इस कुण्डलिनी को जाग्रत कर स्वयंभू लिंग में सुषुम्ना का—कुण्डलिनी का प्रवेश कराकर षटचक्र भेदन ग्रंथिबंधन द्वारा सहस्रार (ब्रह्म रन्ध्र) में प्राण को स्थापित कर मनुष्य इस जीवन में ही परमशिव को प्राप्त करता है। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं।

आर्थर एवालान[2] ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस तत्त्व पर बडा सुन्दर विवेचन किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगल सम्राट शाहजहां के बेटे दारा शिकोह ने अपनी फारसी पुस्तक रिस्सालये हकनामा में तीन प्रकार के हृदय स्थल बतलाये हैं—१ दिल मदौवर २ दिले सनोबरी ३ दिल नीलोफरी।[3] भारत के हठयोगियों से ही सीखकर सूफी योगियों ने कुण्डलिनी को जाग्रत करने का उपदेश दिया था।[4]

एवलान ने लिखा है कि हमारे शरीर में कुण्डलिनी ही मांसारिक तथा ब्रह्माण्ड सम्बन्धी नियमित शक्ति है।[5] इडा पिंगला सुषुम्ना नाडी को मिलाकर कुण्डलिनी बनती है। इनमें एक चित्रणी नाडी है जो अति सूक्ष्म है। शरीर विज्ञान के विद्यार्थी को षटचक्र या शरीर के भीतर के किसी चक्र का ज्ञान इसलिए नहीं हो सकता कि चक्र स्वयं अपने में स्थित हैं। वे चेतना के केन्द्र हैं। सूक्ष्म प्राण वायु की क्रियाशक्ति के केन्द्र हैं। जो लोग शरीर रचनाशास्त्र से कुण्डलिनी की तलाश करेंगे वे निराश होंगे।[6]

१ Vagus Nerve

२ इनका असली नाम Sir John Woodroffe था। Arthur Avelon— The Serpent Power" था" षटचक्रनिरूपण और पादुकापञ्चक—Pub Ganesh & Co Madras 1950

३ Spherical Heart—Cedar Heart and Lily Heart

४ Sheikh Md Iqbal— The Development of Metaphysis in Persia"—page 110

५ Avelon—page 2

६ वही पृष्ठ ६।

स्वयभू लिग स्वण के समान देदीप्यमान अत्यन्त कोमल श्याम रग का तथा सूक्ष्म और नीचे की ओर मुह किये हुए है। पश्चिमास्य है। कामबीज द्वारा सञ्चालित होने पर ही वह लिग गतिशील होता है।[१] वह कामबीज (मत्र) से ही प्रसन्न होता है। खडा हो जाता है और कुण्डलिनी में प्रवेश करता है। यह लिग त्रिकोण के भीतर है। मूलाधार में त्रिकोण का ध्यान करने की आवश्यकता है। त्रिकोण और कुछ नही तीन रेखाओं में कुण्डलिनी है। 'कालीकुलामृत तत्र' के अनुसार मूलाधार कमल के दलो पर शृगाता काम का त्रिकोण है। उस पर महालिग स्वयभू स्थित है। ऊपर खुला द्वार है। कामबीज से प्रेरित होकर वह सिर ऊपर करके उस द्वार मे प्रवेश करता है। उलटा लिंग (कली के समान)——कमल को कली की तरह का स्वयभू लिग सीधा हो जाता है। उलटा कमल-नाल इस सम्बन्ध में लिग का प्रतीक है जिसे बिना सीधा किये मनुष्य का जीवन परमात्मा की ओर जा ही नही सकता।

स्वयभू लिग के ऊपर सुषुप्त कुण्डलिनी है जो कमल के नाल के समान कोमल है। यह कुण्डलिनी ही ब्रह्मद्वार के मुख को बन्द किये हुए है। स्वयभू का लपेटे प्रेमी भवरे के समान यह गुञ्जन कर रही है। इस मूलाधार म पडा प्रेमिका का जगाना है। इसे तप्त करना है। यह——

> तन्तु सोवारलसतसूक्ष्म जगन्मोहिनी,
> मधुरस नवीन चपला, माला, बिहासपादा——
> कोमल भदातिभवक्रम——

बिन्दुरूपी स्वयभू लिग से भेद करने पर अव्यक्त रव (नाद) करती है। यही विपरीत गति (पुरुष नीचे) है। कुण्डलिनी जाग्रत होकर स्वयभू लिग का मुख खोलकर अपने में ले लेती है। और फिर चित्रणी नाडी के मुख मे प्रवेश करा देती है। अतएव साधक को कुण्डलिनी को जाग्रत करके स्वयभू लिंग उसम प्रवेश कराना है।

मनुष्य को पूणता प्राप्त करने के लिए यह करना ही पडेगा। कुण्डलिनी तथा स्वयभू लिग मे रति होनी ही चाहिए। बिना शिव तथा शक्ति के मेल के कोई चीज पूरी नहीं हो सकती। चन्द्रमा में से चाँदनी अलग नही की जा सकती। शिव से भिन्न शक्ति नही——

> न शिवेन बिना शक्ति न शक्त्या रहित शिव ।
> अतस्तयोरभेदश्च चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।।

१ वही, पृष्ठ ३४४।

यह शक्ति ही अपनी प्रेरणा तथा स्फूर्ति से ससार को धारण किये हुए है ।[१] आनन्द लहरी में कुण्डलिनी क्रिया पर लिखा है—

महीमूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवह, स्थिते स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्य सकलमपि भित्वा कुलपथां, सहस्रारे पद्म सह रहसि पत्या विहरसि ।।

सप शिव लिंग त्रिकोण बीज—सबका रहस्य अब स्पष्ट हो गया ।

सप प्रतीक पर हमन थोडा बहुत प्रकाश डालकर यह सिद्ध करन का प्रयास किया है कि उसका असली रूप न समझकर पाश्चात्य विद्वानो न उसे अनायास लिग यानी जननेन्द्रिय तथा काम वासना का प्रतीक मान लिया है । स्वयभू लिंग का प्रतीक शिव लिंग है । सप उसे घेरे बठा है—वह कुण्डलिनी का प्रतीक है । इस महान अथ को न लेकर हेय अथ म पडना उचित नहा है ।

१ वही, पृष्ठ ३४८— She who maintains all the beings of the World by inspiration and expiration "

वृषभ तथा नन्दी

इसी प्रकार का भ्रम वृषभ—बैल—नन्दी के प्रतीक के विषय में है। इनमान कटनर या मार ऐसे लेखको ने उसे पुरुष स्त्री सम्बन्ध गभ धारण करानेवाला इत्यादि प्रतीक मानकर उसकी छीछालेदर की है। कटनर ने एक स्थान पर सूय के वृषभ राशि में आने की बात स्वीकार की है। पर उस अथ पर वे टिक न सके। उन्होने सूय के साथ वृषभ का सम्बन्ध केवल गभ धारण सम्बन्ध माना है, यानी प्रजनन शक्ति का प्रतीक माना है। यूनानी देवता प्रियापस को सूय देवता लिखा है। लिखा है कि उनका विशाल लिंग था जिस पर गुलाब के फूलो की माला चढायी जाती थी। उनके समान ही रोमन देवता म्यूटुनस थे। वे भी सूय देवता थे तथा दीर्घलिंगी थे। इनको सन्तुष्ट करने के लिए दीर्घलिंगी गधे का बलिदान करते थे। प्लेटो की परम्परा के दाशनिक जम्बियस ने—जो रामन नरेश कुस्तुन्तुनिया (ईसवी सन् २६३ से ३३७) के समय में थे—तो यहाँ तक लिख दिया था कि ससार मे जो कुछ उत्पत्ति तथा सष्टि चल रही है वह लिंग उपासना का परिणाम है।

मिस्र म ०यूरी (बकरा) की पूजा चल पडी थी। जिस बकरे का लिंग जितना अधिक बडा होता था वह उतना ही अधिक पूजनीय होता था। एशिया के कुछ देशो मे जिस वृषभ का लिंग जितना ही बडा होता था वह उतना ही अधिक पूजनीय होता था। मिस्री लोग भी वृषभ की पूजा करते थे। नन्दी को वे एपिस कहते थे। यूनान मे भी वृषभ की पूजा होती थी। उसे कडमस' देवता कहते थे। यहूदी लाग सुनहला बछडा बनाकर, प्रतिमा बनाकर पूजते थे। यहूदी देवी बाल पीयूर के मन्दिर मे कुमारी कन्याओ तथा कुमार लडको के साथ व्यभिचार होता था। यह एक प्रकार की वृषभ उपासना थी। यहोवा ने वृषभ उपासना की निन्दा की मनाही की। अतएव इजरायेल तथा सीरिया में सुनहले बछडे के कम से कम ३००० पुजारी कत्ल कर दिये गये तथा बाल पीयूर[१] देवी के २५००० पुजारी तलवार के घाट उतार दिये गये थे।[२]

१ Ball Peor देवी का शाब्दिक अर्थ है "कुमारियों की योनि को क्षत करानेवाली।"

२ देखिये Thomas Inman की दो पुस्तकें Ancient Faith embodied in Ancient names and 'Ancient Pagan and Modern Christian Symbolism Exposed and Explained"

इस प्रकार वृषभ पुरुष लिंग का प्रतीक देवता उसी प्रकार था जिस प्रकार इब्रानी (हिब्रू) देवी अशीरा तथा फायनिशियन देवी अशलारेथ स्त्री योनि की प्रतीक देवियाँ थी। इनकी प्रतिमा में विशेष रूप से केवल भग ही बना रहता था।[१] प्रतिमा के स्थान पर केवल भग की मूर्त्ति हमारे देश में भी बहुत पायी जाती है। ग्राट अलान[२] ने अपनी पुस्तक में साबित किया है कि यहूदी देव अथवा पैगम्बर यहोवा भारत के देवता शिव के समकालीन थे। उन्होंने दोनों में बहुत कुछ साम्य प्रमाणित किया है। सर विलियम जंग का कथन है कि रोमन देवी वेनस भारतीय देवी भवानी की रूपान्तर–समानांतर है। देवी यूरोपा की सवारी में वृषभ है। कटनर का कथन है कि बाल पीयूर देवी के मुख में पुरुष लिंग प्रतीक रखा रहता था प्रतिमा के मुख में। स्पेन पर विजय करने के बाद रोमन लोगों ने बाल देवी का स्पेन भी पहुंचा दिया। वहां उनका नाम हातनीज हो गया। मोहनजोदड़ो की खुदाई में सिंध में एक पुरुष देवता की प्रतिमा मिली है जो बैठे हुए हैं। उनके सिर में सींग हैं। उनके पास एक शेर, एक हाथी, एक गैंडा तथा एक बैल खड़ा है। ह्वीलर का कथन है कि यह देवता वास्तव में शंकर हैं, जिनके ये सब वाहन हैं।[३]

शिव, शिव लिंग तथा शिश्नदेव की व्याख्या करने के समय हम वृषभ पर और भी प्रकाश डालेंगे। पर यहां वृषभ प्रतीक का वास्तविक अर्थ समझा देना उचित होगा। आर्य सभ्यता ने शिव उपासना को चारों ओर फैला दिया था। जिस प्रकार शंकर के साथ सर्प का प्रतीक चारों ओर फैल गया उसी प्रकार वृषभ भी चारों ओर अपना लिया गया। यह हो सकता है कि समय पाकर उस प्रतीक का अन्य रूप में उपयोग होने लगा हो। यह हो सकता है कि उसका और भी अर्थ लगाया गया हो। पर वास्तविक महत्त्व तथा प्रतीक वह नहीं था जो पाश्चात्य लोगों ने समझा है।

देवता का पूजन करते समय **'साङ्गाय सपरिवाराय सवाहनाय'**––अपने अंग परिवार तथा वाहन सहित उनका पूजन होता है। परमशिव से हमने शिव की कल्पना की। सृष्टि की रचना में पोषण तत्त्व अन्न, दूध, घी तथा वर्षा––इन सबका प्रतीक वृषभ है। नन्दी को नंदिकेश्वर की भी उपाधि है। किन्तु यह स्वयं वृषभ है या शंकर के कोई प्रमुख गण हैं यह कहना कठिन है। नंदिकेश्वर के नाम से कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तथा तंत्र उपलब्ध हैं। चतुर्दश व्याकरण सूत्रों की आध्यात्मिक व्याख्या काशिका नंदिकेश्वर रचित है। साहित्यशास्त्र एवं कामशास्त्र के सम्प्रदाय में नंदिकेश्वर को आचार्य कहा

१ कटनर की पुस्तक।
२ Grant Allen— Evolution of the Idea of God "
३ R E M Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan—page 28

गया है। कामशास्त्र के आचाय नन्दिकेश्वर थे---इतनी बात तो मिस्र के तथा एशिया के वषभ प्रतीक से मिल ही गयी कि उनके लिए कामवासना के देवता वृषभ देव थे। हमारे देश मे कामशास्त्र के आचाय वात्सायन ने अपने कामसूत्र मे कहा है कि पार्वती के साथ विषयप्रसग के सुख का जब महादेव अनुभव कर रहे थे, उनके द्वार पर बठे पहरेदार नन्दी ने कामसूत्र' कहा---

'उमया सह सुरत सुखमनुभवति महादेवे द्वारस्थो नन्दी कामसूत्र प्रोवाच",

किन्तु नन्दी का वास्तविक रूप यह सब नही है जो हमने अभी तक लिखा है। विद्वद्वर प० रामच द्र शास्त्री वझे ने हम वृषभ की---नन्दी की जो व्याख्या भेजी है वह हृदय ग्राह्य तथा बुद्धिग्राह्य है। नन्दिकेश्वर काम तथा साहित्य के आचाय ह---यह प्रतीक रूप मे सत्य है क्याकि कामशास्त्र योगशास्त्र तथा रस शास्त्र के आधार स्रात शकर ह। उनकी नन्दी सवारी है। नन्दिकेश्वर को इन तीना मुख्य शास्त्रो का प्रतीक बनाया गया है। पर सबसे महत्त्व की चीज है धम। हमारे शास्त्रो में धम का प्रतीक वषभ माना गया है। शास्त्र के अनुसार वष रूप मे ही धम रहता है। धम के आधार स्रात लक्ष्य तथा उसकी पूर्ति परा शिव में है। शिव मे है। शिव की सवारी नन्दी है। धर्म पर आरूढ शिव ह। वषभ सीधे रास्ते चलता है। किसी की हानि नही करता। सबका पोषण करता है। पृथ्वी को सीचता चलता है। शरीर की पुष्टि करता है। वीय तथा बल की सजीव मूर्त्ति है। ससार म जहा कही भी वृष की मूर्त्ति बनी वह धम के प्रतीक रूप मे। बाद म उसके अर्थ का अनथ हो गया।

शकर के उपासक नन्दी को चारो ओर देश के बाहर ले गये। वदिक काल मे लोग शकर या शिव के नही उनके पर्यायवाची वदिक कालीन रुद्र के उपासक थे। रुद्र शब्द रुक धातु से बना है। रौति--शब्द करता है। ददाति--देता है। र--जो भुक्ति तथा मुक्ति देता है। जो भुक्ति तथा मुक्ति को दे यह लोक और परलोक बनाये वे ह भगवान रुद्र।[१] रुद्र के वदिक कालीन सबसे बडे उपासक थे व्रात्य लोग। अथववेद का २७ २८वाँ अध्याय ही व्रात्य अध्याय है। व्रात्य लोग बिना यज्ञोपवीत के आय थे। यज्ञोपवीत नही धारण करते थे। एक जमन विद्वन् ने कहा है कि वदिक काल में कमकाण्डी तथा शव योगी होते थे। उसी जमन विद्वान् के अनुसार वे यागी किसी प्रकार के "प्रतीक' का उपयोग अपनी उपासना में करते थे। अथववेद के पञ्चम अध्याय--रुद्राष्टाध्यायी मे जिसे हम रुद्री कहते हैं नमो व्रात्याय --व्रात्यो को नमस्कार लिखा है।

१ डॉ० सम्पूर्णानन्द की व्याख्या।

पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार भी व्रात्य हमेशा यात्रा किया करते थे । वे पर्यटक थे । अतएव इन्होने रुद्र की उपासना तथा भुक्ति तथा मुक्ति–भोग तथा योग दोनो के देवता का वाहन भोगी के साथ ही योगी वष को नन्दी को रुद्र का वाहन प्रतीक रूप में बनाकर चारो ओर उसका प्रचार किया होगा ।

इस प्रकार हमने यह सिद्ध किया कि वृष नन्दी धम का प्रतीक है । शिवालयो मे हो या मिस्र तथा एशिया यूरोप के अन्य किसी भाग मे भी हो, वह धम के प्रतीक के रूप मे तथा मुक्ति और भुक्ति लेनेवाल देवता के वाहन या स्वय देवता के प्रतीक के रूप म ही स्थापित किया गया था । बाद म उसके अथ का जो भी अनथ किया गया हो वषभ धम का प्रतीक है ।

सूय चन्द्रमा तथा अग्नि की उपासना का महत्त्व हम पिछल अध्यायो मे समझा आय ह । सूर्य तथा चन्द्र की उपासना यूरोप म कितनी अधिक फली हुई थी इसके प्रमाण पर प्रमाण भरे पडे ह । स्वडन तथा नार्वे देश १४वी सदा के पहले ईसाई नही बने थे । उन्होन ईसाई धम का नही अपनाया था । अतएव आय धम हिन्दू धम का उन पर इतना अधिक प्रभाव जम गया था कि इसाई होन के बाद भी सदियो तक उन्होने चन्द्र सूय अग्नि की उपासना जारी रखी । ईसाई मजहब के प्रतीक क्रास + को अपनाते हुए उसम सूय को भी शामिल कर लिया था । क्रास के नीचे सूय का गोल मुख लटकता रहता था ।[१] वहा पर हाथ में सूय का पट्टा पहनन की बडी चलन थी ।

अण्ड प्रतीक का भी हमने परिचय करा दिया है । अण्ड प्रतीक सष्टि का बीज रूप मे प्रतीक है । एक बिन्दु से इस शरीर की रचना हुई है । एक बिन्दु से ससार बना है । एक बिन्दु से ससार म सब कुछ है । अण्ड ही ब्रह्माण्ड का प्रतीक है । उस अण्ड प्रतीक के रूप में शालग्राम को बटिका को मानना चाहिए । शालग्राम या विष्णु सष्टि के, ब्रह्माण्ड के पालक है । गोल पत्थर के शालग्राम उस ब्रह्म तथा ब्रह्माण्ड की व्याख्या ह । श्रीमती मरे न तो यहां तक लिखा है कि शव लोग मुर्गी के अण्ड को ब्रह्माण्ड का प्रतीक मानते ह । इसलिए अण्डा खाना पाप समझते ह ।[२] किन्तु अण्डा खाने मे केवल शव ही नही वैष्णव आदि को भी काफी आपत्ति होती है । तान्त्रिक पूजा मे अण्डे को ब्रह्माण्ड कहा भी जाता है ।

पूजा के लिए ब्रह्माण्ड कही छोटे गोल पत्थर का होता है कही बडे गोल पत्थर का । नार्वे के फ्लेकफोड[३] नगर म ६ इच लम्बा तथा ७ इच गोलाई का पत्थर मिला है जिसकी

१ Symbolism of the East & West, पृष्ठ ७२ ।

२ वही पृष्ठ ८४ । ३ Flekkefjord

किसी ज़माने में पूजा होती थी। बर्गेन के अजायबघर में[1] सफेद पत्थर के मुर्गी के अण्डे के बराबर दो ब्रह्माण्ड-प्रतीक रखे हुए हैं। ऐसे 'शालग्राम' नार्वे, उत्तरी जर्मनी, लियोनिया डेन्मार्क आदि में काफी सख्या में पाये जाते है। ये काफी पुराने तथा पूजा के काम मे आनेवाले पत्थर मालूम होते है। आर्य सभ्यता के साथ अण्ड प्रतीक भी चारो ओर फल गया था।

इसी प्रकार वृषभ या वृष, नन्दी या बल का भी प्रतीक चारो ओर उपलब्ध था। जापान के मियाओ नगर में नन्दीश्वर का मन्दिर ही है। स्वर्ण के चबूतरे पर वष देव खडे ह। अपने अगले दोनो पैरो मे वे एक अण्डा पकडे हुए ह जिसे सीग से मारने ही वाले ह। वहाँ के विश्वास के अनुसार वह अण्डा प्रलयकाल का प्रतीक है। प्रलय के समय सवत्र जल ही जल था। उस पर समूची सृष्टि का सार बटोरकर एक अण्ड तर रहा था। चन्द्रमा ने अपनी शक्ति से जल के भीतर से पृथ्वी तत्त्व को ऊपर खीच लिया जो ऊपर आकर कठोर शिला का रूप धारण कर गया। इस कठोर शिला पर अण्ड ने विश्राम किया। इस अण्ड को सवप्रथम वष देव ने देखा और अपने सीग से उसे तोड दिया। अण्ड के टूटते ही उसमे से यह ससार निकल पडा। वृष के श्वास से मानव की उत्पत्ति हुइ।[2] जापान के पडितो के अनुसार सष्टि की उत्पत्ति की यही कथा है। यही सत्य है। ऐसा हुआ हो या न हो पर प्रतीक शास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह मदिर यह मूर्त्ति यह अण्ड, यह प्रतीक बडे महत्त्व की वस्तु है। अफगानिस्तान मे कई स्थानो पर अण्ड प्रतीक प्राप्त हुए ह। किन्तु अफगानिस्तान हज़ारो वष तक भारत का ही एक प्रदेश था। अतएव वहाँ पर वष अथवा अण्ड प्रतीक का पाया जाना कोई आश्चय की बात नही है।

शालग्राम की बटिका के समान पत्थर यरोप के अनेक स्थानो मे उपलब्ध हैं। कही पर इनको चन्द्र प्रतीक कही पर सूय प्रतीक तथा कही पर अण्ड प्रतीक मान लिया जाता है। स्वेडन की राजधानी स्टाकहोम के अजायबघर में ऐसे बहुत से गोल पत्थर सुरक्षित हैं। श्रीमती मरे ने इन पत्थरो को शिव लिंग तथा शालग्राम[3], दोनो या दोनो के बीच की चीज़ माना है। वे लिखती हैं—'यह विचारणीय प्रश्न है कि ये शैव पाषाण है। ताझेम के बडे पादरी महाशय शोनिंग की एक हस्तलिखित पुस्तक में से महाशय लिलिग्रेन ने ऐसे ही कुछ पत्थरो का जिक्र किया है तथा १८वी सदी के अन्त में नार्वे में प्रचलित इनसे सम्बन्धित एक प्रथा का ज़िक्र किया है।'[4] शोनिंग के अनुसार नार्वे के ईसाई लोग इन पत्थरो को नित्य दूध से नहलाते थे और ईसाई बडा दिन में ताज़ी बियर शराब से स्नान

१ वही पुस्तक, पृष्ठ ८४। २ वही पुस्तक, पृष्ठ ८५।
३ वही, पृष्ठ ७७। ४ वही पृष्ठ ८५ ८६।

कराते थे। इस राई (नाज) की गाल चपाती का भोग लगाते थे। श्री रिवेट कार्नेक के कथनानुसार भारतवप य कुमाऊ की पवतमाला म प दकालि पवत पर जा समुद्र से ८०० फुट ऊचा है चार पाषाण-स्तम्भा का एक स्थान है जहा पर वस त ऋतु में सन्तान की कामना स पुत्र रहित स्त्रिया आती ह। इन चार पत्थरा म एक च द्र प्रतीक तथा एक सूय प्रतीक बना है।

ठीक इसी प्रकार का पव जिसम सन्तान की कामना से स तान रहित स्त्रिया दशनार्थी हाती ह फास क ब्रिटनी प्रदेश म मनाया जाता है। वहा के बाड नगर के निकट मारविहन नामक स्थान म पत्थर की एक शिला पर ८ फुट ऊची एक पाषाण प्रतिमा खडी है। चहरा मिस्री चहरे क समान चपटा है तथा सिर पर के केश भी मिस्री ढग के मालूम हाते ह। यहाँ पर पुरान जमाने म तात्रिक अथात गुप्त ढग की उपासना हाती थी।[१] स तान की कामना से स्त्रियाँ यहा आकर प्रतिमा के निचल हिस्से से अपना सिर रगडती ह। ब्रिटनी प्रदश के अनक भागा म किसान स्त्रिया अब भी एसा करती ह।[२] कुछ लोगो का कहना है कि जिन परिवारा की स्त्रिया यहा पर पूजन के लिए आती ह उनका रखवाली के लिए घर क पुरुष लाग डण्ड लकर उनके साथ चलते ह और यदि पूजा के समय कोइ पराया यक्ति नजर आ गया ता उसकी मरम्मत हा जाती है। इस प्रतिमा का नाम है मन हिर।[३]

यूराप क लागा न भारतीय ढग की पूजा भारतीय ढग की तात्रिक पूजा और भारतीय च द्र सूय अण्ड प्रतीक हमस प्राप्त किय तथा अपना लिय थे इसके काफी प्रमाण मिलते ह। पाषाण प्रतिमा तथा पाषाण प्रतीक का पूजन भी वहा चारो तरफ था। हम जिस प्रकार अपन दश क लिए कहते ह वही पश्चिमी देशा के लिए कहा जा सकता है कि पहले प्रतिमा पूजन का रिवाज नहा था। प्रतीक प्रतिमा स भी पुरान ह। पत्थर या कासे के युग का सवाल नहा है। मानव विकास तथा दशन का भी सवाल है कि मनुष्य ने पहले प्रतीक रूप म अपन विचार तथा विश्वास का यक्त करना प्रारम्भ किया। पत्थर पर प्रतीक बनाना सबस आसान था। उसने पत्थर के प्रतीक पत्थर मे प्रतीक तथा पत्थर रूपी प्रतीक की उपासना की और उनकी रचना की। यरोप मेक्सिको भारत कही भी चले जाइए पत्थर म खद हुए सूय च द्रमा अण्ड प्रतीक तथा दवी देवता मिलग। ननीताल में हजारो साल से पाषाण देवी का पूजन तथा माहात्म्य है। युगो के बाद मनष्य के शरीर म देवता का रूप उतारा गया तथा देवता की प्रतिमा बनी। प्रतीक के समान वह भी पाषाण म ही ढाली गयी काढी गयी। इस प्रकार पाषाण पूजन प्राचीनतम है और

१ वही, पृष्ठ ८८। २ वही पृष्ठ ८९। ३ वही, पृष्ठ ९१।

हर धातु की प्रतिमा से पाषाण-प्रतिमा पुरानी है। श्रीमती मरे ने लिखा है कि रोम, यूनान, एट्रूरियन सभ्यताएँ के विकास की कई शताब्दियो के बाद उनकी कला ने मानव के रूप मे देवता की प्रतिमा बनाना प्रारम्भ किया। उनके पूवज पेड के तनो की अथवा काले पत्थरो की[१] शिला की पूजा किया करते थे। उनके साहित्य से पता चलता है कि युगा तक उनके यहा के नीचो श्रेणी के लोगो मे ऐसी पूजा प्रचलित थी। वारो के कथनानुसार लगभग १७० वष तक सभ्य रोमन लोग बिना कोई प्रतिमा बनाये ही अपने देवताओ का पूजन करते थे। प्लूटाक का कहना है कि जब न्यूमा ने रोमनो के रीति रिवाजो तथा उपासना विधि को निश्चित किया तो किसी प्रकार के रूप या कलेवर मे सावजनिक उपासना के लिए प्रतिमा या प्रतीक का निषेध किया था। स्पष्ट है कि जब रोमन लोगो मे देवता की भावना वतमान थी उनकी कोई प्रतिमा भी नही थी ता उनका प्रतीक अवश्य रहा होगा। मानसिक उपासना भी प्रतीक का रूप धारण कर लेती है। केवल योगी या ब्रह्मज्ञानी को प्रतीक की आवश्यकता नही होती। प्रतीक सदव वतमान था। मानव ने अपने आदि काल से प्रतीक की रचना कर ली थी। जब देवताओ की प्रतिमा नही थी, उस समय सूय चन्द्र अण्ड प्रतीक थे। कई विद्वानो की राय म तारक्विनियस प्रथम के शासन काल म जो एट्रेरिया के निवासी थे, प्रतिमा पूजन रोम में प्रारम्भ हुआ। यूरोप मे सबसे पुराने मूर्तिपूजक एट्रेरियन लोग थे।

यूरोप मे पाषाण का तथा पाषाण प्रतिमा का पूजन हजारा वष से चला आ रहा है। इगलण्ड म सकडो वष पूव एक कानून के अनुसार पाषाण पूजा करनेवाले को गिरजाघर को आर्थिक दण्ड देना पडता था।[३] कण्टरबरी के बडे पादरी थियोडोर ने सातवी सदी मे पाषाण पूजन का निषेध किया था। दसवी सदी मे ब्रिटेन के सैक्सन नरेश एडगर ने भी पाषाण पूजन की मनाही की थी। टूअस नगर मे एक धार्मिक सभा में पाषाण पूजन के विरुद्ध घोषणा की गयी थी। श्री होम्बो ने लिखा है कि नार्वे मे वसे ही पाषाण तथा पाषाण प्रतिमाएँ पूजा के काम आती थी जसे भारत मे।[४] फिनमाक के ट्रामजो नगर के निकट एक ऐसे ही पूजित पाषाण को वहाँ के पादरी ने नदी मे फेकवा दिया था। स्कडिनेविया में लौह युग से पूजित पाषाण तथा पाषाण प्रतिमाएँ आज भी उपलब्ध ह।[५]

१ वही, पृष्ठ ८१ ८२।
२ शालग्राम का पूजन काली पाषाण वटिका में ही होता है।
३ Waring in Stone Monuments & Tumuli"
४ Holmboe— Buddhism in Norwege"
५ श्रीमती मरे की पुस्तक, पृष्ठ ८३।

वहाँ का एक पुराना कानून जो कि ईसवीय सन पहली सदी का ईसाई धर्म के इस देश में प्रारम्भ काल का है पाषाण पूजन को मना करता है।[१] लगभग सन ६५८ में नान्ते की एक ईसाई धार्मिक सभा ने निश्चय किया था कि सभी पाषाण प्रतिमाएँ तथा पाषाण-पूजा को नष्ट कर दिया जाय। एक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ में लिखा है—
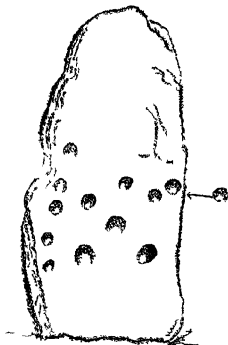
[इग्लैण्ड में प्राप्त शिवलिंग]

वे बड़े अभागे लोग हैं जो मरी (निर्जीव) चीजों में विश्वास करते हैं, जो लोग मनुष्य के हाथों बनायी चीज को देवता कहते हैं, निरर्थक पत्थर में कला दिखलाने के लिए चाँदी सोने का उपयोग करते हैं, आदमी या जानवर की मूर्ति बनाकर उस पर चन्दन या लाल

१ वही, पृष्ठ ८४।

रंग लगाते हैं तब उसके सामने अपनी स्त्री तथा बच्चे के कल्याण के लिए प्रार्थना करते हैं उनको इस निर्जीव वस्तु के बारे में बातें करने मे लज्जा भी नही आती ।[१]
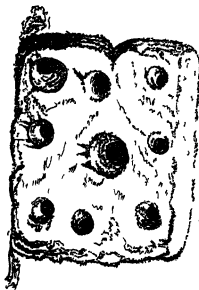
[फ्रांस में प्राप्त शिव लिंग]

यदि यूरोप में इतना अधिक प्रहार तथा 'सहार न हुआ होता तो वहाँ हर नगर मे पाषाण की प्रतिमा, चन्द्र सूर्य-अण्ड प्रतीक उपलब्ध होते । किन्तु यह निश्चित है कि हमारे ये प्रतीक ससार के हर एक सभ्य देश द्वारा अपनाये गये थे ।

१ वही, पृष्ठ ८१ ।

कमल, कौडो तथा घण्टा

श्रीमती मरन वागणमा क ठठेरी बाजार म एक मत्ति खरीदी थी। वह वषभ की मूर्त्ति थी। उसकी पीठ पर कमल की कली बनी थी। वह कली कुछ ऊपर जाकर खुल जाती था। उसक बीच म एक छाटा सा अण्डा बना हुआ था। वषभ के पीछे गेहुअन साँप बना हुआ था। वह तना खडा था--माना अभी काटनवाला हा। उसके मुख म एक अगूठी सी पडी हुई थी जिसम एक तश्तरी स्थिर थी। तश्तरी मे एक छद था। इस छद से पानी डालन पर कमल के बीच म स्थित अण्ड या लिग प्रतीक पर जल गिरता था। श्रीमती मरे एसा के अनसार कमल क बाच मे वह अण्ड प्रतीक रत्न है मुख्य वस्तु है।[१]

वषभ तथा कमल क सम्बध का क्या अथ है ? हम पहले ही लिख आये ह कि वषभ का अथ है धम। डा० सम्पूर्णानन्दजी के कथनानुसार आध्यात्मिक सूय म से मनरूपी कमल विकसित होता है। आध्यात्मिकता का प्रतीक धम है। धम का प्रतीक वषभ है। धम स मन का विकसित करनवाला कमल है। कमल के बीच मे मन के बीच मे परम तत्त्व ब्रह्माण्ड का ज्ञान है। अण्ड प्रतीक ब्रह्माण्ड है। मनरूपी कमल के बीच म परम ज्ञानरूपी रत्न मणि ही वह सार तत्त्व है जिस पर सब कुछ एकाग्र होकर केन्द्रीभूत करना चाहिए। प्राणरूपी जल का हम वहा पर गिराकर उसके प्रति अपनी जागरूकता (जागति) का प्रकट करते ह।

मन कमल के विकसित होने पर उसम मणिरूपी ज्ञान का बाध हाता है। इसी लिए तिब्बत के बौद्धा का उपासना क मत्र है--

ॐ मणिपद्मऽहम

ॐ की व्याख्या हम कर चुके ह। म मनरूपी कमल के बीच म मणि हू। श्रीमती मर एसने ने इस मत्र का अनुवाद इस प्रकार किया है--

'कमल के बीच में मणि को अभिवादन।'[२]

किन्तु इतन से हा कमल का अथ समझ म नही आ सकता। इसके सम्बध मे भिन्न भिन्न धारणाएँ ह। प० बटकनाथ शास्त्री खिस्ते का कथन है कि कमल भारत का

१ वही पृष्ठ ९९। २ वही पृष्ठ ९७।

सर्वप्रधान पुष्प है । यह सभी जगह उपलब्ध होता है । प्रत्येक भाषा का साहित्य अत्यन्त प्राचीन काल से इसके वर्णनों से भरा पड़ा है । पौराणिक कथा है कि विष्णु ने अपने नेत्र को ही कमल के स्थान पर शंकर भगवान् को अर्पित कर दिया था । इस कथा से ही पुष्पों में कमल की प्रतिष्ठा स्पष्ट होती है ।

प० रामचन्द्र शास्त्री वझे के कथनानुसार स्वस्तिक प्रतीक ही कमल का पूर्वरूप था । स्वस्तिक से ही कमल प्रतीक बना । स्वस्तिक पर विचार करते समय हम इस सम्बन्ध में भी विचार कर लेंगे । तांत्रिक उपासना के अष्टदल कमल, द्वादशदल कमल, षोडशदल कमल आदि का प्राय: उपयोग मन्त्रों के निर्माण में तथा पूजा पद्धति में मिलता है । हृदय-कमल के विकसित होने का साहित्यिक उपयोग हम प्राय: पढ़ते हैं । सूर्य के उदय होने पर कमल खिलता है । उसी प्रकार ब्रह्मरूपी सूर्य के ज्ञान से मनरूपी कमल भी विकसित होता है । सूर्य तथा कमल के इस आध्यात्मिक सम्बन्ध के कारण ही कमल का प्राचीन काल से इतना महत्त्व चला आया है । कमल की यह व्याख्या स्पष्ट तथा सही भी प्रतीत होती है । बहुत-सी व्याख्याएं देखने के बाद हमको डा० सम्पूर्णानन्द जी की व्याख्या ही सबसे उचित प्रतीत होती है । मनरूपी कमल प्रतीक चारों ओर फैल गया था—मिस्र, ईरान, बेबीलोन, यूनान से लेकर स्पेन तक फैल गया था ।

कमल के प्रतीक की एक नहीं अनगिनत व्याख्याएँ हो सकती हैं । कमल कीचड़ में पैदा होता है । जल में रहकर भी इसके पत्तों पर जल नहीं टिकता । जल के भीतर कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी वह पुष्प जल के ऊपर बना रहता है । यही आदर्श जीवन है । संसाररूपी दलदल में, संसाररूपी कीचड़ में रहकर भी जो मनुष्य उसकी ममता माया से ऊपर उठ जाता है, जो संसार की माया के जल को अपने ऊपर टिकने नहीं देता वही मुक्त मानव है, वही सच्चा मनुष्य है । मन ही मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है—मन एव मनुष्याणां कारणंबंधमोक्षयो । फिर लिखा है कि "मनोमय पुरुष"—पुरुष मन मय ही है । अतएव कमल का पुष्प मानव जीवन का महान उपदेश देता है । पौराणिक विश्वास के अनुसार लक्ष्मी का वास कमल पर है । वैभव तथा सम्पदा की प्रतीक लक्ष्मी है । यह प्रतीक हमें उपदेश देता है कि सब कुछ वैभव होते हुए भी धन, मान, मर्यादा के नश्वर तथा तुच्छ कीचड़ से ऊपर उठकर रहो ।

हमारे सभी प्रतीक यूरोप, एशिया तथा अमेरिका (मेक्सिको आदि) पहुँच गये थे । इसका हम काफी प्रमाण देते आये हैं । यहाँ पर एक छोटा सा उदाहरण दे दें । जरा सा विषयान्तर तो होगा । सभी हिन्दू लोग वर्षा तथा मेघ के स्वामी इन्द्र भगवान् से परिचित हैं । वैदिक युग में इन्द्र ही प्रधान देवता थे । देवताओं के राजा थे । हमारे यहाँ लोगों में साधारण विश्वास है कि इन्द्र जब अपनी गदा से मेघ को मारते हैं तब वर्षा होती है ।

इन्द्र का प्रधान अस्त्र वज्र है । इस वज्र के प्रहार से ही बिजली चमकती कडकती है और वर्षा होनी है । 'वज्रपात शब्द की उपत्ति ही वज्र से तथा उसके 'प्रहार" के विश्वास से हुई है । श्रीमती मरे ऐंसल न वज्र के देवता तथा वज्र का प्रतीक प्राचीन कालीन पत्थर की कुल्हाडी का बहुत से य रोपीय देशो मे पाया जाना सिद्ध किया है ।[१]

इमी प्रकार कमन का प्रतीक भी चारो ग्रोर फला था । इन पक्तियो के लेखक ने एक हज़ार वष पुरानी कुरान शरीफ की एक प्रति देखी थी । उस पर पुस्तक भर में हाशिये पर कमल बना हुआ था । मदिरो पर कमल का प्रतीक ससार भर में प्राप्त पुराने मदिरा म मिलता है । सुमात्रा जावा जापान चीन म मन्दिरा पर कमल बना मिलेगा । कलश भी म दिरा पर सबसे ऊपर बना मिलगा । कलश या घट का अथ बडा सु दर है । विद्या ज्ञान सष्टि देवगण तथा ब्रह्माण्ड (अण्ड) के साथ ही सूय तथा च द्र का सम्मिलित प्रतीक कलश है --

कलशस्य मुख विष्णु कण्ठ रुद्र समाश्रित ।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्य मातृगणा स्मता ।।
कुक्षौ तु सागरा सप्त सप्तद्वीपा वसुधरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजर्वेदो सामवेदो ह्यथवण ।।
अगश्च सहितास्सर्वे कलशन्तु समाश्रिता ।
देवदानवसवादे मध्यमान महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम विधृतो विष्णुना स्वयम ।।
तत्त्वार्षा सवतीर्थानि देवास्सर्वे त्वयि स्थिता ।।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि सवकामफलप्रद ।।
त्वत्प्रसादादिम यज्ञ कतुमीह जलोद्भव ।
सान्निध्य कुरु मे देव प्रसन्नो भव सवदा ।।

फिर बचा ही क्या ? ब्रह्मा विष्णु महेश ससार सागर नदियाँ---सब कुछ कलश में सम्मिश्रित हैं । अतएव कलश प्रतीक बना ।

अनगिनत शिवालया पर तथा बौद्ध चत्यो म सबस ऊपर कमल बना हुआ है पर यह कमल उलटा है । हैवेल ने अपनी पुस्तक मे इस प्रतीक को समझा ही नहीं । हमने पिछले एक अध्याय में सप प्रतीक की व्याख्या करते हुए शरीर के भीतर स्वयभू लिग तथा कुण्ड लिनी का ज़िक्र किया था । उसमें हमने बतलाया था कि यह स्वयभू लिग मूलाधार

१. वही पुस्तक, पृष्ठ ९३ से ९६ तक ।

में उलटे कमल के समान है जिसे जाग्रत कर उलट देना है। सर्परूपी कुण्डलिनी इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाडियाँ एक-दूसरी में गुथी हुई उसे लपेटे हुए भौंरे" की तरह गुञ्जन कर रही है। योगी इस कमल को उलटकर स्वयभू लिंग का मुख ऊपर कर देता है जिसके छिद्र मे कुण्डलिनी प्रवेश करती है। यानी, कमल ऊपर हो जायगा, नाल नीचे हो जायगी। योगाभ्यास से ही ऐसा हो सकता है। मूलाधार में (गुदा तथा लिंग के जरा नीचे) स्थित उलटा कमल ही शिवालयों तथा बौद्ध चत्यो पर बना हुआ है।

कमल प्रतीक पर हम अभी और भी प्रकाश डालेंगे। किन्तु वह अन्य प्रतीको के सम्बन्ध मे ही हमारे सामने आता रहेगा। यहाँ पर हम एक दूसरे महत्त्वपूण प्रतीक का भी उल्लख कर दे। वह है घण्टा या घण्टी'। हेवल[१] का कहना है कि यह प्रतीक भारत म ईरान से आया। एक दूसरे विद्वान का कहना है कि दुष्ट आत्माओ—भूत प्रत का भगान के लिए घण्टा बजाते थे।[२] किन्तु यहूदी लोग जिस सुनहले बछड की पूजा करते थे उसके गले में भी घण्टी के समान चीज बधो रहती थी मिस्र में वृषभ देव को एटिस कहत थे। उनके गले में घण्टी के समान कोई चीज थी। असीरिया के वृषभ देव के पख होते थे।

वष देव—नन्दी के गले मे घण्टी देखने के हम आदी हैं। वृषभ "नाद' का 'शब्द का भी प्रतीक है। वृष नाद करता है। नाद पर शब्द पर वाणी पर मातृका शक्ति पर हम अपनी समझ से काफी प्रकाश डाल चुके हैं। प्रथम शब्द "ॐकार था। "ॐ इत्येदक्षरमिदम सवम [३] प्रथम अक्षर ॐ था। योगाभ्यास से जब शरीर के भीतर का कमल सीधा हो जाता है तथा नाल नीचे हो जाती है जिस समय स्वयभू लिंग मे कुण्डलिनी प्रवेश करती है शरीर के भीतर बडा मधुर नाद होता है—ॐकार की टकार होती है जिसे कबीरदास ने अनहद नाद' लिखा है। जब मनुष्य ससार से अपने मन तथा बुद्धि को एकदम खीचकर अपनी आत्मा म लीन कर लेता है उसी को **समाधि** कहते है। जब समाधि लग जाती है तो शरीर के भीतर नाद होता है। घण्टा इस नाद का प्रतीक है। वृषभ देव धम तथा नाद दोनो के प्रतीक ह। इसलिए उनके गले मे नाद का, धम के द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था में उत्पन्न नाद का प्रतीक घण्टी या घण्टा बँधा है।

मन्दिरो में भी घण्टा बँधा रहता है। पूजन के लिए जानेवाले लोग घण्टा बजाते ह। जिसे पश्चिमीय विद्वान् 'भूत प्रेत बाधा भगानेवाली चीज समझते हैं वह वास्तव

१ Havell
२ W J Perry— Origin of Magic & Religion."
३ माण्डूक्योपनिषद्—१

में पूजा में विरोधी शक्तियों को भगानेवाला नाद है। किसी भी पूजन के प्रारम्भ में अपक्रामन्तु --इस मंत्र से पूजा विरोधी वातावरण को दूर करने के लिए बायें पैर से पृथ्वी को तीन बार मारकर-- वामपादेन भूमिं त्रिस्ताडयेत --कुछ ध्वनि की जाती है। यह प्राचीन क्रम है। इसी प्रकार देव दर्शन में पूजा का आरम्भ करने की क्रिया का पहला काम है घण्टा बजाना। नाद कर विरोधी तत्त्वों को दूर कर देवता से शरीर के भीतर के नाद को जाग्रत करने की यह प्रार्थना मात्र है। साथ ही अपनी उपस्थिति का अव्यक्त अङ्कन है साक्षी है। फिर एक महत्त्व की बात और है। देवता जीवन्मुक्त हैं। इनकी सहज समाधि होती है। इनके शरीर में या निराकार मन में सदैव नाद होता रहता है। ये नाद प्रिय होते हैं। अतएव नाद करने से ये प्रसन्न होते हैं।

डा० सम्पूर्णानन्द के कथनानुसार घण्टा समाधि में उत्पन्न नाद का प्रतीक है। मन्दिरों में घण्टा बजाने के विषय में प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते का कथन है कि शास्त्रों की आज्ञा है कि मंदिर में प्रवेश के समय घण्टा बजाया जाय। इससे अपनी उपस्थिति सूचित होती है।

"आगमार्थञ्च देवानां गमनाय च रक्षसाम ।।"

इत्यादि श्लोकों से भी घण्टा पूजन विहित है। इससे अनिष्ट जीवों का अपसारण तथा देवताओं का आवाहन भी सूचित होता है।

किन्तु सबसे उपयुक्त अर्थ तथा व्याख्या डा० सम्पूर्णानन्द की प्रतीत होती है। घण्टा उस नाद उस शब्द का प्रतीक है जिसके साथ सृष्टि का आरम्भ हुआ था तथा अन्त भी होगा। वृषभ धर्म का प्रतीक तो है ही नाद का भी प्रतीक है। वास्तव में नाद का ही मुख्यतः प्रतीक है। नाद के देव वृष देव के सम्बन्ध में ही ऋग्वेद का मंत्र है--

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे
सप्त हस्तासो अस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्या ँ आविवेश।

यानी चार सींग तीन पैर दो सिर सात हाथ तीन जगह बँधा है ऐसा जो वृषभ शब्द कर रहा है (वह) महादेव यानि नाद मनुष्यों में प्रवेश कर गया।

घण्टा के बारे में जिस प्रकार लोगों को भ्रम हो गया है उसी प्रकार कौड़ी के उपयोग के बारे में भी काफी गलतफहमियाँ हैं। पेरी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि कौड़ी स्त्री की योनि का प्रतीक है। वह जीवन दाता तथा जन्म दाता शक्ति का प्रतीक है। सूदान में स्त्रियाँ कौड़ी की करधनी कमर में इसलिए पहनती हैं कि उनको अधिक-से अधिक सन्तान हो। बाद में जब मनुष्य को पीली धातु स्वर्ण का पता चला तो उन्होंने सोने की कौड़ी

बनाकर उसका उपयोग शुरू किया।[1] पेरी के कथनानुसार सोने की कौडी के उपयोग से ही मनुष्य ने स्वणमुद्रा का उपयोग सीखा।[2] सर जाज इलियट स्मिथ का यही मत है। पेरी क कथनानुसार पहले भिन्न देशो की देवियां जैसे वेनस (कामदेवी), सिर्रेना (कामदेवी), अफोदाइत (कामदेवी) अस्तार्ती (कामदेवी), इन सबकी उपासना कौडो में ही होती थी। इनका रूप कौडी' की तरह का ही बनाया जाता था। बाद में चलकर उस कौडो मे हाथ-पैर आदि जोडकर पूरी प्रतिमा बना दी गयी।

हमारे देश म आज भी पूजा के काय में कौडी का उपयोग केवल प्राचीन मुद्रा के रूप में होता है। कौडी के मुद्रा के रूप में उपयोग का पता वैदिक साहित्य से भी नही लगता। वदिक साहित्य स हिरण्यहरित यानी स्वर्ण के उपयोग या उसकी जानकारी का पता चला है कौडो का नही। वदिक युग में सिक्के के स्थान पर जानवर के पशुधन के उपयोग की कल्पना तो होती है। यूनानी सभ्यता के आदिकाल मे भी पशुधन का ही मुद्रा के रूप म उपयाग हाना था। मुद्रा के लिए उनके शब्द का आधार भी अब भी पशु है।[3]

सस्कृत मे कौडी के लिए वराटक या वराटिका शब्द मिलता है। यह काफी प्राचान श द प्रतीत होता है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गणकतरगिणी मे विद्वद्वर प० सुधाकर द्विवेदी (वाराणसी निवासी) न भारतीय गणितशास्त्र के आचाय भास्कराचार्य का समय १०२६ शाके, यानी शक सवत्सर निर्धारित किया है। इस प्रकार आज के लगभग ८८० वष पूव भास्कराचाय ने अपने गणितशास्त्र के विश्वविख्यात तथा गणित पर ससार के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ लीलावती में द्रव्य की परिभाषा में लिखा है—

> वराटकानाम् दशकद्वय यत्
> सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्र ।
> त षोडश द्रम्म इहावगम्यो
> द्रम्मस्तथा षोडशभिश्च निष्कम् ।।

अर्थात् बीस कौडी की एक काकिणी चार काकिणी का एक पण (पसा) सोलह पण का एक द्रम (चवन्नी) सोलह द्रम का एक निष्क (रुपया—आज के चार रुपये का एक निष्क)।

१ W J Perry—'The Origin of Magic & Religion"—page 22
२ Sir G Elliot Smith—'The Evolution of the Dragon' —
३ लैटिन भाषा का शब्द Pecus है जिसका अर्थ है पशु। उसीसे Pecuniary = आर्थिक, माली—शब्द बना है।

इससे स्पष्ट है कि कौडी का उपयोग आज के एक हजार वष पहले मुद्रा के रूप में होता था । अत जिस प्रकार हमारे यहाँ भी कौडी की माला कौडी का गहना तथा द्रव्य के रूप म लक्ष्मी के प्रतीक कौडी के पूजन की प्रथा है उसी प्रकार अन्य देशो में, चाहे मिस्र हो या कोई दूसरा एशियाई देश कौडी का उपयोग द्रव्य तथा शृंगार के लिए हाता था । उसे अनायास स्त्री की यानि का प्रतीक मान लिया गया है । श्रीमती मरे ऐंसले ने भी कौडी के उपयोग का गलत अथ लगाया है । सम्भवत सवप्रथम गणना के साधन के लिए कौडियो का उपयोग हुआ होगा । समुद्रतीर निवासी आर्यों की जब आवश्यकताएँ बढ़ी तबसे कौडो का प्रयोग आरम्भ हुआ होगा क्याकि यह समुद्र म ही प्राप्त होती थी । होते होते मुद्राआ की प्राथमिक प्रतिनिधि कौडियाँ बन गयी । कुछ समय बाद कतिपय कौडिया स गणना आरम्भ कर दुकडा अधला पसा आदि मुद्राए बनी होगी । हमारी प्राचीन मद्रा पण तथा निष्क का उपयोग तथा कौडिया का इनका सम्ब ध भास्कराचाय की लोलावती से अकाटच रूप से सिद्ध हा जाता है ।

त्रिशूल

त्रिशूल प्रतीक यूरोप तथा एशिया में प्रचुर सख्या में पाया जाता है। पाश्चात्य लेखको ने स्वस्तिक त्रिशूल तथा ईसाई क्रास प्रतीक का एक दूसरे से मिलता-जुलता तथा एक दूसरे से उत्पन्न प्रतीक माना है। किन्तु हरएक प्रतीक को कामवासना से सम्बन्धित करनेवाले लेखको ने घम फिरकर इन प्रतीको को स्त्री योनि तथा पुरुष लिंग स सम्बधित कर दिया है। कटनर[1] ने लिखा है कि मिस्र की कुछ प्राचीन ममी यानी मसाला भरकर सुरक्षित रखे हुए मुर्दों पर विशषकर स्त्री के शव के ऊपर–उसके बक्स पर पुरुष लिंग बना हुआ है। मिस्री स्त्रिया लिंग की शक्ल का ताबीज पहनती थी। पुराने जमान में हेरोडेटस[2] नामक इतिहासकार ने मिस्र मे एक जुलूस देखा था जिसमे लोग तीन महान लिंग एक साथ जोडकर ले जा रहे थे। यही त्रिशूल' था। ईसाई क्रास भी लिंग का ही प्रतीक है। लिंग से सृष्टि होती है। यही बात प्रकट करने के लिए क्रास बनाया गया। पेन नाइट तथा गाडफ्र हिगिन्स[3] का कहना है कि क्रास प्रजननशक्ति को व्यक्त करता है। ईसाइयो ने इसी प्रतीक का अपने धम मे अपना लिया। मिस्र मे यह प्रतीक बहुतायत से अब भी पाये जाते यदि चौथी शताब्दी मे बडे पादरी बिशप थियोसाफिलीज ने रोमन सम्राट थियाडासिनिस की आज्ञा स मिस्री देवालयो तथा प्रतीको का नष्ट न किया होता।[4] कटनर के कथनानुसार ईसाई धमग्रन्थ बाइबिल के पुराने सस्करण[5] में जो हिब्रू भाषा मे था लिंग प्रतीक का काफी जिक्र था, पर उसका अनुवाद करते समय सी०डी० जिसबग[6] ने उन चीजो को हटा दिया था। वाल ने अपनी पुस्तक में क्रास को उत्पन्नकर्त्ता' का

१ H Cutner—A Short History of Sex Worship

२ हेरोडेटस ईसासे ४८० व५ पूव के समय में थे।

३ Payne Knight and Godfrey Higgins

४ कटनर की पुस्तक।

५ OLD TESTAMENT

६ C D, Ginsburg

प्रतीक माना है। मूर[१] ने मिस्री पिरामिड का जो त्रिकोण बनता है तथा जिसमे ऊपर का कोना खडा रहता है उसे पुरुष लिंग का प्रतीक ही नही माना है वे उसे भारत के शव सम्प्रदाय की प्रसादी भी मानते ह। अनेक लेखको ने प्रसिद्ध मिस्री पिरामिड को लिंग प्रतीक माना है। इनमान[२] ने भी अपनी पुस्तक मे इसी विचार की पुष्टि की है। लिखनेवाला न तो यहाँ तक लिखा है कि बाइबिल मे डविड नाम का अथ हा है प्यारा[३] यानी आशिक मिजाज।

मक्सिको म प्रतीक उत्पादनशक्ति का द्योतक था।[४]

का मिस्री प्रयोग इसी रूप में होता था। इसी को

१ E Moore— Hindu Pantheon"

२ Inman—' Ancient Faith Embodied in Ancient names "

३ David = Beloved in Hebrew—To Love erotically

४ कटनर की पुस्तक, पृष्ठ १५८।
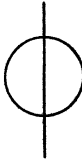
बना देते थे—मिस्र में जिसे 'आइसिस देवी का डण्डा कहते थे। इसका मतलब था कि स्त्री पुरुष मिल गये। मिस्री भाषा में इस प्रतीक को आन्ख कहते थे।

यूनानी कामदेवी वेनस का प्रतीक ♀ भी यही अर्थ रखता था।

हिन्दू स्वस्तिक का भी यही अर्थ था। यहूदी प्रतीक

का भी यही अर्थ होता था।[१] कुमारी फ्रांसिस स्विनी ने अपनी छोटी-सी पुस्तक में लिखा है कि ⌀ का अर्थ है कि पुरुष लिंग स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश कर गया।[२]

१ वही, पृष्ठ १५८।
२ Francis Swiney—'The Mystery of Circle and the Cross'

कटनर की पुस्तक में लिखा है कि यूनानी देवी दियाना अर्द्धनारीश्वर' थी पुरुष तथा स्त्री दोनो ही। इनकी सहारक (शिव) शक्ति भी थी और पालक (पावती) शक्ति भी। ईसाइयो की कुमारी देवी मेरी मरियम वास्तव में भारतीय माया का रूपान्तर हैं। दुर्गा ह जिनके हाथ में हिन्दू लोग त्रिशूल देते हैं। यह उस देवी की तीन शक्तियो का द्योतक है— उत्पादक-पालक-सहारक। मिस्री भाषा में सूय को ओन या औन कहते है जो भारतीय ॐ से मिलता जुलता शब्द है। ईरानी देवी उणमिया वास्तव में ईसाई मरियम तथा भारतीय उमा ह।

ऐसी बुद्धिमानी की बातें कहकर भी कटनर अपने कामवासना के सिद्धान्त में उलझ गये। वे हर एक चीज़ का कामवासना से जोडते हुए लिखते ह—

पुरुष में वह मक्कारी और ताकत है कि जब तक वह सन्तुष्ट न हो जायेगा सभी सीमाओ का उल्लघन कर जायेगा। विवाह का इतिहास, धम का इतिहास मानव के सामाजिक जीवन का इतिहास—य सभी सिफ यह साबित करते ह कि मनुष्य के जीवन में उसकी कामवासना का कितना बडा हाथ रहा है। बिना इस तथ्य का स्वीकार किये समूचा इतिहास ही बिना अथ का रह जायगा।[१]

कटनर यह स्वीकार करते ह कि देवी पूजा का उपदेश ईरान या यूनान या रोम को भारतवष से मिला। वे यह भी मानते ह कि वेनस नामक यूनानी कामदेवी यूनान की सबसे प्रिय तथा पूज्य देवी थी। इटली मे उनके लिए १८५ मन्दिर थे।[२] उनके अनुसार इसका एक मात्र कारण यह था कि सभी लाग जनसख्या में वद्धि चाहते थे। वे लिखते है कि बिपलोस की वेनस देवी तथा फ्रिजिया की एलिस दवी भी एक ही थी। प्राचीन भूगोलकार टालमी लिखते ह कि असीरिया तथा ईरान मे लिग को पवित्र वस्तु मानते थे और ईरान के सूर्य देवता की जिनका नाम मित्र था कल्पना सभागेच्छु मुद्रा में की गयी थी। सीरिया में हीरापोलिस नामक स्थान में एक मन्दिर था जिसमें १७० फुट लम्बे दो विशाल लिग खडे थे। इनका सिरा इतना चौडा था कि उस पर एक आदमी आराम से बैठ सकता था। एक लिंग के ऊपर एक व्यक्ति ने बठकर सात वष तक तपस्या की थी। फोनैनीसिया में लिग उपासना होती थी। रोम मे कामदेवी की मूर्त्ति अनेक प्रकार की बनायी जाती थी। लकडी के हाथ-पैर सगमरमर पत्थर का सिर, अशोभनीय मुद्रा आदि म।

इन सब बातो को लेकर पाश्चात्य लेखको ने सभी प्राचीन प्रतीको को कामुक प्रतीक माना है। किन्तु यदि भारतीयो के द्वारा देवी की उपासना लिंग की उपासना तथा उनके

१ वही पुस्तक, पृष्ठ १५४। २ वही, पृष्ठ ४९।

प्रतीक विदेशो में पहुँचे तो उनका आधार भी अथ भी भारतीय ही क्यो न रहा हो ? इसकी समीक्षा हम आगे चलकर करेंग । त्रिशूल के तीन चिह्नो का अन्य अर्थ भी हो सकता है । मिस्र के विषय में लिखते हुए अनेक पाश्चात्य लेखक स्वीकार करते ह कि उनके तीन मुख्य देवी देवता थे—

(१) ओसिरिस—प्रथम कारण (सृष्टि का)।
(२) आइसिस—ग्रहण करनेवाली देवी (गर्भाधान)।
(३) होरस—प्रथम तथा द्वितीय के सयोग का परिणाम।

अब यदि इनको हम शिव उमा तथा गणेश कहे तथा इनका परिणाम त्रिमूर्त्ति का प्रतोक त्रिशूल कह तो पाश्चात्यो को क्या आपत्ति होगी ?

क्रास क विषय मे ही लीजिए। पश्चिमी विद्वानो मे इसके सम्बन्ध मे भिन्न धारणाएँ है। पार्सन्स[1] का कहना है कि 'यह प्रतीक जीवन के लिए था। ६ठी शताब्दी तक ईसाई मजहब ने इस प्रतीक को नही अपनाया था। सबस पहल ईसाई धम को अपनानेवाले प्रथम रोमन सम्राट कास्टटाइन ने एक गोलाकार क्रास को अपनाया था। यूनानी लिपि मे ईसा के लिए जो अक्षर लिखे जाते थे वे तीन थे तथा × पहला अक्षर था।[2] रोमन देवता जूपिटर (गरु) तथा सटन (शनि) के हाथ मे क्रास रहता था। उस से भी क्रास की प्राचीनता सिद्ध होती है। मिस्र के शाही झण्डे पर क्रास बना रहता था।

ईसाई प्रतीको की व्याख्या करते हुए श्री गम्बल लिखते ह—

ईसा मसीह की शूली (क्रास पर) तथा उसके बाद उनके स्वर्गारोहण की घटना न उनक शिष्या का ध्यान पृथ्वी पर से खीचकर उस स्वग की ओर पहुचा दिया जो अब उनक प्रभु का निवासस्थान हो गया था इस प्रकार मत्यु ने अपना साधारण रूप ग्रहण कर लिया और उसके बाद क्या होता है यह लोगो के लिए चिन्ता तथा कामना का विषय बन गया कब्रा पर फूल तथा विशेष कर गुलाब का फूल चढाना वास्तव मे स्वग का प्रतीक है। अच्छा गडेरिया तथा मेमना य दोनो भगवान् तथा सरक्षक (ईसा) क प्रतीक है। ईसाइयो में मछली का प्रतीक ईश्वर के साथ एकत्व का द्योतक है (जैसे पानी मे मछली रहती है)। सुराही में से कबूतर पानी पी रहा है' का प्रतीक इस बात को प्रकट करता है कि जीवन में (शरीर धारण कर) आत्मा अपने को ताजा बना रही है। जीवन में ज्यो ज्यो भय तथा विपत्तियाँ बढ़ती गयी ईसाइयो के गिर्जाघरो के साथ भय के प्रतीक

१ J D Parsons— Non–Christian Cross'
२ PI=Christ.

अधिक सम्बद्ध होते गये। क्राइस्ट (ईसा) की मूर्त्तियाँ अधिक कठोर चेहरवाली बनती गयीं तथा कुमारी मरियम को कष्टो से त्राण देनेवाली बनाया गया। [१]

क्रास के सम्बन्ध मे गम्बल लिखते हैं—

क्रास तो बाद म आया। सम्राट कास्टेटाइन ने मक्सेंटियस के विरुद्ध अपने धम युद्धा में सिपाहियो की ढाल पर क्रास का चिह्न बनाया था। यह ईसवी सन् ३१२ की

बात है। इसके पहले यह प्रतीक केवल एक ईसाई कब्र पर मिलता है ।

यह कास्टटाइन के युग के पहले का है। सम्भवत चौथी सदी का। P से तात्पय है पशन यानी वासना। पर जब क्रास का प्रतीक चालू हुआ तो उस पर गुलाब की पत्तियाँ भी रखी थी। असल मे साध पाल न अपन धमशास्त्र म क्रास की वतमान महत्ता का सूत्र पात किया। पहले तो क्रास का प्रतीक रास्ते की ठाकर यानी बाधा व्यक्त करता था। बाद में वह अभ्युदय का प्रतीक बन गया गिर्जाघरा पर क्रास बनना सातवी सदी से शुरू हुआ। लटिन गिर्जा पर एक ममना बनाया जाता था जिसके सीन स रक्त बहता रहता था और हाथ मे क्रास लिये हुए था।[२] मिस्री क्रास T बनता था। [३]

डा० वारज़क[४] के अनुसार क्रास का प्रतीक स्वस्तिक से निकला है। बीच मे

गोल बनाकर चारो तरफ क्रास के चिह्न सूय देवता के प्रतीक ह ।

तीन भुजा वाला क्रास स्वस्तिक से निकला है।[५] वेल्स तथा इटला म एस बतन मिले है जिनम बीच में क्रास है तथा चारा आर गालाई है—यह भी सूय का प्रतीक

१ J Gamble's Article—'Christian Symbols"—In Symbolism" Encyclopaedia of Religion and Ethics"—Editor—James Hastings-Page 134

२ Come ye after me and I shall make ye fishers of men—(Mathew-4 and 1)

३ वही पुस्तक पृष्ठ १३५।

४ Komer Aerr Dr Worsaac Head of the Archeological Department Denmark 1896

५ Symbolism of the East and West page 33

प्रतीत होता है ।[१] अरीज़ोना की मोकीज जाति के लोग सर्प-नृत्य के समय जो वस्त्र पहनते हैं उस पर T क्रास बना रहता है।[१] ईसवी सन् ३७० में अफ्रीका के ईसाई सम्राट प्रेस्टर जान ने ईसाई धर्म के प्रचारक साधुओ के काले वस्त्रो पर T प्रतीक नीले रग में बनवाया था । आस्ट्रिया की राजधानी वियेना में सन् १०६५ में एक रईस गिरोद नामक व्यक्ति ने ईसाई साधुओ के काले वस्त्रो पर T का प्रतीक बनवाया था । सन् १२६४ में इन्ही साधुओ के द्वारा यह प्रतीक इगलैण्ड पहुँचा । बवेरिया (जर्मनी) के राजा अलबट ने सन् १३८२ में इसी प्रतीक को अपनाया था । पर इन ईसाई लोगो के बहुत पहले क्रास का प्रतीक वतमान था । जब स्पेन के लोग सबस पहले दक्षिण अमेरिका पहुँचे तो उन्होने वहाँ के मन्दिरो पर उस प्रतीक को देखा । इन मदिरो में नर बलि भी होती थी । स्पेनी लोगो ने इसे दुष्ट प्रतीक समझा । उन्हें नही मालूम था कि 'यूरोप के इतिहास के प्रारम्भ होने के बहुत पहले स्वस्तिक प्रतीक एशिया में वतमान था ।"[२] (क्रास तो स्वस्तिक का अश माना जाता है ।) मेक्सिको के आदिम निवासी क्रास का उपयोग करते थे । उसमें चार पक्तिया होती थी +। यह प्रतीक वर्षा तथा उपज' का प्रतीक था । चार हवाओ से वषा होनी थी । इस प्रतीक का उनकी भाषा में नाम था तोमाकुआ हुइतिल[४] यानी जीवन दायक वृक्ष । वे इसे ताऊ भी कहते थे यानी जीवन दायक वृक्ष के द्वारा मुक्ति । मेक्सिका मे एक स्थान पर जहाँ पर आज वेराक्रूज नामक नगर खडा है, सगमरमर का एक क्रास बना था, जिस पर स्वणमुकुट रखा हुआ था । वहाँ के रहनेवालो ने ईसाई पादरियो को बतलाया था कि यहाँ पर सूय से भी अधिक प्रतिभाशाली की मृत्यु इसी क्रास पर हुई थी ।

उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के आदिम निवासियो के अधिकाशत धार्मिक तथा ज्योतिश सम्बन्धी विश्वास समान से थे । इसके काफी प्रमाण मौजूद है कि उनको ज्योतिष की भी जानकारी थी । अपने इन धार्मिक विचारो को प्रकट करने के लिए उन्होने चिह्न बना रखे थे ।[५] अतएव उनके चिह्नो को समझने में विशेष कठिनाई नही होती है । कुछ आदिम लोग पत्थर के टुकड को क्रास के रूप में खडा कर देते थे । उनके विश्वास के अनसार यह प्रतीक उस वृद्ध पुरुष का था जो सूर्य में बैठकर वायु पर नियत्रण रखता है । ' देलावेयर के लोग जमीन में क्रास बनाकर जोर जोर से वर्षा का आवाहन करते थे । क्रास

१ वही पुस्तक पृष्ठ ४३ । २ वही, पृष्ठ ६८ । ३ वही, पृष्ठ ७० ।
४ Tomaquahuitl ५ वही पृष्ठ ७१ ।

प्रतोक अमरिका कसे पहुचा यह इतिहास के गभ मे पडी बात है, पर ऐतिहासिक काल के पूव स इसका उपयोग वहाँ हाता आया है यह निश्चित है।[१]

कटनर न अपनी पुस्तक मे स्वीकार किया है कि चीनी लोगो में भी क्रास प्रतीक होता था। प्राचीन चीनी मत के अनुसार प्रकृति के दो रूप ह—दा प्रकार है—एक याग, जो पुरुष है तथा दूसरी यिन जो स्त्री है। प्रकृति के इन दो रूपा का द्योतक T भी हो सकता है। ईसाई धम में त्रिमूर्ति है—पिता—परमात्मा—पुत्र रूप मे परमात्मा तथा पवित्र प्रत यानो पिता माता पुत्र। इन तीनो का प्रतीक भी T हो सकता है। ग्राट की पुस्तक मे लिखा हे कि इजरायलिया के देवता यहोवा छोट आकार के लिंग रूप म थे। उनक सामन फिलस्तीनो के दवता दगान टुकड टुकड होकर गिर पड थ। यूरोप आदि दशा म क्रास स चिह्नित पवित्र पत्थरा की उपासना सन्तान रहित स्त्रियाँ अब भी करती ह।[२]

क्रास का स्वस्तिक का अश माननवाले लखक वाल कहते ह कि + का मतलब है कि चार लिंग एक केन्द्र मे स्त्री यानि का बध रहे ह।[३] जमन विद्वान शिमान[४] का कथन है कि ऐसे प्रतीक तथा स्वस्तिक यूराप म सवथा पाय जाते ह। विल्किसन[५] का कहना है कि T प्रतीक मिस्र म बहुतायत से पाया जाता है। उसके लिए उसका शब्द भी ताऊ था। मिस्र म नरेश का राज्याभिषक बड समारोह के साथ हाता था। उनक शरीर मे सुगधित तेल चुपडा जाता था। व मूल्यवान वस्त्र धारण करते थे। मन्त्रोच्चार के साथ देवगणो का आवाहन होता था। देवगण उनक मस्तक पर हाथ रखकर नरेश के हाथ मे ताऊ देते थ जो कि वास्तव म जीवन तथा पवित्रता का प्रतीक होता था। मिस्रा लाग नील नदी क सहारे ही जीत थे। वे उससे अच्छी अच्छी नहरे निकालकर खता को पानी पहुँचात थ। नदी मे पानी क उतार या चढ़ाव की बराबर जाँच हाती रहती थी। इसके लिए सरकारी कमचारी रहते थे जो रजिस्टर मे आँकडे दज करते रहते थे। उनकी रिपोट पर ही नहरो का पानी खोला जाता था। निश्चित ऊचाई पर नदी का पानी पहुँचन पर ही नहरो का पानी खाला जाता था। अतएव बहुत सम्भव है कि जीवन दायिनी नील नदी के जल की कुजी का प्रतीक ताऊ T था जिसे देवगण नये नरेश के

१ वही, पृष्ठ ७२।
२ Grant Allan– Evolution of the Idea of God'
३ Cutner—Page 187
४ Schhmann
५ Sir J Gardner Wilkinson—Ancient Egyptians

हाथ में देते थे।'[१] यह भी सम्भव है कि आगे चलकर यही प्रतीक मिस्त्रियो के लिए प्रकाश तथा उत्पादन का प्रतीक बन गया हो या मृत्यु तथा विनाश का भी प्रतीक बन गया हो, क्योंकि ज्योतिष में T क्षीणता का प्रतीक माना जाता है। मूर लेखक का कहना है कि यूनानी लोग ताऊ T का प्रयोग उन लोगो के लिए करते थे जो युद्ध से जीवित लौटते थे। मृतक के लिए ⊖ प्रतीक बनाया जाता था। इस प्रकार T जीवन का प्रतीक बन गया।[२] मूर के अनुसार यह प्रतीक यूनान में भारतवर्ष से आया।

श्रीमती मरे ऐंसले ने प्रतिपादित किया कि है T प्रतीक से ही हथौड़े 0— का प्रतीक बना जो कि वर्षा के देवता का वज्र बन गया जिसकी चोट से मेघ पानी बरसाता था। यूनानी देवता जियूस वर्षा, अग्नि तथा पानी के देवता थे। रोमन देवता जोव का भी यही काय था। स्वेडन-नार्वे के थार देवता का भी यही काय था हमारे इन्द्र देव की तरह। इन्द्र देव के वज्र के समान उन सभी देवताओ के हाथ मे हथौडा अस्त्र रहता था। इन्द्र के समान थार देवता भी राक्षसो से बराबर युद्ध किया करते थे। इनके हाथ में एक सहारकारी अस्त्र रहता था जो 1 प्रतीक था। न्यूजीलैण्ड के भावरी लोगो मे भी ऐसे ही प्रतीक की पूजा होती है।

इस प्रकार त्रिशूल या उसके एक रूप T या क्रास के सम्बन्ध में हमने युरोपीय विद्वानो की खोज तथा सूझ दोनो का सक्षेप में परिचय दे दिया। ऊपर की पक्तियो से हमारे इस विश्वास की पुष्टि होती है कि चाहे शिव लिंग की उपासना हो या त्रिशूल की या स्वस्तिक की या क्रास की—यह सब कुछ भारत से ही आर्यों के द्वारा ससार को प्राप्त हुआ है। देश, काल तथा युगो के हेर फेर से इनके आदि या मौलिक नाम बदल गये उच्चारण बदल गया भावना बदल गयी रूप भी बदल गया, पर अन्ततोगत्वा चीज एक ही थी, चाहे वह इन्द्र भगवान् की कल्पना हो या सूय की। इसी प्रकार भिन्न प्रतीको की रूप रेखा तथा तत्सम्बन्धी भावना भी बदल गयी और हमारे देश के उपदेश का गलत अथ भी लगा लिया गया होगा। पर भारत के आर्यों ने कामवासना को तथा प्रजनन को वह ऊँचा स्थान नही दिया था जसा कि पाश्चात्य विद्वान् समझते हैं या जसा कि वे सिद्ध करना चाहते है। हमारे यहाँ आध्यात्मिकता ही, उच्च भावना ही मौलिक आधार रही है और चाहे प्रतीक हो या प्रतिमा उसका अर्थ तथा रूप वह नहीं है जो लोग साधारणत समझते हैं।

१ Symbolism of the East & West—page 64
२ Moor—Oriental Fragments–Hindu Pantheon—page 477

इसी दृष्टि से त्रिशूल का भी बडा महत्त्वपूण तथा व्यापक ग्थ है और उसी रूप मे उस प्रतीक को हमारे देश न ससार का दिया था । हमार पूवजो ने शकर या दुर्गा के हाथ में त्रिशूल का किसी कामुक भावना से नही दिया था । त्रि शल का अथ समझन की चेष्टा करनी चाहिए ।

शकर की, रु्द्र की उपासना ससार म सबस पुरानी उपासनाओ म से है यह बात हम आग चलकर और भी विस्तार के साथ सिद्ध करेग । पिछले अध्यायो म हम लिंग पूजन का बार बार उ लख करते आये ह् । हम यह सिद्ध करेग कि शकर देवता का प्रतीक लिंग था और उसका वह अथ नही है जा पाश्चात्य लखको ने लगा लिया है । यह सत्य है कि भारत स लिंगपूजा ससार म फली और शतार्दियो बाद उसका अथ तथा भाव लोगा ने भुला दिया और लिंगपूजन का महान् आध्यात्मिक मह्त्व विस्मृत हा गया तथा उसको वासना का प्रतीक बना लिया गया । शिव लिंग शकर का प्रतीक था । प्रतीक क रूप में ही यह ससार म पहुचा । प्रतीकापासना का जिक्र आदि शकराचाय ने अपन वेदा त म—शकरभाष्य म किया है । शिव लिग शकर का प्रतीक था वदिक युग म भी । ऋग्वद मे शिश्न देवता का जिक्र आया है । कुछ पडितो का कहना है कि शिश्न दवता का अथ इद्रियपरायण य्यक्ति है । कुछ का कहना है कि इसका उपयोग शिव लिंग पूजका की निदा के रूप म है । हर दशा मे लिंग पूजन की सत्ता तो सिद्ध हाती ही है । मोहेंजोदाडो (सिंध) की खोदाई मे ५००० वष पूव भी लिंग पूजन के प्रमाण मिलत ह् ।

शकर योगिराज ह् । सभी रसा के अवतार ह्—हास्य शृगार रौद्र बीभत्स करुण इत्यादि सभी रसा का उनमे सम वय ह । शकर के हाथ मे त्रिशूल है । जहाँ भी कही शिव लिंग मिलता है देश विदेश में वहा नदी तथा त्रिशूल भी मिलत ह । नदी प्रतीक का अथ हम समझा चुक ह । त्रिशूल का अथ भी काफी गूढ है । क्रास क सम्बध मे हमने ऊपर बहुत कुछ लिखा है । यह क्यो न मान ल कि भारतीय त्रिशूल विदेशी क्रास बन गया ? स्वस्तिक प्रतीक की याख्या करते हुए हैवल ने लिखा है कि प्राचीन हिदू नगर इस प्रकार बसाये जाते थ कि नगर के बीच एक बडी सडक पूव से पश्चिम तथा एक बडी सडक उत्तर से दक्षिण को जाती थी । इसलिए ╪ प्रतीक बना जो नगर का प्रतीक था । उसी से स्वस्तिक प्रतीक निकला । डा० सम्पूर्णानद का कहना है कि हमारे शरीर के भीतर जो मूल कमल है उसका रूप + है । अतएव यह परम कल्याण वाचक प्रतीक हुआ । इसी का रूपातर स्वस्तिक है जो परम कल्याण वाचक प्रतीक है । इस सिद्धात से + क्रास का बडा व्यापक अथ हो गया । क्रास से तथा कामवासना से कोई सम्बध ही नही रहा ।

+ से ही त्रिशूल † प्रतीक भी बन सकता है या बना होगा। परम योगिराज शकर के हाथ म परम कल्याणकारक † प्रतीक रहता है। किन्तु त्रिशूल की इतनी सरल व्याख्या नही है। प० रामचन्द्र शास्त्री वझे का कहना है कि शिवजी के स्वरूप मे 'त्रि का अत्यन्त महत्त्व है। शकर के त्र्यम्बक' (त्र्यम्बक यजामहे) नाम से ही यह बात स्पष्ट है। शकर में तोन तत्त्व सन्निहित ह—शान्ति, वराग्य तथा बोध (ज्ञान)। इन तीनो तत्त्वो का प्रतीक त्रिशूल है। ऐतिहासिक दृष्टि से त्रिशूल अनादि है। जब शिवतत्त्व साकार हुआ उसके साथ ही त्रिशूल भी साकार हो गया। पौराणिक दृष्टि से इस अस्त्र से त्रिपुरासुर का वध शकर ने किया था इसी लिए त्रिशूल का महत्त्व हो गया।

> शान्तिवराग्यबोधाख्यस्त्रिभिरग्रस्तरस्त्रिभि।
> त्रिगण त्रिपुर हन्ति त्रिशूलन त्रिलोचन॥

प० बरकनाथ शास्त्री खिस्ते की व्याख्या अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। उनके मतानुसार प्रागतिहासिक काल से त्रिशूल भारतीय सभ्यता म चला आया है। 'नकुलीश पाशपत आदि सम्प्रदायो में प्राप्त मत्ति या मूर्त्ति के ध्यानो मे लगुड या डण्डा भी है। सम्भवत यह लगड ही त्रिशूल का पूर्वरूप रहा होगा या रूपान्तर होगा।

त्रिशूल कुण्डलिनी तत्त्व का परिचायक भी है। शरीर के भीतर इडा पिंगला तथा सुषुम्ना—तीन मुख्य नाडिया ह, जो मूलाधार लिंग को भी लपट हुए हैं। इस तीन—त्रि—सख्या का परिचायक भी त्रिशूल है। योगिराज शकर ने कुण्डलिनी का वश म कर रखा है। अतएव उनके हाथ मे त्रिशूल है।[१]

तत्रशास्त्र मे शव आगमा मे त्रिशूल पर काफी प्रकाश डाला गया है। काश्मीरीय शवागम या अद्वतप्रधान भरवागमो मे देवताओ के यत्र त्रिशूलात्मक पाय जाते हैं। त्रिशूलात्मक यत्र का ही बोध—

'शूलाब्जमण्डलम्'

ऐसे वाक्या से होता है। तत्र में त्रिशूल से तात्पय है—परा अपरा तथा परापरा शक्तियाँ। देवी के हाथ म त्रिशूल इन तीन आदि शक्तियो का बोध कराता है। परा अपरा शक्ति पर हम तत्र सम्बन्धी अपने अध्याय मे विवेचन कर चके हैं।

अन्य आगमो में (शक्ति प्रधान तत्रशास्त्र मे) शिव से उद्भूत तीन प्रधान शक्तियाँ बतलायी गयी है—इच्छा ज्ञान तथा क्रिया। इन तीनो को त्रिशूल मे स्थान दिया गया

१ "गुरु-तत्त्वाधिष्ठाता" शिव की कृपा से ही कुण्डलिनी की तीनों शक्तियाँ विकसित होकर साधक को पूर्ण शिवतत्त्व प्राप्त कराती हैं। इसलिए शिव के हाथ में त्रिशूल है।—लेखक

है। इन तीनो शक्तियो को शकर या दुर्गा या काली या पावती अपने हाथ मे धारण किये हुए ह। मानव-जीवन का समूचा खिलवाड इन्ही तीनो शक्तियो के भीतर केन्द्रीभूत है–इच्छा ज्ञान् तथा क्रिया। शरीर रचना विज्ञान के अनुसार मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) के ऊपरी हिस्से को सूक्ष्म रूप से तीन विभागो म बँटा हुआ देखा जा सकता है। शरीर के भीतर यही त्रिशूल है। बनर्जी ने अपनी पुस्तक म[१] त्रिशूल की जो विद्वत्तापूण व्याख्या की है,वह भी उपरिलिखित व्याख्या मे आ जाती है। कुछ लोग कहते ह कि वात पित्त कफ, ये तीन शूल हो मनुष्य की शारीरिक याधियो के कारण ह। देवो ने त्रिशूल धारण कर मनुष्य को निभय करने का आश्वासन दिया है। कुछ लोगो ने ज म मृत्यु पुनज म के पीडाजनक चक्र के द्योतक को त्रिशूल कहा है। कुछ लोग काम क्रोध लोभ को त्रिशूल कहते है। कि तु इन सब याख्याओ मे श्रेष्ठ परिभाषा कुण्डलिनी रूपी त्रिशूल है। जीवन का समूचा सार इसी मे है। शकर ने जो कुछ किया है, मानव के कल्याण के लिए। उसका परम कल्याण मोक्ष पाना है। इच्छा ज्ञान तथा क्रिया के द्वारा इडा पिगला और सुषुम्ना को जाग्रत कर स्वयभू लिंग मे समाविष्ट कर अपनी आत्मा में लीन हो जाना ही मोक्ष है।

त्रिशूल इसी का प्रतीक है। क्रास इसी का रूपा तर है। स्वस्तिक तथा त्रिशूल में मौलिक भेद है। उस भेद को पहचानने के लिए हमारा अगला अध्याय पढना चाहिए। किसी एक वस्तु को देखकर उसका अथ स्पष्टत समझ म आ जाना निश्चित नही है। एडवड सैपिर न लिखा है कि कुछ अधिक निकटवर्ती यानी घनिष्ठ तथा प्रकट आचरण और वास्तविक आचरण के बीच के छिपे आचरण को यक्त करनेवाली चीज़ का नाम प्रतीक है। इसका स्पष्ट अथ यह है कि सभी प्रतीको का जो वास्तविक प्रतिपादन तथा भाव होता है वह केवल उस सम्ब ध मे प्रकट अनुभव से नही ग्रहण किया जा सकता। प्रतीको के सम्ब ध में दूसरी मार्के की बात यह है कि उन्हे देखकर प्रकट मे जो तात्पय या अर्थ उनसे हम निकाल लते ह उससे कही अधिक भिन्न तथा विस्तृत उनका अथ होता है। प्रतीक की बडी यापक शक्ति को सकलित कर सक्षिप्त रूप दे दिया जाता है।[२]

त्रिशूल को समझने के लिए आध्यात्मिक अध्ययन आवश्यक है।

डा० रोअर ने त्रिशूल की बडी अच्छी याख्या की है। वे वदिक मत्र का उद्धरण देते ह—

१ Hindu Iconography–pase 387

२ Edward Sapir—Article in Encyclopaedia of the Social Sciences–'Symbolism"—page 493.

तदेतदक्षरं सत्यमिति स इत्येकमक्षर तित्येक
मक्षरं यमित्येकमक्षरम्

स तथा य का अर्थ है सत्य । बीच के त् का अर्थ है अनत, यानी झूठ । † त्रिशूल में दोनो तरफ सत्य के बीच में असत्य है, जिससे सदैव सतर्क तथा सावधान रहना चाहिए ।[१]

ऊपर हम यह लिख चुके है कि शिव के साथ त्रि का--तीन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य के जीवन म भी तीन अवस्थाएँ होती है--सुषुप्त (सोया हुआ), तन्द्रा (न सोया-न जागा) तथा (जाग्रत् जागती हुई स्थिति)। बाहर का ज्ञान जाग्रत अवस्था में ही होता है। उसी को बहिष्प्रज्ञ --- जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञो कहते ह । मनुष्य की सुप्तावस्था में भी क्रियाएँ होती रहती ह । सुप्तावस्था मे ही उसे इच्छा भी होती है या हो सकती है । ज्ञान भी होता है या हो सकता है। किन्तु जाग्रति पर ही क्रिया होगी । सोन की दशा म भी लोग हाथ पर चला लेते हैं पर वह निष्परिणाम होता है । असली चीज क्रिया है, जो ज्ञान तथा इच्छा को कायरूप मे परिणत करती है । त्रिशूल में एक तरफ इच्छारूपी शूल (बाधा) है तथा दूसरी तरफ ज्ञानरूपी शूल (यानी बाधा) । बीच मे क्रिया है, जो दोनो का परिणाम है । मोक्ष के लिए इच्छा ज्ञान तथा क्रिया, तीनो को लय कर देना होगा । ज्ञान भी असल मे बन्धन का कारण हो सकता है । ज्ञान से ही अज्ञान उत्पन्न होता है जो बन्धन का कारण हो जाता है तथा जिससे मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती ।

अज्ञानन विना बधमोक्षो नब व्यवस्थया ।।[२]

हमारे जीवन मे जो कुछ है वह तीन चीजो में बधा हुआ है । यदि इन तीनो को अपनी मुटठी म कर ल तो ससार का कोई बधन ही नही रह सकता--

सकलान्तास्तु तास्तिस्र
इच्छाज्ञानक्रिया यत ।
सप्तधस्थ प्रमातृत्व
तत्क्षोभो मानता तथा ।।[३]

यहाँ पर क्षोभ शब्द का अथ है आशका या दुख' । मान का अथ है शक्ति । जब तक आशका रहेगी शक्ति नही प्राप्त होगी । शक्ति प्राप्त करने के लिए तथा आशका

१ Dr E Roer—The Twelve Principles of Upanishads—Vol II—(1931) page 389

२ अभिनव गुप्तपाद का "तन्त्रालोक," प्रकाशक--कश्मीरराज्य, १९२५--भाग ८, आह्निक १२ श्लोक ४१ ।

३ वही, भाग ७, आह्निक १०, श्लोक १८१ ।

को दूर करने के लिए मनुष्य को गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए त्रिशूल में एक तरफ क्षोभ है दूसरी तरफ मान यानी शक्ति। इन दोनो के बीच मे दीक्षा विराजमान है।

तन्त्रशास्त्र में क्षोभ शब्द की बडी भारी मर्यादा है। यह शरीर यह सष्टि, सब कुछ एक बीज से ही तो हुआ है। जड बीज में क्षोभत्व से सृष्टि की या मनुष्य की उत्पत्ति हुई। उस क्षोभ का आधार थी योनि। मयूराण्डरसन्यायेन[1] यानी जिस प्रकार मयूर (मोर) के अण्डे म केवल रस रहता है पर उसम मयूर के सुन्दर रग बिरगे पख आदि सभी वर्तमान रहते ह--उसी प्रकार बीज में सब कुछ अन्तर्निहित है। पुरुष के बीज मे, जिसे स्त्री की योनि धारण करती है गुण कम स्वभाव ये तीनो वतमान ह। लिखा है--

प्रक्षोभकत्व बीजत्व
क्षोभाधारश्च योनिता।
क्षोभक संविदो रूप
क्षुभ्यति क्षोभयत्यपि ।।[2]

गुण कम स्वभाव का क्षोभ त्रिशूल के रूप में वतमान है जिसके आवरण मे मनुष्य फँसा हुआ है। बीज क्षोभ है। योनि क्षोभ्य है। क्षोभ तथा क्षोभ्य को क्षुभित करनेवाला, यानी क्षोभक ही वह परम शिव है। इनके रहस्य को तन्त्रालोक मे प्रतिपादित किया गया है--

क्षोभ्यक्षोभकभावस्य
सतत्व र्दाशत मया।
श्रीमन्महेश्वरेणोक्त
गुरुणा यत्प्रसादत ।। २-३-६०

बीज की व्याख्या करते हुए लिखा है वणचतुष्टयम्। बीज से ही अक्षर तथा शब्द की उत्पत्ति हुई है। अकाराकारौ --अकार इत्यादि--का इकारोकाराभ्या -- इकार आदि से सधि शब्द तथा मातकाए बनी। इस सधि से ही त्रिकोण बना।

१ वही, भाग २, पृष्ठ ९३। २ वही, भाग २ आह्निक ३, श्लोक ८२।

इस त्रिकोण के बीच में बीज है—

अनुत्तरानन्दचित्ती
इच्छाशक्तौ नियोजिते ।। २-३-९४
त्रिकोणमिति तत्प्राहु-
विसर्गामोदसुन्दरम ।। (९५ का अर्द्धांश)

अक्षरो के योग में जो विसग होता है, उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है— विसग परा शक्ति । तस्या आमोद —आनन्दोदयक्रमेण क्रियाशक्तिपर्यन्तमुल्लास [१] उस परा शक्ति का आन द तथा उल्लास ही विसग है । स धि ही विसग है । अक्षर अनादि ह । बीज से प्रादुभूत है । इस सम्ब ध में हम पिछले अध्यायो मे काफी विवेचन कर चुके ह । अकार इकार तथा सधि से जो त्रिकोण बनता है वही बीज को धारण करनेवाली योनि है क्षोभ्य है । बीच के बिन्दु है । इस त्रिकोण की व्याख्या करते हुए राजानक जयरथ लिखते है कि त्रिकोण को ही भग कहते ह जिसमें गुप्त मण्डल स्थित है । इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया से त्रिकोण बनता है और उसके बीच मे बि दु है बीज है ।

त्रिकोण भगमित्युक्त वियत्स्थ गुप्तमण्डलम् ।[२]
इच्छा ज्ञान, क्रियाकोण त मध्ये चिञ्चिनी क्रमम ।।

इच्छा ज्ञान तथा क्रिया इन तीनो को ही जीतना मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य है । लिखा है—

शक्तिमाञ्जयते यस्मान्न
शक्तिर्जातु केनचित ।
इच्छा ज्ञान क्रिया चेति
यत्पथक पथक जयेत ।।[३]

इ ही तीनो को, जिनको मनुष्य को शक्ति की कृपा से भगवती की कृपा से, पृथक्-पृथक जीतना है तन्त्रालोक मे त्रिशूल कहा गया है—

त्रिशूलत्वमत प्राह
शास्ता श्री पूर्वशासने ।
निरञ्जनमिद प्रोक्त
गुरुभिस्तत्त्वदर्शिभि ।।[३]

१ वही, भाग २, पृष्ठ १०४ । २ वही भाग २, पृष्ठ १०४ ।
३ वही, भाग २, आह्निक ३, श्लोक १०६ ।

गुरु द्वारा तत्त्व दर्शन से भगवती की कृपा से इस त्रिशूल को अपने वश में करके ही मनुष्य अलख निरञ्जन बन जाता है।

इच्छा कामो विष ज्ञान
क्रिया देवो निरञ्जनम ।।१७२
एतत्त्रयसमावेश
शिवो भैरव उच्यते ।[१]

इच्छा ज्ञान क्रिया—इस त्रिशूल का समावेश शिव मे है। उन्हे भरव कहते ह। 'विश्वमयत्वेन पूर्णत्वात अतएव तदेव ब्रह्म परम'[२]— शिव विश्वमय है। शिव 'पूर्णत्व प्राप्त है। शिव ही परम ब्रह्म है।

यह भरव त्रितय है[३] —पर विश्वापूरक शाक्त तेज प्राहु —इसी लिए भरव के हाथ म त्रिशूल है। चूँकि गुरुकृपा से ही इच्छा ज्ञान, क्रिया पर विजय प्राप्त हो सकती है तथा तत्त्वज्ञान हो मकता है आदि गुरु शिव हा है उनके हाथ म त्रिशूल है। आदि गुरु शिव के वश म यह तीन आदि तत्त्व ह इसी लिए वे आदि गुर ह।

इत्युक्ते परमेशाया
जगादादिगुरु शिव ।
शिवादितत्त्व त्रितय
तदागमवशादगरो ।।[४]

कि तु तीन आदि तत्त्व—इच्छा ज्ञान क्रिया पर विजय प्राप्त करने के लिए भी तीन ही सहारे ह—

किरणायां तथोक्त च
गुरुत शास्त्रत स्वत ।।[५]

गुरु के द्वारा शास्त्र के द्वारा तथा स्वय अपन द्वारा ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। त्रिशूल ही हमको गुरुत शास्त्रत स्वत की शिक्षा देता है। मनुष्य की समस्याओ का एक बडा कारण यह है कि उसके मन तथा बुद्धि म भेद चलता रहता है। प्रभु की कृपा से शक्ति से यदि विवेक उत्पन्न हो जाय तो फिर भद भी मिट जाता है। अत त्रिशूल मे एक ओर मन तथा दूसरी ओर बुद्धि है। बीच में विवेक बठा हुआ है। विवेक इन दोनो को मिलाकर हमारे भीतर की उथल पुथल समाप्त कर देता है।

१ वही, भाग २, आ ३, श्लो० १०५।
२ वही, पृष्ठ १७२।
३ वही पृष्ठ १७२।
४ वही, पृष्ठ १८७।
५ वही, भाग ८, आ० १३, श्लो० १७३।

मनोबुद्धी न मिले तु
कस्मिश्चित्कारणान्तरे ।
विवेके कारणे ह्येते
प्रभुशक्तिपबृंहित ।।[1]

किन्तु ऐसी शक्ति बिना गुरु की दीक्षा के नही प्राप्त हो सकती । जिसने दीक्षा प्राप्त की, उसी को कवल्य प्राप्त होता है । गुरु के सहारे से ही, शिव की कृपा से ही इन तीनों तत्त्वो पर विजय हो सकती है ।

केवलस्य ध्रुव मुक्ति
परतत्त्वेन सा ननु ।
नृशक्ति शिवमुक्त हि
तत्त्वत्रयमिद त्वया ।।[2]

हमने ऊपर ही लिखा है कि सब कुछ मूलत बीज से ही प्रारम्भ हुआ । बीज से ही सष्टि हुई—पहले अकुर फिर पल्लव फिर पुष्प या फल । शिव बीजरूप है । उनके हाथ में त्रिशूल है—अकुर पल्लव पुष्प । उस बीज का ठीक से सिंचन करने से ही उसमें अकुर निकलेगे पत्ते निकलेगे तथा फल फूल की प्राप्ति होगी । इसलिए आदि गुरु शिव, भग्व शिव का आराधन करे तांत्रिक बीज मत्र का जप करे तब जाकर त्रिशूल की यानी अकुर पल्लव पुष्प की प्राप्ति होगी—

यथोक्त कालतो ह बीज
तत्सुसिक्तमथक्रमात ।
अकुर पल्लवराद्यां
तत्पुष्पादिफलान्वितम् ।।[3]

शिव की व्याख्या करते हुए आचाराध्याय मे याज्ञवल्क्य ने लिखा है—

शिव शान्त शाम्बरूप ।

शिव शान्त शाम्ब भी तो त्रिशूल बन गया । शाम्ब का अथ है माता सहित यानी परम शिव तथा परा शक्ति का सम्मिलित प्रतीक शिव है ।

त्रिशूल की व्याख्या करते समय हमने सृष्टि का कारणभूत बीज बतलाया है । बीज ही नाद है । स्वर है । अक्षर है । सष्टि के आदि में शब्द था । शब्द से सृष्टि हुई । इसी लिए परा शक्ति का आवाहन भी बीज मत्र से होता है ।

१ वही, ८, १३, १९० । २ वही, ८, १३, १७० । ३ वही, पृष्ठ ११२ ।

बीजयोनिसमापत्ति
विसर्गोदयसुन्दरा
मालिनी हि परा शक्ति
निर्मिता विश्वरूपिणी ।। त० २-३-२३३

बीज से नाद उत्पन्न हुआ । उसके तीन भाग हो गये--इस प्रकार अक्षर बने वर्ण बने । वे तीन भाग थे--पश्यन्ती मध्यमा तथा वखरी ।

विभागाभासन चास्य
त्रिधा वपुरुदाहृतम ।
पश्यन्ती मध्यमा स्थूला
बखरीत्यभिशब्दितम् ।। त० २-३-२३६

इन तीना के स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से तीन रूप हो गये । स्वर सन्दर्भ से वर्ण आदि म विभक्त हो गय ।

तासामपि त्रिधा रूप
स्थूलसूक्ष्मपरत्वत ।
तत्र या स्वरसन्दर्भ
सुभगा नादरूपिणी ।।२३६

शिव के हाथ म त्रिशूल है--पश्यन्ती मध्यमा तथा बखरी है समूचा नाद ब्रह्म है । इमके अतिरिक्त तीन और महत्त्व की वस्तुएँ ह--उत्पादक शक्ति पालक शक्ति तथा सहारक शक्ति । ब्रह्मा विष्णु तथा महेश । शिव के हाथ में ये तीनो शक्तियाँ ह । समार में तीन विकार है--सात्त्विक राजसिक तामसिक । इनमे सात्त्विक श्रेष्ठ है । इन तीना विकारा का द्योतक त्रिशूल है । जो देवता त्रिशूल धारण किये हुए ह वे हमको इन तीनो से ऊपर उठाकर मोक्ष दिलायेगे । ससार में तीन शूल ह विपत्तियाँ है--कायिक वाचिक तथा मानसिक--शरीर से वचन से तथा मन से । शिव ने त्रिशूल को ग्रहण किया है--हमारी तीनो बाधाएँ दूर करगे । ब्रह्म का बोधक ॐकार भी तीन अक्षरो का है--अ, उ म् । जैनियो के एक ग्रन्थ मे तीन बाधाएँ लिखी है--[1]आध्यात्मिक आधिदविक तथा आधिभौतिक । ये तीन शूल ह ।

१ त्रिशूल पर Bannerjea— Hindu Iconography"—पृष्ठ ११५ भी देखिए ।

स्वस्तिक

त्रिशूल का वास्तविक अर्थ जिस रूप में हमने समझाया है उससे यह स्पष्ट है कि पाश्चात्यो ने उस प्रतीक को समझने में कितनी गहरी भूल की है तथा त्रिशूल को कामुक प्रतीक मानकर कितना बडा अन्याय किया है। क्रास प्रतीक के सम्बन्ध में भी पाश्चात्य विद्वानो ने वही भूल की है तथा उसकी पवित्रता को अनायास नष्ट करने का प्रयास किया है। बहुत से विद्वानो ने क्रास त्रिशूल तथा स्वस्तिक को एक ही आधार का प्रतीक माना है तथा उसमे समानता-सी सिद्ध की है। किन्तु यह कितना बडा भ्रम है यह इसी अध्याय म स्पष्ट हो जायेगा।

श्रीमती मरे ऐसले ने अपनी पुस्तक में स्वस्तिक प्रतीक पर एक अध्याय ही लिखा है। जार्ज वडउड ने यूनानी क्रास को बौद्धों के धम चक्र (पहिया) को तथा स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक माना है।[1] उनका कहना है कि यह अत्यधिक पुराना प्रतीक है। डॉ० विल्सन ने अपनी रिपोट मे स्वस्तिक की बडी भ्रमपूर्ण व्याख्या की है।[2] प्राचीन वदिक काल मे अरणी म एक लकडी में गोल सूराख कर उसमें लकडी लगाकर इतनी जोर से रगडते थे कि अग्नि उत्पन्न हो जाती थी। अग्नि उत्पन्न करने का यही तरीका था। वदिक यज्ञा में इस सम्बन्ध में अग्नि के उत्पन्न करने का पूरा कमकाण्ड है।[3] चूंकि अरणी के दोनो तरफ लकडियाँ लगाकर अग्नि का मथन होता है अतएव स्वस्तिक उसी क्रिया का प्रतीक है। आदिकालीन लोगो के लिए अग्नि का इतना बडा महत्त्व था कि वे उसको प्रज्वलित करने की क्रिया को इतनी मर्यादा दे बठे। डा० विल्सन के इस विचार की पुष्टि मे श्रीमती मरे ने टाइलर की एक पुस्तक[4] का हवाला दिया है कि एस्किमो लोग भी इसी क्रिया से आग पदा करते है। उनका तात्पय यह है कि आग पैदा करने की यह प्रथा इतनी प्राचीन है कि यूरोप एशिया हर जगह वतमान थी। अतएव स्वस्तिक प्रतीक का इसी

१ Symbolism of the East and West-page XVIII

२ Dr Thomas Wilson – 'Report of the U S National Museum for 1894–pages 757–1011

३ यज्ञों में, वैदिक अनुशासन के अनुसार आग पैदा करने के लिए अस्वत्थ (पीपल) तथा शमी की लकडी श्रेष्ठ समझी जाती है।

४ Tylor—Early History of Mankind

प्रथा से प्रारम्भ होना कोई आश्चय की बात नही है । किन्तु क्या अग्नि सञ्चार की क्रिया क कारण ही विश्वव्यापी बौद्ध अरब के मुसलिम[१] तथा चीन जापान के लाग इस प्रतीक का प्रयाग करते ह ? क्या स्वडन नार्वे के इन्द्र के समान थार देवता का प्रतीक भी यह इसी लिए बना था ? तिब्बत के लामाओ के निवासस्थान तथा मन्दिरो मे स्वस्तिक बना है । हिन्देशिया जावा सुमात्रा कम्बाज देश (कम्बोडिया), चीन जापान मेक्सिको तक म स्वस्तिक वतमान है । जनी लोग सातव तीथकर सुपाश्वनाथ का प्रतीक

卐 मानते ह ।

पर श्रीमती मरे का ध्यान अग्नि की ओर ही गया । उनका कथन है कि प्राचीन यूनानी तथा रोमन भी इसी प्रकार आग पदा करते थे । ईरानी लोग आग के परम पुजारी थ । पारसी धम म अग्नि को पिता माना गया है । पारसी स्त्रियो को बत्ती बुझान या प्रकाश बुझाने का अनुमति नही है । हिन्दू भी अग्नि पूजक ह । अतएव स्वस्तिक भी आग पदा करने की क्रिया का प्रतीक है । मिस्र में भी स्वस्तिक प्रतीक काफी मिलता है । श्रीमती मरे के कथनानुसार स्पन म स्वस्तिक को भारत क हिन्दुओ ने पहुचाया ।[२] तो फिर यह क्या न मान ल कि मिस्र रोम यूनान ईरान सब जगह यह प्रतीक भारतवष से पहुचा हागा । सस्कृत भाषा के पश्चिमी विद्वान् प्रो० मक्समूलर ने डा० श्लीमन का एक पत्र म लिखा था कि "इटली क हर काने मे—मिलन राम पाम्पियाई मे स्काडलण्ड क नारफक नगर म हगरी म यूनान मे चीन म हर जगह स्वस्तिक पाया जाता है । मक्समूलर न एक दूसरे पत्र म लिखा था कि स्वर्गीय ई० टामस[३] की यह खाज सही है कि स्वस्तिक गतिशील सूय का प्रतीक है । सूय के रथ के पहिये जिनम धुरिया बनी हुई ह उनका प्रतीक स्वस्तिक है । उसी पत्र मे मक्समूलर साहब लिखते ह कि पर्सी गाडनर[४] की यह खाज भी सही है कि प्राचीन काल का यूनानी नगर मेसोम्ब्रिया (इस शब्द का अथ हुआ मध्याह्न का नगर) में जिस प्रकार से प्राप्त सिक्का पर लिखा हुआ है वह निश्चित रूप मे यूनानी लिपि म स्वस्तिक का बाध कराता है—

ΜΕΣ 卐

१ कश्मीर से कुछ मील दूरी पर एक मस्जिद पर स्वस्तिक बना हुआ है ।
२ Symbolism of the East & West—page 50
३ E Thomas— Numismatic Chronicle '—1860—Vol XX-p 18-43
४ Percy Gardner— Athenaeum' Aug 13 1892

निश्चयत यह स्वस्तिक है । अनेक रूपो म स्वस्तिक हर देश मे प्रचलित था तथा

उसका निरन्तर उपयोग होता था । इगलण्ड मे इसका सकडो वष पूर्व रूप था

डे माक नार्वे स्वेडन हर एक देश मे प्राप्त स्वस्तिक प्रतीक का रूप भिन्न होता गया ।

स्वेडन मे तो उसका रूप था ꩜ । ईसाई गिर्जाघरो में भी स्वस्तिक का प्रयोग

होता था यह हम कई स्थानो पर लिख चुके ह और इसका उल्लेख आग भी करते रहेंग । कि तु ईसाई स्वस्तिक मे जिसे आय प्रतीक मानकर हिटलर ने अपन नाजी दल का प्रतीक बनाया था उसमें तथा भारतीय बौद्ध जन प्रतीक में बडा भारी अ तर यह है कि भारतीय स्वस्तिक दाये से बायें चलता है और ईसाई स्वस्तिक बाये से दाये । भारतीय प्रतीक पूव से (दाय) चलता है । इस सम्ब ध में यूरोपीय विद्वानो ने अनेक कारण बतलाये ह । कश्मीर को एक मस्जिद पर जो स्वस्तिक है—यह मस्जिद जहाँगीर के शासनकाल म (सन १६०५ से १६२८) म बनी थी—वह हि दू स्वस्तिक के समान है । यारक द आदि मे जो स्वस्तिक प्राप्त हुए हैं वे चीनी स्वस्तिक के समान है जो काफी मोटी प क्तियो मे ह पर

भारतीय स्वस्तिक की तरह दाये से बाये ह । । स्वेडन में प्राप्त

स्वस्तिक क्रास के रूप म ह । उनके चारा ओर गोलाई बनी है ।

मेजर आर० सी० टेम्बुल ने बाये दाय के भेद को कोई महत्त्व नही दिया है । वे बौद्ध स्वस्तिका तथा उनके साथ प्राप्त पाली शिलालेखो का उल्लेख करते हुए[1] लिखते है

कि कोल्हापुर मे प्राप्त पाली शिलालेख तथा उसके नीचे बने हुए स्वस्तिक 卐

से स्पष्ट है कि हमेशा एक प्रकार से स्वस्तिक नही बनते थे । जसा चाहा बना

[1] Inscriptions from the Cave Temples of Western India Bombay 1881

लिया।[१] बीच का क्रास + होना चाहिए। कुडा मे प्राप्त बौद्ध स्वस्तिक बायें से दाय है।

किन्तु आज भी भारतवष मे बहुत से लोग अज्ञान तथा भ्रमवश बायें से दायें स्वस्तिक बनाते हैं। श्रीमती मरे ने इगलण्ड नार्वे कश्मीर नेपाल आदि के प्राचीन मकानो के चित्र देकर यह साबित करने का प्रयास किया है कि पुरान जमाने मे मकान भी एक ही तरह के बनते थे।[२] यानी प्राचीन कला की भावना तथा रूप रेखा भी एक ही प्रकार की थी। इस कथन से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि प्रतीक के सम्बन्ध म भी हमने ससार को जो उपदेश या कला प्रदान की थी वह एक ही प्रकार की थी पर समय तथा देशो म पहुचते या अपनाते उसका रूपान्तर होता गया। स्वस्तिक प्रतीक की गति तथा प्रगति का भी यही इतिहास है।

पश्चिमी लखक कटनर तथा जी० मार न स्वस्तिक के सम्बन्ध मे जो मत व्यक्त किया है उसका हम त्राम के परिचय क साथ उल्लेख कर आये ह। कि तु यह कितना मूख विश्वास है यह धीर धीरे स्पष्ट होता जा रहा है। त्रिशल के परिचय के साथ हमने नाद ब्रह्म का शब्द-ब्रह्म का यानी आदिकाल म बीज से उत्पन्न नाद का जिक्र किया है। उसी म अक्षर तथा वणमाला बनी मातका की उत्पत्ति हुई। नाद से पश्यन्ती मध्यमा तथा वखरी य तीन उत्पन्न हुए। इनक भी स्थूल तथा सूक्ष्म दो भाग थ। इस प्रकार नाद सष्टि के ३ × २ = ६ रूप हो गय। तन्त्रालोक में आचाय अभिनव गुप्त ने लिखा है–

> पथक्पृथक्तत्त्रितय
>
> सूक्ष्ममित्यभिशब्द्यते।
>
> षडज करोमि मधर
>
> वादयामि ब्रुवे वच ॥ २–३–२४६।

यही छ पक्तियाँ स्वस्तिक म ह 卐, अत स्वस्तिक समूचे नाद ब्रह्म तथा सष्टि का प्रतीक है। वखरी वाणी दो भागो म विभक्त है—स्वर तथा व्यञ्जन।

> इत्थ यद्वणजात तु
>
> सव स्वरमय पुरा ॥२–३–१८१।
>
> व्यक्तियोगाद्व्यञ्जन तत
>
> स्वरप्राण यत किल ॥ १८२ का अर्द्धांश

१ Symbolism of the East & West–page 62—Major R C Temple s Note

२ वही, पृष्ठ १८०—८४।

मुख्य स्वर छ हैं—अ, आ, इ ई उ ऊ शेष इनसे ही बनते हैं। ये छ स्वर ही षड देवता हैं। सूय की छ मुख्य रश्मियाँ ह किरणे ह—

स्वराणां षटकमेवेह
मूल स्याद्वर्णसततौ ।।२–३–१८४ ।
षड देवतास्तु ताएव
य मुख्या सूर्यरश्मय ।। (१८५ का अर्द्धांश ।)

सूर्य की छ मुख्य रश्मियो को षडदेवतात्मक सूयरश्मित्वम षड देवता माना है। इन मुख्य किरणा के नाम ह—

दहनी, पचनी, धूम्रा, कर्षिणी, वर्षिणी, रसा।

(आकषण करनेवाली जलानेवाली वर्षा करनेवाली, रस देनेवाली इत्यादि।)

स्वर के ये छ मुख्य गुण सृष्टि के मूल कारण ह। प्रकाश रूप मे दाहक–जलाने की अपनी शक्ति के कारण ये सूय की रश्मिया ह।

षडवेह स्वरा मुख्या कथिता मूलकारणम ।
ते च प्रकाशरूपत्वाद्विश्रया सूयरश्मय ।।[१]

सूय की ये छ रश्मियाँ ही स्वस्तिक ह। सूय पूव से पश्चिम की ओर जाता प्रतीत हाता है। सूर्योदय हमारे दश में पूव की ओर होता है। इसलिए प्राचीन आय-स्वस्तिक भी दाय से बाये की ओर बनता था और अब भी बनता है। किन्तु हर एक प्राचीन चीज के अथ का गहराई म जाने पर ही पता चलेगा।

उदाहरण के लिए यदि काई इस बात की हँसी उडाना चाहे कि हिन्दू लोग अर्थात् सनातनी हिन्दू अर्घा से देवता तथा पितरो को जल क्यो देते ह? थाली से या लोटे से या आचमनी से भी जल गिराया जा सकता है। कटनर ने अर्घा को स्त्री-योनि का प्रतीक माना है। अतएव उनके ऐसे विचारको के लिए उपहास की बात हो सकती है। पर हम निरथक उपहासी की उपेक्षा ही न करें असली अथ भी लोगो को बतलावें। अर्घा का अथ है बुद्धि। हम बुद्धि में पूजा करते ह। बुद्धि मे आवाहन करते ह। अघ्यते पूज्यते अस्मिन् इति अघ्यम। विष्णु का सूक्ष्म रूप मन है। विष्णुर्ज्योति कल्पयितु। अर्घा मे विष्णु का वास है। यानी वह मन है। पूजन-तपण सब मन के द्वारा होता है। अतएव अर्घा मन तथा बुद्धि का प्रतीक है।

१ तन्त्रालोक—टीकाकार का—पृष्ठ १८°।

स्विटजरलैण्ड म प्राप्त राशिमडलयुक्त शिवलिंग

सूय के साथ प्राचीन प्रतीकों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। फॉब्रिज ने मिस्र, बबीलोन तथा असीरिया के विशाल मन्दिरों म प्राप्त वषभ को सूय का प्रतीक माना है। बबीलोन मे काँसा धातु के वृषभ तथा सप पाये जाते ह। वहाँ १२ वषभ एक स्थान पर बठे हुए ह जो सूय की १२ राशियो के द्योतक ह।[1] सूय स सम्बद्ध स्व स्तिकमण्डल कितना अधिक है यह नीचे की पक्तियो से प्रकट होगा। पर वषभ तथा सूय का सम्बन्ध मिलाना सही है या नही इस पर हम वषभ अध्याय म काफी प्रकाश डाल चुके ह।
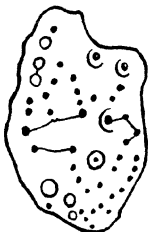
पौराणिक तथा वतमान वैज्ञानिक विश्वास क अनसार भी पृथ्वी सूय से ६ कराड ८० लाख मील की दूरी पर है।[2] सूयमण्डल स्वय ५२ हजार मील के घने अग्नि समद्र का गोला है। इस अग्निपिण्ड की सात तह ह जिनमे सात रग की सात विद्यत अग्नियाँ ह। सूयमण्डल के चारा ओर चार विद्युतकेन्द्र ह। वेदो मे इनका कल्याणवाची स्वस्तिक मण्डल कहा गया है--

पथ्या स्वस्ति पन्या अन्तरिक्ष तन्निवासात्।
(यास्कीय निरुक्त अ० ११ खड ४५)

सूयमण्डल का प्रतीक कल्याणवाची स्वस्तिक मण्डल है इसमे सदेह नही रहना चाहिए यद्यपि इसकी अनक आध्यात्मिक व्याख्याएँ भी ह। डा० सम्पूर्णानन्द का सिद्धा त हम ऊपर दे आय ह कि शरीर के भीतर कमल का आकार + है। अतएव परम कल्याणवाचक स्वस्तिक हमारे लिए यौगिक अथ रखता है। वणमाला मे हर एक अक्षर का अपना निजी

१ Encyclopaedia of Religion and Ethics—Article on Semitic Symbol " By Maurile H Faubridge—page 147

२ चन्द्रमा की औसत दूरी पृथ्वी मे १,३८,८४० मील बतलायी जाती है।

अर्थ होता है। क का अर्थ है सुख स्वस्ति। क का अर्थ ब्रह्मा भी है। सम्राट अशोक के शासन के समय के प्राप्त शिलालेखो मे क को + लिखते थे। यह अक्षर स्वस्ति-वाचक भी था। अतएव इसी का सजाकर स्वस्तिक बना दिया गया 卐।

स्वस्तिक चतुदल कमल का सूचक माना गया है। अतएव यह गणपति का निवास-स्थान भी है। गणपति के बीजाक्षर ग (ग) का चतुरस्र मण्डल ही स्वस्तिकाकार होने से सवदा मगलप्रद माना गया है। हर एक काय में बाधाओ को दूर कर कल्याण का आवाहन किया जाता है। स्वस्तिक हर मगल-काय मे हर स्थान पर कल्याण का पहरेदार है।

लाक परलोक (आत्म जगत्) तथा स्वग लोक के दाता शिव हैं। इसी से उनके हाथ म त्रिशूल है। वे त्रिकालदर्शी ह—भूत वतमान तथा भविष्य को जानते ह तथा उनको कृपा से ही ये तीना समय हर एक के जीवन मे सुधरते तथा बनते ह। अतएव त्रिशूल इन तीना समया का द्योतक प्रतीक है। शिव ही त्रिमूर्त्ति है—उत्पादक शक्ति ब्रह्मा पालक शक्ति विष्णु सहारक शक्ति शकर। उत्पत्ति पालन तथा नाश की तीनो अवस्थाआ का प्रतीक त्रिशल है। शकर की कृपा से ये तीनो अवस्थाएँ सुधर जाती ह। मनुष्य के जीवन की तीन अवस्थाएँ ह—कम अकम तथा दुष्कम। कम मे नित्य प्रति की साधारण क्रियाएँ शामिल ह। अकम में निष्क्रियता है कोई काम नही होता। दुष्कम म बुरा काम होता है। अतएव इन तीनो को हाथ मे धारण करनेवाले शिव हैं। इसलिए यही धमराज ह। कर्मो को सँभालनेवाले तथा विघ्न बाधा से दूर करनेवाले गणपति ह गणेश ह। इसी लिए गणेश के हाथ में भी त्रिशूल है। हिदू शास्त्र में किसी भी देवता के हाथ मे जो शस्त्र है वह वास्तव मे उसके स्वभाव तथा गुण का प्रतीक है। उदाहरण के लिए इद्र देवराज ह। राक्षसो का सहार करते ह। उनके हाथ मे वज्र है। क्षेत्रपाल गण चारो दिशाओ मे खडे विघ्न बाधा से रक्षा कर रहे हैं। उनके हाथ में शक्ति है। यम का काय है पाप का दण्ड देना। उनके हाथ मे दण्ड है। नियम तथा व्यवस्था के स्वामी वरुण ह। उनके हाथ मे पाश है। सष्टि को उत्पन्न करनेवाले पितामह ब्रह्मा के हाथ मे शरीर के भीतर के कमल का प्रतीक कमल है। कालचक्र के स्वामी विष्णु के हाथ मे चक्र है। योगिनी गणो के हाथ में अकुश सोम के हाथ मे गदा, गणेश के हाथ में त्रिशल तथा बटुक के हाथ में खडग है। देवताओ के हाथ के आयुध प्रतीकरूप में है। निरथक शोभा की वस्तु नही हैं।

मत्र जपने के लिए माला का भी विशिष्ट महत्त्व है । माला के दो प्रकार है---वजयन्ती माल तथा रुद्र माल । इनमे १०८ दाने होते ह । ९ दाने की भी माला होती है जिसका अथ है राग-द्वेष स उत्पन्न काम क्रोध लोभ मोह मद तथा मत्सर (कुल ९) पर विजय प्राप्त करना । हर दान को मेरु कहते ह । सृष्टि के आदि से लेकर कलिकाल तक १०८ महान सिद्ध योगी ऋषि तथा देवताओं ने इस ससार मे पदापण किया । उन्होंने राग द्वष अहकार आदि सब पर विजय प्राप्त की । इसी लिए १०८ की माला को वैजयन्ती माल कहते ह । माला के दाना के दो मुख होते ह । एक ब्रह्मा का प्रतीक है दूसरा सरस्वती का । इन दानो पर जप करन से सभी मानसिक मल धुल जाते ह । उन पर विजय प्राप्त होती है । इसी लिए उसे रुद्र माल भी कहते ह ।

लिग-प्रतीक

प्राचीन प्रतीको में सबसे अधिक विवादास्पद विषय लिंग उपासना है । लिंग उपासना कब से शुरू हुई यह बडे झगडे की पहेली है । कटनर ने अपनी पुस्तक मे यह सिद्ध कर दिया है कि ससार के हर कोने में वासना तथा प्रजनन की प्रेरणा से लिंग उपासना चालू थी । उनका कथन है कि आदिकाल के पुरुषो के इतिहास का पहला पन्ना खोलते ही सामने काम उपासना आ जायगी ।[१] और ऐसी उपासना लिंग[२] की पूजा के रूप मे थी । कटनर के कथनानुसार लिंग की पूजा सबसे पहले मिस्र देश तथा मिस्री लोगो द्वारा शुरू हुई । इस सम्बन्ध मे वे एक कथा देते ह कि हजारो वष पूव मिस्र के नरेश ओसिरिस ने राज्य में चारो ओर घूम घूमकर अपनी प्रजा को सगठित रूप मे खेती करने की शिक्षा दी । उनके यात्राकाल मे उनके भाई टाइफन ने उनके विरुद्ध षडयन्त्र रचा तथा वापस आने पर उन्हें पकडकर एक बडे बतन में बन्द करके ऊपर से गरम गरम पिघला जस्ता उडेल दिया । इस बतन को बन्द करके नील नदी म फेक दिया गया ।

ओसिरिस की पत्नी आइसिस ने अपने इस विश्वास के कारण कि मतक को बिना समुचित ढग से दफनाये उसके शरीर तथा आत्मा की गति नही होती, अपने पति का मुर्दा ढूँढना शुरू किया । फोयेनीशिया के बैबीलोस नगर म वह बतन मिल गया । महारानी को उसी समय अपने बेटे होरस से मिलने जाना था । वे मुर्दे को (बतन को) एक स्थान म छिपाकर होरस से मिलने चली गयी । भाग्य की बात उधर से नरेश ओसिरिस के भाई टाइफन शिकार खेलने निकले । उनको वह बत्तन मिल गया । अब उन्होने मुर्दा के १४ २६ या ४० टुकडे किये (सख्या ठीक नही मालूम) । टुकडे टुकडे करके उसे हवा मे फेक दिया । महारानी आइसिस जब लौटी तो उन्होने हर एक टुकडे को एकत्रित किया और जहाँ भी कोई टुकडा गिरा था वहाँ अपने पति का स्मारक बनवाया । शरीर

१ H Cutner—A Short History of Sex Worship—page 6

२ कटनर ने पुरुष लिंग के लिये Phallus or Lingam लिखा है तथा फ्रेंच लेखक लैम्प्रीर (Lampriere) की व्याख्या दी है—Ligneum Membre Virilis—Hebrew word for Phallus is Palash'—and 'Palas' in Assyrian It means which breaks through and presses into'—In Latin it is 'Palus'

के सब टकडे मिल गय । केवल नरेश का लिग नही मिला । लिग के सस्मरण मे उन्होने अजीर का बडा पेड लगवाया । यह वक्ष ही लिंग का प्रतीक हो गया । महारानी के आज्ञानुसार इस प्रतीक का पूजन काफी यत्न से होता था । मिस्र मे लिंग की उपासना इसी समय से शरू हुई तथा ईसवीय सन चौथी शताब्दी तक चलती रही ।

श्री मार न अपनी पुस्तक म इसी महारानी आइसिस के मदिर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इसक पुजारियो को आजन्म ब्रह्मचय का व्रत लेना पडता था । रोम मे आइसिस क मदिर म पवित्र अग्नि सदव प्रज्वलित रखी जाती थी । उसकी देख रेख अक्षतयोनि कुमारियाँ किया करती थी । यदि व अपने ब्रह्मचय से जरा भी विचलित हो जाती थी तो उनको प्राणदण्ड मिलता था ।[१]

परब्रह्म तथा पुरुष प्रकृति क प्रतीक शिव की उपासना हजारो वर्षों से चली आ रही है । ससार म यह सबस प्राचीन उपासना है । मूर्त्ति तथा प्रतीक पूजा की दृष्टि से भी शिव का लिंग रूप म अचन सबसे प्राचीन प्रतीकाचन है । शिव लिंग न तो प्रतिमा है और न मूर्त्ति । वह तो शुद्ध प्रतीक है । इस प्रतीक के विकास म भी शिव उपासना क हजारो वष लग होग । शिव की अनक रूप म वदिक काल म भी पूजा होती थी । रुद्र देवता का बार बार ज़िक्र वेदो म आया है । शिव के रूप की भी एक जगह व्याख्या है—

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य ।

अघोर और फिर घोर से भी घोरतर ऐसा रुद्र रूपेभ्य —रुद्र का रूप है । किन्तु लिग के रूप म शिव की उपासना कब से शुरू हुई इस विषय म यदि यह कह दिया जाय कि जब से सभ्यता का इतिहास शुरू हुआ तभी से तो कोई अतिशयोक्ति नही होगा । ऋग्वद म शिश्नदेव का जिक्र है । १ व अध्याय म—९९ ३ मे इन्द्र की प्रशसा है कि उसने १०० फाटकोवाले किले पर अधिकार कर बडी धनराशि प्राप्त की तथा शिश्नदेवो का सहार किया । कुछ लोगो का कहना है कि शिश्नदेव से तात्पय उन लोगो से है जो लिंगपूजक थ । सायण न इसका व्याख्या की है— शिश्नेन दीव्यति —लिंग से खेलनेवाले यानी व्यसनी लोग ।[२] शिश्न का अथ लिंग है यह ऋग्वद म शाश्वती की कथा से ही स्पष्ट है । इसलिए यह सम्भव है कि वदिक काल मे शिश्न पूजन प्रचलित रहा हो और इन्द्र आदि देवता लिंगपूजको के विरोधी रहे हो । पर आर्यावत म लिंगपूजा काफी प्रचलित थी,

१ G Simpson Marr— Sex in Religion —page 95

२ Jitendra Nath Bannerjia— The Devel pment of Hindu Iconography' —Calcutta University 1941—page 70

इसके प्रमाण मे सिंधु नदी की घाटियो में प्राप्त अत्यधिक शिवलिंग हैं। प्रो० बनर्जी के कथनानुसार लिंग का पूजन इसलिए होता था कि सष्टि की रचना तथा उत्पत्ति का कारण लिंग ही है।[१] भारत तथा ईरान मिस्र आदि की सभ्यता एक सूत्र मे पिरोयी हुई थी। अतएव एक देश का प्रतीक दूसरे देश मे पहुच जाता था। उदाहरण के लिए आज से २००० वष पूव के कुशन नरेश शिवलिंग उपासक थे। किन्तु इनके सिक्का पर अग्नि तथा सूय आदि के प्रतीक मिलते ह जा इस बात के प्रमाण ह कि ईरानी प्रभाव हमारे यहाँ पडा। ये सिक्के चौथी पाँचवी सदी के ह।[२]

किन्तु लिग के प्रतीक मे शिव का पूजन तथा मत्ति[३] क रूप में शिव का पूजन इन दाना के समय म काफी अन्तर अवश्य है। पर यह कहना भी गलत होगा कि प्रतिमा नामक वस्तु स लाग अपरिचित थे। प्रतिमा शब्द ऋग्वेद के दसव मण्डल म आया है। श्वताश्वतर उपनिषद क अध्याय ४ श्लोक ६ म भी है। कठोपनिषद के अध्याय २ मण्डल ३ श्लाक ६ मे है। पर देव पूजा म प्रतिमा का उपयोग बाद मे शरू हुआ होगा। बनर्जी के कथनानुसार किसी न किसी प्रकार की दव पूजा वयाकरणाचाय पाणिनि के समय म किसी न किसी रूप म प्रारम्भ हो गयी थी।[४] पाणिनि का समय जो अभी तक विवादास्पद है आज से ३००० से ६०० वष पूव के बीच म था। सबसे प्राचीन उपलब्ध मूर्त्तिया भी ३००० वष पुरानी प्रतीत हाती ह। बनर्जी ने अपनी पुस्तक में एक शिव-पशुपति की मूर्त्ति का जिक्र किया है जिसमे मूर्त्ति के तीन सिर ह सिर म सीग हैं। यह मूर्त्ति सिन्धु घाटी म प्राप्त एक महर पर बनी हुई है। महजान्डाडा तथा हडप्पा मे प्राप्त मूर्त्ति (शिव की) इसम भी अधिक पुरानी—लगभग ४००० वष पहल की है। पर उस समय पूजा के लिए ही मूर्त्ति बनती थी यह कहना कठिन है। प्रो० बनर्जी ने शिव की मूर्त्तिवाली कई प्राचीन मुहरा का ज़िक्र किया है।[५] पवत के रूप म पूजित शिव का जिक्र किया है।[६] शिव की प्रतीकोपासना का उल्लेख किया है।[७] त्रिशूल का वणन किया है।[८] पादपेश्वर की प्रसिद्ध मूर्त्ति का परिचय दिया है।[९] प्रतिमाओ को सुसज्जित करनेवाले आभषणा का रोचक सवाद दिया है।[१०] प्रतिमाओ की नाप-जोख दी है।[११] प्रतिमाओ की लम्बाई ऊचाई बतलायी है।[१२] बिहटा मे प्राप्त मुहर की उनकी समीक्षा अध्ययन

१ वही पुस्तक पृष्ठ ७०। २ वही, पृष्ठ २१५।
३ मूर्त्ति—Icon—(Greek)—Eikon—A Figure representing a Deity or a Saint in painting etc
४ वही, पष्ठ ४४। ५ वही, पृष्ठ १५६। ६ वही, पृष्ठ ११४।
७ वही पृष्ठ ११३। ८ वही, पृष्ठ ११५। ९ वही, पृष्ठ १७९।
१० वही पृष्ठ २९१ ९२। ११ वही, पृष्ठ ५९५ से ५९९। १२ वही, पृष्ठ २१६–१८।

की चीज है ।[१] किन्तु इन सबमे वर्णित प्रतिमाए अथवा प्रतीक भी २००० वर्ष से अधिक पुराने नही ह । पर बनर्जी ने सिद्ध किया है कि शिव की उपासना महाभारत काल मे भी थी ।[२] पाश्चात्य विद्वानो ने भी स्वीकार कर लिया है कि कम से कम ५००० वष पूव महाभारत हुआ था । यानी शिव पूजा उस समय थी और मूर्त्ति पूजा के रूप में थी यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है । किन्तु मूर्त्ति पूजा मे केवल शिवलिंग था या हाथ-पर वाली मूर्त्ति इसका पता नही चलता है । महाभारत काल में शिव की लिंग उपासना थी, यह तो प्रमाणित है । इसलिए यदि वदिक युग को १०००० वष पहले का मान ले तो ५००० वष पूव के पौराणिक युग म शिव लिंग पूजन होता था । वाल्मीकि की रामायण कब लिखी गयी था यह हम नही कह सकते । अधिकाश लोग त्रेतायुग के राम को महा भारत क कृष्ण से बहुत पहल का अवतार या महापुरुष मानते ह । राम ने लिंग पूजन किया था वाल्मीकि भी इसका वणन करते ह । अतएव लिंग के रूप म शिव की उपासना काफी पुरानी है । प्रतिमा या मूर्त्ति के रूप म शिव-पूजन काफी बाद की चीज है।

भारत म बौद्धकाल मे बौद्ध नरेशो के शासन मे हिंदू धम के विस्तार तथा प्रचार म किसी प्रकार की बाधा नही थी । इसी लिए सम्राट अशोक के समय से लेकर सम्राट हषवधन क युग तक बौद्ध तथा हिंदू प्रतिमाए साथ साथ निर्माणकला म उन्नति करती गयी ।[३] भगवान बुद्ध की सभी प्रतिमाए मनुष्य की मूर्त्ति म ह । उनके साथ धार्मिक प्रतीक सम्बद्ध है जसे हाथ की मुद्राए । ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धकाल मे तथा ईसवी सन १ से तीसरी शताब्दी तक गुप्त साम्राज्य के शासनकाल मे भी बौद्धो के प्रभाव से शिव की भी हाथ पर वाली प्रतिमाए काफी बनी । पर शिव की वास्तविक तथा प्राचीन उपासना लिंग क प्रतीक मे ही होती चली आयी है । प्रतीक की कला भारत की अपनी खास देन है ।[४] इस सम्बन्ध म शिव उपासना तथा शिवलिंग क सम्बन्ध मे पश्चिम के विद्वानो ने काफी प्रकाश डाला है ।[५] उन ग्रन्थो के अध्ययन से भी यह सिद्ध है कि लिंग के रूप मे शिव की उपासना सबसे प्राचीन है ।

१ वही, पृष्ठ १८ । २ वही पृष्ठ १८३ । ३ वही पृष्ठ १८१ ।

४ Edward Clodel— Animism —page 78

५ निम्नलिखित पुस्तकें देखिए —

(1) T A G Rao— Elements of Hindu Iconography"—Vol I & II
(ii) G Allan— Evolution of the Idea of God
(iii) N Macnicoll— Indian Theism'
(iv) Wall—Sex and Sex worship
(v) A K Coomarswami— (i) History of India & Indian Art
(ii) Dance of Siva

किन्तु यह पूजन अथवा लिंगोपासना कामवासना का प्रतीक थी, ऐसी बात नही है। आज की फैशनेबुल भारतीय स्त्रिया म तथा यूरोप अमेरिका की अधिकाश स्त्रियो में बहुत हो महीन तथा अध नग्न वस्त्र पहनने की प्रथा चल पडी है। महाभारत-काल में भी दूसरो को मोहित करने के लिए स्त्रियाँ ऐसा ही वस्त्र धारण करती थी। महाभारत के अरण्य पव की कथा है[1] कि शकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त कर अजुन इन्द्र के यहाँ अतिथि हुए। उस समय स्त्रीससग विशारद चित्रसेन[2] ने उनके पास उवशी नामक अप्सरा को भेजा। वह ऋषियो के भी मन को मोहित विचलित करनेवाली सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुए आयी।[3]

ऋषीणामपि दिव्यानां मनोव्याघातकारणम्।
सूक्ष्मवस्त्रधर याति जघनधानबद्धया॥

इस प्रकार उस युग की तथा आज की वासना मे कोई भी अन्तर नही हुआ। पर अन्तर एक है और था। वासना के अधे अवसर पर भी मनुष्य धर्म का ज्ञान नही छोड वठता था। अजुन ने उवशी को इसलिए ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया कि वह इन्द्र की अप्सरा थी अतएव गुरु पत्नी के समान थी।[4] वन में द्रौपदी के रूप को देखकर जयद्रथ माहित हो गया था। उसे द्रौपदी ने जो उत्तर दिया था—उसके दूत को—उससे भी उस काल की धमशील सभ्यता का अनुमान लगता है।[5] मनुस्मति में मनु ने मनुष्यो को वासना के विरुद्ध जो उपदेश दिया है वह उस समय की सच्चरित्रता की पवित्र मर्यादा को पुकार पुकारकर घोषित करता है। मनु ने ही कहा था—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवद्धते।—मनु०, अ० २, श्लोक ६, पृ० ६४।

घी के डालने से आग बढती है शान्त नही होती। भोग से कामवासना बढती है, उसका शमन नही होता। स्त्री के लिए भी ब्रह्मचर्य का इतना स्पष्ट आदेश था कि विधवा के लिए वासना छू तक नही जानी चाहिए —

मृते भतरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वग गच्छत्यपुत्रापि यथा त ब्रह्मचारिण॥[6]
—मनु०, अ० ५, श्लोक १६०।

१ Mahabharat—Southern Edition—Editor P P S Shastri Pub V Ramaswami Shastrulu & Sons Madras 1933—Part I—p 231
२ अरण्यपव, अ० ४१, श्लो० ३। ३ वही, श्लो० २९।
४ वही, पृष्ठ २३८। ५ वही, पृष्ठ १२४१–४२।
६ मनुस्मृति, टीकाकार प० केशवप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक-क्षेमराज श्रीकृष्णदास, सन् १९४८, पृष्ठ १७५।

विधवा स्त्री यदि निस्सन्तान भी हो तो पराये पुरुष से सम्बन्ध न करे। वह अपने ब्रह्मचर्य का साधना से स्वर्ग चली जायगी प्राप्त करेगी।

जहा पर विधवाओं के लिए इतना स्पष्ट आदेश हो वहाँ की विधवाएँ शिवलिंग का उपयोग अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए करगी ऐसी गन्दी बात उन्ही लोगो के दिमाग म घूमती है जो हर एक वस्तु को कामवासना के साथ जोड देते है। कटनर ने अपनी पुस्तक म इस प्रकार की गन्दी बात लिखी है। कटनर के दिमाग मे एक मात्र यही बात समायी हुई थी कि समाज म जो कुछ भी सत्य तथा सुन्दर है वह कामवासना से सम्बन्धित है। अपनी पुस्तक के प्रारम्भ म ही वे लिखते है कि आदिकालीन मानव के जीवन का मूल उद्देश्य इतना विकट था कि उसकी सत्ता के लिए अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति जरूरी थी।[1] वे आगे चलकर लिखते है— सभी प्राचीन धार्मिक सम्प्रदायो म जो अनेक प्रतीक प्रचलित थे वे सभी या तो लिंग उपासना से सम्बन्धित थे या सूर्य उपासना से। ये दोनो उपासनाए (सम्प्रदाय) साथ साथ चलती थी भोजन के बाद मनुष्य की सबसे बलवान आवश्यकता कामवासना है हजारो वर्ष पूर्व सबसे प्रारम्भिक पुजारी यह अनुभव करता था कि अपने देवता के साथ उसका प्रकट सम्बन्ध है। वह देवता चाहे आसिरिस की मूर्ति हो शिव की मूर्ति हो अडोनिस या वेनस (कामदेव) जुपिटर (गरु) या प्रियापस (प्रजापति) की मूर्ति हो।[2] स्मिथ ने भी अपनी पुस्तक म लिंग उपासना के सगठित तथा व्यापक सम्प्रदायो का विवेचन करते हुए इसे कामवासना का परिणाम सिद्ध करने का प्रयास किया है।[3] ब्रिटिश ज्ञानकोष म शक्तिपूजा की बड़ी गलत ढंग से व्याख्या की गयी है। इससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि वास्तविक शक्ति पूजन लिंग योनि पूजन है जो वासना तथा प्रजनन का प्रतीक है।[4] इन सभी लेखको ने लिंगवाद शब्द भी गढ डाला है।[5] लेखक फोरलोग का कहना है कि खतना कराने की प्रथा लिंग के अग्रभाग का चमडा कटाने की प्रथा यहूदियो ने शुरू की। वह लिंग उपासना ही थी। कटनर यह बात नही मानते। उनके अनुसार यह प्रथा अति प्राचीन मिस्र मे शुरू हुई और केवल जननेंद्रिय

१ H Cutner—A Short History of Sex worship—page 2,

२ वही पृष्ठ ३ से ५ तक।

३ Robertson Smith— Religion of the Semites —3rd Edition—page 456

४ Shakti Puja—Referred to in British Encylopaedia—14th Edition Volum 17 page 689

५ Phallicism or Phallism

६ कटनर पृष्ठ २३।

की सफाई के लिए चालू हुई थी ।[१] एकलिपट स्मिथ के अनुसार खतना कराने का मतलब था 'विवाह के लिए जननेन्द्रिय को उपयोग के लिए तयार करना । हैनी[१] ने लिखा है कि यहूदी यानी ज्यू शब्द पहले इयू लिखा जाता था । ई—पुरुष यू—स्त्री यानी लिंग-योनि । लम्प्रियर के कथनानुसार प्राचीन काल मे देवी-देवताओं मे लिंग-योनि के सम्बंध मे कोई मर्यादा नही थी । प्रसिद्ध यूनानी देवी अदोनिस की माता का नाम मायरा देवी था । देवी अदोनिस के पिता साइप्रस टापू के नरेश सिनरास थे । मायरा सिनरास की ही बेटी थी और उस बेटी से ही नरेश सिनरास ने देवी अदोनिस को उत्पन्न कराया था ।

यूनान के सूय देवता का नाम प्रियापस (प्रजापति) था । राम के एक कामदेव का नाम मूतुमस (मूतमान) था । प्रियापस देवता की प्रतिमा म बडा भारी लिंग बनाते थे । वसन्त ऋतु मे इस लिंग पर गुलाब का फूल चढ़ता था । यही ऋतु कामवासना के लिए आदश हाती है। पतझड के दिनो म इस लिंग पर अंगर चढ़ाते थे जाड म जतून । गर्मी म काम क्रीडा निषिद्ध है अतएव काँटा चढ़ाते थे । प्रियापस देवता के सामने दीर्घलिंगी गधे का बलिदान हाता था । रोम के सम्राट कास्टेंटाइन के शासनकाल मे जम्ब्लिकस नामक दार्शनिक थे जिनका कहना था कि ससार में लिंग उपासना के कारण ही जनसख्या की वृद्धि हाती है ।'

यूनान क प्रियापस देवता राम मे काम देवता बनाकर पूज जाने लगे । कामदवी वेनस को रोमन लिवरा यानी माता कहते थ तथा कामदव प्रियापस का लाइबर यानी पिता कहते थे । मिस्र क लागा स रोमन लागा न भी मार्च के महीने को कामवासना का त्योहार मानने का महीना बना लिया था । इस अवसर पर रथ पर रखकर एक बडे लिंग का जलूस निकालते थे । रास्ते भर रोमन नर नारी इस लिंग का पूजन करते थे । इसे कामदेवी का त्योहार कहते थे । रथ यात्रा के दो चार दिन बाद स्त्रियो का जुलूस निकलता था । व अपनी छाती पर लकडी के लिंग रखकर चलती थी । राम मे आइसिस देवी का मदिर लिंग योनि पूजन तथा भ्रष्टाचार का केन्द्र था । देवी रही[३] तथा शनिदेव से उत्पन्न वेस्तादेवी का मदिर रोम मे काफी प्रसिद्ध था । इस मदिर म सेविका के काय के लिए १० वष की उम्र से लडकियाँ भर्ती की जाती थी । ३० वष की उम्र तक इनको

१ J B Hannay Says— Jew (Word) was previously written as I U—I for one male U for one female Jesus was written as Iesu es is Hindu word for Flesh '

२ Lampriere

३ भारतीय तान्त्रिक बीजमंत्र "ह्री" ।

अक्षत कुमारी रहकर मन्दिर म सेवा करनी पडती थी । यदि इन अक्षत कुमारियो में से किसी का ब्रह्मचय खण्डित हो जाता था तो वे दण्ड स्वरूप जमीन मे जिन्दा गाड दी जाती थी । कम से कम १००० वष तक यह प्रथा रही। ईसवी सन् ३९ मे यह मदिर नष्ट कर दिया गया और वह सम्प्रदाय ही नष्ट हो गया । अनक पश्चिमी विद्वान वेस्तादेवी के उपासको को भारतीय तात्विक उपासना से सम्बन्धित उपासना मानते ह ।

एसा सम्बन्ध पीटरसन[1] तथा कटनर ने भी स्थापित किया है । पीटरसन के कथनानुसार भारतवष के काल (महाकाल) दवता तथा काली (महाकाली) देवी की उपासना मिस्र यूनान तथा रोम पहुची । भिन्न देशो म उनका नाम बदल गया । उनके कथनानुसार महाकाल--मोलाश क्रोनास सटन प्लूटो ताइफन देवता तथा महाकाली--हिकात प्रोमर्पाइन दियाना न्हेवी इत्यादि कहलान लगी ।

कटनर कहते ह कि नारिपम नगर म दियाना देवी की पूजा भारतीय महाकाली के समान पशुबलि आदि क साथ होती थी । मिस्र के ओसिरिस देव तथा आइसिस देवी भारतीय शिव भवानी के समकक्ष थ ।[2] हम यह बात मानन मे आपत्ति नही है । दश काल क अनसार उपासना का प्रकार दूषित हो गया हो पर उपासना के सिखानेवाले हमी थे । इस प्रकार लिग उपासना भी मिस्री या इब्रानी या यनानी चीज नही थी । लिगो पासन भारत से बाहर गया । और जिस समय लिग की उपासना हमने बाहरवालो को सिखायी उसका सिद्धान्त तथा शास्त्र दूसरा ही था । बाद म अथ का अनथ हो गया । लिग उपासना न ससार म इतना महत्त्वपूण स्थान प्राप्त कर लिया था कि दीघलिगधारी प्रियापस देवता का प्रभाव हटान म ईसाई पादरी जब असफल होने लगे तो उन्होने उसे ईसाई प्राचीन महापुरुषो[3] म स्थान दे दिया । ईसाई धम के प्रचार क बाद भी काफी समय तक लिगोपासना यूरोप म प्रचलित थी । ईसाई काल मे ही बने हुए लिंग प्रतीक फ्रास तथा जमनी म बहुतायत स पाये जाते ह । बल्जियम राज्य का एक प्रदेश एतवप है । यहाँ पर लिग पूजक प्रियापस सम्प्रदाय १७वी सदी तक वतमान था । जमनी मे इस देवता का प्राइपे कहते थ और १२वी सदी तक वहाँ लिग पूजा हाती थी । यूरोप के आदि निवासी गाल लोग बाद म डनमाक स लकर इगलण्ड तक शासन करनेवाले सक्सन लोग तथा स्वेडन और नार्वे क लाग फिक्को या फ्रिस्को नामक देवता की पूजा करते थे जिनका बडा दीघ लिंग होता था । प्राचीन रूस म स्कोप्ज़ी नामक एक सम्प्रदाय था जिसका

१ Peter on in Asiatic Researches
२ क नर पृष्ठ ८९–९१ ।
३ Christian Saint

विश्वास था कि जो पुरुष खतना नही कराता उसकी मुक्ति नही होती। कुमारियाँ अपनी छाती कटवा देती थी। इस सम्प्रदायवालो ने एक अनुष्ठान किया जिसमे १,४४,००० ऐसी कुमारियो तथा कुमारो की आवश्यकता थी जो अपनी छाती कटवा लें तथा खतना करा ल। पर इतनी सख्या न मिलने के कारण ही वह अनुष्ठान असफल रहा।[१]

कौगो में मन्दिरो पर लिंग तथा भग बना देते थे। मलाया अ तरीप में एक देवता करायनालावे की पूजा होती थी जिनके शरीर मे लिंग तथा योनि (अर्द्धनारीश्वर) दोनो ही बने रहते थे। उत्तरी अमेरिका मे धार्मिक पर्वों पर वषभ-नृत्य होता था जिसम नाचनेवाले अपने वस्त्रो मे बडे बडे लिंग छिपाय रहते थे। स्त्रियाँ झपटकर इन्हे खीच लेती थी और अपने गाव ले जाती थी।[२] श्रीमती स्टिवेसन का कहना है कि ससार के हर कोने मे लिंग प्रतीक की पूजा होती थी।[३]

और लखक मार के अनुसार जीवन में जीवन की शक्ति की परिकल्पना से ही लिंग की उपासना प्रारम्भ हुई।[४] इसी भावना के कारण यूनानियो ने वसन्त ऋतु को लिंग-उपासना की ऋतु बना लिया था। यूनानी देवी अफ्रोदाइत की पूजा म भद्दा से भद्दा कामुक काय हाता था। यनानी देवता दायोनिसस के उपासको का एक गुप्त सम्प्रदाय था, जो भारत के एक वाममार्गी सम्प्रदाय की तरह मद्य मास-मथुन का सेवन करने के बाद सूर्यास्त के उपरा त देवता का जुलूस निकाला करता था, जिसमें लिंगदेव की प्रशसा मे भजन गाये जाते थे। इटली के प्राचीन नगर पाम्पियाई के नाम से हम सभी परिचित ह। नपुल्स नगर के दक्षिण पूव १३ मील पर यह अति सु दर नगर बसा हुआ था। ईसवी सन् ७९ म वेसूवियस ज्वालामुखी के भयकर विस्फोट से यह नगर समाप्त हो गया। इसके भग्नावशष म ऐसे म दिर मिल ह जिनमे हमारे देश के जगन्नाथपुरी के म दिर के समान दीवालो पर लिंग तथा उसकी क्रियाए खुदी हुई है।

यूनानी तथा रोमन प्रतीका की व्याख्या करते हुए श्री गाडनर लिखते ह—

प्रतीक उसे कहते है जो देखने या सुनने मे किसी विचार भावना या अनुभव को व्यक्त

१ कटनर, पृष्ठ १९९।

२ कटनर, पृष्ठ २०० से २१२ तक।

३ Mrs Sinciair Stevenson— The Rites of the Twice Born' Pub 1920

४ G Sampson Marr—Sex in Religion—1936—page 36

करता हो जो चीज केवल बुद्धि या कल्पना से ग्राह्य हो उसकी ऐसी व्याख्या कर देना कि आँख के सामने आ जाय।[१] वे फिर लिखते हैं—

आदिकालीन लोग अपनी कन्दरा की दीवालों पर जानवरों का चित्र बना देते थे और अपने को उसी से सुरक्षित समझते थे। यूनान में युवती कन्याएं भालू का बाना पहनकर भालू नृत्य करती थीं जिससे आर्तिमीस देवी प्रसन्न हों। उसी देश में एक त्योहार दियासिया मनाया जाता था जिसमें पुरोहित भेंस की बलि देता था। फिर वह अपने को ही हत्या का दोषी घोषित करता था। तब वह अपनी कुल्हाड़ी को जिससे बलिदान किया था, हत्या का दोषी ठहराता था और बड़े समारोह के साथ वह हत्यारिन कुल्हाड़ा जल में फेंक दी जाती थी। छठी मानवी शताब्दी में वहाँ एक प्रथा यह थी कि दो बड़े बरतनों में पानी भरकर पूर्व तथा पश्चिम की तरफ मंत्र पढ़कर जल फेंकते थे। उस मंत्र का अर्थ था—आकाश तू वर्षा कर। पृथ्वी तू अन्न उत्पन्न कर। यूनानी प्रतीक सीरिया तथा मेसोपोटामिया से प्राप्त किये गये थे। वहीं से यूनान आये थे। देवी आर्तिमीस के हाथ में शेर तथा चीता रहता था। उनके शरीर में पर भी थे जो उनकी शीघ्र गति के परिचायक थे। पाँचवीं सदी में वहाँ ज्यूस देवता की पूजा होती थी जिनके हाथ में वज्र रहता था। भारत या मिस्र की तरह (जहाँ आदमी का मुर्दा जानवरों को खाने के लिए फेंक दिया जाता था) यूनान की कला में कोई बीभत्सता नहीं थी।[२]

यहूदियों के प्रतीकों की व्याख्या करते हुए श्री अब्राहम लिखते हैं कि यहूदियों के देश में दूसरी सदी में यह स्पष्ट आदेश था कि कौन पशु भोजन के काम में आ सकता है कौन नहीं। उनके प्रतीक भी फलों से सम्बन्ध रखते थे—जैसे टोकरा भरा फल सूखी अंगूर की लता बादाम का वृक्ष इत्यादि ये सब उनके प्रतीक थे। यहूदी लोग व्रतोपवास का भी बलिदान मानते थे। नबरनकलाज की दावत के त्योहार में कई प्रकार के पत्ते पहने जाते थे। हर एक पत्ते का अपना अर्थ होता था। जैसे खजूर की पत्ती अहंभाव तथा अहंकार को व्यक्त करती थी इत्यादि।[३]

यूनान में दायोनिसियस देवता के सामने बकरे का बलिदान उसी प्रकार होता था जिस प्रकार भारतीय मन्दिरों में। अब इन बातों से प्रकट है कि भारतीय आर्य सभ्यता से धर्म का जो रूप बना वही प्राचीन सभ्यताओं पर छा गया। सभी प्राचीन सभ्यताओं में, भिन्न तथा पृथक रूप से धर्म की एक ही धारा बह रही थी। इतिहास के नवीन शोधों से

१ Encyclopaedia of Religion & Ethics—Symbolism—Greek and Rome by P Gardner—page 139

२ वही, पृष्ठ १४०। ३ वही पृष्ठ १४४।

भी यही बात प्रमाणित हो रही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सांस्कृतिक शाखा की ओर से श्रीमती ऐनी मेरी हुसेन का एक लेख प्रकाशित हुआ है।[1] पश्चिमी पाकिस्तान के स्वात नामक स्थान में इतालियन अनुसन्धान के संचालक प्रोफेसर तुच्ची[2] खुदाई का कार्य कर रहे हैं। उनके कथनानुसार भारत का यह भाग एशिया तथा यूरोप के बीच का प्रवेश द्वार है। जापान और फ्रांस से भी ऐसे ही अन्वेषकों की टोली शोधकार्य के लिए यहाँ आयी हुई है। सिन्धु की घाटी में प्राप्त प्राचीन सामग्री का हमने अपनी इस पुस्तक में बार बार उल्लेख किया है। हिमालय से लेकर भारतीय महासागर में गिरने तक १८०० मील की लम्बी यात्रा सिन्धु नदी करती है। सन् १९१८ में इसी घाटी के निचले भाग में मोहेंजोदाडो का नगर मिला था जिसमें आर्य सभ्यता से कुछ भिन्न या पुरानी सभ्यता का पता चला था। यह सभ्यता प्राचीन मेसोपोतामिया की अरबी सभ्यता से बहुत मिलती जुलती थी। विदेशी पंडितों का यह अनुमान है कि आर्य जाति भारत में बाहर से आयी। लोकमान्य तिलक भी साइबेरिया के उत्तरी प्रदेश में आर्य जाति का प्रारम्भिक निवास मानते थे।[3] श्रीमती ऐनी मेरी के अनुसार ईसा से १५०० वर्ष पूर्व आर्य भारतवर्ष में आये। पूर्व विश्वास के अनुसार उस समय यहाँ असभ्य तथा बर्बर लोग ही रहते थे। वर्तमान पंजाब आर्यों का प्रथम भारतीय निवास क्षेत्र था। पर नयी खोजों से यह साबित होता है कि उस समय भी यहाँ पर विशिष्ट सभ्यता थी जो आसाम से अफगानिस्तान तक फैली हुई थी। ऐनी मेरी लिखती हैं कि हिमालय की ठंडी दीवाल ऐसी अजेय नहीं थी जैसी कि हम समझते हैं। उनके ही मार्ग से इस सभ्यता का एशिया-यूरोप के अन्य भागों से सम्बन्ध स्थापित था। सिन्धु घाटी पर पहले ईरानियों का, फिर यूनानियों का, तदुपरान्त भारतीयों का आधिपत्य था। अतएव यह सभ्यता इन तीनों की मिली जुली सभ्यता बन गयी थी। आर्य आक्रमण के पहले ईसा से ३००० वर्ष पूर्व भी सिन्धु घाटी की सभ्यता बहुत ऊँचे दर्जे की थी। वास्तव में सिंधु घाटी तथा मेसोपोतामिया का व्यापारिक सांस्कृतिक, सभी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध था। पश्चिमी पाकिस्तान की खुदाई तथा उमडी नगर में प्राप्त जमीन के नीचे पडा हुआ समूचा नगर इसका साक्षी है। किन्तु यह कहना गलत होगा कि दोनों सभ्यताएँ एक ही थी। दोनों का अपना अलग विशिष्टत्व भी था। क्या इन दोनों की पूर्ववर्ती कोई एक ही सभ्यता थी? पुरातत्त्व वेत्ताओं का अनुमान है कि ऐसा हो सकता है। काँसे के युग के पूर्व ईरान के मैदानों में

१ Unesco—Anne—Marie Hussein—देखिए Pioneer 15 7 1960

२ Professor Tucci

३ Lokmanya Tilak—Arctic Home of the Vedas

रहनेवाले लोगा की सभ्यता ही इनकी पूववर्ती गुरु सभ्यता थी। पाँच लाख वष पूव बलूचिस्तान की पहाडिया पर काफी घनी आबादी थी और वे लोग ईरानी सभ्यता मे थे। उनके पास पत्थर की कुल्हाडियाँ थी और वे सघषमय जीवन बिता रहे थे। इन पहाडियो पर प्राचीन भग्नावशेष ऐसी पुरानी बस्ती तथा लोगा के रहने के साक्षी ह। यही लोग पहाडी पार कर टाइग्रीज तथा युफ्रेटीज नदी को भी पार कर एशिया के अय भागो में पहुच गय। यही लाग पूव की तरफ सिधु घाटी म उतर आये।

उमडी म प्राप्त पाले रग के बतन उन पर की गयी पच्चीकारी चित्रकला आदि भी इसी बात को पुष्टि करते ह। ये सामग्रिया महजोदाडो म प्राप्त सामग्री से भी पुरानी ह। महेजोदाडो का खोज करनवाल सिध घाटी के निचले भाग से परिचित ह। उमडी की खुदाई करन वाले जापानी तथा इतालियन उत्तरी तथा ऊपरी भाग से परिचय प्राप्त करन म समय लग ह। पेशावर के आस पास बौद्ध प्रतिमाए तथा सामग्रियाँ भरी पडी ह। यहा पर बौद्ध धम का प्रचार अशोक ने किया था। सिंधुघाटी के ऊपरी हिस्से म बुद्ध को लगभग ६ ०० ००० स्वण प्रतिमाए तथा सघ आश्रम स्थापित थे। इसी लिए दूर दूर से बौद्ध यात्री यहाँ काफी सख्या म आते थ। पेशावर से कुछ ही मील की दूरी पर शहबाजगढी म अशाक के १४ आदेश शिलालेख के रूप में आज भी प्राप्त ह। अशोक काल मे ही गाधार कला का इस क्षत्र म जम हुआ था। मध्य एशिया से जब कुशन लागा ने यहाँ आकर शासन प्रारम्भ किया उन्हान बौद्ध सभ्यता तथा कला को अपनाया आर उसमे मध्य एशिया की कला का जोडकर उसे और भी मुखरित कर दिया। कुशन नरेशो की राजधानी पशावर थी। उन दिना ईरानी साम्राज्य विदेशिया के यातायात पर कठोर प्रतिबध रखता था। अतएव चीन के सिल्क तथा अय सामग्री क पापारी पशावर क माग से भूमध्य सागर तथा तुर्किस्तान पहुचते थे। सिंधु घाटी उस समय—ईसवी सन के प्रारम्भ म—ससार म सबसे धनी तथा उन्नत सीमा बन गयी था। प्राफेसर तुच्ची क अनसार इस घाटी म उन दिना १४०० सघ विहार थे। यूनानी रोमन कला का भारतीय कला के साथ अभूतपूव मिश्रण यही देखने मे आता था।

श्रीमती एनी मेरी हुसेन तथा प्राफसर तुच्ची की इन खाजा से डॉ० सम्पूर्णानन्द का ही सिद्धात पुष्ट होता है कि आर्यों का आदि देश पजाब ईरान था।[१] और भी आय बाहर से आय होगे पर ३००० वष ईसा से पूव यहाँ पर आय के इतर कोई सभ्यता थी यह मानन का कारण नही प्रतीत हाता। यह हो सकता है कि वह प्राचीन सभ्यता लिंग पूजका की थी जिसके विरोधी आय नरेश या देवता इन्द्र रहे होगे। एसे लिंग पूजक

१ डॉ सम्पूर्णानन्द—आर्यों का आदि देश।

'शिश्नदेवो के साथ इन्द्र का झगडा हुआ होगा जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है। पर, लिंग पूजन हमारे देश से ही बाहर गया यह बात भी 'सभ्यताओ के मेल की ऊपर लिखी बातो से सिद्ध हो जाती है।

जो लोग हर एक धम को कामवासना का परिणाम नही मानते वे प्राचीन धर्मों के विकास का सयत इतिहास हमारे सामने रखते हैं। प्रसिद्ध यूनानी कवि होमर ने लिखा था कि सभी मनुष्यो को देवताओ की आवश्यकता होती है। मार भी अपनी पुस्तक में यही बात स्वीकार करते ह और प्रोफसर नील भी इसे दुहराते ह। सभी पुराने धम 'एक ईश्वर को मानते ह। बुतपरस्ती (मूर्त्ति-पूजा) तथा अनेक देवी देवता तो बाद में आय। प्रोफेसर नील के कथनानुसार प्राचीन बैबीलोनियन धर्म भी एक ईश्वर वादी था। उसका दशन काफी ऊँचा उठ चुका था। मूर्त्ति पूजा उसमे बाद मे आयी।[1] इब्रानी हिब्रू धम की व्याख्या करते हुए प्रो० चीन[2] तथा प्रो० मूलर[3] ने भी घूम फिरकर एक ईश्वर वाद तथा बाद मे मूर्त्ति पूजा तथा अनेक देवी देवता के प्रादुर्भाव का सिद्धान्त स्वीकार किया है। यूनान का दशनशास्त्र भी ईश्वर तथा एक महाप्रभु की सत्ता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। मेक्सिकन लोगो का अजतेक धम ईरान का जरतुश्त तथा बाज्र धम चीन का ताओवाद जापान का शिन्तावाद भी तो यही 'एक ईश्वर तथा उसकी सत्ता का प्रतिपादन है। अरब का बबर नरेश सुधरिर बिन मसम्मा (सन् ५०५ ५५४) तक ईसाइयो की हत्या उसी एक खुदा के नाम पर करता था। प्राचीन अरब लोग आपस मे बहुत लडते थे। पर जब वे खुदा के नाम पर सुलह करते थे तो कोई किसी को एक तिनके से भी नही मारता था।[4] हिन्दू धम शुरू से ही एक ईश्वर का मानते हुए भी अनेक देवी देवताओ की कल्पना करके इतना उदार हो गया था कि उसके भीतर सब धम पूण सौहाद के साथ रह सकते थे।[5] मिस्र के प्राचीन लोगो का पवित्र धम ग्रन्थ जिसे मतको की पुस्तक अब कहते हैं एक ईश्वर की ही कल्पना सिखलाता है।[6] प्राचीन पुस्तको को पढने तथा समझने की कला अभी तक पूरी तरह से ससार नही सीख पाया है वरना आज तथा पाँच हजार वष पहले की ज्ञान की भूख मे कमी

१ The Historians Hi tory of the World Edited by Dr Henry-Smith William London Introductory page 84
२ Prof Thomas K Cheyne Oxford University
३ Prof D H Muller Vienna University
४ वही पुस्तक, भाग ८, पृष्ठ ९।
५ वही भाग २, पृष्ठ ५४५।
६ वही, भाग १, पृष्ठ २५२। —"The Book of the Dead"

नहीं थी। इसा से ५००० वर्ष पूर्व बबीलोनिया में पुस्तकालय रखने की प्रथा थी। उस समय पुस्तकें ईंट या मिट्टी को पकाकर बनाये हुए कागज पर लिखी जाती थी। अगान नगर में सारगान के पुस्तकालय की सूची से पता चलता है कि हर पुस्तक पर नम्बर पड़ा रहता था और पाठक नम्बर बतलाकर किताब प्राप्त करता था।[१]

अस्तु प्रश्न हो सकता है कि धर्म क्या है? प्राचीन लोगों में धर्म की भावना किस प्रकार थी? एनिव रक्लस इसकी व्याख्या करते हैं— अज्ञात के समक्ष मनुष्य के मन में जो भावनाएँ उठती हैं वही धर्म है।[२] अज्ञात और अनन्त शक्ति से मनुष्य हमेशा डरता रहता है। इसी अज्ञात शक्ति को साकार बनाकर वह अपने भय तथा आशंका का निवारण करता है। अनन्त परम शक्ति एक ही हो सकती है। जूलस बजाक ने धर्म के उद्गम की व्याख्या करते हुए लिखा है कि शुरू में मनुष्य के लिए माता पृथ्वी ही सब कुछ थी। सूर्य चन्द्र आदि सब देवता उसके सेवक थे। चन्द्रमा को पुरुष देवता मानते थे। इसी माता पृथ्वी के प्रति श्रद्धा तथा आदर में धर्म की प्रेरणा का प्रारम्भ हुआ। औक्टर तानी का कहना है कि प्रारम्भिक प्राणी का विश्वास था कि हर एक वस्तु में जीव है, आत्मा है। जैनी भी प्रत्येक वस्तु में जीव मानते हैं।[४] प्रारम्भिक लोगों में यह विश्वास था कि सबसे ऊपर एक अच्छी आत्मा है और एक बुरी आत्मा है। इन दोनों में बराबर संघर्ष चला करता है। उत्तरी अमरिका से लेकर साइबेरिया तक आर्कटिक सागर के किनारे रहनेवाले एस्किमो लोगों के धर्म की व्याख्या करते हुए प्रो० नील लिखते हैं कि वे लोग तोतेमिक को प्रधान आत्मा मानते हैं।[५] पूल के कथनानुसार मिस्र के प्राचीन महाप्रभु सूर्य देव थे।[६]

इस प्रकार एक महान् देव प्रभु ईश्वर की कल्पना प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में व्याप्त था। प्रो० एलिक रेक्लस सभी धर्मों की इस तात्त्विक एकता को देखकर पूछते हैं— क्या यह सम्भव है कि प्राचीन लोगों में परस्पर का सम्बन्ध उससे कहीं अधिक था जितना कि आज हम समझते हैं? क्या इससे यह साबित होता है कि हम सब एक ही सभ्यता के प्रसाद हैं? या इसका मतलब यह है कि समान कारण उत्पन्न होने से समान

१ A Review of the Tenth Edition of Encyclopaedia Britannica" Pub. Adam & Charles Black London page 123
२ वही पृष्ठ १५१।
३ A. C. Oucl ter Lonie वही पृष्ठ १५९।
४ T. W. Rhys Davids वही पृष्ठ १ ९।
५ Prof. C. E. Ilde वही पृष्ठ १६ ।
६ Reginald Stuart Poole & Stanley Lane Poole—वही, पृष्ठ १६०।

परिणाम पैदा होते है और चूकि मानव मस्तिष्क समान है अत समान विश्वास भी उत्पन्न होते गये। [१]

रेक्लस ने ये पक्तियाँ ससार मे प्रचलित धार्मिक अधविश्वास के सम्बन्ध मे लिखी है। पर शुद्ध धम की व्याख्या करने में भी हम इन पक्तियो को बडे महत्त्व की मानते ह। निश्चय ही सब धर्मों की तात्विक एकता का पाठ भारतवष ने ही पढाया है। ईश्वर एक है। १ की सख्या १ ईश्वर का प्रतीक १ परब्रह्म की व्याख्या १ अज्ञात महाशक्ति का प्रतीक शिवलिंग है जो अध्य म बैठा हुआ प्रकृति तथा पुरुष को मिलाकर एक महती शक्ति का द्योतक है। न तो यह कामवासना का प्रतीक है न यह पुरुष लिंग का प्रतीक है। बाद मे चलकर लोगो ने इसका जो कुछ भ्रष्ट अथ लगा लिया हो पर मूलत शिवलिंग का अथ एकोऽह द्वितीयो नाम्ति है— म एक हू। दूसरा और कुछ भी नही। और इसी भावना स ससार ने शिवलिंग का ग्रहण किया था। ऐसे ही एक मात्र प्रभु के पुजारियो स इन्द्र का इसलिए भी झगडा हो सकता है कि व ईश्वर के साथ ही देवताओ की सत्ता मे भी विश्वास करत रहे होगे। पर यह तो कल्पना की बात हुई।

इसी शिवलिंग[२] के पूजन के सम्बन्ध मे महाभारत के अनुशासनपव मे, माकण्डेय-उपाख्यान मे अश्वत्थामा से कहा गया है—

जन्मकमतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कला।
आद्यो लिंगऽर्चितो देव त्वयार्चायाम युग युगे॥

अर्थात तुम्हारा जन्म कम तप योग तथा कृष्ण और अजुन का भी बहुत बडा है। कृष्ण तथा अजुन न लिंग म पूजन किया है।

लिंग पूजन वास्तव मे आध्यात्मिक पूजन है। लिंग पूजा मानसिक वस्तु है।

लय गच्छति इति लिंगम् मन।

लिंग का अथ है मन। मन का आश्रय यानि है। योनि का अथ है बुद्धि। अर्थात योनि (बुद्धि) मे लिंग (मन) को लीन कर देना। यही लिंग पूजन है। मन से बुद्धि मे आओ। उध्वमूल का हमारे यहा बडा आध्यात्मिक माहात्म्य है— शुगेन मूलमन्विच्छ। जटा के नीचे आओ। यह उपनिषदवाक्य है। लिंग पूजन का असली अथ है बुद्धि मे मन को लीन कर लेना। मोक्ष का यही माग है।

एक मत यह भी है कि भारत अध्यात्म प्रधान देश है। यहा पर निगुण ब्रह्म की प्राप्ति

१ Elie Reclus वही, पृष्ठ १५७।

२ लिंग का अर्थ होता है चिह्न।

के लिए सगुण उपासना बतलायी गयी है। निगुण ब्रह्म रूपता के लिए अन्तरग साधन के लिए साकार सगुण लिंग रूप मे ईश्वर की पूजा होती है। ज्ञान के दाता महेश्वर ह।

ज्ञान महश्वरादिच्छत।

लिंग पूजन ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही है। यह प्राचीन पूजन है इसका प्रमाण ऋग्वेद का १० ६२ ६ तथा १ ११४ १ ४ १० इत्यादि ऋचाएँ भी ह। काशीखण्ड मे अध्याय २६ म स्वायम्भुव मन्वतर म पाद्म कल्प म राजा दिवोदास की कथा है। राजा के किसी अपराध के कारण भगवान शिव ने काशी म रहना छोड दिया पर वहाँ से जाने के पूर्व उन्होने गुप्त रूप से सवप्रथम अविमुक्तेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की—

> **यियासुना च देवेन मदिर चित्रक दरम।**
> **निजमूर्त्तिमय लिगमविज्ञात विधरपि।।**
> **स्थापित सवसिद्धीना स्थापकेभ्य सर्मापतुम।।**[1]

पौराणिक रूप स इस कथा क अनुसार शकर ने स्वय अपना प्रतीक शिवलिंग बनाया। पौराणिक कथा के अनुसार मुनियो के शाप से एक बार शिवजी का गुप्त लिंग कटकर गिरने लगा। सारे ससार म नाश का भय उत्पन्न हो गया। जगत की रक्षा के लिए ब्रह्मा तथा विष्ण क्रमश पीठ तथा योनि बने। इस प्रकार वह लिंग धारण किया गया तथा उसकी पूजा प्रारम्भ हुई। पीठ योनि सहित ही लिंग प्राय दखन म आता है। एक कथा यह भी है कि ब्रह्मा तथा विष्ण म यह विवाद छिडा कि कौन बडा है। तब ज्यातिमय लिंग प्रकट हुआ। महाभारत के आदिपव मे शिवभक्त उपमन्यु तथा इन्द्र का सवाद देखने योग्य है। सृष्टि शवी शिव की है यह कहते हुए उपमन्यु न दलील दी है—

> **न पद्माका[2] न चक्राका[3] न वज्राका[4] मत प्रजा।**
> **लिंगाका च भगाका च तस्मान्माहश्वरी प्रजा।।**

आध्यात्मिक दृष्टि से लीनमथ गमयति—इस व्युत्पत्ति के अनुसार परम गूढ ब्रह्मतत्व का प्रतीक लिंग है। उपासनाकाण्ड में स्थूल सूक्ष्म तथा कारण तीनो रूपो की समष्टि रखते हुए ही उपासना करने का निर्देश है। तदनुसार ऐसे वचन मिलते हैं—

> **अन्तर्लिङ्ग दृढ़ बद्धवा**
> **बहिर्लिङ्ग यजत शिवम।।**

१ काशीखण्ड, अ० ३९, श्लो ७ ७१।
२ ब्रह्मा। ३ विष्णु। ४ इन्द्र।

भ्रतलिंग क्या है ? हम मूलाधार मे स्थित स्वयभू लिंग[१] का वणन कर भाये ह। उस स्वयभू लिंग को जाग्रत करने के लिए बाहरी शिव लिंग का पूजन भावश्यक हो सकता है। पार्थिव पूजन का इसी लिए महत्त्व है। लिंग का पूजन ही ऐसा पूजन है जिसम सपरिवार शिव का ध्यान किया जाता है। ऐसी उपासना का भ्रथ न समझकर विदेशी पडितो ने कामवासना के साथ लिंग पूजन जोड दिया है।[२] जिस लिंग के सम्बन्ध मे शकर न स्वय पावती से कहा है कि समूची सृष्टि म म लिंग-स्वरूप हू—क्या यह कामवासना का प्रतीक हो सकता है ?

आब्रह्मस्तम्बपयन्त लिंगरूपोऽस्म्यह प्रिये

लिंगाचनतत्र से हिन्दू लोग भी प्राय कम परिचित ह। इसमे बडे सुन्दर ढग से लिंग का शरीर के भीतर स्थान समझाया गया है। योगी लोग ही नीचे लिखे श्लोको का भ्रथ ठीक म समझ तथा समझा सकते ह। लिखा है—

महाशून्य महाकालम् महाकालीयुत सदा।
देहमध्य महेशानि लिंगाकारेण वेष्टित ॥
मूलाधारे स्वयम्भूश्च कुण्डलीशक्तिसस्थित।
स्वाधिष्ठान स्वय विष्णुस्त्रलोक्यपालक सदा ॥
मणिपूरे महारुद्र सवसहारकारक।
अनाहते ईश्वरोऽह सवदेवेनसवित ॥
विशुद्धाख्ये षोडशारे सदाशिव इति स्मृत।
आज्ञाचक्र शिव साक्षात् चित्तरूपेण सस्थित।
सहस्रारे महापद्म त्रिकोणनिलयान्तरे।
बिन्दुरूपो महशानि परमेश्वर ईरित ॥

(जिस समय सष्टि में कुछ नही था महाशून्य था उस समय केवल महाशिव तथा महाकाली—परम शिव तथा परा शक्ति ही—वतमान थे। उस समय देहमध्य मे लिंग के रूप म महेश स्थित थे। मूलाधार म स्वयभू लिंग कुण्डली शक्तियो के साथ स्थित था। स्वाधिष्ठान यानी लिंग स्थान म त्रलोक्यपालक विष्णु स्थित थे। मणिपुर यानी

१ Conns Medullens

२ The Dictionary of Religion and Ethics —Edited by Hastings—Article on Phallicism—A worship of Reproductive Powers of Nature and see also the Book Bibliography of Sex Rites and Customs —Pub—Roger Goodland 1931 इन पुस्तकों ने ऐसी ही भूल की है।

नाभि स्थान म सव-सहारक महारुद्र बठे थे। अनाहते इश्वरोऽह्—हृदय के द्वादश कमल में सब दवा स सवित ईश्वर तथा विशुद्धाख्ये षाडशारे यानी कण्ठ मे षाडश कमल में सदाशिव विराजमान थे। आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रू मध्य मे साक्षात् शिव चित्तरूप से स्थित थे। सहस्रारे अथात ब्रह्मरन्ध्र म त्रिकाण क बीच म बिन्दुरूप मे परमेश्वर ईरित, यानी कथित —कहे जाते ह। हमारे शरीर मे इस प्रकार शिवलिग विराजमान है।)

शिवलिग का वास्तव म समूची शक्ति के परम यौगिक प्रतीकरूप म ही प्रादुर्भाव और प्रचार हुआ तथा उस ससार ने अपनाया।

पौराणिक रूप म भी इसकी याख्या बडी अनुपम है। शिवमहापुराण म मुनिगणा ने नन्दिकेश्वर से प्रश्न किया। नन्दिकेश्वर का उत्तर जानने तथा समझने याग्य है। नीचे हम टीकाकार के शब्दा म ही याख्या दे रहे ह। नन्दिकेश्वर ने लिग को निराकार माना है। वास्तव म १—शिव शक्ति पुरुष प्रकृति सबका अन्ततागत्वा एकाकार का प्रतीक शिवलिग निराकार ब्रह्म का साकार रूप है। इन श्लाका म मूर्ति के लिए बेर शब्द आया है। लिखा है[1]—

मुनिगणा न सूतजी स पूछा—

बेरमात्र तु पूज्यते सकला देवतागणा।
लिग बेरे च सवत्र कथ सम्पूज्यते शिव ॥

(अ० ५ श्लोक ८)

बेर मूर्ति मात्र म सब देवताओं का पूजन हाता है। किन्तु सवत्र लिग बेर म शिवजी कसे पूजित हाते ह। सूतजी ने उत्तर दिया—

कथयामि शिवेनोक्त भक्तियुक्तस्य तेऽनघ।
शिवस्य ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलत्वाच्च निष्कलम ॥
लिग तस्यव पूजाया सववेदेषु सम्मतम्।
तस्यव सकलत्वाच्च तथा सकलनिष्कलम ॥

(अ० ५, श्लोक २० २१)

सूतजी ने उत्तर दिया कि गरुमुख से सुनी हुई शिवजी द्वारा ही कही हुई बात कहता हू। ब्रह्मरूप होने से वे निष्कल कहे गये ह (श्लाक १०)। रूपवान होने से कला सहित हुए। इस प्रकार वह सकल यानी कला सहित तथा निष्कल यानी कला रहित होने से

[1] श्री शिवमहापुराण—टीकाकार प इन्द्र ब्रह्मचारी, प्रका ला श्यामलाल हीरालाल, श्याम काशी प्रेस मथुरा, सवत् १९९६।

दोनो प्रकार के हो जाते हैं। निराकार होने से वे लिंगरूप हो जाते ह। (श्लोक ११) इसी से उनकी ब्रह्म सज्ञा होती है। (१२) अ य देवता ब्रह्म-स्वरूप नही ह जीव स्वरूप ह। अत लिंगरूप मे उनकी पूजा नही होती। (१४) ब्रह्म पदवी ता केवल महादेव को प्राप्त है। (१५) ओ३म (ॐ) प्रणव शब्द के प्रकाशनाथ वेदा तसार से ससिद्ध प्रश्न ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनि ने श्री न दिकेश्वर से मयराचल पर किया था। (१६) श्री सनत्कुमार ने पूछा—सब देवो की सब प्रकार से (१७) वेर मात्र मे ही पूजा देखी और मब जगह सुनी। कि तु एकाकी शिवजी की ही पूजा म लिंग वेर देख जाते ह। (१८) अतएव कृपया सहज म समझने के लिए इस कल्याणतत्त्व को समझाइये। श्री न िकेश्वर बाले—

यह ब्रह्मलक्षण प्रश्न रहस्य परिपूण है और इसका पूरा उत्तर नही दिया जा सकता। (१९) हे अनघ (पुण्यात्मक) भक्तियुक्त आपके लिए जसे शिवजी द्वारा मुझे ज्ञात है वस म कह रहा ह। शिवजी के ब्रह्मरूप होने से उनका निष्कल (२०) रूप लिंग पूजा के लिए सब वेदा न माना है क्याकि वे कलायुक्त ह और कलारहित भी ह। (२१) इसलिए कलापूण शिव भगवान का वेरपूजन लोकसम्मत है। शिव क अतिरिक्त अ य त्वनाओ के जीव हाने से और शिव भगवान की सवत्र कला व्याप्त हान से (२२) पूजा मे लिंग वेर मात्र की पूजा का विधान वेद ने किया है। देवताओ क प्रकट हाने पर सकल रूप ही है (२३) और शिव का दशन शास्त्र में लिंग वेर दखा जाता है (क्याकि दवताओ की जीव मज्ञा है)।

इस प्रकार शिवपुराण ने लिंग को निराकार निगुण ब्रह्म का प्रतीक माना है। यदि हम इस विवाद की ओर न जाये कि शिव ही ब्रह्म स्वरूप तथा सकल और निष्कल ह विष्णु आदि क्यो नही (क्योंकि यह तो साम्प्रदायिक प्रश्न उठ खडा होगा) पर केवल इतनी सी बात ले ल कि शिव ब्रह्म-स्वरूप होने के कारण लिंग रूप म पूजित होत ह तो यह सिद्धा त भी निश्चित हो जाता है कि हमारे देश से लिंग पूजन इसी भावना को लेकर ससार म फैला था। बाद मे लोगो ने अथ का जो भी अनर्थ लगा लिया हो पर लिंग पूजन कामवासना की कल्पना स परे प्रारम्भ हुआ था। इसका जो गूढ अथ है वही इसका आधार था। यही लिंग पूजन की व्याख्या है। जो लोग लिंग प्रतीक का इसके अतिरिक्त कोई सासारिक अथ लगाते ह वे गहरी भूल कर रहे ह।

लिंग प्रतीक का विषय इतना महत्त्वपूण तथा रोचक है कि उस पर जितना ही लिखिए एक न एक नयी बात निकलती आती है। लिंग शिव त व का प्रतीक है। इस शिव तत्त्व से ही अक्षर तथा वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। अकारादिविसर्गान्त

शिवतत्त्व ।[1] इस शिव तत्व की जानकारी प्राचीन आर्यों का बहुत प्राचीन काल से थी यह सिद्ध हो चुका है। महजोदाडो तथा हडप्पा की खुदाई ने भारत भूमि पर प्रचलित सभ्यता की प्राचीनता सिद्ध कर दी है। हमारे देश का भूगोल हजारो वर्षो म भूकम्प वर्षा नदियो के कटाव आदि स काफी बदल गया है। हमारे प्राचीन स्मारक प्राकृतिक प्रभाव से बहुत कुछ नष्ट हो गये तथा मन्दिर मकान प्रतिमाए मूर्त्तियाँ पृथ्वी के गर्भ म चली गयी। मिस्र या ईरान के समान हमारा देश पर्वत तथा नदियो से शून्य नही है। हमारा देश जिस प्रकार प्राकृतिक उपद्रवो तथा परिवर्तनो का शिकार प्राचीन काल में रहा है वसा भौगोलिक इतिहास न तो ईरान का है और न मिस्र का। इसी लिए उन देशो म ४००० म ६००० वष पुरानी चीज मिलती ह। हमारे यहाँ नही। हमारे यहाँ २ स २२ ० वष पुरानी मत्तिया या खडहर प्राप्त नही थ। इसी लिए पश्चिम के विद्वानो ने यह अनुमान लगा लिया कि कला आदि की हमारी जानकारी इन देशो क द्वारा हुई। कि तु महजोदाडो की खुदाई न वह कल्पना भ्रमात्मक घोषित कर दी है।

मोहजोदाडो या महजोदरो तथा उससे लगभग १६० कोस उत्तर म हडप्पा या हरप्पा है। मुलतान से निकट सिंध प्रदेश आज के हजारो वष पहल का वह देश है जहा आदि आय निवास करते थ तथा जिसे डा सम्पूर्णानन्द न आर्यो का आदि देश सिद्ध किया।[2] यह वदिक युग का देश है। इसे सप्त सिंधव कहते थे। ऋग्वेद म इसको इसी नामसे पुकारा गया है।

सर्तव सप्तसिन्धून[3] इन्द्र ने गौओ का जीता सोम का जीता और सप्त सिन्धुओ के प्रवाह को मुक्त कर दिया। यह प्रयोग इन्द्र के सबस पहले के पराक्रम के वर्णन म किया गया है। इस प्रदेश म सात नदियाँ थी। यह देश सिन्धु नदी से लेकर सरस्वती तक था। इन नदियो के बीच म कश्मीर तथा पजाब देश भी आ गये। कुभी नदी

१ अकारादिविसर्गान्त शिवतत्त्व कादिडान्त वर्गाभो त
भूतपञ्चक तादिणान्त गन्धादि तन्मात्रपञ्चक
टादिणान्त पादादि वागन्त कर्माक्षपञ्चक, तादिनान्त
घ्राणादि श्रोत्रान्त बुद्धिकरणपञ्चक वागादि शब्दवाच्या
दया वकारान्ता राग विद्या कला मायाख्यानि तत्त्वानि।

—परात्रिंशिका पर अभिनव गुप्त की विवृति, पृष्ठ ११३

२ डा सम्पूर्णानन्द—"आर्यों का आदि देश प्रकाशक लीडर प्रेस इलाहाबाद तृतीय सस्करण, स० २ १३, पृष्ठ ४६ से ५६ देखिए।

३ ऋग्वेद १–३२–१२।

का भी जिक्र आता है। इसका नाम आजकल काबुल है। इसलिए काबुल नदी का देश भी सप्तसिंधव में था।[1] गान्धार देश भी इसी में शामिल था। ऋग्वेद का सूक्त ही इसका प्रमाण है—गन्धारीणामिवाविका—गन्धार के भेडों की भांति रोयेंवाली। (ऋ० मण्डल १–सू० १२६)। डा० सम्पूर्णानन्द ने श्री ए० सी० दास के[2] मत को स्वीकार किया है—सप्तसिंधव के उत्तर में हिमालय पहाड था। उसके बाद एक समुद्र था जो वर्तमान तुर्किस्तान के उत्तरी सिरे से आरम्भ होकर पश्चिम के कृष्ण सागर[3] तक जाता था। इस समुद्र के उत्तर में फिर भूमि थी जो उत्तरी ध्रुव तक चली जाती थी। दक्षिण में भी एक समुद्र था जो अब सूख गया है। उसकी निशानी साँभर झील बची है। शेष स्थान को हम राजपूताना या राजस्थान कहते हैं। यह समुद्र वहां तक जाता था जहाँ आज अरावली पर्वत है। पश्चिम में सप्त सिंधव अरब सागर से मिला हुआ था। पूर्व में भी एक समुद्र था। यह समुद्र प्रायः सारे उत्तर प्रदेश तथा बिहार को ढकता हुआ आसाम तक चला गया था—हिमालय की तलहटी के नीचे से। पश्चिम में सुलेमान पहाड था जिसके नीचे सकरा समुद्र था। पर भूगर्भशास्त्र से स्पष्ट है कि २५ ५० ० ० वर्ष में यह नक्शा बहुत कुछ बदल गया है। यह सिद्ध हो चुका है कि विंध्य पर्वत आदि की अपेक्षा हिमालय नया पहाड़ है। गंगा यमुना उसकी छोटी छोटी नदियां थीं। पहाड के उठने पर जमीन में गहरा गड्ढा हो गया। ज्यों ज्यों भूमि भरती गयी गंगा यमुना आगे बढ़ती गयीं। गंगा तो गंगासागर पहुंच गयी। उत्तरप्रदेश तथा बिहार ऐसे उर्वर प्रदेश ऊपर निकल आये। राजस्थान में मिट्टी लानेवाली नदियों की कमी थी अतएव समुद्र सूखकर बालू रह गया। प्राचीन काल की महानदी सरस्वती आज एक छोटी-सी नदी रह गयी है। यह राजस्थान के बालू में समाप्त हो जाती है। उसका नाम भी बदल गया—घाघर नाम हो गया है। हिंदू नागों का विश्वास है कि सरस्वती लुप्त होकर प्रयाग में गंगा यमुना के संगम में मिल जाती है। अस्तु उत्तर का सागर भी सूख गया और उसकी सन्तान कास्पियन सागर अरब सागर आदि बचे रह गये हैं।[4]

जिस देश का ५० ००० वर्ष पूर्व का भूगोल इतना बदल गया हो उसकी प्राचीन कला तथा उसके अवशेष का पता लगना वास्तव में असम्भव है। लोकमान्य तिलक ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आर्यों का मूल निवास आज के दस हजार वर्ष पहले उत्तरी ध्रुव प्रदेश में था।[5] डा० सम्पूर्णानन्दजी ने इस मत का खण्डन किया है।

१ डॉ सम्पूर्णानन्द—४४।
२ A C Das—Rigvedic India
३ Black Sea
४ देखिए—वही पृष्ठ ५१–५३।
५ वही पृष्ठ ३४।

वे ग्राय सभ्यता का इससे कही अधिक पुराना मानते ह । उनके अनुसार आर्यों का आदि देश सप्तसिधव प्रदेश था--पजाब स काबुल तक । सम्पूर्णानन्दजी आय जाति के उस प्रकार के टुकडे भी नही मानते जिस प्रकार पश्चिमी विद्वानो ने किये ह । इन्होने एक बडी सुन्दर दलील दी है । वे कहते ह कि यदि जाति को अग्रजी म स्पीशीज का समानाथक मान ल तो प्राणिशास्त्र के अनुसार जिनका यौन सम्बन्ध होता है वे एक जाति के हुए । घोडे और गधे म यौन सम्बन्ध होता है । उसकी सन्तान को खच्चर कहते ह । पर इस सम्बन्ध मे उत्पन्न सन्तान को यदि सन्तान हो जाय तब तो इनकी एक जाति हुई । खच्चर की सन्तान नही होती । अतएव घोडा और गधा भिन्न जाति के हुए । पर काला गोरा हब्शी नीग्रो किसी भी रग रूप देश का मनुष्य हो उनम आपस म यौन सम्बन्ध तो होता ही है सन्तान पदा होती है । अतएव व भिन्न जातिया कसे हो गयी ? श्री सम्पूर्णानन्दजी लिखते ह--

उपजातियो म जो प्रत्यक्ष भेद है उनका कारण भी कुछ होना चाहिए । जब यह बात निश्चित है कि मनुष्य मात्र की जाति एक ही है तब फिर उपजातियो की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई होगी कि लोग एक दूसरे स बहुत प्राचीन काल म पथक हो गय । सबके पूवज एक रहे हो या अनेक और सब आदिम मनुष्यो का जन्म किसी एक प्रदेश विशेष म हुआ हो या यगपत कई प्रदेशो म परन्तु बहुत दिन हुए मनुष्य अलग अलग टोलियो म बॅट गया । यह बटवारा कब हुआ ठीक नहा कहा जा सकता । पथ्वी पर कई बार भौगोलिक उपद्रव हुए ह ऋतु विपयय हुआ है । जहाँ आज ठढ पडती ह वहा कभी गर्मी पडती थी । जहा आज गर्मी है कभी वहाँ बफ बिछी थी । जहाँ आज समुद्र है वहाँ स्थल था । जहा स्थल है वहा समुद्र था । फिर भी अलग हुए ४०–५० हजार वष तो हुए ही होगे । क्योकि १ –१२ हजार वष पहले तो पथक उपजातिया बन चुकी थी[१] ।

एक ही जाति नही एक ही भाषा भी थी । डा० सम्पूर्णानन्द का कहना है कि[२] सचमुच कोई आय उपजाति है इस आर पहले पहल आज स लगभग १५० वष पहले ध्यान गया । उन दिनो कलकत्ता म सर विलियम जोन्स[३] सस्कृत पढ रहे थे । उनको पढते पढते यह देख पडा कि सस्कृत कई बातो म ग्रीक लटिन जमन और केल्टिक भाषा से मिलती है । यह विलक्षण बात थी इस भाषा साम्य का एक ही कारण समझ म आता था । अति प्राचीन काल म कोई भाषा रही होगी जो अब कही बोली नही जाती । उसी से यह सब विभिन्न भाषाए निकली होगी जसे सस्कृत या प्राकृत से हिन्दी मराठी

१ वही पृष्ठ २७ ।
२ वही पृष्ठ ३१–३२ ।
३ Sir William Jones

गुजराती आदि सर विलियम जोन्स ने तीन ही चार भाषाओं के साम्य पर ख्याल किया परन्तु बाद मे देखा गया तो बीसो भाषाए सस्कृत से मिलती पायी गयी। यदि हम भारत से पश्चिम चल तो पहले पश्तो फिर बलूची फिर ईरानी (फारसी) मिलेगी। यह तीनो प्राचीन जेन्द भाषा से निकली ह। जेन्द सस्कृत से बिलकुल ही मिलती है।' जो आर्य उपजाति थी उसकी दो ही निश्चित शाखाए हुई। एक वह जिसका सम्बन्ध भारत से हुआ दूसरी वह जिसका सम्बन्ध ईरान स हुआ पहिली की भाषा सस्कृत दूसरी की जेन्द या पलहवी थी। पहली का धम ग्र थ वेद दूसरी का अविस्ता है। [१]

भाषाओं क साम्य के उदाहरण में डॉ० सम्पूर्णानन्द ने कई प्रचलित शब्द बतलाये हैं। वे लिखते ह कि इन सभी भाषाओं में लडकी के लिए जो शब्द आया है वह सस्कृत के दुहित (दुहिता) स मिलता है। दुहित दुह धातु से निकला है। इसका अथ है— दुहनेवाली। इससे अनुमान होता है कि उन दिनों गऊ दुहन का काम लडकी के सुपुर्द था द्यौस (द्यौ द्यावा) दिव धातु स निकला है। इस धातु का अर्थ है चमकना। इसी धातु से देव निकला है। द्यौस ग्रीक म ज्यूस[२] रूप म पाया जाता है द्यौ पितर ज्यपिटर[३] हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि आर्य लोग अपने उपास्यों को चमकते शरीरवाला मानते थ। द्वार दर डोर बतलाते ह कि उनके घरों मे दरवाजे होते थे। [४]

कुछ अन्य शब्दों का उदाहरण देखिए—

सस्कृत	ईरानी	अग्रजी
पित	पिदर	फादर
मात	मदर	मदर
भ्रात	बिरादर	ब्रदर
दुहित	दुख्तर	डाटर
पद पाद	पा	फुट
गो	गाव	काउ
भ्रू	अब्रू	ब्राउ
भू	(बू) दन	बी
अस्	अस–हस्त (तन)	(शुद्ध रूप नही मिलता। इज (है) में विद्यमान है)[५]

१ वही, पृष्ठ ३७। २ Zeus—यूनान के सबसे बड़े देवता।
३ गुरु। ४ वही पृष्ठ ३५। ५ वही पृष्ठ ३२।

इसी आदि भाषा को इण्डो यूरोपीयन (भारत यूरोपीयन) तथा इण्डो जर्मन कहा गया। एक ही जाति को यूरोप एशिया की आर्य जाति का पूर्वज मानने में हिचक करनेवाले अथवा आर्य ने को भारत के आर्यों की सन्तान मानने में संकोच करनेवाले ने पाश्चात्यों ने इण्डो आर्यन —भारतीय आर्य का नामकरण किया है। पर इससे हमारे धर्म हमारी सभ्यता की प्राचीनता सिद्ध तथा स्थापित हो ही जाती है हमारा यह कथन भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में जो प्रतीक बने वे मध्य एशिया से लेकर यूरोप अमरिका तक फैल गये। इनमें सबसे प्राचीन प्रतीकों में शिवलिंग था।

पूरब पश्चिम की मिली जुली सभ्यता को किसी न किसी रूप में हवेल ने भी स्वीकार किया है। उन्होंने हिन्द आर्यन सभ्यता का बार बार उल्लेख किया है। हैवेल की पुस्तक काफी पुरानी हो गयी है। उसमें लिखी बातों को आज खण्डन किया जा सकता है जैसे उन्होंने लिखा है कि ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व से प्राचीन भारतीय कला की सामग्री उपलब्ध नहीं है[1]। मोहनजोदाडो तथा हडप्पा की खुदाई से अब ईसा से ३००० वर्ष पहले की सामग्री प्राप्त होने लगी है। अशोक काल की कला के सम्बन्ध में हवेल का विचार है कि उन्होंने ईरानी यूनानी मजदूरों को नियुक्त कर इमारत तथा स्तूप आदि बनवाये थे अतएव उस समय की कला भारतीय यूनानी ईरानी सम्मिश्रण है। वह युग बड़े महत्व का था यह निस्सन्देह है। इसी शताब्दी में (अशोक ने ईसा से २५६ वर्ष पहले बौद्ध मत ग्रहण किया था) साइरस ने ईरानी साम्राज्य की स्थापना की थी। सिकन्दर महान ने उसे नष्ट कर दिया था। यूनानी सेना भारत चढ आयी। अतएव कई देशों की कला का समन्वय तो हुआ होगा। पर हवेल इसके भी पूर्व का इतिहास देकर मिली जुली सभ्यता का अच्छा प्रमाण देते हैं। उनके कथन के अनुसार प्राचीन आर्य लोग अग्नि पूजक होते थे। अतएव वे अपनी झोपड़ी ऐसी बनाते थे जिसमें अग्नि पूजन बराबर होता रहे तथा धुआँ यानि ऊपर से निकलता रहे। मेसोपोटामिया तथा ईरान के आर्य लोग भी अपनी कच्ची झोपड़ियाँ इसी प्रकार तिकोनिया बनाते थे। उसी से मन्दिरों का तिकोना शिखर बनना शुरू हुआ[2]। ईसा से १७८६ वर्ष पूर्व बबीलोन साम्राज्य नष्ट हो गया। हित्ती लोगों ने उसे तहस नहस कर डाला। जब वे नगर छोड़कर चले गये तो कस्सित (क्षत्रिय) जाति का शासन प्रारम्भ हुआ।[3] इनका ६०० वर्ष तक शासन रहा।

१ E B Havell—A Hand bool of Indian Art'—Pub John Murrey Albemarle Street London Edition 1920 page 10

२ वही पृष्ठ ३। ३ वही पुस्तक, पृष्ठ ९ तथा ११।

४ वही पुस्तक पृष्ठ ९।

कस्सित लोगो के मुख्य आराध्य देव सूय थे। इनके राज्य के जरा उत्तर ताइग्रीज तथा यूफ्रेनीज नदियो के बीच मे मित्तनी (मिजाणि) साम्राज्य की स्थापना हुई। इनके उपास्य देव इन्द्र वरुण सूय तथा अग्नि थे। ये लोग अश्विनीकुमार का भी पूजन करते थे। इन्ही मित्तनी लोगो मे दशरथ नामक राजा हो गय ह जो रामायण के दशरथ हो सकते है या सम्राट अशोक के पुत्र दशरथ भी हो सकते है। मिस्र मे तेल अल अमनो नगर मे जो सामग्री मिली है उसमे मिट्टी के कागज पर (ठीकरो पर) दशरथ नरेश का अपने रिश्तेदार मिस्र के नरेश अमेनहेतय ततीय के नाम पत्र-व्यवहार है[१]। मित्तनी लोगो के राज्य में लारस नामक पवतमाला थी जिसे वे लोग वषभ देव की सम्पत्ति मानते थे तथा तारागणा के बीच स सूय का अपना माग निकाल लेना—इस बात का प्रतीक उस पवत का मानते थे। मित्तनी लोगो क पडोसी हित्ती लोग थे। वे शिव लिग के उपासक थे। उनके एक प्रदेश तथा नगर का नाम ही शिव था। ऐसा लगता है कि इस क्षत्र मे यह लारस पवत ही कलास पवत था जिस पर शकर का वास समझा जाता था[३]। हित्ती लोग जिस देवता की पूजा करते थे वह त्रिशलधारी थे। उनका वाहन वृषभ था।

इस प्रकार डा० सम्पूर्णान द के सिद्धान्त का प्रतिपादन हो जाता है कि भारत से लकर एशिया यूरोप तक एक ही आय सभ्यता फली हुई थी। अशोक के स्तूप तथा मिस्र क पिरामिड भी तिकोने ही हैं। अशोक के स्तूपो तथा शिलालेखो पर छत्र बना हुआ मिलता है। हैवेल इसे अधिकार का भी प्रतीक मानते ह। हैवेल न यह भी सिद्ध किया है कि स्तूपो की रचना प्राचीन आर्यो की धार्मिक क्रियाओ के आधार पर हुई है। स्तूपो मे प्राय भगवान बुद्ध अथवा महान सन्तो का फूल (अस्थि) रखा जाता था। अत वह उपासना का श्रेष्ठ स्थल हुआ। उसके चबूतरो को वेदिका कहते थे। वदिक काल मे वदिक यज्ञो के स्थल को—पीठ को—वेदिका कहते थे। वहा पर बलि होती थी। इसी को मेधा कहते थे। स्तूप के चारो ओर प्रदक्षिणा का जो स्थान होता था उसे मेधी कहते थ[४]। इस प्रकार हैवेल के कथनानुसार बौद्ध धम चक्र से लेकर स्तूप तथा सघा की रचना म वदिक सभ्यता की कला का अनुकरण किया गया है।

मूर्ति काल की कला का जिक्र करते हुए हैवेल त्रिमूर्ति के सिद्धा त का मानते ह—ब्रह्मा विष्णु महेश[५] इसीलिए विष्णु के मन्दिर मे शिव की प्रतिमा मिलती है। द्राविड

१ वही पृष्ठ १०।

२ हित्ती असल मे क्षत्रिय थे। सिकन्दर के समय तक सिन्ध के आस-पास इनको "खत्ती" कहते थे। इन्हीं को सम्भवत आज खत्री कहा जाता है।

३ वही, पृष्ठ १। ४ वही, पृष्ठ १५। ५ वही, पृष्ठ ८६ ८७।

लोगो के शैव मंदिर म शिखर पर उलटा कमल बना हुआ है।[1] प्रतीत होता है कि मंदिर के बनानेवाले यह घोषित करना चाहते ह कि शिव ही विष्णु है तथा विष्णु शिव ह। दक्षिण भारत मे प्राप्त शकर की मूर्तियो म सबसे बडी पतिमा तजोर मे मिली है—नटराज की। वेदी की ऊचाई छोडकर यह ४ फुट लम्बी है ऊची है। एलीफटा तथा एलोरा की गुफाओ म शिव ताण्डव की विशाल प्रतिमाए उपलब्ध ह। त्रिमूर्त्ति शकर के सत्त्व रज तम (त्रिशल) तीन गुणा मे सहार का रूप–तामसिक रूप ताण्डव नत्य है। शिव का वह भयावह रूप उनकी सहार मद्रा ज्ञानमार्गी शवो को बहुत प्रिय है। ताण्डव नत्य की उनकी प्रतिमाम सहारक शक्तिया के अनक प्रतीक वतमान है।[2] शिव का तामसिक रूप ही भरव है। शिव की अर्द्धांगिनी पावती का ही दूसरा नाम दुर्गा है जो अन्धकार तथा अनाचार की शक्तिया से बराबर सघष करती रहती ह। ये महिषासुर मर्दिनी ह। महिषासुर वध की उनकी विशाल मूर्ति जावा म प्राप्त हुई है जो डच अजायबघर लदन म रखी हुई है।[3] जिस प्रकार हिन्दुओ का त्रिमूर्ति है उत्पादक (ब्रह्मा) पालक (विष्णु) तथा सहारक (शिव) उसी प्रकार शिव की तीन शक्तियाँ ह सत्त्व रज तम तीन गण ह तीन शल–त्रिशल ह उसी क अनुसार बौद्धा के भी तीन रत्न ह—त्रि रत्न बद्ध सघ धम्म (धम)।[4]

कमल के प्रतीक पर हैवल न काफी विस्तार स विचार किया है। यह प्रतीक रहस्य मय है[5] यह व भी स्वीकार करत ह। बौद्ध लाग शरीर के भीतर सहापद्म की रचना मानत थ। प्रतीकरूप म उनकी इमारता पर कमल बना हुआ है उन्ही क अनुकरण म मुगल इमारता पर अकबर के शासनकाल स कमल बनने लग थे।[6] कमल को सूय का प्रतीक भी मानते थे। सष्टि की तरगा म कमल क समान प्रवाहित होनेवाला सूय। कमल का यह प्रतीक ईरान ने भारत से सीखा तथा अपनाया था।[7] श्री ई० ए० सी० क्रेसवल का कहना है कि तमूर लग न इस प्रतीक को भारत से प्राप्त कर समरकन्द की अपनी इमारता पर तथा दमिश्क म अपनी मस्जिद पर स्थापित किया था।[8] विसट स्मिथ न इस बात का खण्डन किया है।[9] हैवल लिखत ह कि कमल पुष्प की

१ उलटे कमल के सम्बन्ध म हम कमल के अध्याय म लिख आये हैं।
वही पृष्ठ १८३। २ वही, पृष्ठ १८३।
४ वही पृष्ठ १८७। ५ वही पृष्ठ १३६।
६ वही पृष्ठ १३८ ३७। ७ वही पृष्ठ १४५।
८ वही, पृष्ठ ४१ तथा १४५।
९ E A C Cresswell का लेख– Indian Antiquary —July 1915
१ Vincent Smith–Akbar The Great Moghul—page 435

भूमि भारतवष है। वदिक आर्यों का सम्बन्ध यूफ्रेतीज नदी तट के आर्यों से--असीरिया मिस्र तथा ईरान के आर्यों से था। अतएव भारतीय कमल का प्रतीक चारो ओर भारत से ही पहुचा था।[१]

यदि कमल भारत से ससार मे प्रतीक के रूप मे पहुच गया और सबने इसका यौगिक तथा रहस्यमय रूप समझकर नही ग्रहण किया तो इसमें प्रतीक का दोष नही है। समय तथा दूरी के अनुसार वस्तु का तात्विक अर्थ बदलता जाता है। इसी प्रकार अन्य भारतीय प्रतीको का रूप भी और अर्थ भी विदेशो मे बदलता गया। जावा म ब्रह्मा की जो मूर्ति मिली है (लेडन के अजायबघर मे सुरक्षित है) उसमें उनकी सौम्य मद्रा है दाढी है। जावा म सभी देवताओ के दाढी है।[२] किन्तु भारत मे दाढी सहित देव मूर्त्तियाँ विरले ही मिलेंगी। महेंजादाडो मे प्राप्त मर्त्तियो के दाढी है मछ नही है। यह भी बडा प्रकट अन्तर हो गया। विष्णु आकाशगभ है--सूय ह। रात्रि म अनन्त रूप म अनन्तनाग--शेषनाग पर शयन करते ह। उषा लक्ष्मी ह। इनका स्वागत करती ह। इस प्रकार उषारूपी लक्ष्मी के स्वागत से विष्णुरूपी सूय प्रकट होते ह। यह सब प्रतीक के रूप म नही है तो और क्या है? हैवेल के अनुसार प्राचीन समय म लिंग ब्रह्मा का सष्टि क उत्पादक का प्रतीक होता था। ससार के उत्पत्तिकर्ता के रूप म पितामह ब्रह्मा ही शिव ह।[३] एलीफटा गुफा (बम्बई) म शिव मदिर के चार द्वार तथा अष्टदिग्पाल से मुक्त चतुर्मुखी ब्रह्मा लिंगाकार बने हुए ह। इसी प्रकार मेसापोटामिया म सूय का प्रतीक वषभ तथा लिंग दाना ही था।[४] चार द्वार चार दिशाओ के प्रतीक ह। इससे ही मिलता जुलता प्रतीक आदि बुद्ध का भी है। उनकी शक्ति का नाम था--प्रज्ञाऽपरिमिता यानी, अपरिमित ज्ञान। पहले प्रतिमा के रूप म लिंग बनते थ। बहुत बाद म सादा लिंग ही सष्टि के रचयिता का प्रतीक बन गया--ऐसा हैवल का मत है।[५]

प्राचीन काल तथा प्राचीन वस्तुओ का निणय करने म महजोदाडो की खुदाई न नयी जान पैदा कर दी है। हडप्पा महजोदाडो से लगभग १६० कास उत्तर है। खुदाई से यह बात सिद्ध हो गयी है कि आज के ५००० वष पहले उस प्रदेश मे बडे बडे नगर बसे थे। पक्के घर थ कला का काफी विकास हो चुका था। ईरान के पश्चिम यूफ्रेतीज (फरात) तथा टाइग्रीज (दजला) नदियो के बीच के प्रदश की सभ्यता का जिक्र हम कर आये ह। वहा की सबसे पुरानी सभ्यता सुमर अक्काद की सभ्यता थी। चल्डिया बबिलन आदि

१ हैवेल की पुस्तक पृष्ठ ४४। २ वही पृष्ठ १६४।
३ वही, पृष्ठ १६३। ४ वही, पृष्ठ १६३। ५ वही, पृष्ठ १६३।

की सभ्यता बाद की है। सुमेर अक्काद की खुदाई से वह सभ्यता ६००० वष पुरानी सिद्ध हो चुकी है। उसके भग्नावशेष जो प्राप्त हो रहे हैं उनसे प्रकट होता है कि मोहनजोदाडो तथा हडप्पा और सुमेर अक्काद की सभ्यता म बडा साम्य था। एक ही धारा प्रकट होती है। मकानों की बनावट मूर्त्तियाँ—सब मिलती जुलती हैं। दोनों की भाषा भी एक ही है।[1] उनके नाम भी समान हैं।

इनके एक उपास्य इन्दुरु (वैदिक इन्द्र) तथा शमस (सूर्य) थे। सूय को शु खा—परदार मछली और विष्णु एश—बडी मछली मानते या कहते थे।

देवों की मूर्त्तियाँ म आधा शरीर मनुष्य का आधा मछली का है। हम भी मत्स्यावतार रूप म विष्णु की पूजा इसी रूप म करते हैं। देवी की मूर्त्तियाँ एक ही प्रकार की दोनों भागों म मिलती हैं। शिव की मूर्त्तियाँ भी मिलती हैं। शिव की मूर्त्ति योगी मुद्रा म है (मोहनजोदाडो म)। ध्यान लगाये सिंहासन पर बैठे हैं। मस्तक पर दो सींग हैं। सिंहासन के नीचे दो हिरन हैं। मूर्त्ति के चारों ओर चार पशु बैठे हैं— व्याघ्र हाथी भैंसा और गैंडा। शिव की इससे प्राचीन प्रतिमा भारत म नहीं मिलती।[2] इस ही साम्य आदि के आधार पर डॉ० वडल ने प्रतिपादित किया है कि सुमेर निवासी ही प्राचीन आर्य थे। सुमेर की सभ्यता ही प्राचीन आर्य सभ्यता थी। सुमेरवालों की एक शाखा ने सिन्ध प्रान्त को जीतकर मोहनजोदाडो बसाया और बाद म उसकी शाखाएँ सप्तसिन्धव तथा भारत के कोने कोने म पहुची।[3] जो हो समची आर्य सभ्यता मिली जुली थी इसका एक सुन्दर प्रमाण डॉ० सम्पूर्णानन्दजी ने दिया है। वे लिखते हैं कि वेदों म कई ऐसे शब्द हैं जिनका कुछ ठीक अर्थ नहीं लगता—जैसे जभरी तुफरी इत्यादि। इनका अर्थ लगाने के लिए भारत के बाहर दृष्टि डालनी पडेगी। ये ईराक की नदियों पहाडों तथा नगरों के प्राचीन नाम हैं। वेदों म कई ऐसे नरेशों के नाम आये हैं जो भारत म नहीं ईरान म शासन करते थे।[4]

आर्य सभ्यता का विस्तार भारतीय सभ्यता की छाप तथा हमारे प्रतीकों का चतुर्दिक प्रचार इन सभी बातों पर काफी प्रकाश डाला जा चुका। जिन प्रतीकों की व्याख्या करने म पश्चिम के विद्वान इतना उलझ गये उन प्रतीकों के सम्बन्ध मे वास्तविक जानकारी के लिए उन्हें भारत की सभ्यता तथा इतिहास का अध्ययन करना चाहिए था। इसी लिए वृषभ सर्प कमल शिवलिंग आदि प्रतीकों के सम्बन्ध म बराबर भ्रान्ति म वे पडते गये। अनेक विद्वान यहाँ तक कहते हैं कि शिव प्राचीन देव नहीं हैं। उन्हें प्राचीन देव नहीं

१ सम्पूर्णानन्द—आर्यों का आदि देश पृष्ठ १९७।
२ वही पृष्ठ १९८। ३ वही, पृष्ठ १९९। ४ वही पृष्ठ १९८।

कहा जा सकता है। वे बाद मे आय देवताओ मे मिला लिय गये। ऋग्वेद में कई मन्त्रा में रुद्र को घोर कहा गया है। रुद्र का रूप तथा स्वभाव भयानक है अतएव वदिक देवता रुद्र तथा शिव भिन्न ह। वदिक विधानो में यज्ञभाग सब देवो का अग्नि मे डाला जाता था पर रुद्र का कही चौराहे पर रख दिया जाता था। माशल का ऐसा ही मत है।

इसका खण्डन करते हुए डा सम्पूर्णानन्दजी लिखते ह कि वेदा मे देवो की नही प्रत्युन देवताओ को जगत का सञ्चालन करनेवाली शक्तियो की उपासना की जाती है। वदिक ऋषि ऐसा मानते थे कि विश्व के मल म एक परा शक्ति है। उसके सौम्य और असौम्य दोनो रूप ह। सौम्य भेद स तदभिमानी देव को ईशान पशुपति शिव शम्भु ईश्वर आदि नामो स पुकारते थ। रुद्र को शिवा तन् अघोरा पापकाशिनी कहकर स्मरण किया जाता था। परा शक्ति स्वय कहती है— अह रुद्राय धनुरातन मि ब्रह्म द्विषे शरव ह नवा उ (म ब्रह्मद्वेषी का हनन करन के लिए रुद्र को धनु देती हू)। यह शिव और सौम्य रूप सम्पूज्य ह। पर तु रुद्र श द उन शक्तियो का भी वाचक है जो रोग शोक कलह क रूप म जीवो को सताती ह। यह अशिव है। एक मत्र म असख्याता रुद्र कहा गया है। ऐसे रुद्र दूर रखे जाते ह। [१]

शिव की प्राचीनता तथा उनके आय देवता हाने के सम्ब ध म इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नही। हमारा आशय इतनी पक्तिया से ही स्पष्ट हो गया है। शिवलिग की महत्ता तथा प्राचीनता भी सिद्ध हो गयी।

१ वही, पृष्ठ २०८।

अन्धविश्वास प्रतीक

अध विश्वास किसे कहते ह ? इसकी व्याख्या कुछ विस्तार से करनी पडेगी। पर ऐसी व्याख्या करने के पूर्व ऐसे विश्वास के कुछ उदाहरण देना उचित होगा। ऐसा विश्वास जो अथाह हो तर्क से दूर हो उसी को अध विश्वास कहेंगे। फक और वगनल ने अपने श दकोष म इस प्रकार के अध विश्वास की व्याख्या करते हुए लिखा है--

ऐसा विश्वास जो तर्क से परे हो विशेष कर भय की भावना से उत्पन्न हुआ हो तथा चमत्कारों म विश्वास म सयक्त हो। ऐसी ही भावना से उत्पन्न रीति रिवाजों का अन्ध विश्वास कहते ह। ऐसी धार्मिक प्रथा में विश्वास जिसे अन्य लोग कारणहीन समझते हों आधिदैविक चीजो म विश्वास के साथ ही तर्क रहित रूप से जतर मतर सकेत तथा शकुन अपशकुन मे विश्वास।[१]

इस प्रकार अन्ध विश्वास म मनुष्य न अपने लिए ऐसे कराडो प्रतीक बना रख ह जिनका भिन्न अर्थ होता है तथा जिनका वह भिन्न रूप म उपयोग करता है अन्ध विश्वास म उत्पन्न प्रतीको की सख्या इतनी अधिक है कि उनकी गणना करना या विवेचन करना दोनो ही कठिन ह। सकडो वर्षो म अपने नित्य के जीवन म ऐसे प्रतीक बने लोग ऐसे सकेत बने होग जिन पर काफी सख्या म सभ्य तथा असभ्य पढे लिखे तथा अपढ लोग विश्वास करते ह।

भारतवर्ष म ऐसे हजारो व्यक्ति मिलेंगे जो मार्ग म मुर्दा मिलना शव मिलना और वह भी दायी तरफ शव या अर्थी मिलना बडा शुभ मानते ह। उनका यह विश्वास है कि यह बडा शुभ शकुन है और काम जरूर सफल होगा। किन्तु रास्ते म जिसका भी दायी तरफ मुर्दा मिले उसका काम बन जायगा यह तो असम्भव बात है। पर कुछ का विश्वास कुछेक का काम बन जाना ही अध विश्वास का कारण बन जाता है। यदि घर म निकलते समय धोबी मछली दही आदि पहले मिल जाय तो कहा जाता है कि काम का बनना निश्चित है। इस प्रकार शव दही धोबी मछली य सभी शुभ शकुन हुए। काय की सफलता के प्रतीक हुए।

१ Funk and Wagnall —Practical Standard Dictionary of the English Language—Vol II—page 1130 (1945)

इसके विपरीत यदि घर से निकलते ही तेली मिले तेल मिले, काना आदमी मिले, खाली घडा मिल पीठ पीछे छीक हो तो समझा जाता है कि काम चौपट हो गया। अक्सर लोग घर वापस आ जाते ह। एक ग्लास पानी पीकर या पान खाकर तब फिर बाहर निकलते ह। मने एक बुजुर्ग को चार बार इसी प्रकार घर के भीतर बाहर करते देखा। जब निकले कोई न-कोई अपशकुन हो ही गया। आखिर उन्होंने उस दिन घर स बाहर निकलना ही अस्वीकार कर दिया।

अपशकुन प्रतीक मे एक विशेषता यह भी है कि सब जगह इनका एक ही गुण नही माना जाता। हमारे देश म भरा घडा बडा शुभ माना जाता है। कई देशो मे यह मृत्यु सूचक हो जाता है। बिल्ली या स्यार चाहे किसी रग का यदि रास्ता काट दे तो बडा अशुभ समझा जाता है। अक्सर लोग उस रास्ते को छोड देते ह। पर अग्रेज लाग खास तौर पर बिल्ली को उसम भी काली बिल्ली को बडा शुभ मानते है। यदि काली बिल्ली रास्ता काट दे तो कहना ही क्या है। यदि भूल से कोई व्यक्ति उलटी कमीज उलटा जाधिया पहन ले और फिर उसे सीधा कर ले तो अग्रेज या फ्रच इस बडा शुभ समझते ह। उनके अध विश्वास क अनुसार काय अवश्य सिद्ध होगा। पर हमार देश म उलटा वस्त्र पहन लेना शुभ नही समझा जाना।

कुछ अध विश्वास समान रूप स मान्य ह। छीक यदि सम्मुख हो तो कम अशुभ हाती है यदि पीठ-पीछे हा ता अति अशुभ हाती है। एसा विश्वास अग्रज फ्रच हिन्दुस्तानी पाकिस्तानी सभी का है। पुरुष के लिए दायी आँख फडकना तथा स्त्री के लिए बायी आँख फडकना ये सभी लोग शुभ तथा इसके विपरीत अशुभ मानते ह। घर पर यदि रात को उल्लू बोले तो मत्यु का सकेत है। कौवा बोले तो समझिए कि मेहमान आनवाला है। पर म उलटा जूता पहनना अशुभ होता है इत्यादि।

अभी हम स्वप्न प्रतीक की बात नही करते ह। पर ऊपर लिखे शुभ अशुभ प्रतीक आखिर कसे और क्या बने ? काना आदमी अपशकुन क्या समझा जाता है ? उस बेचारे का क्या दोष यदि भगवान् ने उसकी एक आँख छीन ली ? तेल मनुष्य का भाजन है। मछली भी। तेल या घी म मछली पकायी या भूनी जाती है। दही भी भोजन की वस्तु है। पर दही चाह सडा गला ही क्या न हो वह शुभ सूचक बन गया और शुद्ध तेल अशुभ हो गया। हिन्दू मुर्दा छूकर स्नान करता है। जिसके घर का प्राणी उठ गया वह राता कलपता जा रहा है और सडक पर चलनवाला यह सोचकर प्रसन्न है कि उसे कोई शुभ प्रतीक मिल गया! इस प्रकार की बात सोचने से तर्कयुक्त नही प्रतीत होती पर इनक शुभाशुभ फल का कोई न कोई इतिहास अवश्य होगा।

किन्तु अध विश्वास तक के तराजू पर नही तौले जा सकते। वे उस आशका तथा

भय म उत्पन्न होते ह जिसके लिए मनुष्य के पास साधारणत कोई उत्तर नही है। किसी मे अपना ऋण दिया रुपया वसूल करने जाना हो या ऋण लना ही हो यदि रास्ते मे यह शका मन म हो कि सफल होग या नही तो एसी अनिश्चित दशा म शकुन अपशकुन का बडा भागी महारा हो जाता है। इसलिए आशका तथा निश्चितता म अध विश्वास बनते बिगडते ह यह तो निश्चित सी बात है। दक्षिण अफ्रीका में एक एसी जगली जाति है जो मुक्ति के लिए भगवान के पास पहुचने के लिए किसी गहुअन सप से काटा जाना ही एकमात्र उपाय समझती है। अतएव जब किसी का मरना होता है गहुअन सप के बिल म हाथ डाल दते ह। यह अध विश्वास इसलिए पदा हुआ कि एक बार उस जाति के लोगो ने एक वृक्ष के नीचे खब पूजा पाठ किया कि भगवान प्रकट हो। रात्रि म ही गेहुअन साप अण्डे दे गया। दूसरे दिन लोगो ने उसी को भगवान का रूप समझा। उन अण्डो की पूजा होने लगी। कई दिन तक पूजा चलती रही। आखिर उसम सप निकल। एक कुमारी कन्या उन पर ही गिर कर प्राथना करने लगी। सप ने काट लिया। वह विक्षिप्त सी हो गयी। लोगो ने समझा कि उस पर भगवान सवार हो गये ह। वह मर गयी। लोगो ने समझा कि भगवान अपने घर ले गये। बस यही कथा है उस अध विश्वास के उदय की।

प्राय सभी अध विश्वासो की ऐसी ही कहानी है। काना आदमी देखना भारत म अनेक स्थानो म अशुभ मानते ह। यह अध विश्वास धीरे धीरे पनपा होगा। एसे ही मुर्दा देखना शुभ तेल या तेली देखना अशुभ दही तथा मछली देखना शुभ दूध देखना अशुभ ब्राह्मण तथा भगिनि देखना शुभ—यह सब यात्रा के लिए शुभाशुभ विचार किसी न किसी कारणवश ही पदा हुए होगे। श्रीमती मरे एसन ने नजर लगने की बात को भी अध विश्वास की श्रेणी म रखा है। नजर लग जाने का अध विश्वास अपढ लोगो म ही नही पढे लिखे भारतीयो म भी प्रचुर सख्या म पाया जाता है। यहा तक कि शनिवार या मगलवार को यदि किसी को यह कहे द कि तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है तो वह बुरा मान जायगा। बच्चो को नजर से बचने के लिए उसके मस्तक पर काजल का टीका लगा दिया जाता है। श्रीमती मरे के कथनानसार भारतीय हिन्दुओ से कही अधिक भारतीय मुसलमानो म नजर सम्बधी अध विश्वास है।[१] वे लिखती ह कि भारतीय लोगो का विश्वास है कि काने आदमी की नजर जल्दी लगती है। जिनकी आखो में काजल लगा रहता है उनकी आखो म किसी की नजर नही लगती।[२] जादू टोना टोटका से बचने के लिए तावीज बाँधने का भी तरीका है।

१ Symbolism of the East & West पृष्ठ १३९। २ वही पृष्ठ १३९।

यूरोपियन लाग भी नजर जादू टोना टोटका तथा अपशकुन काफी मानते हैं। श्रीमती मरे का कहना है कि एक स्कॉच महिला कही जा रही थी। रास्ता काटकर एक खरगोश निकल गया। बस लाख समझाने पर भी वे आगे नही बढी। वापस लौट गयी। घाड की नाल अगर माग में मिल जाय तो खास तौर से अग्रज इसे बडा शुभ मानते ह। अग्रेज लोग कुछ खास पत्थरा को भी बहुत शुभ समझते ह।[१] यनान मे सु दर बच्चा का नजर बहुत जल्दी लगती है। इसी लिए उनकी माताएँ उनकी टापी मे सिक्के सी लेती ह। यूनान के कुछ भाग मे किसी बच्चे को कितना प्यारा बच्चा कहना भी अशुभ माना जाता है। स्मरना (तुर्किस्तान) मे ऐसा विश्वास है कि कुछ लाग ज म से ही अशुभ पदा होते ह। भूरी आखवालो को खास तौर पर अशुभ समझा जाता है।[२] नेपुल्स (इटली) म बच्चा को नजर स बचाने के लिए सीप इ यादि हाथ या गले म पहना देते ह। दक्षिणी टाइरोल मे घुडसवार लोग हवा में चाबुक फटकारते रहते थे ताकि भूत प्रेत की बाधा न लगे। ताजा मक्खन या दूध पर क्राम बनाते थे ताकि भूत उसे जूठा न कर दे। दक्षिणी आयरलण्ड में भी कुछ इसी प्रकार की क्रियाए जाती थी और ह भी। टाइराल निवासी अपने टूटे हुए दाता को फकते नही किसी सुरक्षित स्थान पर रख देते ह ताकि कयामत के दिन जब वे कब्र से उठे उनके शरीर का कोई भाग खोया हुआ नही पाया जायेगा। सवाय प्रदेश (फ्रास) मे सोमवार तथा शुक्रवार को मुर्दा दफनाना अशुभ मानते ह। जिस प्रकार हमार यहाँ पञ्चक मे मरन पर एसा विश्वास है कि साल के भीतर पाच मौत होगी सवायवाला का विश्वास है कि यदि सामवार या शुक्रवार का मुर्दा दफनाया गया तो साल के भीतर कोई-न कोई मात ज़रूर होगी। ग्लास्टरशायर (ब्रिटेन) म यदि काई पालतू पशु अशुभ समझा जाता है तो उसे त्रिमुहानी (जहाँ तीन सडक मिलती ह) पर खडा कर देते ह। इगलैण्ड तथा जर्मनी के कुछ देहाता म बच्चा का सितारा की ओर उगली उठाना बुरा समझा जाता था।[३] सितारा का देवदूता का नेत्र समझा जाता था। जिस व्यक्ति को बहुत सतान मर जान पर बच्चा हाता है उसकी नाक छेद दी जाती है। उसे नत्था या नत्थी (नत्थू) कहते ह। यरोप के कई स्थाना म यह रिवाज प्रचलित था।[४] लका म अपन शत्रु के सहार के लिए उसका पुतला बनाकर उसम सूइया चुभोकर जमीन म गाड देते ह।[५] राइन नदी के तट पर स्थित मेयीन नामक स्थान म एसा विश्वास है कि यदि कोई

१ वही, पृष्ठ १४१। २ वही पृष्ठ १४४।

३ वही, पृष्ठ १५३। ४ वही, पृष्ठ १६९।

५ वही, पृष्ठ १६९।

व्यक्ति अपने पुराने कपड़ों में जिन पर उसका नाम लिखा हो दफना दिया जाय तो साल भर के भीतर उसके घर में सात मौत होंगी।[१]

ये सब क्या है? अंध विश्वास से उत्पन्न प्रतीक हैं। इनकी सत्ता स्वतः नहीं, परम्परा तथा रूढ़ि से है। यदि किसी के घर में किसी कार्य के बाद कोई अशुभ हो गया तो वह सदा के लिए उस कार्य को अशुभ का प्रतीक मान लेता है और धीरे धीरे इस विश्वास की छत चारों ओर फैल जाती है। यह बड़े ही मार्के की बात है। बड़े महत्व की बात है। इस पर ध्यान देना आवश्यक है। सभ्यता के प्रसार से अंध विश्वास भी समाप्त हो रहे हैं पर बहुत धीरे धीरे।

अंध विश्वास प्रतीक का रूप तभी धारण कर लेते हैं जब उनका धार्मिक स्वरूप बन जाता है। एडोल्फ हानक ने[२] यूनानी तथा रोमन धर्म पर अच्छा प्रकाश डाला है। आत्मा की सत्ता में यूनानियों का विश्वास था। वे आध्यात्मिक विवेचन की ओर मुड़े। प्लेटो सुकरात ऐसे लोगों ने आध्यात्मिकता की ओर ध्यान दिलाने के लिए धार्मिक रूढ़िवाद तथा धार्मिक अंध विश्वास के विरुद्ध विद्रोह किया। इसी लिए सुकरात को प्राण दण्ड मिला था। ब्रिटेन में ड्रुयिदवाद[३] ने पुनर्जन्म का आवागमन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उन्होंने भी प्राचीन धार्मिक अंध विश्वास के विरोध में आवाज़ उठायी। नार्वे तथा स्वडेन में भी प्राचीन काल में यही हुआ। प्राचीन बबीलोन तथा असीरिया की सभ्यता में भी देवी देवों के नाम पर हजारों वर्ष पहले धार्मिक अंध विश्वासों की परिपाटी बन गयी थी जिनके विरुद्ध बराबर नये नये आदर्श निकला करते थे। प्रसिद्ध प्राचीन इतिहासकार हीरोडोतस और दायादोरस[४] ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। वेलहासेन ने प्राचीन अरब निवासियों के धार्मिक विश्वास का इतिहास लिखने में उनके अंध विश्वास की कथाएं दी हैं। कोरे पत्थर को प्रतिमा के रूप में पूजते पूजते अरब निवासी इधर उधर काफी बहक गये थे।[५] समूचे अरब देश में नर बलि होती थी। उसके काफी प्रमाण मौजूद हैं। केवल देवी देवताओं से उनका काम नहीं चलता था। विपत्ति के समय वे अपने मृत पूर्वजों को पुकारते थे — आओ, हमारे निकट रहो। उनके एक नरेश मुधीर बिन मग्र असम्मान कामदेवी की प्रसन्नता के लिए हजारों ईसाइयों को बलिदान पर चढ़ा दिया था।[६] प्रोफेसर तील के कथनानुसार प्राचीन

१ वही पृष्ठ १७। २ Adolf Harnack
३ Druidism ४ Herodotus and Diodorus
५ Wellhausen— Reste arabischen Heidenthums
६ Historians History of the World—Edited by Henry Smith William Pages 505 544

बैबिलोनियन धर्म एक ईश्वरवादी था।[1] फिर भी उसमें खराबियाँ आ गयी थी। प्राचीन मिस्र का धम भी एक ईश्वरवादी था पर बाद में चलकर उसमे पशुओ की उपासना ने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था।

जिस प्रकार भूखा व्यक्ति बिना यह सोचे कि क्या लाभदायक होगा या क्या हानिकारक, जो कुछ मिलता है वह खा लेता है उसी प्रकार ईश्वर' की भूख में इसान इधर उधर भटक जाता है। ईश्वर की भूख बहुत पुरानी है। यूनानी कवि होमर ने ईसा से १००० वर्ष पूव लिखा था कि हर एक व्यक्ति को देवताओ की आवश्यकता होती है। अपनी उस आवश्यकता की पूर्ति मे वह तरह तरह के देवी-देव प्राचीन अग्रजो की तरह शाह बतूत ऐसे वक्षो को भी बनाता रहता है।

प्रतीक का विश्वास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर विश्वास केवल भावना नही है। विश्वास म भावना तथा किसी वस्तु की सत्ता का विचार दोनो ही सम्मिलित रहते है। इसी लिए विश्वास को बुद्धि का एक नया दृष्टिकोण मानना चाहिए। किसी बात को देख लेन से ही विश्वास नही बनता। किसी बात को यदि दृढता के साथ तथा विश्वास के साथ कहा जाता है तो उसका अथ इतना ही है कि बुद्धि भावना के ऊपर उठकर विचार तथा विश्वास दोनो का समन्वय कर रही है। इसी दृष्टि से प्रतीक सही या गलत दोनो हो सकते ह। कोरी भावना से प्रतीक नही बनेगा। भावना के बाद हम मन में निणय करते है कि भावना सही है या गलत। निणय करन के बाद हम तक द्वारा उस निणय की समीक्षा करते ह। अतएव तक सिद्ध बात ही विश्वास का रूप धारण कर सकती है।[2] पर यदि हम कह कि ईश्वर की सत्ता है —तो इस विश्वास म घोर प्रयत्न करन पर भी सत्ता को सिद्ध नही किया जा सकता। टाल्स्टाय ने यदि कहा था कि म ईश्वर में विश्वास करता हू। म समझता हू कि वह एक आत्मा है वह प्रेम करता है। सब चीजे उसी से प्रारम्भ हुई ह[3] तो यदि महान लखक तथा विद्वान टाल्स्टाय इतना ही लिख देते कि "म ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करता हू तो उनका आशय कभी स्पष्ट न होता। अतएव उन्होन पूरा वाक्य लिखकर अपना विश्वास प्रकट किया था। केवल एक शब्द कह देने से सच झूठ का पता नही चलता। एक शब्द कह देने से ही प्रतीक का बोध नही

१ Prof Tiele
२ Symbolism and Truth—Ralph Monroe Eaton Harward University Press Cambridge 1925 Page 18
३ A Review of the Tenth Edition of Encyclopaedia Britannica page 121

होता । भावना के साथ सत्ता दोनो का समावेश होना चाहिए । ईश्वर' 'बुराई'—ऐसे शब्द से समूचो बात नही मालम होती है । ईश्वर कहने के साथ ईश्वर है —'ईश्वर नही है —कहना पड़ेगा । पूरा वाक्य कहने से निश्चितता का बोध होता है । ऐसे ही बोध से प्रतीक बनते ह । केवल एक शब्द कह देने से नही होता ।[१]

इसी लिए बहुत से प्रतीको को जो किसी निश्चित वस्तु या पदार्थ को व्यक्त करते ह यदि उसी समय तक सत्य या सही प्रतीक माना जाय जब तक वे प्रत्यक्ष रूप से निर्दिष्ट पदार्थ का बोध कराते ह तो इस बात में किसी को आपत्ति न होगी । पर ज्यो ही किसी प्रतीक द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से घुमा फिराकर अप्रकट रूप से किसी वस्तु का बोध कराया जाना है तभी वह प्रतीक झूठा और गलत हो जाता है ।[२] कौन ऐसा है, जो कह सकता है कि ईश्वर का प्रतीक चाहे किसी भी रूप म हो सही है जिसको देखा नही जो केवल भावना म है वह प्रतीक कैसे बनेगा ? इसी लिए भारतीय प्रतिमाएं या शिव लिग ईश्वर के प्रतीक नहा ह उसकी विभूति तथा विशेष भावना और घटना के प्रतीक ह । विश्वास हवा म टँगो हुई वस्तु नही है । जब विश्वास जमता है तो उस विश्वास के आधार पर संकेत मनुष्य स्वय बना लता है । विश्वास से ही काय करने की प्रेरणा मिलती है ।[३] विश्वास चाहे अंध हो या सत्य वह काय के प्रति प्ररित करता है । इसी लिए अंध विश्वास के प्रतीक सही प्रतीक ह चाहे उनका परिणाम कितना ही गलत हो ।

१ Symbolism and Truth—page 183

२ वही, पृष्ठ १८४ ।

३ वही पृष्ठ १८४ ८५

स्वप्न-प्रतीक

जब भावना तथा सत्ता का समन्वय होगा प्रतीक का जन्म होगा--यह हम ऊपर लिख आये हैं। सत्ता न होते हुए भी सत्ता की कल्पना से जो प्रतीक बनते हैं उनको अंध विश्वास की श्रेणी में रखा जा सकता है। पर स्वप्न में जो कुछ दिखाई पड़ता है वह क्या है? वह प्रतीक है भी अथवा नहीं। सत्रहवीं सदी में रेनें विसकार्त्ते नामक प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रांस में पैदा हुए थे। उनका कहना था कि बुद्धि सदैव सोचती रहती है। किन्तु लॉक इस मत के विरुद्ध थे। यदि विसकार्त्ते की बात मान ली जाय तो रात में जो कुछ सपना देखा जाता है वह निश्चित विचार चिन्तन तथा मनन का परिणाम है। लाक कहते कि यह कयास के बाहर बात है कि जब शरीर सो रहा है आत्मा विचार निमग्न है और ज्यों ही नींद खुली सुप्तावस्था में सोची हुई बातें भूल जाती हैं। आत्मा और शरीर दोनों मिलकर चिन्तन का काम करते हैं। एक सोया तथा दूसरा जागता नहीं रहता। पर लाक का खण्डन लीबनिज ने किया है। उनका कहना था कि अचेतन अवस्था में भी चेतन चिन्तन होता है यद्यपि उसकी भावना अस्पष्ट होती है। वे यह भी कहते थे कि हर एक व्यक्ति की अपनी अलग सत्ता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न है। दोनों का स्वभाव विचार विश्वास सभी कुछ अलग अलग हैं। इसी लिए सुप्तावस्था में जब वह व्यक्ति एकदम अकेले होता है वह एकदम अलग बात सोचता है। इसलिए स्वप्न की बातें सभी व्यक्तियों के लिए प्रतीक नहीं हो सकती। दार्शनिक हीगल भी बुद्धि को हजारों भूलों के बाद एक क्रमागत विकसित वस्तु मानते थे जो सही या गलत दोनों बातें सोच सकती है। अतएव नींद में भूल की सम्भावना अधिक होते हुए भी सही बातें सोच सकने की भी सम्भावना है। दार्शनिक कण्ट की बात सबसे निराली है। वे कहते थे कि बिना स्वप्न के आदमी सो नहीं सकता। स्वप्न सोने की क्रिया का एक अंगमात्र है।[१]

स्वप्न की ऐसी व्याख्या करते समय एक शंका का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यदि स्वप्न के साथ विचार विवेक बुद्धि का कोई मेल है तो जो भी सपने में दिखाई पड़े वह तर्क तथा विवेचन की वस्तु हो जायेगी। पर तर्क या ऊहापोह की वस्तु प्रतीक नहीं बन सकता। बिना एक निश्चित विचार या निर्णय के चाहे उस विचार या निर्णय की तह में कितनी

१ Kant—Anthropoligie

बडी भूल भी क्या न हो, प्रतीक बन नही सकता । यदि लोगो ने नीलकण्ठ पक्षी को उसका नीला कण्ठ हान के कारण नीलकण्ठ शकर भगवान का प्रतीक मान लिया है ता यह तर्क करने स कि शकर का कण्ठ हलाहल विष के पान से हुआ था, नीलकण्ठ पक्षी का तो नही अनएव वह प्रतीक क्यो है तो ऐसे तर्कों की न तो कोई महत्ता है न उससे लाभ होगा ।

स्वप्न का वनानिक विवेचन तो हम आगे चलकर करेगे । पर इतना तो मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि जा लोग स्वप्न का किसी होनवाली घटना का परिस्थिति का प्रतीक मानते ह उनके इस विश्वास के साथ अध विश्वास का भी मल अवश्य है । जिस चीज़ की जानकारी न हो उसके प्रति जा विश्वास बनता है वह या तो विगत अनुभव के आधार पर या धार्मिक भावनावश हाता है । धम क्या है ? धम श द स क्या बोध हाना है ? या तो हमारी भाषा म धम शब्द का बहत यापक अथ है । पर यहाँ पर धम से हमारा तात्पय अग्रजी श द रेलिजन तथा उद श द मजहब से है । एली रेक्लस के अनुसार अनान शक्ति के सम्मुख मन म जा भाव उत्पन्न हाते ह उनका नाम धम है ।[१] जब मनुष्य का मन अयधिक उत्तजित हो उठता है ता वह अज्ञात शक्ति का साकार बना देता है देवता बना देता है । विद्वाना क अनुसार 'पाचीन धार्मिक विश्वासा के वे भग्नावशष जिन पर सदियाँ गुजर गयी आज व अध विश्वास ह । अध विश्वास प्राचीन विश्वासा के प्रतीक ह । एली रेक्लस के अनुसार अध विश्वास सब जगह ह जिस प्रकार के अध विश्वास अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के घार असभ्य भागो म पाये जाते ह वसे ही सभ्य यराप के अनक भागा म । अतएव अध विश्वास की भित्ति पर अच्छी और बरी चीज भी बन सकती ह ।

एक प्राचीन हस्तलिखित सस्कृत ग्र थ म स्वप्न का फलादेश दिया हुआ है । रात म नोद म क्या चीज देखने का क्या फल होता है--यह श्लोको म दिया गया है । म नहीं कह सकता कि स्वप्न क इन प्रतीका का वही फल होता हागा जा लिखा गया है पर विश्वास क लिए व कितना बडा काम करते ह यह भी स्पष्ट है । उस हस्तलिखित ग्रन्थ के कुछ श्लाक हम नीचे दे रहे ह--

	प्रतीक	फल[२]
१	विधि कन्या (सरस्वती)	मगल सवकायञ्च, पुत्र पौत्र समागमे ।

१ Elie Reclus—'The Growth of belief in God —Article in Encyclopaedia Britannica

२ श्लोकों में बहुत सी अशुद्धियाँ हैं । पर उन्हें शुद्ध करने का प्रयास न कर ज्यों-का त्यों दे दिया गया है—लेखक ।

	सर्वसिद्ध भवेत्तस्य विधि कया च दर्शन ।।
२ शूकर	अशुभ सव कायञ्च, अशभो सव जायते ।
	अल्प चव कमञ्च स्वल्प, शूकर दशनम् ।।
३ चन्द्रमा और हिरन	शीतलें शुभ कायञ्च आरोग्य कुशल तथा ।
	कायसिद्धिमवाप्नोति शसचन्द्रस्य दशनम ।।
४ कुत्ता	कुशब्द च कुकाय च कलह चव जायते ।
	कायसिद्धि न जायते श्वान वक्रस्य दशनम ।।
५ मित्र	सतोष पुत्रलाभ च आनन्द यत्र गच्छति ।
	भार्याग्लि च सौभाग्य बधु दशनम् भवेत् ।।
६ लावक पक्षी (लाल)	अशुभ तत्र तत्रव विनाश चव जायते ।
	कथित नव जायते लावकाना च दशनम् ।।
७ तोता	सुशब्द सव कायञ्च सुविद्या यशमेव च ।
	शुभ कायनित्य मेव च शुकपक्षी च दशनम् ।।
८ सूखा वक्ष	निफल फलहानि च मध्यम कायमेव च ।
	निज कायञ्च हानि च शुष्क वक्षस्य दशनम् ।।
९ फलदार वक्ष	सफल शोभन चव सतोष चव सिद्धिदा ।
	पुत्र पौत्र जयमेव च सफल वृक्षस्य दशनम् ।।
१० मृत्यु यमस्य (यमदूत को देखना)	अशुभ मित्रहानिश्च बुद्धिभ्रश तथव च ।
	शुभ काय विनाश च यमस्य च दशनम् ।।
११ गगा नदी	पुत्र पौत्र च आरोग्य काय निमलमव च ।
	धन धान्य च कल्याण, गगा दशन मात्र च ।।
१२ गधा	विलम्ब चव विघ्न च उद्विग्न कलहमेव च ।
	उत्पात अदभुत चव खरश्चव तु दशनम ।।
१३ सूय	निमल रोगनाश च शत्रुनाश च मेव च ।
	अचिंतित शुभ कार्याणि सूयरूपस्य दशनम् ।।
१४ कुश्ती	दु खतिदु ख यायति सतोष नव दृश्यते ।
	सव-बुद्धि विनाश च मल्लयुद्धस्य दशनम् ।।
१५ सग्गड या गाडी (ठेला)	उत्तम मध्यम चव सामान सम दशनम् ।
	सामान्यश्चव कार्याणि शकटस्य च दशनम् ।।
१६ भरा घडा	अन्न च भवेत्तस्य पुत्रलाभस्तथव च ।
	सव लाभ भवेत्तस्य पूण कुम्भश्च दशनम् ।।

१७ अंधा व्यक्ति	अशुभ दशते काय, रोग पीडा तथैव च । अथ हानि स्तथव च, चक्षुहीन च दशनम् ।।
१८ रावण (राक्षस)	सफल सव कार्याणि अथ लाभस्तथव च । कुशल सव कार्येषु रावणाना च दशनम् ।।
१९ लक्ष्मी	धन धाय सुपुत्र च आरोग्य सफल भवेत । श्री लाभ सव लाभ च लक्ष्मि रूपस्य दशनम ।।
२० दासी	दुष्काय च दुर्भिक्ष दुलभ दु खज भवेत । सव काय बिनाश च दासि रूपस्य दशनम् ।।
२१ कोकिला पक्षी	सताष सव कार्याणि विद्या वाणि तथव च । सताष च भवत्काय काकिला यत्र दशनम ।।
२२ मुर्गा	कुक्कुट अपवित्र च कुचेष्टा नष्टज भजेत । कलह कष्टमायाति कुक्कुटस्य च दशनम ।।
२३ चचला स्त्री	चचल च अलाभ च उदास मृत्युमव च । मनसा चचल काय चचल नारि च दशनम ।।
२४ बिल्ली	अशुभ काय हानिश्च निज गुण हानिमव च । राग हानि द्वेषमव च मार्जारस्य दशनम ।।
२५ हनमान	सव काय च सिद्धि च शत्रुनाश च कारक । राजमाना शमायाति हनुमन्तश्च दशनम ।।

इसी हस्तलिखित ग्र थ म जिसम भाषा का दाष भरा पडा है जो स्वप्न प्रतीक दिये गय ह उनके अनुसार––

शुभ फल देनवाले––

काय की सिद्धि शत्रु का नाश मनाकामना की सिद्धि पुत्र पौत्र लाभ सन्तान का सुख यश का लाभ विजय स्त्री सुख यात्रा म सफलता आदि के प्रतीक ह––

१ सरस्वती २ विष्ण ३ शकर पावती ४ चन्द्रमा और हिरन ५ मित्र ६ ताना ७ फलदार वक्ष ८ गगा नदी ९ सूय १० वणिक ११ गरुड १२ भरा घडा १३ यमराज १४ रावण १५ लक्ष्मी १६ राम लक्ष्मण १७ हनुमान १८ काकिला १९ मयूर २० मछली।

अशुभ फल देनवाले––

१ शकर २ कुत्ता ३ लावक पक्षी (लाल) ४ सूखा वक्ष ५ मत्यु ६ यमदूत ७ गधा ८ कुश्ती ९ ढेला १० अंधा व्यक्ति ११ लडाक स्त्रियाँ १२ दासी, १३

मुर्गा १४ सूना मन्दिर १५ चचल स्त्री १६ चोर-तस्कर १७ बिल्ली, १८ स्यार, १९ शुक्राचार्य, २० दुर्वासा रूपी साधु ।

ऊपर लिखी वस्तुएँ स्वप्न में देखने से निर्दिष्ट घटनाओं की सूचना है चिह्न हैं, लक्षण है प्रतीक है । मन्त्रमहार्णव मे लिखा है—

लिंग चन्द्रार्कयोर्बिम्ब भारती जाह्नवी गुरु ।
रक्ताब्धितरणं युद्धे जयोऽनलसमचनम ।।
शिखिहसरथागाद्ये रथे स्थान प्रमोहनम् ।
आरोहण सारसस्य धरालाभश्च निम्नगा ।।

अर्थात शिवलिंग सूर्य चन्द्र का प्रकाश, सरस्वती गगा गुरु लाल पानी के समुद्र मे तरना युद्ध मे जय अग्नि का पूजन मयूर हस रथ पर चढना यात्रा करना सारस पर सवारी करना—यह सब (इनमे से कोई भी) स्वप्न होने पर भूमि का लाभ होता है ।

वाल्मीकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड मे लका को अशोकवाटिका मे त्रिजटा राक्षसी का स्वप्न दिया गया है । त्रिजटा सीता के पहरे पर थी । उसका स्वप्न काफी लम्बा था । मख्य बात त्रिजटा ने यह दखी कि चार दाँतवाले बडे हाथी पर सूर्य के समान प्रकाशवान श्री रामचन्द्रजी सीता सहित बठे हुए ह—

रामेण सगता सीता भास्करेण प्रभा यथा ।
राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्त महागजम् ।।

चार दाँतवाल विशाल हाथी पर राम जानकी किस प्रकार बठे हुए ह इसका सुन्दर वर्णन है । त्रिजटा के इस स्वप्न को लका पर राम की विजय तथा सीता का राम से पुनर्मिलन का प्रतीक बनाया गया है । इसके विपरीत त्रिजटा ने रावण के सम्बन्ध में बडा अशुभ स्वप्न देखा । तल मे डूबा हुआ रक्त पीता हुआ पुष्पक विमान से गिर पडा है उसके रनिवास की स्त्रियाँ एकदम दुबल हो गयी ह—

रावणश्च मया दृष्ट क्षितौ तैलसमुक्षित ।
रक्तवासा पिबन्मत्त करवीरकृतस्रजा ।।
विमानात्पुष्पकादद्य रावण पतितो भुवि ।
कृष्यमाण स्त्रिया दृष्टो मुण्ड कृष्णाम्बर पुन ।।

बृहस्पतिकृत स्वप्नाध्याय म लिखा है कि यदि रात्रि के द्वितीय याम यानी प्रहर में स्वप्न देखे तो छ महीने में फल होगा । यदि तीसरे प्रहर स्वप्न देख तो तीन महीने में फल होगा । अरुणोदय के समय स्वप्न देखने से दस दिन में फल मिलगा ।

षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासै स्तृतीयके ।
अरुणोदयवलायां दशाहेनफल भवेत् ।।

इसके बाद उस ग्रथ में स्वप्न प्रतीक दिये गये है । बैल हाथी मदिर वृक्ष या नौका पर चढना स्वय या किसी अय को हाथ मे वीणा लिय हुए देखना भोजन करते हुए, रोते हुए यह सब यदि दिखाई पड तो ऊपर लिखी अवधि म निश्चय ही अथ लाभ हागा । यदि स्वप्न मे देख कि कोई शरीर म विष्टा (मल) लगा रहा है रक्त देखे हाथी राजा, सुवण या रूटा सोग देखे तो कुटुम्ब की वद्धि हागी । यदि सागर मे तरता हुआ देख या अपने से नीच वश मे जम लेना हुआ देख तो वह राजा होता है । यदि स्वप्न मे मनुष्य का मास भक्षण कर तो—

पर खाते हुए—मणि का लाभ हो ।

बाहु खाते हुए—हजार मणि प्राप्त हो ।

सिर खाते हुए—राय प्राप्त हो ।

स्वप्न म यदि जूता देख—कही यात्रा करनी हो ।

नौका पर चढे या नदी पार करे—प्रवास हागा ।

दात या केश उखड जाय—धननाश रोग याधि आदि ।

यदि स्वप्न म वानर या सूअर दौडकर साग मारे ता समझ लीजिए कि राजा या उसके कुल से भय है । यदि तेल घी मक्खन आदि से मालिश करता हुआ या कराता हुआ देख ता समझ लेना चाहिए कि कोई बीमारी टानवाला है । पीताम्बर वस्त्र पहिने, लाल चदन लगाय तथा लाल माला पहन स्त्री देख ता तात्पय हागा कि ब्रह्महत्या लगनेवाली है ।

वद्यक ग्र थ शाङ्गधरसहिता मे स्वप्न पर काफी विचार किया गया है । प्रथम खण्ड के तीसरे अध्याय म दुष्ट स्वप्न प्रतीक इस प्रकार दिया गया है—

स्वप्नषु नग्नमुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान ।
व्यङ्गाश्च विकृता कृष्णा सपाशा सायुधानपि ।।१४ ।।
बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान् ।
महिषोष्ट्रखरारूढान् स्त्रीं पुसा यस्तु पश्यति ।
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्यव पञ्चताम् ।।१५।।

स्वप्न मे नगे मुण्डन कराय हुए लाल या काल कपड पहन हुए नकट कनकटे आदि अगविहीन विकृताङ्ग यानी लूले लॅगडे कुबडे इत्यादि, काले वण के हाथो मे पाश (फाँसी) तथा शस्त्र लिय हुए बाँधते मारते हुए दक्षिण दिशा की ओर भसा ऊट गधे पर बठ हुए स्त्री पुरुषो को जो व्यक्ति देखे वह यदि स्वस्थ हो तो रोगी हो जाय यदि रोगी हो तो मर जाय ।

शार्ङ्गधरसहिता वद्यक ग्रथ है। रोग तथा उसकी चिकित्सा का ग्रथ है। आयुर्वेद में लघुत्रयी तथा बृहत्त्रयी सवप्रधान ग्रथ ह। माधवनिदान भावप्रकाश और शार्ङ्गधर सहिता ये तीन ग्रन्थ लघुत्रयी कहलाते ह। चरकसहिता सुश्रुतसहिता और अष्टाङ्ग-हृदय—ये बृहत्त्रयी ह। वद्यक ग्रन्थो मे शार्ङ्गधर का बडा मान है। इसलिए इसमे दिया हुआ स्वप्न विचार करोडो भारतीयो के लिए बडा महत्त्व रखता है। दुष्ट स्वप्नो की तालिका देते हुए इसी सहिता में १६ १७, १८ श्लाको मे दिया गया है—

जो स्वप्न म अपने को किसी ऊचे स्थान से गिरता हुआ देख जल या आग मे समा जाय कुत्ता काट खाय मछली निगल जाय नेत्र खराब हो जाय (सपन में), दीपक बुझ जाय तेल या शराब पिये पूडी कचौडी आदि पकवान प्राप्त हो या खाय, कुआ या जमीन के भीतर घुस जाय इत्यादि तो यदि स्वस्थ हो तो रोगी हो जाय यदि रोगी हो तो मर जाय।

शुभ स्वप्नो की भी लम्बी सूची दी गयी है। नीचे लिखी चीजो के देखन से सुख प्राप्त होगा रोगी होगा तो स्वस्थ हो जायगा। स्वस्थ होगा तो धन प्राप्त करेगा—

देवता, राजा जीवित मित्र ब्राह्मण गौ जलती हुई अग्नि तीथ स्थान कीचड भरे पानी का पार करना सफद कोठी बल, पवत, हाथी घोड आदि की सवारी करना, सफेद फूल सफद कपडा मास मछली फल आदि दखना, जिस स्त्री क साथ भोग नही करना चाहिए उसक साथ भोग करना शरीर मे विष्ठा (मल) का लपन कच्चा मास खाना रोना, मरना जोक भ्रमरी या साँप से काटा जाना इत्यादि—य सब शुभ प्रतीक है।[1]

सहिता न बुरे स्वप्नो का परिहार भी बतलाया है—दु स्वप्न देखकर किसी से न कहे। सवेर तडके स्नान कर सुवण, लोहा तथा तिल का दान करे। ईश प्राथना करे। रात म देवालय म रहे। तीन दिन तक ऐसा करन से स्वप्न का बुरा फल नही होता।

इसी अध्याय म यह भी निर्देश है कि जब वद्य रोगी दखन चल तो उस यदि शुभ शकुन दिखाई पड तो समझना चाहिए कि रोगी अच्छा होगा, अन्यथा नही।

यात्राय सौम्य शकुन प्रोक्तदीप्त न शाभनम ॥१२॥

सहिता के टीकाकार प० दुर्गादत्त शास्त्री ने शकुन पर फुटनोट देते हुए अच्छे-बुरे शकुनो को गिनाया है।[2]

१ शार्ङ्गधरसहिताया तत्त्वदीपिकाया प्रथमखण्डे। तृतीय अध्याय, श्लो० २१ से २५ तक।

२ शार्ङ्गधरसहिता—हिन्दी टीकाकार—प० दुर्गादत्त शास्त्री, प्रकाशक—बैजनाथप्रसाद बुक्सेलर वाराणसी, सन् १९४२—पृष्ठ ३१।

शुभ शकुन—

भेरी, मदग ददुभी आदि का नाद मधुर मगल गीत, पुत्रवती स्त्री युवती बछडे सहित गौ, श्वेत वस्त्रधारी पुरुष या स्त्री धाबी भरा कलश छत्र वीणा मछली कमल दही गोरोचन कन्या पुष्प ब्राह्मण रत्न इत्यादि।

यदि यात्रा म ये चीजें माग म पड तो शुभ प्रतीक ह।

अशुभ शकुन—

दक्षिण का माग कुत्ता स्यार नेवला खरगोश सप खाली घडा तिल टूटा बतन आग तेल मद्य सूखी लकडी इत्यादि।

शुभ और अशुभ के इतन अधिक प्रतीक क्या आज भी हमारे जीवन म लागू होते ह या नहा इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है पर यह कहना अनुचित होगा कि इनकी काइ सत्ता नही है। सकडो वर्षों के अनुभव से ही ये प्रतीक बने होग। बहस्पति के स्वप्ना ध्याय तथा शाङ्गधरसहिता के अशुभ प्रताका म कोइ अ तर भी नही है। चिकित्सा शास्त्र क परम पडित चरक न अपनी सहिता म भी स्वप्न प्रतीक पर काफी विचार किया है। उनक द्वारा निर्दिष्ट शुभाशुभ स्वप्न प्रतीक अन्य एस भारतीय प्रताका स भिन्न नही ह। चरक न स्वप्न की व्याख्या करते हुए लिखा है कि मन की इन्द्रिय से व्यक्ति अधकचरी नीद म सफल तथा विफल कार्यों का स्वय देख लता है।' चरक के अनुसार स्वप्न सात प्रकार के हाते ह—देखा सुना अनुभत भावना म लाया हुआ कल्पना किया हुआ भाविक तथा दोषज। पहलवाल पाच प्रकार के स्वप्ना का काई फल नही हाता दिन क स्वप्न का फल बहुत कम होता है। रात्रि के पहल प्रहर म जा सपना देखा जाता है उसका अल्प फल हाता है जिस सपने का देखकर फिर नीद न आ जाय उसका तुरत महाफल हाता है। यदि बुरा स्वप्न दखने के बाद अच्छा स्वप्न दख ल ता शुभ फल ही हागा।[१]

> दृष्ट प्रथमरात्र य स्वप्न सोऽल्पफलो भवेत।
> न स्वपेद्य पुनदृष्टा स सद्य स्यान्महाफल ॥
> अकल्याणमपि स्वप्न दृष्टवा तत्रव य पुन।
> पश्यत्सौम्य शुभाकार तस्य विद्याच्छभ फलम्॥

चरक के अनुसार अशुभ फलदायक जो बहुत स प्रतीक ह उनमे ऊट या गधे की

१ चरकसहिता—निणय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२२—पञ्चम अध्याय— 'इन्द्रियस्थानम्''— श्लोक ४५ ४६।

सवारी दक्षिण दिशा को जाना प्रेत के साथ शराब पीना इत्यादि जो प्रतीक ह उनका भिन्न भिन्न रोगो पर फल है जैसे—

१ ऊँट गधे की सवारी	—यक्ष्मा से मत्यु ।
२ प्रेत के साथ मद्य पीना	—घोर ज्वर से मृत्यु ।
३ हृदय में काटेदार लता का चुभना	—घोर गुल्म रोग ।
४ बदन पर मक्खी बठे	—प्रमेह रोग होगा ।
५ नाचना	—उन्माद राग ।
६ पूडी कचौडी मालपूआ आदि भोजन	—मत्यु ।
७ गद्ध उल्लू कौआ प्रेत पिशाच चाण्डाल अधा लता पाश तण या काटे का सकट, काना श्मशान काला जल कीचड कुआँ अधकार स्वप्न म स्नान घो पीना अग मे घी लगाना सुवण मिलना कलह स्वप्न म हष पिता द्वारा भत्सना दाँत आँख तथा तारा का गिरना दीपक का बुझना चिता नग्न व्यक्ति ।	अशुभ कष्टदायक रोग-वद्धक मत्यु कारक फल होता है ।[२]

ऊपर लिखे तीन ग्र थो के उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि जिन दृश्यो या वस्तुओ को हम साधारण जीवन मे जाग्रत अवस्था मे बहुत शुभ तथा आनन्ददायक समझते ह जसे घी पीना तेल मालिश करना प्रसन्न रहना स्नान करना इत्यादि वही स्वप्न मे अनथकारी प्रतीक बन जाते ह । चरक ने स्वप्न का व्याख्या मे एक बडी मार्के की बात कही है । वह है—नातिप्रसुप्त पुरुष यानी अधकचरी नीद म इन्द्रियेशन मनसा पश्यति —मन की इन्द्रिय से जो देखा जाय वह स्वप्न है । जाग्रत अवस्था मे मन जो देखता है सुप्त अवस्था मे वह उलटी बात सपने में क्यो देखता है—जसे विष्ठा से सभी घृणा करते ह पर सपने म यदि उसकी मालिश की जाय तो वह इतनी शुभ वस्तु कसे बन गयी ? मन ने ऐसी चीज़ देखी ही क्यो ? चरक न इन्द्रियस्थान अध्याय म स्वप्न को स्थान देकर इसे मन की इन्द्रिय से उत्पन्न वस्तु माना है । मन से सम्बन्ध होने के कारण स्वप्न के प्रतीक तक के दायरे म आ जाते ह । फिर चरक ने मन की एसी क्रिया के सात प्रकार भी बतलाये ह जिनमे अनुभूति भी एक कारण है ।

न्यायशास्त्र में भी स्वप्न की व्याख्या दी गयी है । उसके अनुसार बुद्धि के दो भेद ह । एक है नित्या दूसरी है अनित्या नित्या बुद्धि ईश्वर मे रहती है । अनित्या जीव

२ पृष्ठ ४ ७-४०८ ।

में रहती है। जीव की बुद्धि दो प्रकार की होती है। एक है अनुभव। दूसरी है स्मृति। स्मृति से भिन्न ज्ञान का नाम अनुभव है। इस चीज़ को हम याद रखें या न रखें कि आग छूने से जल जाते हैं हमारे माता पिता हमको मना करते थे कि आग मत छूना वरना जल जाओगे। पर अनुभव से हम जानते हैं कि आग छूने से हाथ जलता है। यह अनुभव इतना ठोस है कि इसके लिए स्मृति की आवश्यकता नहीं है। पर अनुभव भी दो प्रकार का होता है—१ यथार्थ और २ अयथार्थ। यथार्थ अनुभव उसे कहते हैं जिसमें वस्तु के विशेषण तथा विशेष्यांश में एक रूपता हो जैसे घड़ा। घड़ा का विशेषण है गुण है पानी को धारण करना। यदि घड़ा घड़ा के रूप में ही भासित हो तो वह यथार्थ है। इसे ही यथार्थ अनुभव कहते हैं। इसी यथार्थ अनुभव को प्रमा कहते हैं।[१]

अयथार्थ अनुभव के तीन भेद हैं—१ संशय २ विपर्यय ३ तर्क। संशय उसे कहते हैं जहाँ एक ही वस्तु में परस्पर विरुद्ध भिन्न भिन्न गुणों की स्थिति भासित हो। जैसे अँधेरे में स्पष्ट नहीं मालूम होता कि आदमी खड़ा है या ठंठ—सूखा पेड़। विपर्यय मिथ्या ज्ञान को कहते हैं। उदाहरण के लिए बालू में चमकती हुई सीप चाँदी का टुकड़ा मालूम होती है। इसे ही भ्रम कहते हैं। व्याप्य के आरोप से व्यापक का आरोप करना तर्क है। जैसे अगर मटर न खाते तो पेट में दर्द न होता। अगर आग न हो तो धुआँ भी न होगा।

नैयायिकों (न्याय शास्त्रियों) के अनुसार अनुभव के दूसरे भेद (श्रेणी विपर्यय) यानी मिथ्या ज्ञान को ही स्वप्न कहते हैं। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जब स्वप्न मिथ्या ज्ञान है विपर्यय है तो उसमें बननेवाले प्रतीक भी मिथ्या हैं भ्रम हैं। यदि वे भ्रम हैं तो उनकी सत्ता ही क्या रही। एक निरर्थक वस्तु पर विचार करने से क्या लाभ होगा। स्वप्न में हम अपने मन में जो चित्र बना लेते हैं वे केवल भ्रम ही तो हैं। मन में बनाये गये चित्रों के विषय में श्री विटिंगस्टीन का कहना है कि हम अपने लिए (विचारों में) वास्तविकता का चित्र बना लेते हैं। चित्र और चित्रित वस्तु में कुछ ऐसी समानता तो होनी ही चाहिए कि जिसका चित्रण हो उससे मेल खा जाय। वास्तविकता तथा उसके चित्रण में जो चीज़ होना इसलिए जरूरी है कि सही या गलत ढंग से वह उसको प्रकट कर सके—वह है उसका व्यक्त करने का तरीका। इस पर टीका करते हुए प्रसिद्ध विद्वान बर्ट्रेंड रसल कहते हैं— जब हम किसी चित्र को तर्क रूप से वास्तविकता का चित्रण कहते हैं तो हमारा तात्पर्य केवल यही होता है कि वह वास्तविकता इतनी मिलती जुलती तस्वीर जरूर है कि किसी रूप में उसका चित्र कहा जा सके यानी हम केवल इतना ही

१ न्यायप्रदीप परिच्छेद ६, पृष्ठ ८९।
२ तर्कसंग्रह गुणग्रन्थ—पृष्ठ ८८।

कहना चाहते हैं कि तक द्वारा असली बात से उसका मेल उसकी निकटता साबित की जा सके।[१]

स्वप्न में जो प्रतीक बनते ह वे भी चित्र ही है जो किसी वास्तविकता का मन द्वारा चित्रण है। पर इन चित्रो पर हमें विश्वास क्यो नही होता ? भौतिक बातो को देखकर उन पर विश्वास जम जाता है। हवाई जहाज आकाश मे उड रहा है अब इसमे कोई तक की गुन्जाइश नही है। हमने हवाई जहाज को उडते देखा यह ठोस सत्य है। अब हम अधिकारपूवक हवाई जहाज के बारे मे कह सकते ह। अगर यह कहे कि लाल रग का हाथी देखा है या दो सरवाला शेर देखा है तो उस पर विश्वास क्यो नही होता ? हम इसे ख्याली बाते क्यो कहते ह ? इसीलिए न कि अभी तक जितने लोगो न पशुओ के बारे में अध्ययन किया है उनके ज्ञान के विरुद्ध यह कथन है। इसी लिए ज्ञान उस वस्तु को कहते ह जा ज्ञात क विषय म प्राप्त किया जाय। बडे बडे ऋषि मुनियो को ईश्वर ज्ञात था। उनके ज्ञान के आधार पर हम उस ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। जा ज्ञात है ही नही उसके विषय मे ज्ञान क्या होगा ? यह ज्ञात है कि इस सष्टि मे शू य तथा अधकार की भी सत्ता है। इसलिए श य का ज्ञान प्राप्त करने की भी चेष्टा की जाती है। ज्ञान में सत्य भ्रम विश्वास, भावना तात्पय वज्ञानिक नियम, सिद्धा त तथा अर्थ (तात्पय मतलब) भी शामिल है। हर प्रकार के ज्ञान मे अथ तात्पय सन्निहित है। यदि हम कहते ह गाय तो बिना गाय का अथ हुए उसका ज्ञान कसे होगा ?

इसीलिए ज्ञान के विषय मे एक खास बात याद रखनी चाहिए। वह यह है कि ज्ञान उस वस्तु को कहते है जो प्रकट की जा सके व्यक्त की जा सके।[२] ईश्वर की सत्ता के बारे म तक वितक तो हो सकता है पर उस विषय मे अधिकारपूवक यह साबित करना कि अमुक प्रकार का अमुक श्रेणी का ईश्वर है यह भाषा तथा भाव दोनो की शक्ति के बाहर है। इसी लिए न तो कोई ऋषि मुनि, न वेदान्ती ईश्वर ज्ञान के बारे मे अधिकार पूवक कुछ कह सकता है। ज्ञान पुस्तका में ब द रह सकता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढी को दिया जा सकता है। शब्दो द्वारा एक मुख से दूसर मुख एक मन से दूसरे मन एक बुद्धि से दूसरी बुद्धि को दिया जा सकता है। ज्ञान ठोस गूढ़ वज्ञानिक

१ L Wittgenstein— Tractatus Logico-Philosophicus (1922) Introduction—page 10

२ Ralph Monroe Eaton Ph D — Symbolism and Truth —Harward University Press, 1925—page 5

सिद्धान्तो के रूप म प्रकट हो सकता है । ऐसे सिद्धान्तो को प्रकट रूप से व्यक्त करनेवाली वस्तु का नाम प्रतीक है । ज्ञान द्वारा जिस विचार का प्रकट करना है उससे प्रतीक का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है । प्रतीको के विश्लषण से ही हम ज्ञान की असलियत का अनुमान लगा सकते ह । [१]

यह प्रश्न हो सकता है कि क्या ज्ञान उसी वस्तु का होगा या हो सकता है जो वास्तव म हो सत्य हो निश्चय रूप स हो ? क्या वास्तविकता ज्ञान पर निभर करती है या ज्ञान वास्तविकता पर ? इसका मतलब यह हुआ कि दो चीज़ ह । एक है ज्ञान दूसरा है ज्ञेय । एक है जाननेवाला जिसके पास विचार हे भावनाए ह अनुभतियाँ ह तथा दूसरा है जो सृष्टि म वतमान है पर ज्ञाता–जानकारी करनवाले—से भिन्न है पृथक है । इसी लिए जिस चीज को जानना है जो ज्ञय है उसकी यदि व्याख्या न कर दी जाय तो यह सोचना या कहना कठिन होगा कि क्या ज्ञान प्राप्त किया जाय । उदाहरणाथ, जीव शास्त्र क पण्डितो न पत्रागति की विज्ञान या वश परम्परा सम्बन्धी खोज को तब तक करना अस्वीकार कर दिया था जब तक जीव तथा जीवन की व्याख्या न कर दी जाय । इसी लिए ज्ञान की परिभाषा के लिए भी आवश्यक होगा कि ज्ञेय की परिभाषा कर दी जाय । क्या जानना है जब यह मालम हो तब जानने की बात सोची जाय ।

ज्ञान की ऐसी स्थिति के कारण ही डा ईटन प्रश्न करते ह[२] कि स्वप्न म देखी गयी बातो के लिए क्या कहा जाय । सपने मे देखी गयी घटनाए तथा व्यक्ति उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप स वास्तविक म ह जिस प्रकार इस समय सडक पर कोई घटना हो रही है या लोग चल फिर रहे ह । जाग्रत अवस्था म हम जो कुछ देखते ह सुनते ह वह हमारी अनुभूति का तीन चौथाई हिस्सा ही है । फिर हम जागते हुए जो कुछ देखते ह उस पर इतना अधिक विश्वास क्या करते ह ? निश्चयत स्वप्न भी ज्ञान का एक रूप है ।

सवाल यह रहा कि कौन चीज गलत है कौन चीज सही इसकी पहचान अवश्य कठिनाई स होगी । हम किसी चीज को सही या गलत दो प्रकार से साबित करते ह । कोई बात हमारे सामने आयी हमने अपने अनुभव स उसे काटनेवाली दूसरी बात सामने रख दी । इस हिसाब से तो जिस चीज का खण्डन न हो वह सही है [३] का सिद्धान्त मानना पडेगा पर हमारे जीवन म किसी वस्तु को सही या गलत मानने का एक और मापदण्ड है—वह है हमारा विश्वास । किसी ने हमसे कहा कि कल रात को शख चक्र गदा पद्मधारी विष्णु भगवान को देखा था । यदि हम साकार भगवान मे विश्वास

१ वही, पृ ५ ।
२ वही, पृष्ठ ६ ।
३ वही पृष्ठ, ४ ।
४ वही पृष्ठ २१६ ।

नही करते तो हम तुरत कह देंगे कि इस सूरत का कोई भगवान नही है। तुमने अपनी गलत धारणा से एक मानसिक चित्र बना लिया था। हम जब कोई बात कहते ह तो उसके साथ जानकारी भी शामिल होती है। यदि हम यह कहें कि जो व्यक्ति समाज के नियमों को तोडता है वह दण्डनीय होता है तो हमारे इस कथन की तह मे हमारी दो धारणाएँ भी है--एक यह कि हर एक अपराधी को दण्ड मिलता है तथा हर एक अपराध पकड में आ जाता है।[1] किन्तु वह तो हमारे विश्वास की बात हुई। न तो सभी अपराध पकडे जाते ह और न सभी अपराधी दडित होते ह। इसलिए विश्वास सत्य होता है यह कहना गलत है। विश्वास भी भ्रमात्मक हो सकते ह--होते भी ह।

स्वप्न को अयथाथ अनुभव कहा गया है--तकसग्रह ने ही उसे यह सज्ञा दी है। ऊपर हमने इस कथन को समझाने का प्रयत्न किया है। न्याय-शास्त्र के पण्डित यानी नयायिक लाग अयथाथ अनुभव के दूसरे भेद (विपयय) मे स्वप्न का अ तर्भाव करते है। स्वप्न में कभी कभी अनुभत वस्तुआ का ही स्मरण दशन हाता है। या फिर बात पित्त-कफ आदि धातुआ क विकार से शुभ या अशुभ अनुभव होते ह। किन्तु चाहे अयथाथ ही क्या न हा है तो अनुभव ही। पर अनुभव होते हुए भी वे विपययात्मक भ्रमात्मक ज्ञान ह इसलिए कि मन उन परिस्थितिया म काम नही कर रहा है जिन परिस्थितियो में यथायता तथा वास्तविकता का असली बाध हो सके। यह ध्यान रखना हागा कि प्रत्यक्ष विपयय न हान पर भी स्वप्न दशा मानस विपयय ही कही जायगी। वस्तुत प्रदेश विशेष मे मन सयोग होना ही स्वप्न है।[2] इसी लिए नीलकठी के अनुसार प्रदेश विशष मे अवस्थित मन के सयाग का स्वप्न कहते ह। यानी पुरीतद नामक नाडी और बाहरी भाग क सधि-स्थान मे यानी उसकी सरहद पर जब मन रहता है उसी को प्रदेश विशेष कहते ह। उस अवस्था मे स्वप्न हाता है। यदि मन पुरीतद नाडी मे चला जाय तो फिर सुषुप्ति--गहरी नीद की अवस्था हो जाती है। यह बात सभी मानते ह कि एकदम गहरी नीद मे सपना नही होता।

दूसरा मत है कि मेध्या नामक नाडी मे मन का सयोग होने पर स्वप्न होता है।[3] एक मत यह भी है कि निरिद्रिय यानी इद्रिय सम्बन्ध शू य आत्मा का प्रदेश स्वप्न दशा मे अनुभूत होता है। जो लोग स्वप्न की पिछली व्याख्या से ही स तुष्ट हो सकते ह उनके लिए मन की नाडी से सयोग या आत्मा का इ द्रिय सम्ब ध शून्य भ्रम समझ में नही आ

१ वही पृष्ठ २१७।

२ अन्नम् भट्टकृत 'तर्कसग्रह"--दी पका तथा नीलकठी" टीकाएँ।

३ बृहदारण्यक उपनिषद्।

सकता। पश्चिमी विद्वान् फ्रायड[१] ने स्वप्न की व्याख्या में लिखा है कि जाग्रत तथा सचेत अवस्था म हम अपन मन की जिन इच्छाओं या कामनाओं को प्रकट करन या कार्यरूप मे परिणत करन म सकोच करते ह या डरते ह वे ही रात की एकान्त अवस्था मे बाहर निकल पडती है--स्वप्न के रूप म। ज्यो ही हम जागते ह सपना भी भूल जाता है। इसका सिफ यही कारण है कि जाग्रत अवस्था का डर फिर उन्हे पीछे धकेल देता है।

पर जिस प्रकार के विचित्र स्वप्न होते ह उनको जाग्रत अवस्था की अतप्त कामना कसे कहा जा सकता है? हम सपना देख रहे ह कि सामने किताब खुली पडी है। यह एक साधारण स्वप्न हो सकता है। पर फ्रायड ऐसा नही मानते। उनका कथन है कि खली किताब स्त्री की योनि का प्रतीक है। स्वप्न की ऐसी व्याख्या के कारण ही पश्चिमी विद्वानो न अनगिनत प्रतीक बना डाले। डा० पद्मा अग्रवाल ने प्रतीक का अचेतन अवस्था को भाषा कहा है।[२] पर फ्रायड ऐडलर जुग आदि मनोवज्ञानिको का कथन है कि मन क भीतर को छिपी हुई तथा गुप्त भावनाओं को प्रकट करने के अनेक तरीको-उपायो मे एक प्रतीक भी है। फ्रायड ने तो यहाँ तक कह दिया कि ठास कामना निश्चित इच्छा को व्यक्त करनवाली वस्तु प्रतीक है।[३] वे यह भी प्रतिपादित करते थ कि हम अपने मन म जिन इच्छाओं को मार बठते ह दबा देते ह दबाय रहते ह वही प्रतीक रूप म व्यक्त होती है। जो वस्तु किसी अज्ञात वस्तु को नाटकीय रूप म सक्षिप्त ढग से प्रकटित करे उसी का नाम प्रतीक है। देश के इतिहास को प्रकट करनवाला राष्ट्रीय प्रतीक राष्ट्रीय झण्डा है। इसी प्रकार अपने अहभाव को व्यक्त करनवाले व्यक्तिगत प्रतीक भी होत ह।[४]

इस दृष्टि से विचार करने से तो स्वप्न की पहेली और भी कठिन हो जायगी। यदि अव्यक्त भावनाए स्वप्न में व्यक्त होती ह तो हर एक स्वप्न की मीमासा करनी पडगी और यदि फ्रायड की राय मान ली गयी तो स्वप्न की सभी बाते--यहाँ तक कि बिल्ली कुत्ता देखना भी--कामुक भावनाओं तथा भोग विलास की प्रेरणा का परिणाम है। पर आधुनिक मनोविज्ञान आज हमारे प्राचीन भारतीय सिद्धान्त की ओर बढ रहा है। एक अग्रेजी दनिक मे अभी हाल में एक लख बच्चो के स्वप्न पर था।[५] लेखक का कहना था कि

१ Dr Sigmund Freud
२ Dr P dma Agarwal—'A Psychological Study in Symbolism — Manovigyan prakashan Varanasi—1955—preface page iii
३ वही, पृष्ठ २६। ४ वही पृष्ठ १६।
५ अग्रेजी हिन्दुस्तान टाइम्स, २५ सितम्बर, १९६०।

आज की आधुनिक सभ्यता मे पलनेवाले बच्चे रात्रि में सपने में प्राय वह सब कुछ नही देखते जो दिन में या जाग्रत अवस्था में देखते हैं । न तो वे हवाई जहाज की यात्रा नीद मे करते ह न ट्रेन में । प्राय सभी बच्चे सभी देशो के अधरे से डरते ह । सभी छाट बच्चे जगल, जगली जानवर भयावह जानवर, पहाड नदी समुद्र आदि का दृश्य देखकर सपने में रोते ह । जब कोई उनको सपने में ही उस स्थिति से निकाल लेता है तो वे प्रसन्न होकर मुस्करा पडते ह । सभ्यता के युग के बच्चे आदिम निवासिया की परिस्थिति म पहुच जाते हैं । मनोवैज्ञानिको का कहना है कि चूकि मानव समाज उसी स्थिति से गुज़रकर आज सभ्यता की स्थिति मे आया है इसलिए अबाध बच्चे क मन पर उसके शशवकाल म हजारा वष पहले का सस्कार ही खेल रहा है । कहन का तात्पय यह कि दूसरे शब्दा मे आज के पश्चिमी मनावज्ञानिक यह मान गय ह कि मन का सस्कार अद्ध निद्रित अवस्था म तरह तरह के स्वप्न उपस्थित करता है । जन्म ज मातर क सस्कार मन का ढँके हुए ह । रात्रि क एकान्त म वे मन को सस्कारा की रगशाला म खडा कर देते ह । हम अपने प्राचीन सस्कारा से परिचित नहा ह । अतएव हम अपने सपनो का समझ भी नही पाते । इसी लिए बहुत से सपने रहस्य बने रह जाते ह । जिस प्रकार जाग्रत अवस्था म पुरान सस्कार मन के भीतर छिप जाते ह उसी प्रकार जागते ही प्राचीन सस्कारा की रगशाला का दर्वाजा बन्द हा जाता है । अधिकाश सपने एकदम भल जाते ह ।

तकशास्त्र क भारतीय पडिता का कथन था कि बुद्धि की एक अवस्था का नाम अविद्या है । इसी अवस्था म स्वप्न होते ह । स्वप्न के तीन कारण ह—

(१) असमवायिकारण—स्वप्न ही स्वय कारण है ।

(२) निमित्त कारण—धातु (वात पित्त कफ) दाष या अदष्ट—दव के कारण ।

(३) समवायिकारण—आत्मा के कारण ।

सपना देखा सपना हुआ—यानी स्वप्न स्वय अपना कारण है । इस बात का पुष्ट किया है प्रशस्त पादाचाय ने । वे कहते ह कि स्वप्न केवल स्मृति ही है । सपने म हम अपने पिछले ज्ञान को फिर से दोहरा लेते ह । तकसग्रह के टीकाकार नीलकठ इस मत को नही मानते । न्यायलीलावती मे निस्सकोच लिख दिया है कि मिथ्या नानो की धारावाहिक परम्परा ही स्वप्न ज्ञान है । प्रशस्त पादाचाय स्वप्न की स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखते है— इन्द्रियो के द्वारा मानसिक अनुभूति ही स्वप्न है । दिन भर बुद्धिपूवक अपने शरीर के द्वारा अनक काय करन पर मनुष्य शान्त होकर या भोजन पचाने के लिए विश्राम ग्रहण करने जाता है । उस समय अदष्ट की अतवय चेष्टा से आत्मा और अन्त करण का सम्बन्ध होता है । हृदय के भीतर इन्द्रिय शन्य प्रदेश में मन निश्चल हाकर बठ जाता है । इस दशा को हम प्रलीन मनस्क कहते ह । इस दशा में

इन्द्रिय समुदाय स्वय ही शान्त हो जाते ह । प्राण और अपान अपना काम करते रहते हैं । आत्मा और मन के सयाग का ही एक फल स्वाप यानी सोना है । उससे तथा अनेक प्राचीन सस्कारो से अ विद्यमान विषयो मे भी (भविष्य के बारे मे भी) प्रत्यक्ष घटना के समान ज्ञान होता है ।[1]

वशेषिकसूत्र की दूसरी टीका के कथनानसार[2] स्वप्न ज्ञान के तीन प्रकार ह—१ सस्कार मे २ धातुदोष से तथा ३ अदृष्ट से । सस्कार स ज्ञान का उदाहरण या दिया जा सकता है कि कामी पुरष या क्रुद्ध पुरुष जो बात साचता है उन्ह ही रात मे सपन म देखता है । या जसे महाभारत आदि की कथा जाग्रत अवस्था मे सुनी गयी और रात म उसकी घटनाए दिखाइ पड ।

धातुदोष से विचित्र स्वप्न हाते ह जसे यदि शरीर म वात वायु का दाष अधिक हा तो रात मे आसमान म उडना जमीन पर दौडना जगली जानवरो का भय आदि दिखाई पडता है । पित्तदोष से आग लगना आग की लपटो म फँसना स्वण क पहाड पर चढना बिजली चमकना आदि दिखाई पडता है । कफदाप से समुद्र या नदी म तरना या डबना वर्षा झरना फुहारा सफद पहाड आदि दिखाई पडता है ।

स्वप्न ज्ञान का तोसरा प्रकार है—अदृष्ट स । इसमे इस जन्म के पूवजन्म के अपने जन्म जन्मातर के सस्कार क अनुसार अपने धार्मिक जीवन क अनुसार गति म शुभ या अशुभ सूचना देनेवाले प्रतीक दिखाई पडते ह । दिन म भी स्वप्न हाते ह पर वे उतने प्रभावशाली नही हात । वशषिकसूत्र के अनुसार स्वप्न के नीचे लिख शुभ प्रतीक ह—

१ हाथी पर चढना । २ छत्र धारण करना । ३ पवत पर चढना । ४ खीर खाना या राजा का दशन होना ।

अशभ प्रतीक है—

१ तल लगाना २ कुए म गिर पडना ३ ऊट या गधे पर चढना ४ कीचड मे फसना या ५ अपना विवाह देखना—य सब घार अशुभ प्रतीक ह । मत्स्यपुराण म स्वप्नो का शुभ अशुभ तथा फल काफी विस्तार से दिया गया है ।[3] किन्तु प्रशस्तपाद आदि की व्याख्या स यह स्पष्ट है कि मन के सस्कारवश तथा धातुदोष से हानवाले सपना का काई फल नहा हा सकता । फल तो अदृष्ट वाले स्वप्न स हागा—तीसर प्रकार क स्वप्न से । अतएव हर एक स्वप्न का प्रतीक मानना गहरी भूल होगी । जब तक वद्य या डाक्टर यह न तय कर दे कि तीन प्रकार मे से किस प्रकार का स्वप्न है उसके फल या परिणाम की छानबीन नही हो सकती ।

१ वैशेषिकसूत्रों पर प्रशस्तपाद भाष्य ।
२ वैशेषिकसूत्र—उपस्कार टीका ।
३ मत्स्यपुराण, अध्याय २४२ ।

स्वप्न को कोरी माया माननेवालो के लिए भी उसका कोई महत्त्व नही है—

मायामात्र तु कार्त्स्न्येनाभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ।।[१]

बृहदारण्यक उपनिषद मे भी स्वप्न को इसी प्रकार मिथ्या माना गया है। जो चीज़ नही है उसको भी मन अपने से गढ लेता है।[२] साख्य और अद्वत वेदान्ती कहते ह कि सस्कार मात्र से बुद्धि का विभिन्न विषयो का आकार धारण करनेवाला परिणाम ही स्वप्न है। अधिकाश वेदान्ती स्वप्न दृष्ट विषय को सवथा मिथ्या मानते ह। किन्तु सभी वेदान्ती स्वप्न को असत्य नही समझते। आदि गुरु शकराचाय ने भी सपने में हाथी पर चढना शुभ तथा गधे पर चढना अशुभ माना है।[३] छान्दोग्य उपनिषद ने भी स्वप्न के शुभ तथा अशुभ प्रतीका का समथन किया है। लिखा है—

'यथा कमसु काम्येषु स्त्रिय स्वप्नऽभिपश्यति ।
समृद्धि तत्र जानीयात्तस्मिन स्वप्ननिदशन ।।"

(छान्दोग्य उपनिषद् ५,२,९)

अथात् काम्य कम करते हुए यदि स्वप्न मे स्त्री (सुलक्षणा) को दखे तो कम की सफलता निश्चित है।

पुराणो मे भी स्वप्न की जा याख्या की गयी है उसके अनुसार परमेश्वर की इच्छा से जीव को अपने मनागत सस्कार दिखाई पडते ह यही स्वप्न है।

मनोगताश्च सस्कारान स्वच्छया परमेश्वर ।
प्रदशयति जीवाय स स्वप्न इति गीयते ।।[४]

यदि परमेश्वर की इच्छा से जीव को अपने मनोगत सस्कार दिखाई पडते हैं तो उनका फल भी होगा। सस्कार बडी विचित्र तथा व्यापक वस्तु है। यह आगे-पीछे सब काल की बाता की तस्वीर खीच देता है। मन और बुद्धि के साथ जो कुछ है वह सस्कार ही तो लगा हुआ है। जिस समय सस्कार छूट जाता है सस्कार से मुक्ति मिलती है उसी का नाम मोक्ष है, अतएव सस्कार प्रतीक रूप मे भविष्य की सूचना भी दे सकता है। पर

१ ब्रह्मसूत्र, अध्याय ३, पाठ २, सूत्र ३।

२ 'स यत्र प्रस्वपिति न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति अथ रथान् रथयोगान् पथ सृजते"—बृ० उप०।

३ "आचक्षते स्वप्नाध्यायविद कुञ्जरारोहणादीनि स्वप्ने धन्यानि, खरयानादीन्यधन्यानि"—शारीरक भाष्य—शकराचार्य।

४ न्यायकोश, पृष्ठ १०१४।

सबसे कठिन बात है उस प्रतीक को उस सकट को उस भाषा को ठीक से समझ सकना। पश्चिमीय विद्वान जिस चीज को केवल भौतिक दृष्टि स देखते ह जो मन तथा सस्कार की मर्यादा को नही समझते वे स्वप्न के प्रतीक का भी ठीक से नही समझ पायगे। जिस की जसी बुद्धि होगी वह वसा ही समझेगा।

कामवासना को ही जीवन का सार तत्त्व समझनवाल तथा मनुष्य के सभी कार्यों को कामवासना मे सम्बद्ध करनवाल डा० फ्रायड कला साहित्य लिखन म भूल हो जाना जबान से अनाप शनाप बात निकल जाना—यानी जीवन की प्रत्येक घटना का उससे सम्बन्धित समझते ह। मनुष्य की अतृप्त इच्छाए ही सब बातो म प्रकट हो जाती ह। मानव के मन क भीतर का सघष इन्ही अतृप्त इच्छाओ के अनुसार जीवन की समूची शक्ति केवल वासना की प्रेरणा स सञ्चालित होती है।[१] डा० जुग ने फ्रायड क विचारो का काफी तकपूण खण्डन किया है।[२] फ्रायड का मत था कि मानव के मन की समूची इच्छाए कामवासना से यौनेन्द्रिय से सम्ब ध रखती ह। पर डा० जुग ने इसका खण्डन करते हुए सिद्ध किया है कि मनुष्य की काम प्रेरणा के अतिरिक्त उसकी वास्तविक इच्छा कहो अधिक व्यापक है। उसम आत्मश्लाघा सामाजिक धार्मिक तथा रचनात्मक प्रवृत्तिया भी सन्निहित ह। इसी लिए अज्ञात मानस—अचेतन अवस्था क विचार सचेत मानस या सचेतन अवस्था के विचार हो सकते ह। मानव स्वभाव की इस सत्यता का पटनम नामक विद्वान ने भी स्वीकार किया है। वे लिखते ह कि म भी शुरू म वज्ञानिक विश्लेषण मे यही समझ पाया था कि प्रतीको की तह म अतृप्त वासनाए—कामुक वासनाए विशेषत छिपी हुई ह। पर धीरे धीरे म इस नतीजे पर पहुचा कि एसा कहना एक तरफा बात होगी। केवल ऐसी बात ही नही है। इसके अलावा और कुछ भी है[३] इसी लिए कहा जाता है कि अज्ञात मानस मे जो प्रतीक बनते ह वे मनोवज्ञानिक सत्य को प्रतिपादित करते ह। मानव जीवन का पथ प्रदशन करनेवाले ये प्रतीक होते ह। स्वप्न म अज्ञात मानस[४] भावी जीवन का पथ प्रदशन करने के लिए इसी प्रकार प्रतीक बनाता रहता है। अज्ञात मानस मे मन ही भगवान की प्रतिमा की कल्पना करता है। अज्ञात मानस की यह कल्पना सचेत अवस्था मे देवमूर्त्ति का रूप धारण कर लेती

१ Dr Sigmund Freud— Psychopathology of Everyday Life —pub 1920

२ Dr C G Jung— Psychology of the Un conscious —pub 1918

३ J J Putnam— Addresses on Psycho—Analysis' —pub 1920 page-408

४ Unconscious—अचेतन या अज्ञात मानस।

है। इसी प्रकार स्वप्न मे मनुष्य का प्रतिभाशाली मन केवल वासना की अतप्त बातों का प्रतीक नही बनाता। वह अपनी अनगिनत इच्छाओं तथा सस्कारो से खेलता है उनका प्रतीक बनाकर शुभ या अशुभ भविष्य की सूचना देता या प्राप्त करता रहता है।

फ्रायड स्वय भी स्वीकार करते ह कि स्वप्न एक मनोवश्लेषणिक वस्तु है। इसका मनोवज्ञानिक इतिहास है। जब अपने समूचे ग्र थ मे वे स्वप्न को मनावज्ञानिक वस्तु समझते ह तो उसका आधार केवल कामवासना को देना उनकी भूल थी।[१] मनोवश्लेषणिक का इससे मतलब नही है कि सपने म क्या देखा। उसे इस बात की छानबीन करनी है कि हमारे दखने के पीछे क्या है उसकी पष्ठभूमि क्या है? वह स्वप्न प्रतीका का मन की बात तथा कामना स जाडना चाहता है। पर डा० जुग कहते ह कि स्वप्न के प्रताका को प्रतीक रूप मे ही लेना चाहिए। उनके स्पष्ट अथ म नही जाना चाहिए।

यह सत्य है कि मनुष्य के जीवन म ऐसी अनक बदलती इच्छाओ मे सघष मन के भीतर होता रहता है जिनको वह पूरा करना चाहता है पर लोक लाज समाज का बधन या नियम आदि के कारण पूरा नहा कर सकता। अतएव अपनी उन इच्छाओं का हम मन म दबाय रहत ह। सचतन मन या ज्ञात मानस का उन इच्छाओ पर आपत्ति है अतएव जाग्रत अवस्था म वह उन इच्छाओं को दबाय रहता है। किन्तु अज्ञात मानस अचेतन अवस्था म ऐसे विचित्र प्रतीक रूप मे उन इच्छाओं को प्रकट कर देता है कि कल्पना भी नही हो पाती कि सपन मे वसी असम्भव बात क्यो दखी गयी क्यो दिखाई पडी। जागन पर उन बहुत सी बातो का अथ समझ म नही आता।[२] इसी लिए सपन म दखी गयी बातो का काफी समीक्षण करना पडता है काफी विश्लेषण करना पडता है तभी वे समझ मे आ सकती ह। इसी लिए डा० जुग का कथन है कि स्वप्न की बातो को प्रतीक रूप म लेना चाहिए। उनका शाब्दिक अथ नही निकालना चाहिए। केवल भावना तथा इच्छा के माध्यम से इन प्रतीको को समझा जा सकता है। फ्रायड तथा डा० जुग की विचारधारा म अन्तर केवल इतना ही था कि फ्रायड के अनुसार स्वप्न में अतप्त वासना या कामना की प्रतीक रूप म अभिव्यक्ति होती है और जुग के अनुसार स्वप्न वतमान परिस्थितियो का व्यग्य चित्र (कार्टून) है और वह किसी उपमा द्वारा एक निश्चित नतिक लक्ष्य बतला रहा है। चूकि अज्ञात मानस का विकास नही हुआ है, अतएव उसकी भाषा भी विकसित नही है। अतएव स्वप्न के प्रतीक भी अस्पष्ट होते ह। इसलिए

१ Freud—Interpretation of Dreams—pub 1924 page 432

२ Freud— Interpretation of Dreams"—Chapter— Distortion in Dreams

फ्रायड तो स्वप्न को अतप्त वासना के सकुचित दायरे मे बाँध देते ह । पर जुग उसे वत मान परिस्थिति के साथ भी जोडकर उसका क्षेत्र काफी यापक कर दत ह । जुग के अनुसार स्वप्न के द्वारा महान दाशनिक सत्य सकल्प भावी परिस्थिति महत्त्वा काक्षाए दूसर के मन की बात इत्यादि भी जानी जा सकती है ।

इस प्रकार अज्ञात तथा अचेतन अवस्था म मन की प्रतीकात्मक क्रियाओ का नाम ही स्वप्न है । स्वप्न प्रतीकात्मक होते ह । जाग्रत अवस्था म मन को किसी की घडी चुराने की इच्छा हुई । सचेतन मन ने अपने को ही इसके लिए फटकार दिया धिक्कार दिया । पर उस घडी की ममता तथा चोरी का भाव मन मे छिपा रह गया । अब रात को साने म वही यक्ति घडा चारी जाने का सपना देखता है । यह घडा और कुछ नही, उस घडी का प्रतीक हुआ । डा० जुग का कहना है कि चूकि हर एक यक्ति अपनी इच्छा तथा भावना का अपन मे समट हुए है इसी लिए वह नही चाहता कि उसके मन की बात दूसरे जान सके । अतएव उसके स्वप्न भी प्रतीकात्मक हाते ह ताकि हर एक उनका न समझ सक ।[१] हर एक यक्ति की अपनी यक्तिगत कल्पना या पौराणिक गाथा का नाम स्वप्न है । चूकि हर एक की अपनी कल्पना अपनी इच्छा अपना विचार पथक और भिन्न होता है अतएव हर एक का स्वप्न तथा स्वप्न प्रतीक भी भिन्न होता है । मानव स्वभाव की यह विशेषता है कि वह प्रतीक रूप मे सोचता है । मन म प्रतीक बनाता रहता है और सोचता रहता है ।[२] इसी लिए वह प्रतीक रूप मे सपने देखता है । प्रतीक रूप म मन स बात करता है । जाग्रत अवस्था म भी अगर हमका घर जाना हाता है तो घर का प्रतीक मन के सामन बन जाता है ।

हर एक यक्ति के विचार इच्छा महत्त्वाकाक्षा कामना सभी भिन्न होते ह । इस विभिन्नता के कारण किसी एक की भावना का दूसरे स मेल बठाने मे कठिनाई होती है । यह सही है कि मानव स्वभाव की विभिन्नता मे ही एकता तथा एक स्वरिता प्राप्त होती है पर उसका आसानी स पता लगा लेना और एक निश्चित सिद्धात बना लेना कठिन है । सभी माताए अपने पुत्र से प्रेम करती ह पर माँ बेटे मे झगडा भी होता है । सभी पत्नियाँ अपन पतियो से प्रेम करती हो यह बात ता नही है । भावना मनुष्य के मन को कहा से कहा ल जाती है । अज्ञात मानस की कलात्मक भावना स्वप्न में जाग उठती है । इसी लिए प्रसिद्ध दाशनिक काट ने कहा था कि स्वप्न अज्ञात मानस की स्वत बनी हुई कविता है । प्रसिद्ध कवि दाते जो कुछ स्वप्न मे देखते थे उसे कविता

१ Jung—Psychology of the Unconscious
२ Dr Padma Agarwal—page 53

का रूप देते थे। इसी लिए वे इतने महान कवि हुए।[१] इसी लिए दाते जो कुछ लिखते थे उसमे कितनी कविता थी कितना स्वप्न था यह कहना बडा कठिन है। अस्तु इस कथन से इतना तो स्पष्ट हुआ कि जाति कुल, परम्परा आदि के अनुसार मानव की विचारधारा भिन्न भिन्न होती है। एक कलाकार के एक लेखक के, एक ब्राह्मण के एक शद्र के—एक मिल मालिक तथा एक मजदूर के स्वप्नो का अथ भिन्न होगा ही। इसी लिए स्वप्न का अथ भी भिन्न होगा।[२] इसी लिए स्टेकल[३] ने अपनी पुस्तक में साफ लिख दिया है कि किसी स्वप्न प्रतीक का सवव्यापक अथ नही हो सकता। फिस्टर ने इसका उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि फ्रायड का यह कहना कि सपने मे सप देखना लिंग प्रतीक है गलत है। सप अज्ञात मानस की 'मत्यु या हत्या सम्बन्धी दबायी गयी इच्छा का प्रतीक हो सकता है अथवा पत्नी की ज़हरीली जबान का भी।[४]

इस सम्बन्ध मे डा० जुग तथा डा० फ्रायड की विचार प्रणाली म जो महान अन्तर है, वह स्पष्ट समझ मे आ जाता है। डा० फ्रायड ने अपने युग म एक बडा भारी काम किया था। मनावज्ञानिका ने अपने विश्लेषण में मन तथा आचरण पर कामुक भावना एव ऐन्द्रिक लिप्सा क प्रभाव पर लेशमात्र भी प्रकाश नही डाला था। फ्रायड ने इस महान् तथ्य की आर ससार का ध्यान आकर्षित किया। पर अपने इस प्रयत्न मे वे जरूरत से ज्यादा उलझ गये। इसी लिए डा० जुग न उनकी भूलो को सुधारा। डा० जुग के विचार भारतीय मनोवज्ञानिका के अधिक निकट ह। उन्होंने एक स्वप्न की समीक्षा की है। एक रोगी ने सपना देखा कि वह अपनी माता तथा बहन के साथ जीन पर चढ रहा है। ऊपर पहुच जाने पर उसकी बहन को बच्चा पैदा हुआ। डा० फ्रायड इसकी समीक्षा इतनी ही करेग कि जीने पर चढना स्त्री-सभोग की कामना का द्योतक है। साथ म माता या बहन का रहना उनके लिए इतना ही महत्त्व रखेगा कि वह बात स्त्रीमात्र को ही प्रकट करती है। पर जुग ने इस स्वप्न की पूरी समीक्षा करके यह फसला किया कि जीने पर चढना उस पुरष के जीवन में उत्कष का द्योतक है। बहन का साथ में रहना उसके भावी स्त्री प्रेम का प्रतीक है—भविष्यवाणी है। बहन को बच्चा होन का तात्पय केवल इतना है कि वह अपने द्वारा नयी पीढी के निर्माण की सोच गया। साथ में माता भी है। उस रोगी ने स्वय स्वीकार किया है कि बहुत दिनो स वह अपनी माता से मिला नही। उसकी उपेक्षा कर रहा है। उसकी इस भूल को अज्ञात मानस ने सपने मे ठीक कर दिया।

१ डा० पद्मा अग्रवाल—पृष्ठ ११२–११३। २ वही, पृष्ठ ९८।
३ William Stekel–The Interpretation of Dreams Vol I & II 1943
४ O Pfister–The Psychoanalytic Method 1917–page 291–92

उसे उसकी भूल के लिए फटकार भी दिया। उसे याद दिला दिया तथा अपनी माता को अपने उत्कर्ष मे साथ मे रखने की हिदायत भी दे दी।[१]

इसी लिए जुग ने कहा है कि जोने पर चढ़ना स्त्री सम्भोग का ही प्रतीक नही है। वह उत्थान तथा उत्कर्ष का भी प्रतीक हो सकता है। डा० पद्मा अग्रवाल ने फ्लूगल की पुस्तक से एक उदाहरण देकर वासना सम्बन्धी भावना का स्वप्न म क्या रूप हो जाता है यह समझाया है। एक स्त्री ने सपना देखा कि एक आदमी उसका पियानो बाजा ठीक करने आया। उसने बाजे को खोला। उसकी कड़िया को भीतर से निकालकर उसमें बिठाने लगा। इस स्वप्न का विविध अर्थ हुआ। वह पियानो बाजा स्वत उस स्त्री का प्रतीक है। पियानो ठीक करनेवाला वह पुरुष है जिससे वह स्त्री अपनी वासना शान्त करना चाहती है। कड़ियाँ निकालकर डालने का अर्थ है उसके गर्भ में बीज धारण कराना। अब हर एक व्यक्ति यदि बाजा ठीक करने का सपना देखे तो उसका भाग हो अर्थ होगा यह कहना अनुचित बात होगा।

अधिकाश लोगो के निजी अनुभव म एक ही अर्थ म जो स्वप्न प्रतीक प्रकट हो उन्हे व्यापक स्वप्न प्रतीक कहेगे। बहुत से स्वप्न प्रतीक पौराणिक कथाओ से बहुत मिलते जुलते है। जैसे फ्रायड ने भी सपने मे पानी देखने का अर्थ सन्तानोत्पत्ति माना है। पौराणिक आदेश है कि जो स्त्री किसी बच्चे को जल मे डूबने से बचा दे वही उसकी असली माता होगी। इ ही सब आधारो पर डा० पद्मा अग्रवाल ने बहुत से सर्व मान्य स्वप्न प्रतीक गिनाये है—[२]

(१) पानी मे प्रवेश करना या बाहर निकलना—सन्तान जन्म प्रतीक।
(२) सम्राट तथा सम्राज्ञी देखना—पिता माता प्रतीक।
(३) यात्रा—मृत्यु प्रतीक।
(४) वस्त्र—नगा रहने का प्रतीक।
(५) प्राकृतिक दृश्य कमरा किला महल जेब तितली—स्त्री प्रतीक।
(६) रिग्नौल सुई चाकू पेंसिल मीनार—पुरुष प्रतीक।
(७) गाँठ खोलना—समस्या सुलझाना।[३]
(८) पहरेदार—सचेतन क्रियाशीलता।

१ C G Jung–Collected Papers on Analytical Psychology–1920—chapter VII—page 229

२ डा पद्मा अग्रवाल पृष्ठ ६९।

३ वही, ७०।

(६) अजायबघर—बुद्धि का कोष ।
(१०) अग्नि—देव प्रतीक ।[1]

इन प्रतीकों का यदि सावधानी से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि इनके साथ सार्वजनिक विश्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है । सभ्यता के आदि काल से अग्नि का पूजन हमारी नसों में भरा हुआ है । अतएव अग्नि देव प्रतीक होगी ही । जो चीज प्रहार करे आघात करे चुभे वह चोट पहुंचाये पुरुष का गुण है चाहे स्त्री प्रसंग में हो या निजी अनुभव में । अतएव वह सब पुरुष प्रतीक हो गये । इसी लिए हम कहते हैं कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक विश्वास के आधार पर प्रतीक बनते हैं । हम कहते हैं कि पौराणिक कथाओं का[2] तथा प्रतीकों का घना सम्बन्ध है । इसलिए भी कि पौराणिक कथाओं और लोकविश्वासों का सम्बन्ध लोक समुदाय की धार्मिक क्रियाओं तथा जादू टोने आदि से भी अत्यन्त निकट का होता है । [3] हैडले ने भी लिखा है कि वस्तुओं की उत्पत्ति की समस्या के सम्बन्ध में मनुष्य की कल्पनाशक्ति ने समय समय पर जो उत्तर दिये हैं पौराणिक कथाएं उनका प्रतिबिम्बित्व करती हैं । जिसकी जितनी कल्पना शक्ति जाग्रत जीवन में होगी जिसका लोकविश्वास जैसा होगा जिसको अपनी पौराणिक गाथाओं की जितनी जानकारी होगी उसका अज्ञात मानस भी स्वप्न में वैसा ही कार्य करेगा ।

अपनी पुस्तक में श्री श्यामाचरण दुबे ने लोक विश्वास की विचित्रता पर अच्छा प्रकाश डाला है । वे कुछ रोचक उदाहरण भी देते हैं ।[4] उनके अनुसार छत्तीसगढ़ की कमार आदि जातियों का विश्वास है कि जब अथाह जल सागर के वक्ष पर पृथ्वी तैर रही थी उसे स्थिर करने के लिए महादेव ने चारों दिशाओं में चार विशाल स्तम्भ गाड़ दिये और उन पर कानी सुरही गाय का चमड़ा इस तरह लगाया कि पूरी तरह से पृथ्वी को ढँक ले । फिर भी चमड़े की चादर ढीली रह गयी । इसलिए महादेव ने भिन्न प्रकार की कील ठोककर उसे ठीक कर दिया । अब पृथ्वी स्थिर हो गयी । वह चादर ही आकाश है और महादेव द्वारा ठोकी हुई वे कील ही आकाश में तारे हैं ।

मध्यप्रदेश के मंडला जिले के रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा को भगवान रामचन्द्र के नेत्र समझते हैं । मध्यप्रदेश की एक जाति बैगा का विश्वास है कि जब पृथ्वी बन गयी पर स्थिर नहीं हो सकी तो भगवान ने भीमसेन को आज्ञा दी कि उसे स्थिर करो । भीमसेन

१ वही ८५ । २ Mythology
३ श्यामाचरण दुबे "लोकविश्वास और संस्कृति"—राजकमल प्रकाशन, १९६०, पृष्ठ १८७ ।
४ वही, पृष्ठ १८ ९ ।

ने सोचा कि पहले तम्बाकू पी लू तब इस काम को देखू । उनके तम्बाकू के धुए से आकाश बन गया तथा तम्बाकू की आग के प्रज्वलित कणो से आकाश के तारे बन गये । उत्कल के जुआग समाज का विश्वास है कि एक बार आदमी की जीभ पर एक बाल निकल आया । कुछ ही दिनो में वह बारह हाथ लम्बा हो गया । जीभ के बाल से बेचैन होकर उसने प्रभु से प्रार्थना की कि उसे मुक्ति मिले । प्रभु ने उसके प्राण वापस बुला लिये । उसी दिन से आदमी मरने लगा । वह पहली मौत थी ।

आगस्ट काटी के अनुसार[1] पारिवारिक जीवन से जो शृखला प्रारम्भ होती है वही सामाजिक जीवन का रूप लेती है । वही जाति की शिक्षा का आधार बनती है । आदि काल से पारिवारिक जीवन कतिपय लोक विश्वासो के बल पर बनता है । अतएव पारिवारिक विश्वास जाति तथा समाज का विश्वास बन जाता है । बिना सामाजिक व्यवस्था के समाज नही टिक सकता । बिना शासन के सामाजिक व्यवस्था नही टिक सकती । समाज के बिना शासन नही चल सकता । शासन के बिना समाज नही चल सकता ।[2]

परिवार जाति समाज शासन—यह सब कुछ लोक विश्वास पर निर्भर है । लोक विश्वास से इनका घनिष्ट सम्बन्ध है । इसी लिए स्वप्न प्रतीक भिन्न सामाजिक जीवन मे भिन्न होगे ही । उसी प्रकार पुरुष स्त्री के विश्वास भी अपने अपने दायरे मे भिन्न होगे । अपनी अतृप्त इच्छा या वासना को प्रकट करने के उनके साधन भी भिन्न होते है । उदाहरण के लिए हिस्टीरिया यानी वातोन्माद रोग को ही लीजिए । यह रोग प्राय स्त्रियो को होता है । इसका दौरा आता है मूर्च्छा होती है बक झक होता है । जोन्स के अनुसार ऐसे दौरे के समय जो बाते मुहसे निकलती है वे शब्द रूप मे भावनाओ का प्रतीकीकरण है ।[3] फ्रायड के अनुसार इस रोगीका प्रतीकरूप मे अपनी अतृप्त वासना को व्यक्त करने का यही साधन है किन्तु जब परिवार समाज जाति शासन पुरुष स्त्री योनि भेद तथा लोक विश्वास इतने रूप धारण से प्रतीक की व्याख्या करनी पडेगी तो फ्रायड की यह बात हमारी समझ मे नही आती कि मनोविश्लेषण द्वारा ही हर एक प्रतीक का स्थायी अर्थ होता है ।

वे लिखते है कि स्वप्न की बात जानकर हम स्वप्न की व्याख्या स्वय कर लेते है ।

१ Auguste Comte— Positive polity —Vol II—page 153
काट सामाजिक जीवन में पारिवारिक व्यवस्था को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान देते है ।

२ वही पृष्ठ २२४ ।

३ Symbolization by means of verbal expression E Jones— Papers on Psycho analys s —1923—page 477

स्वप्न देखनेवाला तो उलझन में ही रहता है कि स्वप्न का अर्थ क्या हुआ।'[१] अपने मन के अनुसार अपनी भावना के अनुसार, अपने विश्वास के अनुसार किसी दूसरे के स्वप्न की व्याख्या करने के कारण ही हम भूल कर सकते हैं। हमारा निश्चित मत है कि स्वप्न प्रतीक का सर्वव्यापी तथा स्थायी अर्थ नहीं हो सकता।

प्रतीक का उपयोग मनुष्य की कल्पना तथा बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। पशु और मनुष्य में भेद ही यह है कि मनुष्य को प्रतीकात्मक कल्पना तथा बुद्धिमत्ता प्राप्त हुई है।[२] किंतु मानव प्रतीक की विशेषता इस बात मे नहीं होती कि वे समान रूप के होते है, सभी मानव प्रतीकों में समानता नहीं होती बल्कि उनकी विभिन्नता ही उनकी विशिष्टता है।[३] हर वस्तु के सम्बन्ध में मनुष्य अपनी धारणाएँ बना लेता है। उन धारणाओं को लेकर बुद्धि काम करती है। धारणा तथा बुद्धि के संयोग से भावना पैदा होती है। धारणा के मूल विचार कल्पना की भूल का कारण बन जाते हैं। धारणा के परिमार्जन से ही शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है। धारणा के आधार पर ही उन्माद हो सकता है। धारणा के आधार पर ही स्वप्न होता है। किन्तु प्रत्यक्ष देखने तथा अनुभव से धारणाएं बदलती रहती हैं। भावना इतनी जल्दी नहीं बदलती। इसी लिए धारणा में स्थायित्व नहीं होता। भावना में अधिक स्थिरता होती है। लन्दन जाने की धारणा से बुद्धि ने लन्दन का मानचित्र तैयार कर दिया। धारणा ने लन्दन की भावना पैदा कर दी। खाट पर पड़े पड़े सपने में हम लन्दन पहुंच जाते हैं और वापस आ जाते हैं। असल में बुद्धि के साथ भावना टिक जाती है और इसी लिए हम सपने में भी जो कुछ देखते हैं वह केवल नयी सूझ बूझ या कल्पना नहीं है। उनकी तह में धारणा तथा भावना भी है।[४] यह भावना तथा धारणा हर मनुष्य में भिन्न होती है।[५] किन्तु मनुष्य की समूची धारणा समूची भावना तथा समूची प्रगति का एकमात्र लक्ष्य है आत्म मुक्ति। अपने बन्धनों से छुटकारा पाना। इसलिए जो कार्य जितना अधिक प्रतीकात्मक

१ Freud—New Introductory Lectures—1933—page 23 24

२ Ernes Cassirer— An Essay on Man —Yale University Press New York—1953—page 5?

३ वही पृष्ठ ५७।

४ Ralph Monro Eaton— Symbolism and Truth —page 161-62

५ 'The Philosophy of Ernest Cassirer —Edited by Paul Arthur Schilpp—pub The Library of Living Philosophers, Illinois—1940—page 752

होगा वह उतना ही अधिक मानवीय होगा।[१] मानव की सांस्कृतिक प्रगति की मात्रा के अनुसार ही उसके प्रतीक होंगे।

भारतीय विचारधारा के अनुसार इच्छा ज्ञान क्रिया तथा शक्ति के द्वारा ही धारणा तथा भावना बनती है। स्वप्न के वास्तविक तत्त्व को समझने के लिए बिना भारतीय दर्शन का सहारा लिये असली बात समझ में नहीं आ सकती। तंत्रशास्त्र में इस विषय पर काफी गवेषण किया गया है। तंत्रालोक में ही लिखा है कि—

कालशक्तिस्ततो बाह्या नतस्या नियत वपु।
स्वप्न स्वप्न तथा स्वप्न सुप्ते सकल्पगोचरे।। आह्नि० ६—श्लो० १८३
समाधौ विश्वसहारसष्टिक्रमविवेचन।
भिन्नोऽपि किल कालांशो विदधत्वन भासते।।१८४

अर्थात प्रकट रूप में कालशक्ति होती है। कालशक्ति का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता। स्वप्न होने के समय उसकी पहले की पूर्वार्द्ध तथा बाद की उत्तरार्द्ध दशा में—तथा सच्चे स्वप्नकाल में सुप्त यानी सोने की दशा में स्वतंत्र रूप से संकल्प विकल्प करने के समय समाधि लगाने के समय तथा संहारकाल में अति परिमित समय भी बहुत लम्बा तथा विस्तृत मालूम होता है। तात्पर्य यह कि जहां तक स्वप्न का सम्बन्ध है थोड़े से समय में ही देखा गया स्वप्न काफी लम्बा घटना प्रतीत होता है।

तंत्रालोक ने स्वप्न की व्याख्या करते हुए कई मार्के की बात बतलायी है। आयुर्वेद में लिखा है कि स्वप्न गहरी नींद की दशा में नहीं होता। पर यह सभी स्वीकार करते हैं कि निद्रावस्था में जो कुछ देखा जाय उसी का नाम स्वप्न है। तंत्रालोक के अनुसार सौषुप्त अवस्था में यानी सोने के समय शरीर के तत्त्व विलीन हो जाते हैं यानी समाप्त हो जाते हैं और उन्हीं नष्ट हुए तत्त्वों में सम्बंधित सपने का अनुभव प्राणी को होता है।[२] इसलिए स्वप्नावस्था से पहले सुषुप्ति दशा यानी नींद का आ जाना जरूरी है। सिद्ध हुआ कि स्वप्न का कारण निद्रा है। यदि शयन दशा में तत्तत् तत्त्वों का लय न माना जाय तो शयनकाल में तत्तत् तत्त्वज्ञानरूप स्वप्न का अनुभव नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए सोने के समय जब शरीर से पृथ्वी तत्त्व का लय हो जाता है विनाश हो जाता है तभी पर्वत पर चलना घूमना चढ़ना आदि स्वप्न का अनुभव

१ वही पृष्ठ ३०१।

२ सौषुप्ते तत्त्वलीनत्व स्फुटमेव हि लक्ष्यते।
अन्यथा नियतस्वप्नमदृष्टिनायते कुत ।।
—तंत्रालोक, दशमाह्निकम। श्लो० १७३।

होता है। जल तत्त्व का विनाश हो जाने पर समुद्र नदी, आदि में तरना इत्यादि स्वप्न दिखाई पडता है।

शयन के लिए जाने के समय मन में जिस प्रकार के गुण की, यानी सत्त्व रज या तम की प्रधानता होती है वसा स्वप्न दिखाई पडता है। यदि सुखमहमस्वाप्सम — यानी सुखपूवक शयन किया इस प्रकार की स्मृति होती है तो सत्त्व गुण की प्रधानता हुई। दु खमहमस्वाप्सम् —कष्टदायक निद्रा मे सोया—की प्रधानता रजोगुण प्रधान हुआ। न किंचिच्चेतिवानहम —कुछ ज्ञान नही हुआ—यह तमोगुण हुआ।[1] वसे ही चित्र स्वप्न म आते ह।

आगे चलकर फिर लिखा है कि प चभत तत्त्वो से सम्बन्धित स्वप्न अधिष्ठान कारण यानी आत्मा मे ज्ञानरूप से अनुभूत किय जाते ह। ये स्वप्न वकल्पिक पथ यानी भावना के अनुसार होते ह। भावना के अनुरूप होन से उस स्वप्न की प्रतीति भावनानरूप ही होती है। लाकप्रसिद्ध ऐसे स्वप्न प्राय विशेष रूप से देखे जाते हैं। स्वप्न अबाह्य रूप, यानी अन्त करणम अनभत होने स इनका (स्वप्न का) तथा भावना का मेल रहता है। भावना के अनुसार स्वप्न होता है।

किन्तु भावना के अनुरूप स्वप्न होते हुए भी उसे दो प्रकार का माना गया है। पहला है स्वप्न जागरा। इसकी प्रतीति उत्प्रेक्षा स्वप्न सकल्प स्मति उ माद काम शोक भय और चोरी आदि काय या दशा मे होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जागते हुए वसा काम कर रहे हो। सब चीज साक्षात दिखाई पडती ह। इसी लिए इसे मुख्य स्वप्न कहते ह। दूसरी श्रेणी का नाम केवल स्वप्न है। इसमे प्रतीक रूप मे कुछ बात दिखाई पडती ह जो कल्पना तथा भावना के मेल से बनती ह। इनम वह स्पष्टता वह प्रत्यक्षता नही है। इनका अथ समझने की जरूरत पडती है।[2]

ऐसे स्पष्ट स्वप्न को ही स्वप्न की सज्ञा दी गयी है। ऐसे स्वप्नो म भी उत्प्रेक्षा, कामवासना शोक सुख आदि सभी की अनुभूति अत करण म होती है पर उनका ज्ञान,

१ सौषुप्तमपि चित्र च स्वच्छास्वच्छादि भासते।
अस्वाप्स सुखमित्यादि स्मृतिवैचित्र्यदर्शनात्॥

—वही, १७४

२ तत्स्वप्नो मुख्यतो ज्ञेय तच्च वैकल्पिके पथि।
वैकल्पिकपथारुढ वेध्य साम्यावभासनात्॥
लोकरुढोऽप्यसौ स्वप्नसाम्य चाबाह्यरूपता।
उत्प्रेक्षास्वप्नसकल्पस्मृत्युन्मादादिदृष्टिषु॥

—तन्त्रालोक—१०—श्लो०, २४८, २४९

उनका अर्थ स्थिर करने के लिए काफी परिश्रम करना पडता है। सब लोग उसका अर्थ नही लगा सकते।[१]

स्वप्न की सष्टि को व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवपाद गुप्त लिखते है कि आत्मा मे उत्पन्न होनवाले विचारो से स्वप्न की सष्टि होती है। अतएव स्वप्न सम्बन्धी विषय आत्मा से सम्बन्धित है इन्द्रियो से नही। स्वप्न मे देखा गया विषय बार बार दिखाई भी नही देता। एक ही स्वप्न को सभी लोग नही देखते नही देख सकते। इसलिए स्वप्न सवजनसवेद्य नही है। यही कारण है कि जाग्रत दशा मे जो कुछ हम देख रहे है स्वप्न उससे भिन्न होता है। सपना लयाकाल यानी भोक्ता यानी देखनेवाल का ही विषय होता है और वह भी अस्थिर। स्थिर रूप से स्वप्न नही देखा जाता।[२]

अन्त करण म देखी गयी चीज काल्पनिक नही हो सकती। उसका मन बुद्धि भावना के सयाग से सत्त्व रज तम गणा के विकल्प से वास्तविक रूप या आधार होता है। इसी लिए स्वप्न प्रतीक का अपना विशेष महत्त्व है। तन्त्रालोक के अनसार पूणचिदानन्द स्वरूप शिव म स्वप्न ज्ञानशक्ति रूप है। जाग्रत स्वप्न म—यानी पहली श्रेणी के स्वप्न म यह शक्ति क्रियाशक्ति रूप म है। सुषुप्ति यानी निद्रा की अवस्था बीज भमि है। ये शक्तियाँ उस शिव म वास्तविक रूप म वतमान ह। ये शक्तिया लाक्षणिक नही ह। काल्पनिक भी नही ह। अतएव इनकी सत्ता का स्वीकार करना होगा। इनका ठीक से समझना होगा। अतएव स्वप्न कोइ साधारण वस्तु नही। चिदानन्दस्वरूप शिव म स्वप्न ज्ञानशक्ति रूप है।[३]

ज्ञानशक्ति स्वप्न उक्त क्रियाशक्तिस्तु जागृति।
नववमुपचार स्यात सव तत्रव वस्तुत॥

भारतीय विद्वानो ने जिस ऊच दशन की श्रेणी मे स्वप्न को पहुचाकर उस पर विचार किया है वहा तक पश्चिम के पडित पहुच नही सके। इसी लिए व स्वप्न के भौतिक प्रतीक तक ही रह गये। यदि व मन की प्रवत्तिया का अधिक गहराई से अध्ययन करते तो अन्त करण म उठ हुए विचारा के प्रतीका की मर्यादा को अधिक अच्छी तरह समझ सकते।

१ विस्पृष्ट यद्वेद्यजात जाग्रन्मुख्यतत्रैव तत्।
यत्त तत्राप्य विस्पष्ट स्पष्टाधिष्ठात् भासते॥
विकल्पान्तरगे वेद्य तत्स्वप्नपदमुच्यते।
तत्रैव तस्य वेत्येव स्वपमेवेह बाध्नताम्॥ —तन्त्रालोक—१०—श्लो० २५०,२५१

२ आत्मसकल्पनिर्माण स्वप्नो जाग्रद्विपयय।
लयाकालस्य भोगोऽसौ मलकर्मवशान्न तु॥ —वही, श्लो० २९०

३ तन्त्रालोक, दशमाह्निकम्, श्लो० ३००।

मन तथा बुद्धि के विवेचको ने चित्त विकृति[1] और उन्माद की दशा तथा स्वप्न की दशा को कभी कभी एक में मिला देने की भूल की है। चित्त विकृति एक रोग होता है। यह बीमारी सहज इच्छा तथा आदर्शवाद में सघर्ष होने के कारण पैदा होती है। ऐसी बीमारी प्राय अन्तर्मुखी प्रवृत्तिवालो आत्म निरीक्षण की प्रवृत्तिवालो अपने चित्त को खीचकर भीतर की ओर ले जानेवालो को[2] होती है। मन किसी ओर जा रहा है विवेक बुद्धि किसी और ओर जा रही है दोनो मे सघर्ष होता है। आदमी अपने चित्त मे घोर असमजस का अनुभव करता है। उस दशा मे उसे चित्त विकृति होती है। यह बीमारी प्राय वातरोगी को होती है। चित्त पर उलझन के बोझ के कारण अनिद्रा थकावट पेट मे खराबी बदन मे पीडा सिर म दर्द चिडचिडापन उदासी गठिया वातरोग—ऐसे न जाने कितने रोग हो जाते ह। स्त्रियो में हिस्टीरिया की बीमारी भी प्राय इन्ही कारणो से होती है। ऐसे रोगी को अपनी अतृप्त इच्छा तथा आदर्शवादिता के सघर्ष के कारण जागते उठते तथा सपने मे भी तरह तरह की चीजे दिखाई पडती ह। किन्तु रोग के कारण उत्पन्न स्वप्न **प्रतीक** नही मान जा सकते रोग का कारण जानने में सहायक हो सकते ह।

यदि किसी स्वस्थ स्त्री ने सपने मे देखा कि कोई व्यक्ति नगी तलवार लेकर उसके पीछे दौडा तो यह बहुत कुछ कामक स्वप्न है। असल मे वह स्त्री किसी से प्रेम करती है। उससे सभोग की इच्छा रखती है। तलवार से हमला उसकी इस कामना का **प्रतीक** हुआ। इसके विपरीत एक दूसरी सुन्दर स्त्री है जिसका पति फिल्म डायरेक्टर है। अपने काम से छुट्टी पाकर काफी रात बीते घर आता है। स्त्री को यह बात बहुत खलती थी। पर वह अपनी नाराजगी खुलकर प्रकट करने का साहस नही करती थी। अपना रोष तथा असन्तोष प्रकट करने के लिए वह नित्य सिर म दर्द तथा शरीर म रक्त की कमी का बहाना कर देती थी। धीरे धीरे उसे सिर मे दर्द रहने लगा। वह पीली पड गयी। बीमार भी मालूम पडी पर डाक्टर ने उसके शरीर म कोई रोग नही पाया।[3] स्पष्ट है कि अतृप्त वासना से उसको यह बीमारी हुई। उसके मन मे यह शका समा गयी कि उसका पति फिल्म ऐक्ट्रेसो के साथ प्रेम लीला करता रहता होगा।

इसी प्रकार अनेक कारणो से कुछ के मन म अनायास भय यानी वहम समा जाता है। ऐसी आशका भूत की तरह मन के पीछे लग जाती है। किसी दुर्बल-स्वभाव व्यक्ति ने देख लिया कि किसी को साँप ने काट खाया है। उसके मन मे सर्प का भय बैठ गया। सोते जागते वह साँप का सपना देखा करता है। जिस प्रकार ऊपर लिखी स्त्री का रोग

१ Neurosis २ Introverts ३ डा० पद्मा अग्रवाल, पृष्ठ १८६।

उसकी अतप्त वासना का प्रतीक है इसी प्रकार इस व्यक्ति का भय उसकी मृत्यु प्रेरणा का प्रतीक है। फ्रायड ने एक व्यक्ति का वर्णन किया है कि जब वह बारह वर्ष का था उसके मन में १३ की सख्या के प्रति भय समा गया। यह भय इतना बढा कि वह १३ नम्बर के किसी कमरे में नही ठहरता था। अपने मकान से १३ व मकान के सामने नही जाता था। महीने की तेरहवी तारीख का वह अपना कमरा नही छोडता था। अग्रजी मे सत्ताईसवाँ का Twenty Seventh कहते है। इसम १३ अक्षर है। अतएव सत्ताईसवी तारीख को भी वह अपने कमरे से बाहर नही निकलता था। यदि किसी कमरे म मेज कुर्सी आदि पर जितने व्यक्ति बैठ हो उनकी सख्या १३ हो जाती तो वह कमरे से भाग जाता था। यदि घडी न दस का घटा बजाया और कमरे म ३ आदमी बैठ रहे तो १३ की सख्या हो जाती थी। उसे बडी बेचैनी हो जाती थी। हर १३ वे मिनट उसका चित्त उद्विग्न हो उठता था। बाइबिल का तेरहवा सूक्त भी वह नही पढता था।

उसके इस भय के कारण का विवेचना करना कठिन हो जाता है। हो सकता है कि उसके अज्ञात मानस म १३ की सख्या के साथ कोई गुरुतर अपराध छिपा हो। हो सकता है कि उसके पूर्वजन्म के सस्कार म १ की सख्या के साथ कोई भयानक सम्बन्ध रहा हो। पर उसका यह भय किसी विचित्र घटना का **प्रतीक** अवश्य है। अनुचित भय से एक प्रकार का उन्माद पैदा हो जाता है जिसे अंग्रेजी मे परानोइया[1] कहते है। फ्रायड ने इसका एक उदाहरण दिया है। एक स्त्री का किसी पुरुष से अनुचित सम्बन्ध था। दोनो म बडा प्रेम था। एक दिन दोनो प्रेम कर रहे थे कि स्त्री को ऐसा आभास हुआ कि खिडकी के बाहर फोटो खीचने की **टिक** ' एसी आवाज हुई है। उसके प्रेमी ने उसे बहुत समझाया कि यह उसका भ्रम है पर उसके दिल म बात बैठ गयी कि उसे जलील करने के लिए तथा हमेशा मुट्ठी म रखने के लिए उसके प्रेमी ने अपने मिलन का फोटो खिचवा लिया है। उसका यह भ्रम नही गया। झगडा शुरू हुआ चलता रहा सम्बन्ध ही टूट गया। इस उन्माद या बहम की यदि समीक्षा की जाय तो कारण स्पष्ट हो जायगा। वह स्त्री मन ही मन अपने अनुचित सम्बन्ध से भयभीत थी। वह सम्बन्ध के लिए अपने को धिक्कारा भी करती रही होगी। आदर्श तथा वासना का ऐसा सघर्ष भय का रूप धारण कर उसके पाप का **प्रतीक** बन गया। अज्ञात मानस या मन के सस्कार के कारण हम अपने दोष पाप से अनेक मानसिक चित्र बनाया करते है। किसी की हत्या करनेवाले को प्राय मृत व्यक्ति का प्रेत खडा दिखाई देता है। भूत प्रेत के सम्बन्ध म अधिकाश कथाएँ मानसिक चित्रमात्र है। किसी वस्तु की सत्ता न होते हुए भी हम उसकी सत्ता

१ Freud Cellected Papers—Vol II— A case of Paronoia'

बना लेते है । मन की भावना को विस्तृत रूप दे देने का नाम ही वह 'बहम' है आशका" है, मानसिक चित्र है जिसकी कोई सत्ता नही होती ।

ऐसी आशका के विपरीत भी एक भावना हाती है जो मनुष्य की अत्यधिक अहभावना से उत्पन्न होती है । ऐसे बहुत-से स्त्री पुरुष मिलगे जो घटो आइने में अपना ही रूप देखा करगे । उनका अहभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि वे अपने से ही प्रेम करने लगते हैं । कुछ ऐसे होते है जो अपने मे ही कई प्रकार का व्यक्तित्व उत्पन्न कर लेते ह । वे पुरुष भाव स्त्री भाव बाल भाव तीनो के **प्रतीक** बन जाते है । विद्या, सुख नाच रग, सभोग आदि मे कितने ही पुरुष स्त्रियो का सा काय करते ह तथा स्त्रियाँ पुरुषो के समान काय करती ह ।

मन की विचित्र गति है । बुद्धि का रूप इतना सूक्ष्म तथा गूढ है कि उसकी गहराई म पैठना बडा कठिन है । फिर भी मनोवैज्ञानिक उसके सम्ब ध मे बराबर खोज करते जा रहे ह । यह सष्टि परमब्रह्म परमात्मा का **प्रतीक है** । इसी प्रकार मनुष्य भी ससार मे जो कुछ कर रहा है या करता है चाहे भाषा हा कला हो साहित्य हो उ माद हो, स्वप्न हो सब **प्रतीकात्मक** है । अ तर केवल इतना ही है कि यो तो अ ततोगत्वा सभी प्रतीक ससार के समान हो नाशवान् ह पर उनमे से वास्तविक प्रतीक स्थायी तथा व्यापक अथवाले होते ह और बहुत से प्रतीक यापक अर्थ नही रखते । अधिकाश स्वप्न प्रतीक यापक अथ नही रखते ।

प्रतीक और अज्ञात मानस[1]

मन की जितने प्रकार की गति हो सकती है उतन प्रकार के प्रतीक हाते ह या बन सकते ह। मन केवल वासना का स्थल या क्रीडा भूमि नही है। इसमे ऊचे से ऊचे तथा अच्छे से अच्छे विचार उत्पन्न होते रहते ह। फ्रायड कला को मन के भीतर छिपी वासना तथा कामना का प्रकट प्रतीक मानते थे। चित्रकला को भी वे इसी दृष्टि से दखते थे। अज्ञात मानस की कामुक प्रेरणा के कारण भी कला तथा चित्रकला उत्पन्न हो सकती है। पर मनुष्य के हृदय म इनसे कही अधिक उदार सुदर पवित्र तथा दवी प्रेरणाए भी उटती रहती ह। कला साहित्य तथा चित्रकला जीवन की अन्य प्रेरणाओ के भी प्रतीक ह।

असल बात यह है कि विचार के समूचे व्यापक क्षत्र म प्रतीक ही प्रतीक है। जिसे आज हम भाषा कहते है वह शुरू शुरू म क्या थी? केवल सकेतमात्र प्रतीकमात्र थी। जब भाषा आज की तरह विकसित नही हुई थी हम अपन विचार अपनी इच्छाए अपनी आकाक्षाए कवल सकेत तथा प्रतीक द्वारा प्रकट करते थे। शब्दो का स्वत क्या अथ हो सकता है। पिछले अध्यायो में हमन नाद शब्द स्वर की काफी व्याख्या कर दी है। पर शब्द का स्वत क्या अथ हो सकता है—केवल इतना ही न कि वे हमारे विचारो के प्रतीक ह। मैने किसी को मुख मे भोजन रखत देखा। मेरे मन मे विचार उठा कि वह खाना खा रहा है। यह खाना खा रहा है उसी विचार का प्रतीक हुआ। यदि हम अपना मुह खालकर उसमे उगली डालकर यही बात व्यक्त करना चाह तो दोनो बातो का अथ एक ही हुआ। इसलिए **खाना खाना** केवल उस बात का प्रतीक मात्र है। अन्यथा शब्द का कोई अथ न होगा। इस प्रकार शब्द तथा सकत एक साथ चलकर प्रतीक का रूप धारण करत ह। जब हर एक मनुष्य का एक ही प्रकार का विचार किसी विषय पर हाता है तो एक ही प्रकार का प्रतीक बन जाता है। इसका हम समान प्रतीक कहते ह। एक ही प्रकार के विचार को व्यक्त करनेवाले एक ही प्रकार के **शब्द** हाते ह। इसी लिए एक वग मे एक ही ढग के एक बात को सोचनवालो का समान प्रतीक समान भाषा या साहित्य के रूप म बन जाता है। डा० जुग ने भाषा को मानव के व्यक्तित्व को पहचानने

[1] Unconscious mind—अचेतन मानस।

वाली प्रतीकात्मक वस्तु कहकर महत्त्व दिया है। जिस देश का जितना अधिक मानसिक विकास होगा उस देश की भाषा उतनी अधिक उन्नत होगी।

मानसिक विकास पर ही मन म उत्पन्न हानवाली भावनाएँ निभर करती ह। ऐसी भावना को सस्कृत भाषा म रस कहते ह। शकर को हम रसावतार कहते ह। रसो वै स । शृगार वीभत्स सभी प्रकार क रस से हमारा मन तथा जीवन ओत प्रोत है। मन हर एक चीज को चित्र रूप म बना लन का प्रयास करता है। पर बहुत से चित्र वह बना नही पाता। जसे मन मे भय का सचार होता भय का चित्र नही बनता। भय का प्रतीक बन सकता है। अधकार देखन के लिए दीपक का बुझा देना हागा। भय का देखन के लिए भय की भावना का प्रतीक बनाना हागा। मन की ऐसी उलझनो के प्रतीक विचित्र रूप के होत ह। कोई व्यक्ति किसी कठिन समस्या की गुत्थी सुलझान का प्रयास कर रहा है। रात को वह सपना देखता है कि किसी घन जगल मे से माग ढूढकर बाहर जा रहा है। उसकी ग थी सुलझाने का अज्ञात मानस द्वारा प्रस्तुत यही प्रतीक है। विद्वान लेखक सिलवरर न प्रतीक पर विचार करते हुए अज्ञात मानस—अचतन अवस्था का चितन के पहलू को छोड दिया है। इसी लिए कई मार्के की बाते कहते हुए भी वे असलियत तक नही पहुँच पाये ह। उनके अनसार प्रतीक दो कारणो से बनते ह— यक्त तथा स्पष्ट चीजो से तथा अ यक्त और अस्पष्ट चीजो से जसे भय आदि। सिलवरर के कथनानुसार तीन प्रकार के प्रतीक होते ह —१ इन्द्रिय सम्बन्धी २ भौतिक पदाथ सम्बन्धी तथा ४ कायिक यानी शरीर सम्बन्धी।

किन्तु इतने से ही प्रतीक का क्षेत्र पूरा नही होता। बिना अज्ञात मानस की गति विधि को समझ प्रतीक समझ मे नही आ सकता। मनुष्य ने देवता के रूप की किस प्रकार कल्पना कर ली? भक्ति रस से यह कल्पना हुई यह तो ठीक है पर न तो वह इन्द्रिय सम्बन्धी है न भौतिक पदाथ है और न कायिक दहिक है। डा० जग इसका उत्तर देते ह। उनके अनसार उपास्य देव का अज्ञात मानस म बना हुआ चित्र ही देवमूर्त्ति बन जाता है। इस चित्र के निर्माण म भक्ति शृगार वासना आदि सभी प्रकार के रस तथा भाव का भी हाथ रहा हो पर चित्र का तयार करनेवाला अज्ञात मानस ही है। किन्तु उसका मूल रूप अज्ञात मानस मे ही बना है। अज्ञात मानस मे बने ऐसे ही मल रूप को साहित्य तथा कविता में प्रतीक रूप मे पाते हैं। किन्तु अज्ञात मानस (या समझने के लिए उसे अन्तर्मानस ही कहें तो उचित हो) रहस्य की बातो को रहस्यमय ढग से सोचता है। उस बात म से अनिश्चितता तथा वास्तविकता को छाट देता है पर

१ C G Jung— Psychology and Religion '—1938—page 75

रहस्य तो रहस्य ही रहेगा रहस्य के ढग से ही कहा जायगा । इसी लिए चित्त के भीतर प्रगाढ़ आध्यात्मिक भावना रखनवाल सूर तुलसी कबीर या पश्चिम के दाँते ऐसे कवियो की रचनाए रहस्यमय हैं प्रतीकात्मक है । उनमें उनके भीतर का प्रकाश प्रतीक रूप से प्रतिबिम्बित है । उसे समझन के लिए प्रयत्न करना होता है । कबीर न शरीर की सबसे बडी साथकता इस बात म समझी कि मरन के बाद वह मासभक्षी जानवरो का पेट भरे । हिन्दू लाग एकादशी के पव को बडा शुभ समझते ह । उस दिन की मौत शुभ समझी जाती है । कबीरदास न लिखा है—

> एकादशी को मछली खाय ।
> वह सोधे बैकुण्ठ जाय ।।

उनका तात्पय है कि एकादशी का मत्यु हो लाश नदी मे डाल दी जाय मछलियो का पेट भर । पर अथ का अनथ करनवाल यह भी समझ सकते ह कि जो लाग एकादशी को मछली खाते ह व सीधे बकुण्ठ जाते है । सूरदास के अनक पदो का अथ अभी तक लाग अनुमान स लगाते ह । आथर साइमन्स[१] ने यही बात दाशनिक मटरलिक के नाटको क बारे म सिद्ध की है । मेटरलिक का मन परमात्मा का सत्ता मे रम गया था । ससार को घोर सासारिकता से व दु खी थे । उन्हे भय था कि जिस अज्ञान के अन्धकार स निकलकर मनुष्य प्रकाश म आया है उसी म, उसी अन्धकार म वह फिर स लीन हान जा रहा है । इसी लिए उनके नाटको मे गूढ रहस्य भरा पडा है । मेटरलिक नाटचमच का जीवन को वास्तविकता के चित्रण का प्रतीक मानते थे । ससार के उस पार की मत्यु के बाद की जोव की यात्रा का विषय भी आध्यात्मिक भावनावालो के लिए बडा महत्त्व रखता है । उस तत्त्व को कवि साहित्यकार तथा विद्वान लोग प्रतीकात्मक ढग स ही सामने रख सकते है । कबीर की ही एक कविता है—

> चदरिया झीनी रे झीनी ।
> मुनि वशिष्ठ दशरथ से ज्ञानी, सबन निमल कीनी ।
> दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी ।।

इस कविता मे चदरिया से तात्पय मानव चोला है यह मनुष्य योनि है । वशिष्ठ ऐसे लोगो ने मानव शरीर प्राप्त कर उससे अपने आध्यात्मिक गुण और ज्ञान को बढाया पर कबीर को इतने पर ही सन्तोष है कि उन्होने अपने तन मन का दुरुपयोग नही किया ।

१ Arthur Symons— The Symbolic Movement in Literature "

इस कविता में "चदरिया' मानव योनि का रहस्यमय प्रतीक है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्री राम के परम मुग्धकारी रूप की व्याख्या न करके इतना ही लिखा है—

गिरा अनयन, नयन बिनु बानी

जीभ को आँख नही है। आँख को जीभ नहीं है। तो फिर रूप का बखान कौन करेगा? परम सौन्दर्य की यह प्रतीकात्मक व्याख्या कितनी सुन्दर है! मानव व्यथा को स्वर्गीय जयशकर प्रसाद ने दर्शाया है —

जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में बनकर छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर,
वह आज बरसन आयी।

या सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है—

साकार चेतना सी थी—
छिटकी-सी चाँदनी छ यी।

'साकार चेतना' का चादनी के प्रतीक से वणन बहुत ही उत्तम है। चूंकि आँख से दूर आध्यात्म नेत्रो से अदृश्य दशी बात स्वय रहस्यमय ह अतएव अधिकाश प्रतीक भी रहस्यमय होते है। गूढ होते ह अस्पष्ट नही। व्यापक हाते ह प्रच्छिन्न नही। रहस्यमय उनके लिए ह जो रहस्य समझते नही। तत्वशास्त्र मे दिये गये प्रतीक बहुत अधिक रहस्यमय ह। पर एक बार उनका अथ समझ लने पर ज्ञान की कुजी मिल जाती है। इस पुस्तक में हम दुर्गापूजा का एक यत्र दे रहे ह। इससे प्रकट है कि पुजारी को जिस मत्र की पूजा करनी है उसमे ससार की सभी शक्तियाँ देवताओ क सभी गुण तथा शक्तियो के सभी स्वरूप वर्तमान हैं। एक मत्र म सब शक्तियो तथा देवत्वो का मिलाकर एक परा शक्ति एक परब्रह्म का रूप चित्रित कर दिया गया है। पर इस यत्र प्रतीक को बिना गुरु की सहायता के नही समझा जा सकता। इस यत्र के बनानेवाल प० काशीपति त्रिपाठी वाराणसी के प्रकाण्ड पडितो में से हैं तथा दाक्षिणात्य शाक्त सम्प्रदाय मे उनका प्रमुख स्थान है। यह यत्र उनके अतर्मानस की अनोखी रचना है उनकी आध्यात्मिकता का प्रतीक है। तान्त्रिक यत्र इसी प्रकार रहस्यमय होते ह।

हर एक देश का प्रतीक उस देश की मनोवृत्ति (सामूहिक मनोवृत्ति) पर निर्भर करता है। भारतवष अध्यात्मप्रधान देश है। हमारा शृगार रस भी वैराग्य के साथ संयुक्त

है। हमारे देश की मूर्तिकला प्रस्तरकला निर्माणकला रस प्रधान है भाव प्रधान है इसी लिए वह इतनी सजीव है। यूनान रोम मिस्र आदि की कला में केवल शृगार प्रधान है। भौतिक भावना ही है अतएव उनमे उतनी सजीवता नही है। साची, अजन्ता एलोरा कही की मूर्तिकला को देखने से तथा मिस्र या रोम की मूर्तियो स मिलान करने से यह अन्तर स्पष्ट हो जायगा। प्राचीन भारतीय कला का प्रत्यक पहल आध्यात्मिक महत्त्व रखता है। सुदर अर्द्धनग्न स्त्रिया की प्रतिमाए भी वासना कामना खेद शोक या वैराग्य क भाव का व्यक्त करती ह। शकर की तीसरी आख निरर्थक नही बनायी गयी है। वह उनकी आध्यात्मिक चतना का प्रतीक है। वह दिव्य चक्षु है जो शकर ऐसे ज्ञानी को ही प्राप्त हो सकता है। बौद्धो के स्तूप या धमचक्र का भी ऐसा ही आध्यात्मिक रहस्य है।

धम अन्तमानस की वस्तु है। कला तथा साहित्य का उदय अन्तर्मानस म होता है। इसलिए किसी देश की कला तथा साहित्य को जानन समझन क लिए यह जरूरी है कि उस देश के दशन तथा धम को भी पहचाना जाय। हिन्दू बौद्ध ईसाई या मुसलिम कला को जानने पहचानने तथा समझने के लिए इन धर्मों का दशन इनका वदान्त इनकी आध्यात्मिकता को भी समझना पडगा। यह कभी नही भूलना चाहिए कि कला धम की सहेली है। धम कला का सखा है। दोनो को एक दूसर से अलग कर दन स दोनो ही अधूरे रह जायगे। भारतीय कला की आध्यात्मिक महत्ता को पश्चिम क विरले हो विद्वान समझ पान ह। हमन पिछल अध्यायो मे हैवल की पुस्तक[1] का जिक्र किया है। उस विद्वान ने हमारी कला की बहुत सी बातो को समझा था और बहुत सी बातो को नही भी समझा था। पर हमारी मूर्तिकला पर उन्होन लिखा है—

इनकी रचना दैवी सत्ता को पहचानन के लिए जीवन के अन्तर म बठे जीवन को *प्रकट करन के लिए अवास्तविकता म वास्तविकता को प्राप्त करने के लिए भौतिक* पदार्थ के भीतर बठी आत्मा की जानकारी के लिए (हुई है)। हैवेल ने कुछ सुदर उदाहरण भी दिय है जसे शकर के तीन मस्तक (तीन मुख)। एक मानसिक ज्ञान का प्रतीक है। दूसरा मानसिक वृत्तियो का प्रतीक है। तीसरा मानसिक वात्सल्य का प्रतीक है। या हम यह भी कह सकते ह कि तीनो क्रमश उत्पत्ति पालन तथा सहार के प्रतीक है। दस मस्तकवाला रावण वास्तव मे दसो विद्याओ म उसके पाण्डित्य का प्रतीक है।

बिना कारण के मनुष्य के शरीर मे कोई रोग नही लग सकता। इसी प्रकार चेतन या अचेतन मानस शून्य में नही सोचता। शून्य के भीतर भी प्रवेश कर उसको समझने

१ R B Havell— A Handbook of Indian Art"

का प्रयास अवश्य करता है। बिना किसी विषय का मौलिक आधार हुए बिना किसी वस्तु का मल रूप हुए वह कल्पना तथा चिन्तन की परिधि मे नही आ सकता। ईश्वर की सत्ता के विषय में यही सबसे बडी दलील है। यदि ईश्वर न होता तो उसके बारे मे इतनी कल्पना तथा भावना भी नही बनती। बहुत-सी बाते जो प्रत्यक्षत हमारी समझ मे नही आती वह मन की समझ में रात्रि के शात वातावरण म आ जाती ह। पर यह तो और कुछ नही अज्ञात मानस या यो कहिए कि अन्तमानस को वास्तविकता का बोध हुआ। ऐसा ही बोध ऋषियो को हुआ था। उन्होन हमारे वैदिक मन्त्र बनाये नही। मत्रो को देखा। ऋषयो मत्रद्रष्टार ऋषियो को मत्र द्रष्टा कहते ह। ऐसे ही बडे बड साधु सन्त तथा पीर-पगम्बरो को 'इलहाम' होता है। अज्ञात मानस की अविकसित दशा मे भ्रम विकल्प तथा आशका भी इन्ही कारणो से पदा हो सकती है। जाति कुल परम्परा तथा सस्कार अतप्त वासना इन सबका प्रभाव अज्ञात मानस पर पडता है और वस्तु का मुल रूप भी अज्ञात मानस धारण किये रहता है। अतएव इन सबके प्रतीक स्वप्न म तथा वाणी मे कला म तथा साहित्य म भावना में तथा काय मे प्रतीक रूप म बनते रहते ह पदा होते रहते ह।

किसी भी देश जाति तथा धम का मनुष्य हो उसके अन्तर्मानस मे एक सी धारा बह रही है। आज भौतिकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है पर ससार के अधिकाश प्राणी धर्म कला रहस्यवाद पौराणिक गाथा इत्यादि मे समान रूप से रुचि लते ह। यह समान रुचि उनके सामान्य मौलिक मानसिक एकता' का प्रतीक है। माता की ममता, पिता का भय देवता से प्रेम न्बी शक्ति से भय यह सभी देशो मे प्राप्त मानसिक विचार धारा है। इसी से सभी देशा म मातृत्व के प्रतीक शक्ति की पूजा तथा परम पिता ईश्वर की उपासना प्रारम्भ हुई। सच्चिदानन्द परब्रह्म की कल्पना हम भारतीयो ने की। अतएव हमने सभी विभूतियो से युक्त ब्रह्मा विष्णु महेश–त्रिभूति सत चित्त आनन्द बना डाले मल रूप मन म छा जाने से प्रतीक बनने बनाने म देर नही लगती।

किन्तु मूल रूप अन्तस्तल मे वतमान रहना जरूरी है। तभी प्रतीक बनते है। ये मूल रूप किस प्रकार वतमान रहते ह इसे समझना बडा कठिन है। डा० जग ने इसे समझन का कुछ प्रयास किया है। वे लिखते ह कि मूल रूप की स्थिति की उपमा सूखी हुई नदी के पेट से दी जा सकती है। अभी तो पानी सूख गया है पर किसी समय पानी वापस आ सकता है। अज्ञात मानस मे मूल रूप की सत्ता उसी प्रकार है जिस प्रकार कि जलकुण्ड में जीवन। जल कुछ समय के लिए प्रवाहित होता रहा है। उसन उसमे बहते-बहते गहराई पदा कर दी है। जितने अधिक समय तक जल उसमें रहा है उतनी ही गहराई होगी। यह जल अपने कुण्ड में कभी भी वापस आ सकता है। गहराई होने

की जरूरत है। 'समाज में या सर्वोपरि राज्य मे व्यक्ति किसी सीमा तक इस जल के प्रवाह को नहर के पानी की तरह नियन्त्रित कर सकता है।'[१]

मन के भीतर बठा हुआ मूल रूप मौलिक आधार या तात्त्विक सत्य किसी समय भी अज्ञात मानस द्वारा प्रकट किया जा सकता है। अज्ञात मानस केवल निजी तथा व्यक्तिगत बातो का ही प्रतीक नही बनाता। अतप्त वासना एक निजी बात है। उसका मनुष्य से व्यक्तिगत सम्बन्ध है। अतएव उसका प्रतीक तो निजी उपयोग का होगा। पर मनुष्य सामाजिक जन्तु है। देश काल परम्परा के अनगिनत सामूहिक विचार और प्रश्न उसके सामने रहते ह। वह अपने अज्ञात मानस द्वारा सामूहिक प्रतीक भी बनाता है ऐसे प्रतीक भी बनते है जिनका महत्त्व सबके लिए है और होना भी चाहिए। यह भद इसी बात से स्पष्ट हो जायगा कि कला की अभिव्यक्ति अज्ञात मानस द्वारा हुई। पर वह प्रतीक सबके लिए है पर स्वप्न की अभिव्यक्ति अज्ञात मानस द्वारा हाने पर भी उसका केवल निजी तथा व्यक्तिगत महत्त्व ही है। धार्मिक प्रतीक भा व्यक्तिगत नही हो सकते। इनका भी सामूहिक उपयोग होगा।

अज्ञात मानस की गति को जो नही समझना चाहते वे प्रतीक के रहस्य को भी नही समझ सकते। प्राचीन काल में विश्वास था कि ईश्वर का श्रेष्ठ प्रतीक एक गालाकार चिह्न है ○। प्राचीन सभ्यताओ का विश्वास था कि ईश्वर ने सबसे पहन सष्टि को चार तत्त्वो मे विभाजित किया। एक गोलाकार के चार भाग हो गये। एतिहासिक काल से पूव के युग में चार की सख्या ईश्वरत्व का तथा उसके बनाये चार भौतिक तत्त्वो का प्रतीक समझी जाती थी। अब यह विश्वास किसी मनुष्य के अन्तर्मानस में हो सकता है। किन्तु ऐसा विश्वास एकदम भीतर बठा है। कभी उसन इसके विषय मे न तो सोचा न बातचीत की। एक दिन ऐसा मनुष्य सपना देख सकता है कि पहले एक गोला बना। फिर उसने सप का रूप धारण किया और स्वप्न देखनेवाले को चारो ओर से घेर लिया। फिर इसी के बीच मे एक गोल घडी बन गयी जिसमे एक केन्द्र बिन्दु है। फिर इनका एक चौकोण नगर के रूप में बन गया। तब यह चौकोण गोलाकार रूप धारण करने लगता है।[२] और सपना समाप्त हो जाता है। इस स्वप्न द्वारा स्वप्न देखनेवाल को समूची सृष्टि को ईश्वररूपी एक केन्द्र बिन्दु द्वारा सञ्चालित होने का बोध कराया जा रहा है।

१ C G Jung— Essays on Contemporary Events"—1947—page 12
२ Jung- The Integration of Personality' —1940

स्टेकल[1] ने एक रोचक उदाहरण दिया है। एक सुन्दर युवक था जो सुन्दरी लडकियो को आकृष्ट किया करता था। पर उसके मन में ईश्वर का भय समाया हुआ था। एक दिन उसने सपना देखा कि मेरी पाठशाला मे मेरी कक्षा में धार्मिक शिक्षा पर परीक्षा होनेवाली है और म परीक्षा देने के लिए तैयार नही हू। मास्टर साहब के पास एक बडी सी मोटी-सी किताब है जिसमें मुझ जो बुरे नम्बर मिले ह, वे दज है। जागते ही म बहुत चिन्तित हो जाता हू। मेरा दिल धडकने लगता है।

यह स्वप्न स्पष्टत उस युवक के दवी भय का अपने बुरे कामो के प्रति क्षोभ का द्योतक मात्र है। फ्रायड लिखते है कि जो स्वप्न जसा दिखाई पडता है वसा नही है। उसका अर्थ भिन्न होगा। फ्रायड यह बात अपनी कामवासना के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए कहते ह पर बात हर हालत मे सत्य है। मास्टर साहब को युवक ने सपने मे देखा था। वे और कोई नही स्वय उसकी अन्तरात्मा है जो उसके कार्यों पर कडी निगाह रखती है। फ्रायड लिखते ह कि 'हर एक प्रतीक ठोस इच्छा को व्यक्त करता है। समूची इच्छा को प्रकट करता है। डा० पद्मा अग्रवाल ने भी सिद्ध किया है कि मनोविश्लेषणिक रूप से हर एक प्रतीक का स्थायी अथ होता है।

प्रत्येक सकेत का निश्चित अथ होता है यह भी सत्य है पर हर प्रतीक का सकेत के समान ही स्थायी अथ होते हुए भी सबके लिए समान अर्थ नही हो सकता। अमेरिका में यदि मोटर ड्राइवर को चौराहे का सिपाही जाने का सकेत करे तो इसका अथ होगा दाय से जाओ। इग्लण्ड मे ऐसे सकेत का अर्थ होगा— बाये से जाओ। इसी प्रकार फ्रायड का विद्यार्थी खुली पुस्तक सपने में देखकर उसका अथ स्त्री की योनि समझेगा। भारत का नागरिक उसे विद्या अथवा कम का लेखा का प्रतीक समझेगा। प्रतीक का अर्थ अज्ञात मानस के विकास पर निभर करता है।

[1] Wilhelm Stekel—The Interpretation of Dreams—1943—Vol I—page 64

अनेक विद्वानो के विचार

१३ अक्टूबर १९६० को यूयाक मे राष्ट्र परिषद की बठक हो रही थी। उसमे काफी उपद्रव हुए। बहुत गरमा गरमी हुई। अध्यक्ष न शाति स्थापित करने के लिए अध्यक्षीय दण्ड को मेज पर कई बार पटका पर कुछ फल न निकला। दण्ड मेज पर पटकते पटकते टूट गया। सावियत रूस के प्रधान मत्री तुरत बोल उठे— यह राष्ट्र परिषद का प्रतीक है। उनका तात्पय यही था कि जिस प्रकार अध्यक्ष का दण्ड टूट गया है उसी प्रकार राष्ट्र परिषद भी टूट रही है। दण्ड के साथ परिषद के भविष्य को नत्थी कर देना अनचित भी नही था। पर ऐसे प्रतीक की कल्पना क्या हुई ? दण्ड के टूटने से ऐसी बात क्यो मुह से निकली ? निश्चयत यह बात सोवियत प्रधान मन्त्री के आतरिक भाव को व्यक्त करती है। उनकी बात परिपद नही मान रही थी। इस पर उह क्रोध आया हागा। उन्हाने परिषद की समाप्ति की बात साची हागी और अध्यक्ष का दण्ड टूटना उनके लिए एक प्रतीक बन गया जा उनकी आतरिक भावना का द्योतक था। किन्तु उस घटना को सबने उसी प्रतीक के रूप म क्या नहा देखा जसा सोवियत प्रधान मन्त्री ने ?

यदि हम कहते ह कि प्रतीक वास्तविकता का बाध कराता है तो ऊपर लिखा प्रतीक यदि प्रतीक है तो सावियत प्रधान मत्री ने जो बात कही उस वास्तविकता का बाध सबको होना चाहिए। पर एसा तो नही हुआ। जब उन्हान दण्ड टूटने का प्रतीकात्मक कहा तो दजना व्यक्तिया न उनका उपहास किया। उनकी बात का गलत कहा। तब तो यह स्पष्ट है कि प्रतीक वास्तविकता का बोध कराते ह पर यह वास्तविकता स्वय सबके लिए एक समान नही है। कसिरेर न अपनी पुस्तक म लिखा है कि किसी वस्तु की निश्चित यथाथता या वास्तविकता मान लना भूल है। भिन्न प्राणिया के लिए भिन्न वस्तु की भिन्न वस्तुस्थिति होती है। जल की सत्ता हमारे लिए जिस रूप मे है जलचर प्राणी के लिए उस रूप मे नही है। मक्खी के ससार म और हमारे ससार म बडा भारी अन्तर है। हमें जो चीज सबसे अधिक घणास्पद मालूम होती है मक्खी के लिए वही सबसे अधिक प्रिय है। वस्तु वही है उसकी यथाथता का दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हा जाता है। भिन्न प्रकार के जीवो के अनुभव भी भिन्न होते है। इसी लिए

कैसिरेर लिखते हैं कि "यथार्थता (वास्तविकता) न तो कोई अद्वितीय वस्तु है और न सजातीय अथवा सम भाववाली।[1] जितने प्रकार के प्राणी ह उतने प्रकार की विभिन्नता वास्तविकता की भी होती है। प्रसिद्ध दार्शनिक लीबनिज का मत था कि हर प्राणी स्वय अपनी एक इकाई है। कसिरेर भी इसी मत के थे। हर प्राणी का अपना अलग ससार होता है। दार्शनिक उक्षकूल[2] का भी यही मत था। पर अन्य जीव जन्तुओ मे और मानव जीव में एक बडा अन्तर है।

हर देहधारी जीव की शारीरिक रचना उसकी आवश्यकता के अनुसार सम्पूर्ण है। सप के कान नही होते पर वह उसकी कमी कभी महसूस नही करता। उसकी स्पर्शेन्द्रिय उसे कान की आवश्यकता नही महसूस होने देती। सगीत के स्वर भी उसे स्पश कर लेते ह। मक्खी जोक कीट पतग सभी की शरीर रचना उनकी जरूरत भर पूरी है। ठीक है हर एक की शरीर रचना एसी है कि उससे एक ओर तो बाहरी चीजो से सब कुछ यानी रूप रस गध आदि ग्रहण किया जा सके। दूसरे अपने शरीर द्वारा दूसरे पर प्रभाव डाला जा सके। बिच्छ का शरीर अपना पोषण भी कर सकता है और दूसरे को डक भी मार सकता है। जानवर आदि सभी के दो ही काम ह—ग्रहण और विसजन। पर मानव ही ऐसा प्राणी है जो अपने शरीर को इतने सक्षिप्त तथा साधारण उपयोग म नही लाता। उसम जो विवेक है बुद्धि है उससे उसने अपना एक तीसरा महान् काय बना लिया है—वह है उसके द्वारा निर्मित प्रतीक प्रणाली। इस प्रणाली द्वारा उसने अपने लिए यथार्थता का वास्तविकता का अधिक व्यापक क्षेत्र ही नही बना लिया है बल्कि अपनी यथार्थता का अधिक विस्तत घनत्व तथा आयतन भी बना लिया है।[3] इसी लिए मनुष्य के काय की गतिविधि अन्य प्राणियो की तुलना म बहुत ढीली हो गयी है। पशु का भूख लगी जहाँ मिला जो रुचिकर हुआ खा लिया। मल विसजन करना हुआ कही भी खडा-खडा कर देगा। कामवासना का वह अन्य सभी पशुओ के सामने शान्त कर लगा। पर मनुष्य ऐसा नही कर सकता। वह सोच समझकर हर काम करता है कौन काम एकान्त म करना है कौन सबके सामने वह जानता है। उसके पास विचार है विवेक है। इसके द्वारा वह सोचता ज्यादा है काम कम करता है। चेतन तथा अचेतन ज्ञात तथा अज्ञात मानस की विचार तथा विवेकशक्ति से ही प्रतीक पैदा होते ह। विचार तथा विवेक के कारण ही मनुष्य जीवो मे श्रेष्ठ समझा जाता

१ Ernest Cassirer— An Essay on Man"—Doubleday & Co New York—1953—page 41

२ Uexkull

३ वही पृष्ठ ४२।

है। पर उसका विचार तथा विवेक उसे पतन की ओर भी ले जा रहा है। अपने विचार तथा विवेक से उसने सभ्यता का इतना बडा मायाजाल बना रखा है कि कई प्राचीन दाशनिका का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि पशु का जीवन अधिक स्वाभाविक है सही है, विचारशक्ति से मानव का पतन ही हुआ है। प्रसिद्ध दाशनिक रूसा का भी यही मत था।[१]

कितु मनुष्य अपनी प्रगति तथा सफलताओ से अब बच नही सकता।[२] उसे अपने जीवन के वातावरण म रहना ही होगा। मनुष्य अब भौतिक जगत् में नही रहता। वह प्रतीकात्मक जगत मे रहता है। उसने भाषा को प्रतीक बनाया है। उसके विचारो को व्यक्त करनवाला प्रतीक भाषा है। उसने अपन मन की बात इतिहास के साथ मिलाकर कहन के लिए पौराणिक गाथाओ की रचना कर डाली। हज़रत मूसा की कहानी है कि उन्होने सूई की आँख के बीच से ऊट के निकल जाने की बात कही थी। यह कथा केवल ईश्वर की प्रभुता का बतलान के लिए है। दुगा सप्तशती मे काम और क्रोध को नष्ट करनेवाली भगवती दुर्गा द्वारा शम्भ तथा निशुम्भ राक्षसा के सहार की कथा है। काम तथा क्रोध के प्रतीक वे दोनो राक्षस थ। इसी प्रकार अपन अज्ञात मानस यानी अन्तर्मानस में वतमान मूल रूप तथा यथाथ भाव को व्यक्त करन के लिए उसने कला को जम दिया जिसके प्रतीकात्मक होन का वणन हम पिछल अध्यायो मे कर आये ह। कला ही प्रतीकात्मक नही है। धम भी प्रतीकात्मक है। अपनी आस्था अपनी कल्पना अपन विश्वास के आधार पर मनुष्य ने उस अज्ञात शक्ति को जिसे ईश्वर कहते ह बोधगम्य बनान के लिए समझ के दायरे मे आन क लिए प्रतीक रूप मे रच डाला है। मूर्तिपूजा हो गिर्जाघर म पूजा हो मस्जिद म नमाज पढ़ना हो—जो कुछ है वह प्रतीकात्मक ही है। इस प्रकार मनुष्य के विचार विवेक ने उसके मन तथा बुद्धि ने उसे इन प्रतीको के जादू मे जकड दिया है। पशु जगत् ऐसे बधना में नहीं है। मनुष्य उन्हे भी खीचकर अपने प्रतीको के बधन मे डाल देता है जसे भोजन करन के समय की सूचना यदि घटी देती है तो वह केवल मनुष्य के लिए ही भोजन करन का प्रतीक नही है उस घर का पालत कुत्ता भी उस प्रतीक या सकेत को समझ गया है। खान के लालच से उसके मुख से भी पानी गिरने लगता है।

सभ्यता की प्रगति क्या है? केवल इन प्रतीको का ही परिमाजन है। भाषा में परिमाजन कला म परिमाजन धम मे परिमाजन—इसी प्रकार की बातो को सभ्यता

१ L homme qui medite, est un animal deprave"—Rousseau

२ कैसिरेर, पृष्ठ ४३।

में प्रगति कहते ह । पर प्रतीकात्मक प्रगति से मनुष्य का जीवन अधिक सुखी तथा सयत नही हो रहा है । वह अपने ही जाल में और भी जकडता जा रहा है । आज उसकी बुद्धि इतनी शिथिल हो गयी है कि वह सकल्प विकल्प के बीच डूबता उतराता रहता है । काल्पनिक भावनाएँ काल्पनिक भय काल्पनिक आशकाए उसे उत्तजित तथा आन्दोलित करती रहती ह । अत्यधिक प्रतीकात्मक हो जान के कारण वह अत्यधिक विक ल्पात्मक भी हो गया है ।

यह कहना भी भूल होगी कि मनुष्य लाख बुरा सही पर पशु पक्षी से अच्छा ही है । मनुष्य को यह उच्चता प्रतिपादित करने के लिए हम कह देते हैं कि मनुष्य में धमबुद्धि है भले बुरे की पहचान है, उसम विवेक है । कि तु मनुष्य में पशु से अधिक यह सब कुछ भी नही है । प्राकृतिक तथा साधारण जीवन के जो मूल तत्त्व ह उनसे मनुष्य दूर चला जाता है ।

पशु पक्षी केवल ऋतुकाल मे ही स्त्री ससग करते ह किन्तु मनुष्य के लिए दिन रात और हर दिन बराबर है । पशु गभवती के निकट नही जाता, मनुष्य के लिए यह रोक नहा है । नर पशु पक्षी एक मादा पशु पक्षी के साथ सम्पक हो जान पर जीवन भर साथ निभाता है । मनुष्य यह नही कर पाता । ये सब सवसाधारण के लिए कही गयी बाते ह व्यक्तिविशेष या अपवाद के लिए नही । दैहिक तथा भौतिक विपत्तियो की सूचना जितनी जल्दी तथा जितन पहल पशु पक्षी को मिलती है मनुष्य को कदापि नही । रोग की चिकित्सा या निदान जितना अच्छा पशु कर सकता है उतना मनुष्य नही । आज भी हम ब दरो से हजारो दवाए सीख रहे ह । उनकी चिकित्सा को चुपचाप देखकर उनक द्वारा उपयुक्त जडी बूटियो का अपने काम मे लाना सीख रहे ह । हम नित्य अनुसधान करके नित्य नयी चीजो का पदा कर रहे हैं ताकि हमारा जीवन अधिक सुखी तथा सम्पन्न हो । पशु अपने जानन भर समूची विद्या पेट से लकर आया है । असल म ज्ञान की कमी हममे है पश मे नही । हर एक पशु पक्षी की अनुभूति ज्ञान बुद्धिमत्ता समान होती है । मनुष्य मे तो यह हो गया है कि कुछ लोग सोच विचारकर काम करते ह और आदेश देते है तथा अधिकाश उनका पालन करते है । हरा सिगनल देख कर रेलवे ट्रेन चली जायगी । रेल की पटरी पर सिगनल देनेवाला का अलग सगठन है । ट्रेन चलानेवाले तथा ट्रेन पर बठनेवालो का अलग सिगनल है । सिगनल यानी **चिह्नक प्रतीक** नही हो सकता । भौतिक जगत् यानी दिखाई पडनवाली दुनिया मे विशष को निर्दिष्ट करनेवाली वस्तु को चिह्नक कहते ह पर प्रतीक तो मानव जगत की वस्तु है । चिह्नक काय वाहक वस्तु है प्रतीक विचारात्मक होता है । चार्ल्स मौरिस ने इन दोनो के

भेद को अच्छी व्याख्या की है।[१] वे भी स्वीकार करते हैं कि पशु पक्षी में **व्यावहारिक** कल्पनाशक्ति तथा बुद्धिमत्ता है पर मनुष्य में **प्रतीकात्मक** कल्पनाशक्ति तथा बुद्धिमत्ता है।

नाम प्रतीक

मानव मस्तिष्क में इतनी विभिन्नता है कि उसकी गति का निश्चित निरूपण सम्भव नही है। एक ही बात की भिन्न व्यक्तियो पर भिन्न प्रतिक्रिया होती है। किसी को रोते देखकर कोई दु खी होता है कोई हँस देता है। हमारे मन का ज्यो ज्यो विकास होता गया हमने व्यावहारिक दृष्टिकोण के स्थान पर प्रतीकात्मक दृष्टिकोण ग्रहण करना शुरू किया। किसी पर क्रोध आने पर हम मार बैठते थे। अब आँख से घूर देते है। पहले हम उसे गाली देते थे। अब मन फेर लेना भी एक रोष चिह्न है। मनुष्य ने अपने लिए जानकारी का एक सबसे सरल साधन ढूढ निकाला—नामकरण। हर वस्तु का एक नाम रख दिया गया। पानी उस तरल चीज का नाम है जिसे गले के नीचे उतार देने से तृष्णा शान्त होती है। उस चीज़ को यदि मागना हो तो हम पानी कहेंगे। **पानी** शब्द उस चीज़ का प्रतीक बना। इस प्रकार हर चीज़ का प्रतीक नामकरण द्वारा बना दिया गया। बिना **नाम प्रतीक** के हम अब कुछ नही समझ सकते। पशु जगत मे नामकरण ऐसी कोई चीज़ नही है। अतएव उनके सामने ऐसे कामो में समय नष्ट करने की जरूरत नही है। नाम को याद करने मे बडा समय लगता है। कोई व्यक्ति हर शब्द को नही रट सकता। जितने अधिक नाम याद है उतना अधिक विद्वान होगा। चीनी लोगो ने अक्षर नही बनाये। हर वस्तु का चित्र बना दिया। हर चित्र का अपना नाम है। अतएव उनकी भाषा मे जितने अधिक नाम बनते जायेंगे, उतने अधिक चित्र बनते रहेंगे। इसे प्रतीक नही तो और क्या कहेंगे? हमने क ख ग को कभी नही देखा परक की ध्वनि का प्रतीक बना दिया। उसी प्रकार हमने एक चिडिया को देखकर उसका नाम 'तोता' रख दिया। उस तोता नामधारी चिडिया का चित्र बना दिया। चीनी भाषा में एक शब्द जुड गया—एक अक्षर भी जुड गया। ऐसे पाँच हजार प्रतीको को जानने वाला चीन में विद्वान् समझा जाता है।

किन्तु नाम प्रतीक मे एक बडा भारी दोष है। बचपन में हमने सीखा था कि एक शब्द का निश्चित अर्थ होता है। मार्जार माने बिल्ली जल—पानी अग्नि माने आग।

१ Charles Morris—Article on The Foundation of the Theory of Signs —Encyclopaedia of the Unified Sciences—Pub 1938

पर ज्यो-ज्यो हम बडे होते जाते है हम यह अनुभव करने लगते ह कि नाम की रचना हमने की है। अतएव अपनी रचना का हम अपने मन के अनुसार उपयोग भी कर सकते हैं। अगर कोई कहता है कि म पानी पानी हो गया' तो इसका यह अर्थ यह नही हुआ कि म जल हो गया। जिस प्रतीक रूप मे यहाँ **पानी-पानी** हो जाना या लज्जा या सकोच से गड जाना—अथ हो गया इसी प्रकार अय शब्दो की भी व्याख्या हो सकती है।

शब्द-प्रतीक

शब्द प्रतीक के समान वस्तु प्रतीक तथा ध्वनि प्रतीक भी अनेक अर्थवाले हो सकते ह। घटी केवल भोजन करन के लिए नही बजती। खतरे की घटी भी होती है। प्रार्थना की घटी भी होती है। प्रतीक वही है उपयोग भिन्न हो गया। इसी लिए कसिरेर ने लिखा है कि मानव प्रतीक की यह विशेषता नही है कि उनका सम भाव होता है बल्कि उनमें परिवतनशीलता होती है।[१] विभिन्न रूप से उनका प्रयोग हो सकता है। एक आदमी किसी को बुलाने के लिए ताली बजाता है। दूसरा चिडिया उडाने के लिए ऐसा करता होगा। अनेक भाषाओ का उपयोग कर हम एक ही बात कह सकते ह और एक ही भाषा म हम अनेक बातें कह सकने ह। एक ही बात को अनेक ढग से कहा जा सकता है और अनेक बातो को एक ही ढग से कहा जा सकता है। घर जाना है —इस बात को अनेक ढग से कह सकते ह— कुटिया पर जायेंगे अपने बसेरे पर चलेंगे चौराहे के बाद बायी तरफवाले पहले मकान मे जायेंगे। यह सब ढग हो सकते ह। यदि यह कहना हो कि घर जाकर स्नान करके खाना खाकर पूजा करके सो रहेंगे—तो इसको सक्षेप मे इस प्रकार भी कह सकते ह कि निवृत्त होकर सो रहेंगे। किन्तु भाषा का प्रयोग दूसरे को अपनी बात समझाने के लिए होता है। जिसकी जसी समझ होगी उससे वैसी बात कही जायगी। गूढ अथवाले प्रतीक गढ अथ समझनेवाले के ही काम मे आ सकते ह। कमसमझ के लिए उनका अथ कमसमझी का होगा।

बुद्धि केवल बचपन या बुढापे पर निभर नही करती। यह अपने सस्कार तथा विकास पर निर्भर करती है। जानवर का बच्चा बहुत-सी ऐसी बाते पेट से ही सीखकर आता है जिन्हें इसान को सीखने मे काफी समय लगता है।[२] अधिकाश जानवर पेट से तैरना सीखकर

कैसिरेर की पुस्तक पृष्ठ ५७।

२ Sir Willim Stern— Psychology of Early Childhood'—(Translation by Anna Barwell-2nd Edition—Holt & Co New York—1930 114

आते है । मनुष्य को तैरना सीखने में काफी समय लगता है । मनुष्य के बच्चे की तुलना में चूहे का बच्चा ३० गुना तीव्र गति से चतन्य होता है । पर मनुष्य तथा पशु की बुद्धि में एक बडा अन्तर है । मनुष्य व्यावहारिक ज्ञान से सतुष्ट नही होता । उसे सैद्धान्तिक आदर्श भी बनाना आता है । इस सैद्धान्तिक आदश के सहारे ही वह मानसिक विकास की ऊँची से ऊँची सीढ़ी पर पहुच जाता है । अपने सद्धान्तिक विचार के कारण ही वह सद्धान्तिक प्रतीक बनाता है ।

मनुष्य की सद्धान्तिक गवेषणा तथा तकबुद्धि से उत्पन्न बातें केवल सासारिक रूप से हर एक बात पर विचार करने वाले की समझ मे नही आ सकती । काट ऐसे विद्वान् पश्चिम में कम पैदा हुए है जिन्होने दृश्य जगत के परे, उससे आगे बढकर दृष्टि डालन की चेष्टा की हो । प्लेटो के रिपबलिक ग्रथ की आलोचना करते हुए उन्होन लिखा है कि हम लोगो को उसकी बातो पर विचार कर अपने अनुभव के द्वारा उसकी समीक्षा करनी चाहिए । उसे एक स्वप्न द्रष्टा की कल्पना समझकर अ यावहारिक नही समझना चाहिए । आजकल के दाशनिको की यह सबसे भद्दी भल है कि वे प्राचीन दशन तथा विचार का हेय समझते ह ।[१] काट के विचार का यह साराश है । आज के दशनशास्त्री प्राचीन दशन शास्त्र या विचारधारा को महत्त्व नही देते । अपनी इसी ओछी भावना के कारण हमारे अधिकाश पश्चिमीय दाशनिक प्रतीक सम्बन्धी हमारी प्राचीन परिभाषा का महत्त्व न देकर उसे कोरी भौतिकता की कसौटी मे कसन लगते ह और तभी वे मनुष्य या पशु पक्षी की मानस समता करने लगते ह । कसिरेर न स्वीकार किया है कि सद्धान्तिक गवेषणा ही मानव की विशिष्टता है । यह गवेषण वह तभी करेगा जब उसकी आत्मा इस ससार के उस पार यानी अध्यात्म के निकट होगी । मनुष्य परमात्मा के अधिक निकट है । इसी लिए वह अन्य जीवो से श्रेष्ठ है । इसी लिए वह अपने ज्ञान के लिए प्रतीको का निर्माण कर रहा है । उनक बधन मे बधता भी जा रहा है । पर जो ज्ञान बाधता है वह गाठ खोलता भी है ।

ऐतिहासिक तथा भौतिक में भेद

जो लोग अज्ञात मानस की सद्धान्तिक गवेषणा की शक्ति को न तो समझते ह न उसमें विश्वास करते ह वे प्रतीक की वास्तविक मर्यादा को नही समझ सकते । वे हर चीज का ठोस तथा आंखो से समझ में आनेवाला प्रमाण मागते ह । पर प्रतीक विद्या भौतिक विज्ञान की विद्या नही है । भौतिक विज्ञान का पडित आंकने योग्य तथा तौलने योग्य

१ Kant—"Critique of Pure Reason

हर वस्तु को नाप-तौल लेता है और जो चीज़ आकने तथा नापने योग्य नही होती उसे भी इसके योग्य बनाकर चैन लेता है। उसकी हर एक बात की छानबीन प्रत्यक्ष रूपसे तुरत की जा सकती है। उसने ससार की आणविक शक्ति को भी, अणु परमाणु को भी, नाप तौल लिया है और उनसे काम लेकर उनकी सत्ता सिद्ध कर दी है। हमारी-आपकी शकाओ का समाधान वह अपनी प्रयोगशाला में ले जाकर कर देगा। किन्तु इतिहासकार क्या करेगा ? उसे अतीत की बातें बतलानी ह, वे बातें बतलानी है जो प्रत्यक्ष मे कभी आ नही सकती जिनका प्रत्यक्ष मे कोई प्रमाण नही है। प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति युद्ध तथा सघष की अब कहानी रह गयी है। कुछ पुराने दस्तावेज है पुराने हस्तलिखित या काठ पत्थर पर लिखित ग्रथ ह या शिलालेख ह या फिर पुराने खडहर या प्राचीन मूर्तिकला शिल्पकला आदि है। उन्ही के आधार पर अतीत का चित्र सामने खीचना है। भौतिक विज्ञान के पडित का काम जितना सरल है, इतिहासकार का काम उतना ही कठिन है। बिखरे इटो पर इतिहास की इमारत खडी करनी है। उसके आधार प्राचीन शिलाशेख या भग्नावशेष या शिल्पकला ह। अतएव यह स्वीकार करना पडेगा कि य सब चीजे अतीत क प्रतीक ह। गुजरे हुए ज़माने का इतिहास प्रतीकात्मक है।[1] शिलालेख या भग्नावशेष पर जो कुछ लिखा है उसके अक्षर या दीवाल की पच्चीकारी स्वत प्रतीक नही है। जब उन लिखावटो का अथ समझा जाय जब उन पच्चीकारियो का भाव समझा जाय तभी वे चीज़ें प्रतीक बन जाती हैं क्योकि उनके समय की सभ्यता की रूप रेखा खडी हो जाती है। जब तक अथ में न लाया जाय बात की तह मे न जाया जाय प्रतीक की मर्यादा समझ मे नही आती।

वाक्य प्रतीकात्मक

यदि किसी शिलालेख म जो मिस्र मे प्राप्त हुआ हो यह लिखा हो कि वाराणसी के समान तिकोनिया मदिर बनवाया तो इस वाक्य का बहुत बडा अथ हो गया। इतिहासकार सिद्ध करेगा कि यह वाक्य इस बात का प्रतीक है कि मिस्र के लोगो ने तिकोनिया मदिर बनाना भारत से सीखा वाराणसी से उनका घना सास्कृतिक सम्बन्ध था तथा दोनो देशो की सभ्यता एक थी। फिर और आगे बढकर इतिहासकार कहेगा कि तिकोनिया पिरामिड (शव-गृह) भी भारत के देवालयो की रचना से सीखी गयी कला का परिणाम है तथा त्रिकोण मे ही मानव जीवन की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न है। एक शिलालेख इतने बडे ऐतिहासिक सिद्धान्त का प्रतीक बन गया। किन्तु जिसने शिलालेख के उस वाक्य पर ध्यान नही दिया उसके लिए उस लेख का कोई भी महत्त्व नही है।

१ कैसिरेर की पुस्तक, पृष्ठ २०१।

एक दूसरी बात भी ध्यान में रखनी चाहिए। उस लेख को पढ़ा सभी ने, पर उसकी गहराई में पठकर असली अथ निकाल लेने का प्रयत्न उसी ने किया जो अतीत की सत्ता पर, अतीत की आध्यात्मिकता पर विश्वास रखता था तथा जो यह मूल रूप मन में लेकर चला है कि अतीत का मानव आज के समान ही एक दूसरे की सभ्यता तथा शिष्टता पर प्रभाव डालता था। अत एव मन म बना मूलरूप ही उसे उस खोज की ओर ले गया। यही बात हमारे देश के दशनशास्त्री भी कहते हैं। वे कहते ह कि अध्ययन तथा सत्सग से मन मे सही धारणाओ तथा मूल रूप बनने लगते ह जो हमको सच्ची खोज तथा सच्ची पहचान की ओर ले जाते ह।

अकगणित

आज जो चीज सीधी सरल मालूम होती है वह हजारो वष पूव विचार की पकड में नही आ सकती थी। हजारो वष पूव हमने यह सत्य समझा कि सष्टि मे जो कुछ प्राकृतिक रूप से हो रहा है वह एक निश्चित क्रम से हो रहा है। सूय की गति भी नियमित है भारतीय आर्यों ने सबसे पहले प्रकृति के तत्त्वो को समझने तथा समझाने के अक प्रतीक बनाये जिससे अकगणित का महान शास्त्र बना। हमने सख्या बनायी। गिनना सीखा। एक दो चार की गिनती बनी। अका के सहारे हमने ज्यातिष विद्या ईजाद की। पश्चिमी पडितो का कहना है कि अकशास्त्र सबसे पहले यूनान में बना तथा ज्योतिष विद्या का प्राथमिक ज्ञान ईसा से ३८०० वष पूव बबिलोनियन लोगो को हुआ।[१] उन्होने पहले पहल यह पहचाना कि अपनी १२ राशियो महित सूय की गति विधि तथा तारकमण्डल को गति विधि म बडा अन्तर है। उन्होने इन विचित्रताओ को समझाने के लिए अक शास्त्र यानी गणित तथा पौराणिक भाषा क प्रतीक का उपयोग किया। ज्योतिषशास्त्र प्रतीकात्मक है क्योकि अकशास्त्र स्वय प्रतीकात्मक है। एक चीज को एक देखकर एक इकाई बनाना उस एक चीज का **प्रतीक** हुआ। भाषा के प्रतीक से कहे गये प्रत्येक शब्द या वाक्य के तात्पय—अथ का एक क्षेत्र होता है जिसमे उस कही जानेवाली वस्तु के क्षेत्र के पहले इस भाग पर फिर दूसरे भाग पर प्रकाश की रेखा फल जाती है।[२] हमारे मुख से लडडू शब्द निकलते ही उस गोल मिठाई के हर कोने पर बुद्धि का प्रकाश फल जाता है। पर इतना ही कह देने से उस चीज का पूरा प्रतीक नही बन पाया। हमारे मन मे शका हो जाती है कि एक मिठाई है या अनेक या कितनी। तब हम उस शका को दूर करने के लिए तथा पूण सत्य बतलाने के लिए उसके साथ सख्या जोड देंगे—पाँच

१ वही, पुस्तक पृष्ठ २६५ २६६।
२ S Gardiner— The Theory of Speech and Language'—page—51

लडडू । अब पाँच कहते ही बुद्धि पाँच जगह पर उसी लडडू को रखकर उस पर अथ ' का प्रकाश डाल देगी । बिना अक प्रतीक का सहारा लिये कोई चीज स्पष्ट नही हो सकती । इसी लिए गणित ज्यामिति बीजगणित, गणित ज्योतिष, सगीतशास्त्र—सभी का एक ही आधार है । एक ही नीव पर ह, वह नीव है अक । इसी लिए कैसिरेर कहते ह कि गणित विश्व व्यापी प्रतीकात्मक भाषा है । इस प्रतीकात्मक भाषा के द्वारा चीजो का वणन नही किया जाता बल्कि उनका एक दूसरे से सम्बध समझाया जाता है ।[१]

गणित प्रतीक

गणितात्मक प्रतीकत्व को सबसे पहले, कसिरेर के मतानुसार लीबनिज नामक दशन शास्त्री ने पहचाना था । गणिततात्मक प्रतीक से हर एक चीज़ समझी जा सकती है । गणित के द्वारा प्रतीको की व्यापकता को समझा जा सकता है । गणित प्रतीक का इतिहास अय सभी प्रकार के प्रतीको के इतिहास के साथ मिला जुला हुआ है ।

इसके साथ नार्थ्रोप की कही गयी एक बात मिला देनी चाहिए । उनका कहना है कि भाषा तथा गणित दोनो को बिना एक साथ मिलाये काई प्रतीक स्पष्ट नही हो सकता । वे लिखते ह कि मनुष्य की साधारण बुद्धि से उत्पन्न भाषा विशिष्ट पदार्थों का अथ बता सकती है वह विशिष्ट पदार्थों का अथ प्रतीक बन सकती है जसे नीलाकाश सिर में दद फ्ल की महँक । पर कई बातो का एक दूसरी के साथ सम्बध स्थापित कर निश्चित प्रतीक बनाने के लिए गणित प्रतीक का सहारा लेना पडेगा । इसलिए प्रतीक को गणित से पथक नही कर सकते ।[२] भाषा द्वारा व्यक्त गणित प्रतीक तथा गणितात्मक तक ही आदश प्रतीक है ।[३] नार्थ्रोप यहाँ तक लिख गये ह कि आज के भाषा-पडितो के भाषा प्रतीक द्वारा साधु जीवन तथा उसे जानने के तरीके भ्रष्ट किये जा रहे ह । साधारण भाषा में याकरण की गूढता तथा उपमालकार की भरमार के कारण जीवन के तथा वस्तु के वास्तविक सौन्दय की जानकारी नही हो सकती । साधारण भाषा मे कर्ता तथा कम को इतना अलग कर दिया जाता है कि दोनो का सम्बध समझ मे नही आ सकता । शायद इसी लिए आधुनिक युग की वतमान आवश्यकता की तुलना मे मानव की नतिकता निर्बीज

१ कैसिरेर—पृष्ठ २७३ ।

२ Symbols and Society"— Fourteenth Syomposium of the conference of Science Philosophy and Religion " Conference office, New York 1955—Article by F S L Northrop—page 61-62

३ वही, पृष्ठ ६३ ।

नीरस तथा प्रभावहीन हो गयी है।[1] नार्थ्रोप ने यहाँ तक लिख दिया है कि बिना तर्कात्मक रीति से परस्पर-सम्बन्ध पहचाने प्रतीक समझ में नहीं आ सकता।

परस्पर सम्बन्ध

परस्पर सम्बन्ध की बात भी ध्यान देने योग्य है। वस्तु के एक दूसरी के साथ सम्बन्ध को समझने से ही इस महान् सृष्टि में अन्तर्व्याप्ति एकता तथा एक-स्वरिता का अनुमान लग सकता है। इसी लिए दार्शनिक काट कहते हैं कि हर एक दार्शनिक विचार में इस "अधिकतम एकता" को सामने रखना चाहिए। पर आज का विज्ञान आद्यतन अनेक वादी हो गया है। उसे सीधी सादी व्याख्या भी पसन्द नहीं है। वह हर चीज़ को उलझा देता है। पुराने ज़माने में नैतिकता के सिद्धान्त सीधी सादी ज़बान में कह दिये जाते थे 'सत्य वद धर्म चर'। आज हम इसी को दूसरे ढंग से कहेंगे— सच बोलने से अपना जीवन सुखी होता है। समाज में व्यवस्था कायम रहती है। इसलिए सच बोलो। अब हमको सोचने तर्क करने की काफी गुञ्जाइश हो गयी है। सच बोलने से अपना जीवन सुखी क्यों होता है? समाज में व्यवस्था कैसे कायम रहती है? इत्यादि बातें मन में उठने लगेंगी।

अर्नस्ट कैसिरेर[2] के समचे दर्शन सिद्धान्त पर विवेचन करते हुए डेविड बामगार्ड ने इस कथन को सही नहीं माना है कि सीधे ढंग से कही हुई पुरानी बात आज की उलझन भरी भाषा की तुलना में कहीं उत्तम है। वे कहते हैं कि कोई एक बात सीधे कह देने से ही उसका महत्त्व समझ में नहीं आ सकता। हमने कह दिया कि चोरी मत करो। पर इससे यह कहाँ मालूम हुआ कि तुमको चोरी कभी नहीं करनी चाहिए। किसी भी दशा में चोरी मत करो। इतनी बात समझाने के लिए वाक्य को लम्बा करना पड़ेगा। झूठ मत बोलो। यह कह देना बहुत सही है पर ऐसे भी अवसर आते हैं जब इस आदेश का अपवाद करना पड़ता है जैसे किसी का प्राण बचाने के लिए झूठ बोलना जरूरी हो सकता है। तलवार लेकर कोई व्यक्ति किसी का पीछा करता चला आ रहा हो। वह व्यक्ति भागकर किसी मकान में छिप जाय। उसका पीछा करनेवाला यदि मकान

१ वही, पृष्ठ ६३।

२ डॉ० अर्नस्ट कैसिरेर का जन्म २८ जुलाई, १८७४ को जर्मनी के ब्रेसला नगर में हुआ था। उनकी मृत्यु १३ अप्रैल, १९५४ को हुई। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ ERVENNTNI SPROBLEM—Problem of Knowledge—सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ था। कैसिरेर पश्चिम के दार्शनिकों में "प्रतीक का रूप" का सिद्धान्त प्रतिपादित करनेवाले पहले पंडित समझे जाते हैं।

मालिक से पूछे—"क्या इसमे अमुक व्यक्ति छिपा है ? —तो क्या उत्तर दिया जाएगा ? उस समय सत्य काम न देगा। ऐसे अवसरो पर धार्मिक आदेशो की अवज्ञा करने को हमारे यहाँ आपद्धर्म कहते है। कैसिरेर के दर्शन पर आलोचना करते हुए डेविड बामगार्ड ने ऐसे आदेशो को इतनी सरलता से कह देने को सरलता का अतिक्रमण [1] कहा है। प्रतीक को सरलता के अनतिक्रमण के दायरे से बाहर निकालने पर ही वह ठीक से समझ मे आ सकेगा।

मानव-बुद्धि की सीमा

काट ने एक बडे मार्के की बात कही थी। उनका कथन था कि 'मानव बुद्धि से वस्तु की जानकारी पदा होती है स्वय वस्तु नही पदा होती। कसिरेर इस सिद्धान्त से पूर्णत सहमत थे। उन्होने **बुद्धि द्वारा वस्तु की जानकारी** के सिद्धान्त को ही प्रतिपादित करते हुए यह सिद्ध किया था कि जो वस्तु हमारे सामने है उसकी सत्ता हमारी बुद्धि तक ही है। उसने जिस चीज को जिस रूप मे समझा उसका वसा नाम रख दिया। इसलिए हमारे सामने जो कुछ भी है वह मानसिक प्रतिबिम्ब है कल्पना मात्र है। जो कुछ दृश्य है वह प्रतीकात्मक रूप [2] मात्र है। रील ऐसे लोगो ने कैसिरेर की इस बात का घोर विरोध करते हुए लिखा था कि 'जो सामने आँख से दिखाई पड रहा है उसे मानसिक प्रतिबिम्ब या कल्पना कसे मान ले ? पर अधा आदमी हाथी का पैर छूकर उसे खम्भ क्यो समझता या कहता है ? आकाश मे वर्षा के जलकणो पर सूर्य की किरणो को रग बिरगे रग से खलते देखकर हम लोग उसे भगवान् इन्द्र का धनुष क्यो समझते है ? बुद्धि का आइना जितना तथा जसे होगा वसी परछाइ पडेगी। वसे ही विचार दार्शनिक विद्वान् वारवग तथा उनके अनेक अनुयायियो के थे। वारबग कला धर्म भाषा तथा विज्ञान—हर चीज मे **प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति** मानते थे। इतिहास को भी वे प्रतीकात्मक समझते थे।[3]

ज्ञान भी प्रतीकात्मक हैं

वारवग की यह बात कसिरेर ने और आगे बढायी। उन्होने यहाँ तक कह दिया कि ज्ञान भी प्रतीकात्मक होता है। ज्ञान वह माध्यम है जिसके द्वारा हम 'वास्तव मे वास्त

१ "The Philosppty of Ernest Cassirer"—Edited by Paul—Arthur Schilpp—Library of Living Philosophers Illinois Pub 1949—Article by David Baumgardt—page 582

२ वही पुस्तक, Dimitry Gawronsky का लेख, पृष्ठ १७।

३ वही—F Saxl का लेख, पृष्ठ ४८ ४९।

विकता को पहुँचने का प्रयास करते ह ।[१] तो फिर जब वास्तव मे वास्तविकता ' का पता नही है तो कसे और किस प्रकार माध्यमवाली वस्तु यानी ज्ञान को प्रतीकात्मक से अधिक ऊपर उठी वस्तु कहा जाय ? ससार मे जो कुछ हमारी मन वचन कम सम्बधी इद्रियो से सम्बध रखनेवाला या उस पर प्रभाव डालनेवाला है उसका इद्रिय ज्ञान करने का हम सतत प्रयत्न करते रहते ह और इद्रिय सम्बधी तथा इद्रिय ज्ञान ये दोनो एक दूसरे से इतना घना सम्बध रखते ह कि इनकी जानकारी भी प्रतीकात्मक होगी । असली जानकारी हो गयी यह दावा कोई नही कर सकता । इसलिए यही मानना पडेगा कि प्रतीकात्मक जानकारी है । इसका प्रमाण भी मौजूद है । यह विश्व एक नियम एक व्यवस्था मे बधा हुआ है । आरम्भिक काल मे मनुष्य इसके तत्त्वो से अधिक निकट था । वह भाषा आदि प्रतीको का सहारा लेकर नही चलता था । जो कुछ देखता या अनुभव करता था उसके अनुसार इशारो से काम चला लता था । ऐसी दशा म प्रकृति से उसका सीधा सम्पक था । कितु ज्यो ज्यो भाषा बनती गयी मानव ने प्रतीक के सहार बात को समझना तथा समझाना शुरू किया वह प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्बध तोडता गया । आज हम अखबारो से वर्षा का तथा मौसम का अनुमान लगाते ह । आज हम आकडा के सहारे यह समझने का प्रयास करते ह कि कितने व्यक्तियो के भोजन भर खाद्य सामग्री है । पिछली सभ्यता समझने के लिए पिछली कला के प्रतीक का सहारा लना पडेगा । ऐसे सहारे मे यह दोष भी हो सकता है कि हमने ठीक से सही बात का भाषा म यक्त न किया हो या आँकडो को उचित ढग से न तयार किया हो । कसिरेर का मत था कि ज्यो ज्यो सभ्यता बढती गयी भाषा साहित्य कला विज्ञान, सबने मिलकर एक प्रतीकात्मक सभ्यता बना दी है जिसमे जो कुछ है वह प्रतीक के रूप म है असली नही है ।[२] इसका अथ तो यह हुआ कि प्रतीक के विकास के साथ हम वास्तविकता से दूर होते जा रहे ह । हमको ज्ञान के स्थान पर ज्ञान का प्रतीक प्राप्त हो रहा है ।

किन्तु बिना बुद्धि के ज्ञान नही प्राप्त हो सकता । बुद्धि ही मनुष्य का सबसे बडा सम्बल है । यूनानी दाशनिक अरस्तू मनुष्य को विवेक युक्त सामाजिक पशु कहते थे । कसिरेर भी मानव पशु को इसी प्रकार का जन्तु मानते ह पर भाषा कला धम विज्ञान आदि के द्वारा वह पशु से अधिक ऊचे ढग के समाज में रहता है ।[३] यह सही हो सकता है पर मानव स्वय पशु प्रतीक है, यह भी स्थापित हो गया । मनुष्य ने जो दशन शास्त्र तथा धमशास्त्र बनाया है उसका भी केवल एक ही कारण है । वह ' म और तू

१ वही, Hendrik J, Pos का लेख, पृष्ठ ७८— Sense in the Sensuous '
२ वही, पृष्ठ ६६ । ३ वही, Franz Kaufmann, पृष्ठ ८४४ ४५ ।

"मनुष्य तथा ईश्वर' के घनिष्ठ सम्बन्ध को जानने का प्रयास है।[1] चूंकि ये दोनो चीजें माध्यम हुईं अतएव इनको भी प्रतीकात्मक मानना पडेगा। इसलिए, यह भी मानना पडेगा कि धर्म स्वत मानवता के परे वस्तु नही है बल्कि उसकी सीमा के भीतर है। चूंकि पूर्ण ब्रह्म तथा मनुष्य मे कोई अन्तर नही है अतएव मनुष्य का धर्म प्रतीक मनुष्य के बाहर नही हो सकता।[2] ईश्वर ने मनुष्य को जो सबसे बडी वस्तु दी है वह है सोचने की शक्ति। इस शक्ति से ही उसने धर्म प्रतीक बनाया है। उसका लक्ष्य है अपनी अनन्त सत्ता को पहचानना। अपनी अनन्त सत्ता को पहचानने के लिए अपने से बाहर नहीं जाना है। अपने ही भीतर प्रवेश करना है। इसलिए धर्म प्रतीक के द्वारा अपने ऊपर अपने अज्ञान के ऊपर विजय प्राप्त करनी है। यह विजय अपने से बाहर जाकर नही अपने आत्म समर्पण से होगी।[3] धर्म ही एकमात्र ऐसा प्रतीक है जो आत्म समर्पण से लक्ष्य तक ले जाता है। धर्म को इसी लिए इतनी मर्यादा है। मनुष्य का जो कुछ प्रयत्न है वह आध्यात्मिक मुक्ति के लिए है। वह जो कुछ कर रहा है अपने बधनो से अपना छुटकारा प्राप्त करने के लिए। अपनी अभिव्यक्ति के लिए तथा 'क्रमागत आत्म मुक्ति' के लिए उसने भिन्न प्रकार के प्रतीको की रचना की है रचना करता जा रहा है। पर इन बातो को समझने के लिए आवश्यक यह है कि हम अपने जीव विज्ञान को आध्यात्मिक जीव विज्ञान बना दे अपने दर्शनशास्त्र को मानवता के अधिक निकट ला दे।[4]

दूरी का कारण प्रतीक

हम ऊपर लिख आये है कि प्रतीक एक माध्यममात्र है। ज्ञान स्वत भी माध्यम है। बीच के आदमी की तब ज़रूरत होती है जब खुद मुलाकात न हो। जब प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो तभी माध्यम की आवश्यकता पडती है। यदि माध्यम ठीक मिल गया तो असलियत को पहुँचा देता है प्राप्त करा देता है। जिसने जितना अच्छा माध्यम बनाया वह उतनी ही जल्दी सही मार्ग पर सही परिचय को प्राप्त करेगा। पर, जिसने जरा भी भूल की वह ठोकरे खाता रहेगा। प्रतीक की यही सबसे बडी कठिनाई है। यदि उचित प्रतीक बने तो उचित मार्ग प्रदर्शन होगा। यदि अनुचित तथा भ्रमात्मक प्रतीक बने तो मनुष्य ठोकर खाता रहेगा।

जब हमने यह मान लिया कि प्रतीक एक माध्यम है तो हमको फ्रीडरिक थियोडोर विशेर[5] के विचार को अपना लेने मे क्या आपत्ति हो सकती है। उनका कहना था कि

१ वही, पृष्ठ ८४६। २ पृष्ठ, ८४८। ३ वही पृष्ठ ८५२।
४ वही, David Bidney का लेख, पृष्ठ ५४१।
५ Friedrich Theodor Vischer

प्रतीक तभी बनते ह जब आदमी अपने को प्रकृति से दूर करना सीखता है । तब वह अपने आशय को प्रकट करने के लिए प्रकृति से भिन्न सदेश-वाहको का प्रयोग करता है । प्रतीकात्मक वस्तु आशय को प्रकट करनेवाली एक क्रियाशील वस्तु है जिसने इन्द्रिय जन्य पदाथ को बौद्धिक रूप दे दिया है । प्रतीक की महत्ता उसके माध्यम बनने की शक्ति मे है । किन्तु जहाँ भी प्रतीक होगा उसका मलत निश्चित आशय होगा । उसमें ध्रुवीयता होगी ध्रुवत्व होगा । किन्तु उसके द्वारा एक दूसरी से भिन्न वस्तुओ का एकीकरण भी होगा । प्रतीक के द्वारा ही इन्द्रियो को प्रभावित करनेवाली वस्तु तथा उनका ज्ञान दोनो की जानकारी हो सकेगी । विचार तथा काय ज्ञाता तथा ज्ञेय प्रकृति और मनुष्य मानव की आवश्यकताएँ तथा दैवी तत्त्व इन भिन्न चीजो की एकता स्थापित कर उनकी जानकारी करानेवाली वस्तु प्रतीक है ।[१]

कला का माध्यम

कसिरेर सभी प्रतीको म ललित कला का प्रतीक श्रेष्ठ मानते थे क्योकि उसके नीचे धार्मिक प्रतीक का पुट है और उसमे विज्ञान की मर्यादा शामिल है । ललित कला सभी को समान रूप से आकृष्ट कर लेती है । पर यह तभी वस्तुत मुखरित और ललित होती है जब इसकी तह म आध्यात्मिकता धार्मिकता हो । कला के द्वारा मनुष्य न अपने अभिमान अपने दोष अपनी इच्छा अपनी महत्त्वाकाक्षाए—सबको साकार रूप दे दिया है । प्रकृति मे उसने जो रूप रग देखा जो कुछ सीखा तथा समझा उनकी अपनी कची से नकल कर अपने चित्र या अपनी मूर्तियो म उतार देता है । अन्ततोगत्वा मानव के विचार उसकी भावनाएँ, उसकी पीडाएँ या उसके अभिमान एक समान है । अतएव ललित कला की भाषा से हर प्रकार का मानव एक दूसरे के निकट आ जाता है । अतएव ललित कला का प्रतीकात्मक माध्यम श्रेष्ठ है ।[२] पर कला जिसने दृश्य वस्तु की कोरी नकल करने का साधन बनाया, वह कभी भी सफल कलाकार नही हो सकता ।[३] बहती हुई नदी को दखकर उसकी तस्वीर खीच देन का नाम कला नही है । उस नदी के प्रवाह मे जो अन्तरात्मा है जो आध्यात्मिकता है जो मौलिकता है वह भी कलाकार की पकड मे आनी चाहिए । ऐसे गुण से हीन कला प्रतीक से समाज की हानि होती है । ऐसी हीन कला के द्वारा इतिहास का अध्ययन भ्रमात्मक हो जाता है ।

१ वही पुस्तक Katharine Gilbert का लेख, पृष्ठ ६०९ १० "The opposites that are reconciled by the offices of symbols are many

२ वही, पृष्ठ ६१२ ।

३ वही, पृष्ठ ६१३ ।

भाषा का प्रयोग

भाषा भी तो एक कला है। पर भाषा की कला मनुष्य ने बहुत बाद मे सीखी। प्रारम्भ मे भाषा का उदय उसी समय हुआ जिस समय मानव के मस्तिष्क का प्रभात काल हुआ होगा। मनुष्य के मस्तिष्क की सबसे पहली तथा महती उपज भाषा है।[1] भाषा और कुछ नही केवल नामकरण ही तो है। क की ध्वनि का क नाम रख दिया इत्यादि तथा जो वस्तु सामने आयी उसका एक नाम रख दिया। व्याकरण तो बहुत बाद की चीज है। इसलिए भाषा और कुछ नही नाम प्रतीक है। पर सब प्रतीको मे सबसे सरल उपयोगी प्रतीक यही है क्योकि जब कभी जिस समय आवश्यकता पडी, यह सरलता से उपलब्ध है। हमे प्यास लगी है। पानी का प्रतीक जल का चित्र भी हो सकता है। पर हम उसकी तस्वीर ढूढ़ने कहाँ जाये ? हम तो पानी लाओ कहकर छुट्टी पा जाते ह। हमारा काम चल जाता है। किन्तु गले के नीचे पानी जाना चाहिए और उस चीज को पानी कहना चाहिए इतना भी सीखने मे मनुष्य को बहुत काफी समय लगा होगा। मन म बाह्य तथा दृश्य जगत् तथा अन्तर और अदृश्य ससार को पहचानन की अदभुत क्षमता होनी है।[2] इसी क्षमता के कारण उसने हजारा वर्षों म धीरे धीरे अपने प्रतीक बनाये ह। भाषा प्रतीक सबसे प्राचीन तथा मौलिक है। प्रतीकात्मक रूप के सिद्धान्त के जन्मदाता कसिरेर न इस बात को स्वीकार कर हमारे नाद ब्रह्म तथा शब्द सिद्धान्त को मान लिया है। हम यह सिद्ध कर चुके ह कि प्रणव नाद ॐ सृष्टि का प्रथम नाद था जिससे भाषा का भाषा प्रतीक का जन्म हुआ है।

मन का उद्देश्य

बाह्य तथा अन्तजगत का स्वामी ज्ञाता तथा सूत्रधार मन हुआ जो भीतर और बाहर का सब कुछ जानता है। यह मन ज्यो ज्यो विकसित होता जाता है त्यो त्यो उसके प्रतीक भी विकसित और परिपक्व होते रहते है। ज्यो ज्यो वह अपने को सासारिक बन्धनो से ऊपर उठाता चलता है त्यो त्यो उसका प्रतीकात्मक व्यवहार, उसका प्रतीक अधिक उन्नत होता चलेगा।[3] जिस मन मे भीतर और बाहर की चीजो को ग्रहण करने की जितनी अधिक शक्ति होगी उसके प्रतीक उतने ही अधिक व्यापक अर्थ युक्त तथा बाह्य जगत् तथा अतर जगत से सम्बन्धित होगे। वही प्रतीक वास्तविक प्रतीक है जो दोनो का सम्मिलित प्रतीक होता है। आवश्यकता इस बात की है कि

१ वही पुस्तक, Susanne K Langer का लेख, पृष्ठ ३९१—९२।
२ वही, पृष्ठ ३९३।
३ वही, Robert S Hartman का लेख, पृष्ठ ३०५।

प्रतीक को ठीक रूप मे समझा तथा पहचाना जाय। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति किसी दूसरे के कधे पर अपना हाथ रखता है। इसका क्या अर्थ होगा? जिस समय वह हाथ उसके कधे पर गया वह अपने इस शरीर का नही रहा जिसमे से निकलकर वह दूसरे के कधे पर चला गया है। जिस समय वह अपने वास्तविक शरीर से अलग न होते हुए भी अलग होकर दूसरे के कधे पर जा लगा उस समय न वह अपने शरीर का रहा न उसका वह रूप ही रह गया जो हम समझते थे।[१] वह कवल एक प्रतीक रह गया—उसका अर्थ लगाना होगा। किसी के कधे पर हाथ रखना प्रेम का प्रतीक हो सकता है आत्मीयता का प्रतीक हो सकता है या सोते हुए आदमी को जगाने का प्रतीक हो सकता है। इस प्रकार प्रकट मे जो आँख से दिखाई पडा वह तो इतना ही था कि एक हाथ किसी दूसरे के कधे पर गया। इस क्रिया ने क्या प्रतीक बनाया यह मन के समझने की चीज हो गयी पर केवल भाषा द्वारा इतना कह देने से कि अमुक ने अमुक के कध पर हाथ रखा बात साफ नही हुई। भाषा के माध्यम से प्रतीक का माध्यम स्पष्ट नही हुआ। पर यह भाषा का दोष हुआ। प्रतीक का नही। भाषा अपनी उच्च सीमा पर पहुच कर सब कुछ कह सकती है पर साधारण तौर पर भाषा मन के साधारण विचारा का झूला' या पालना मात्र है।[२] मनुष्य में बुद्धि के विकास के समय से ही भाषा का उपयोग हर समय उठनेवाले साधारण विचारो का व्यक्त करने के लिए होता है पर मन केवल साधारण विचारा की रगभूमि नही है। मन तथा बुद्धि केवल भाववाचक वस्तु नही ह। उनक सामने विश्व का व्यापक क्षेत्र नापने तथा आँकने के लिए है। अत वे अपने विचार व्यक्त करने के लिए साधारण उपयोग की चीज से काम न लेकर एक नयी भाषा की रचना कर लेते ह। वह वस्तु है प्रतीक। प्रतीको म भी गणितात्मक प्रतीक बहुत ही सटीक तथा साथक होते ह। गणित के प्रतीक अर्थ रहित नही ह।[३] सख्याओ का भी अपना अर्थ होता है। गणित के द्वारा जो कुछ भी सोचा या समझा जाता है वह बहुत ही स्पष्ट अर्थ रखता है। सष्टि के गूढतम रहस्य गणित के द्वारा हल हो जाते ह। फलित ज्योतिष गलत हो सकता है, पर गणित ज्योतिष नही। अतएव अको की भाषा मे प्रतीक बहुत ही शुद्ध तथा साथक होते ह।

किन्तु गणित हो अथवा भाषा दोनो का एक ही गुण प्रतीक मे होता है। कई अको के मिलाने से एक सख्या प्राप्त होती है। यदि हमने कहा दस तो इसका अर्थ यह होगा

१ वही, पृष्ठ ३०५।
२ वही पुस्तक Susanne K Langer का लेख पृष्ठ ४००।
३ वही पुस्तक, Harold R Smart का लेख, पृष्ठ २६६।

कि दस इकाई मिलकर, पाँच दो मिलाकर या दो पाँच मिलकर यह सख्या बनी। यानी दस के प्रतीक में उसके विभाजन योग्य सभी अक समाविष्ट हो गये। उसमे प्रवेश करके एक रूप को प्राप्त हो गय। इसी प्रकार सगीत प्रतीक भी है। चाहे किसी भी भाषा मे हो ध्वनि तथा स्वर, शब्द तथा उनका चुनाव जब एक साथ मिलकर स्वर लहरी उत्पन्न करते ह हम उसे सगीत कहते ह। हमको उस सगीत की भाषा भले ही न समझ में आये, हमारा मन उसका आनन्द प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार बहुत से श न्द मिलकर एक वाक्य बनता है। जब सब शब्दो का अथ एक मे जोड दिया जाता है तब समझ मे आने योग्य अथ प्राप्त होता है। शब्दो का ऐसा सकलन कर, एक ही अथ समाविष्ट करनेवाले वाक्य एक बच्चा या दूसरे की भाषा न जाननेवाला नही बना सकता। इसी लिए उनको बात समझ मे नही आती। इस एकता को उत्पन्न करनेवाला मन होता है।[१] अपने विश्वास के अनुसार मन स्वर लहरी अक अथवा भाषा का एक रसत्व तथा एक अथत्व पदा करता या निर्माण करता रहता है। कुछ शब्द रख दने से वाक्य नही बनते। हमने कह दिया कि हम खाना गया हूँ जब —तो इसका कोई अर्थ नही बनता। यदि हमको यह प्रतीक बनाना है कि हमने खाना खा लिया तो कहना पडगा— म भोजन कर चुका। अब इतने शब्द मिलकर एक निश्चित परिणाम पर पहुचना सम्भव हुआ। पर इस परिणाम पर पहुँचाया मन ने। प्रतीक बनाया मन ने। अतएव मन की मर्यादा को भुला देने से हम प्रतीक की गहराई तक नही पहुच सकेंगे।

इसलिए घूम फिर कसिरेर तथा उनके समान विचार करनेवाले इसी नतीजे पर पहुचे कि प्रतीक का मन तथा बुद्धि से आध्यात्मिक पहलू से इतना घना सम्बन्ध है कि उसे समझने के लिए अध्यात्म विद्या से सहायता लेनी पडेगी। जब यह तय हो गया कि बुद्धि अपने अनुभव के अनुसार प्रतीक बनाती है तो फिर बचा क्या समझने म। जितना अनुभव होगा, उतना ही समझ में आवेगा। पर यदि अपना अनुभव कम है तो दूसरे का सहारा तो है। जो दाशनिक ह, उनके अनुभव से काम लेना पडेगा। अनुभव हमारा बडा भारी सहारा है। पर कोरे भौतिकवाद के अनभव से काम नही चलेगा। काम तो चलेगा कसिरेर द्वारा वर्णित अनुभव की अध्यात्म विद्या से।[२] उससे हम जो कुछ समझ सकेंगे वही हमारा सहारा वही हमारा ज्ञान होगा।

१ वही, पुस्तक Willian H Werkmeister का लेख, पृष्ठ ७९६ ६७।

२ वही पुस्तक—Carl H Hamburg का लेख, पृष्ठ ११५— Metaphysics of Experience"

राजनीतिक प्रतीक

पिछले अध्याया से यह स्पष्ट हो गया कि प्रतीक की रचना केवल प्रेरणावश नही होती। वह निश्चित आवश्यकता की पूर्ति करता है, जिसे उदू मे इलहाम कहते है या जिसे हम आत्म प्रेरणा कहते ह। उसका तार्किक विश्लेषण नही हो सकता। हमारे ऋषि मत्र द्रष्टा कसे हुए वदिक ऋचाओ की स्वत प्रेरणा उन्हे कस हुई या हजरत पगम्बर साहब को कुरान शरीफ का इलहाम कसे हुआ य सब बाते तक से साबित नही की जा सकती। जो बात तक से साबित नही होती उसे पश्चिम के अनेक विद्वान बुद्धि भ्रम या प्रमाद तक कह बठते ह। इसी लिए बहुत से पश्चिमी वैज्ञानिको ने इलहाम या प्रेरणा की सत्ता ही अस्वीकार कर दी थी। उनका कहना था कि जिस चीज का विश्लेषण न हो सके उसकी सत्ता ही क्योकर मानी जाय।

प्रेरणा तथा विश्लेषण

किन्तु विश्लेषण द्वारा हम हर पदाथ के भिन्न तत्त्वो का अलग अलग कर दते ह उन तत्त्वो की छानबीन कर लेते ह जो अन्य पदार्थों मे भी समान रूप से पाये जाते ह। हम अपने जिस दृष्टिकोण से किसी तत्त्व का जानते या पहचानते ह उसी दृष्टिकोण से हम अन्य तत्त्वो के साथ अपने जाने हुए तत्त्व का मिलान करते ह। विश्लेषण की व्याख्या की जाय तो वह भिन्न तत्त्व प्रतीको म उस वस्तु का अनुवाद है। चूकि हर सासारिक वस्तु स्वत म सम्पूण नही है अत उसकी व्याख्या भी पूणत सन्तोषजनक नही हो सकती। विशष कर जब वह केवल अपने दृष्टिकोण से तत्त्वो का तत्त्व प्रतीको का प्रतिनिरूपण हो। इसी लिए विश्लेषण के भीतर विश्लषण पुन विश्लेषण तक के भीतर तक चलता रहता है। हम सकडो वर्षों से यह सोचते और कहते चले आ रह है कि प्रकाश सीधी रेखा म यात्रा करता है। चाहे सूय का प्रकाश हो या बिजली की बत्ती का प्रकाश की रेखा सीधा यात्रा करती है। ६० वष पूव आइस्टीन ऐसे विद्वान् पदा हुए जिन्होने आज के तीस वष पूव यह साबित कर दिया कि जिसे हम सीधी रेखा कहते है वह सीधी कसे हुई ? उनके कथनानुसार इस गोल दुनिया मे सीधी रेखा की व्याख्या ही गलत है।

तत्त्वो के विश्लेषण मे ऐसा झगडा हमेशा लगा रहेगा पर अन्त प्रेरणा की बात

म ऐसा तक लागू नहीं हो सकता । अन्त प्रेरणा एक सीधा-सादा काय है ।[१] इसके द्वारा हमारी बुद्धि किसी वस्तु के दृश्यात्मक या विश्लेषणात्मक तत्त्वो को छोडकर उनके भीतर प्रवेश कर जाती है और उनकी प्रत्यक्ष जानकारी हासिल कर लेती है । हम अपने नित्य के जीवन में प्रेरणावश न जाने कितने काम किया करते है । प्रेरणावश काम करने से हम अनगिनत विपत्तियो तथा चिन्ताम्रो से बच जाते है । अन्त प्रेरणा की बात अनसुनी करके मनुष्य अनगिनत विपत्तियो मे जकड जाता है ।

बुद्धि का विषय

इसलिए प्रतीक के विद्यार्थी को अन्त प्रेरणा तथा अन्तर्ज्ञान के भेद को नही भुलाना चाहिए । ज्ञान बुद्धि का विषय है । प्रेरणा आत्मा का विषय है । बुद्धि सदैव चिन्तन शील रहती है । उसका चिन्तन दो प्रकार का होता है । एक चिन्तन मे इच्छा होती है । हम जानते ह कि किसी वस्तु की इच्छा कर रहे ह । दूसरे प्रकार के चिन्तन म ज्ञान होता है । हम जानते ह कि जान रहे ह । ज्ञान अपने ज्ञान प्राप्त करने की समूची क्रियाओ पर ज्ञान प्राप्त करता रहता है ।[२] ज्ञाता तथा ज्ञेय का माध्यम बुद्धि है । इसी प्रकार जब मन म किसी चीज़ की इच्छा होती है तो उस इच्छा को वह साकार कर लेता है । उसकी मूर्त्ति खडी कर लेता है । स्त्री की इच्छा हुई । जसी इच्छा हुई वसी स्त्री की मूर्त्ति मन के सामने खडी हो जाती है । इच्छा ने मूर्त्ति की रचना की । अब उस मूर्त्ति को जानने का काम हुआ । यानी चिन्तन के प्रथम भाग इच्छा ने मूर्त्ति की रचना। दूसरे भाग ज्ञान ने उसकी जानकारी हासिल की । स्पष्ट है कि मन द्वारा प्रतिमा की मूर्त्ति की उत्पत्ति हुई । मूर्त्ति द्वारा मन की उत्पत्ति नही हुई । मूर्त्ति की जानकारी हासिल करके उसे प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है । इच्छा की पूर्त्ति की चेष्टा होती है । इससे यह स्पष्ट हुआ कि मूर्त्ति स्वय न तो इच्छा है न ज्ञान है न क्रिया है । वह तो मन द्वारा उत्पन्न एक निरपेक्ष पदाथ है । यह भी स्पष्ट हुआ कि मन के दो रूप है—इच्छा तथा ज्ञान । इन दोनो को मिलाकर क्रियाशक्ति सञ्चारित होती है । इच्छा और ज्ञान से मूर्त्ति बनती है । यह मूर्त्ति ही प्रतीक है ।

इच्छा-वैचित्र्य

इच्छा और ज्ञान से हर दिशा मे प्रतीक बनते ह । इच्छा-वचित्र्य के अनुसार

१ H Bergson— An Introduction to Metaphysics"—T E. Hume's Translation—Pub 1912—page 8

२ Josiah Royce—"The World and the Individual"—Pub 1901—Vol II—page 509

प्रतीक-वचित्य होता है। मानव जीवन के हर पहल मे भिन्न भिन्न प्रतीक होते हैं। समाज राजनीति विज्ञान हर एक के अपने अपने प्रतीक होते हैं पर ये प्रतीक तत्सम्बधी इच्छा तथा ज्ञान की अभिव्यक्ति करते ह। आज के ढाई सौ वष पूव अमेरिकन सरकार में लोगो के जान-माल की हिफाजत करनेवाली घुडसवार सेना की वीरता तथा दृढता के लिए बडी ख्याति थी। इसलिए घुडसवारो के लम्बे जूते तथा घोडे की जीन इन दोनो चीजो को वीरता के काय का प्रतीक माना जाता था। कही पर जीन तथा जूता की तस्वीर बना देने से घुडसवार सेना की वीरता का इतिहास अकित हो जाता था। इन दोनो चीजो को देखने से ही देश भर के वीर घुडसवारो की वीरता अकित हो जाती थी। किन्तु हर देश मे ये चीजे वीरता का प्रतीक नही थी। जिस देश मे वीरता के काय के लिए घोड की इच्छा होती थी तथा घुडसवारो की वीरता का ज्ञान होता था, वही पर ऊपर लिखे प्रतीक काम देते थे।

राष्ट्रीय ध्वज

हमारे देश में सूयवशी नरेशो की वीरता प्रसिद्ध है। पराक्रम का उदाहरण सूय से बढकर और क्या हो सकता है जिसके तेज से पथ्वी म अन्न जल सब कुछ होता है। प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व पर सूय विजयी होता है। अतएव विजय की इच्छा करनेवाले सूय के समान पराक्रमी बनने की कामना करनेवाले तथा सूयवशी नरेशा के समान इतिहास बनाने की इच्छा रखनेवाल लोगो ने अपनी पताका पर सूय का चित्र बना दिया था। ससार की माया ममता छाडकर मोक्ष की साधना करनेवाले साधु-सयासी जिस रग का वस्त्र पहनते ह उसी रग का झण्डा बनाने का अथ है ससार की सब कुछ ममता त्यागकर हम अपने राज्य के लिए होम होने को तयार ह। भारतवष में सबसे अधिक सख्या हिदुओ की है। हिदू जाति का प्रिय रग केसरिया है। मुसलमानो का प्रिय रग हरा है। ईसाई आदि अय जातियो का प्रतीक श्वेत रग है। समूचे भारतवष का हित—इन सब जाति धम सम्प्रदाय को एक मे मिलाकर चलने में है इनके हित साधन म है। इन सबकी समान रूप से सेवा करने की सगठित रखने की इच्छा तथा ज्ञान का प्रतीक हमारा तिरगा झण्डा है। इन सबके हित साधन के लिए ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग का सहारा लेकर ग्रामो के जीवन को ऊँचा उठाने का प्रतीक चर्खा है। अतएव काग्रेस ने तिरगे के ऊपर चर्खा बना दिया।

जनता की आवश्यकता

कम्यूनिस्ट लोग जनता की समूची शक्ति हाथ से काम करनेवाले किसान तथा कल-कारखाने के मजदूर को मानते ह। देश का सवस्व यही दो वग है। इन दो वर्गों को

राष्ट्र का प्रतीक माननेवालो ने किसान का प्रतीक खेत काटनेवाली हँसिया तथा मजदूर का प्रतीक हथौडा बना दिया। यह बात दूसरी है कि हमारे तिरगे झण्डे की तरह या सवव्यापक चर्खे की तरह यह प्रतीक राष्ट्र की आत्मा की अभिव्यक्ति न हो। पर अपने दृष्टिकोण के अनुसार उत्पन्न हुई इच्छा तथा ज्ञान का प्रतीक हँसिया हथौडा अवश्य है। पूर्वी देशो का अपने को सिरमौर माननेवाले तथा अपने नरेशो को सूर्य का प्रतिनिधि—अपने देश को सूय के समान प्रबल तथा तेजस्वी माननेवाले जापानियो ने अपने झण्डे पर सूर्य रखा था। इग्लण्ड स्काटलैण्ड तथा वेल्स के तीन राज्य जब एक छत्र के नोचे आ गये तो इनका एक सम्मिलित झण्डा बना जिसे हम 'यूनियन जक' कहते ह। इसमे लाल सफेद तथा नीला रग तीनो राज्यो के पताका प्रतीक का सम्मिलित प्रतीक बन गया। इग्लण्ड के ही निवासी अमेरिका जाकर बसे थे। वे अपने साथ अपने झण्डे की कल्पना भी लेते गये और उन्होने अपनी पताका में भी लाल, नीला तथा सफेद रग रखा। हर एक देश की पताका आरम्भ से अन्त तक एक नही रहती। पहले मुसलिम पताका पर यूनानी बाज पक्षी बना रहता था। बाद मे द्वितीया का चद्रमा तथा सितारे बनने लगे। जब किसी देश की राजनीतिक भावना बदल जाती है जब किसी देश की भौगालिक सीमा बदल जाती है तो अपनी सीमा के भीतर सबकी इच्छा तथा ज्ञान को क्रियात्मक साधना का रूप देने के लिए पताका प्रतीक भी भिन्न हो जाता है। सोवियत रूस की पताका आज वह नही है जो पचास वष पहले थी। उस देश की राजनीतिक विचार-धारा के बदलते ही उसके मन के सामने इच्छा इच्छा से उत्पन्न प्रतिमा प्रतिमा से उत्पन्न ज्ञान भी बदल गया। अतएव रूस के सम्राट जार की पताका भी बदल गयी। राष्ट्रीय पताका प्रतीक क बारे म एक बात ध्यान म रखनी चाहिए। ऐसे प्रतीक विगत स्मृतियाँ तथा जनसमूह की वतमान जोवन परिस्थिति को मिलाकर बनते ह[१] इसलिए हर देश की पताका उसके जनसमूह की राजनीतिक इच्छा का प्रतीक होती है।

अधिकाश का प्रतीक

पर सबकी इच्छा की ठीक से जानकारी करना बडा कठिन है। कोई नही कह सकता कि सोवियत रूस का हर व्यक्ति हसिया हथौडा' के सिद्धान्त को मानता है। कोई नही कह सकता कि हर भारतीय काग्रेस के चर्खा का सिद्धान्त मानता है। पर ऐसे

१ Symbols and Society—Pub Conference on Science Philosophy and Religion New York Pub 1955—Article on 'Symbols of of Political Community"—by Karl Deutsch—page 39

मामले में केवल एक ही कामचलाऊ सिद्धान्त मान लेना चाहिए वह यह कि अधिकाश की इच्छा का वही प्रतीक है। भारतीय राष्ट्रीय पताका पर अशोक का चक्र है। वह चक्र बौद्धकालीन धम चक्र परिवतन का प्रतीक है। उस समय वह चक्र धार्मिक क्रान्ति का प्रतीक था। आज हमारा अशोकचक्र नैतिक तथा सामाजिक पुन सगठन का प्रतीक है। पर चक्र के साथ पुरानी स्मृति जुडी हुई है। चक्र के साथ परिवतन की परिकल्पना सयुक्त है। चक्र के साथ भारतीय जनता की अपनी वत्तमान परिस्थिति मे आमूल परिवतन करने की भावना सन्निहित है। अत इतनी इच्छा तथा इतने ज्ञान के साथ सयोग होने पर हमारे राष्ट्रीय ध्वज की रचना हुई है।

विश्व-प्रतीक

ईसाई 'क्रास का जिक्र हम पिछले अध्यायो म कर आय ह। ईसा के त्याग तथा बलिदान की उस अमर कहानी म बडा बल है। स्विटजरलण्ड के छोटे छोटे राज्यो का जब सघ बना नवीन स्विटजरलण्ड की रचना हुई उसन क्रास' के प्राचीन प्रतीक को अपने झण्डे पर रखकर प्राचीन स्मृति तथा साहस की प्राचीन गाथा को हर एक नागरिक के मन पटल पर अकित कर दिया। इसी प्रकार मित्र राष्ट्रसघ ने अपने ध्वज पर विश्व का गोल मानचित्र बना रखा है ताकि 'वसुधव कुटुम्बकम् की भावना वह अपने हर सदस्य के मन पर अकित करते रह। विश्व-बधुत्व का प्रतीक विश्व का मानचित्र नया प्रतीक नही है। अनेक अतरराष्ट्रीय अवसरा पर इसका उपयोग हा चुका है। राष्ट्रसघ के वर्तमान प्रतीक के साथ प्राचीन स्मति अकित है। इस स्मृति से राजनीतिक दल या नेता या राजा लाभ भी उठाना चाहते ह। इसी लिए इतिहास साक्षी है कि नये राज्य के विस्तार पर नरेश लोग उस देश की पताका को समाप्त नही करते अपने दश की पताका मे सम्मिलित कर लेते ह या उसी पताका को अपना लेते ह। कई प्रतीको को मिलाकर जो प्रतीक बनते ह उन्हें सम्मिलित प्रतीक कहते है और ऐसे प्रतीका के ज्वल त उदाहरण पचासो राष्ट्रीय ध्वज ह। ये ध्वज सम्मिलित इच्छा तथा सम्मिलित सकल्प सम्मिलित ज्ञान तथा सम्मिलित क्रिया के प्रतीक होते ह। लाग इनके आकषण मे ऐसा बध जाते ह कि पताका के झुकते ही वे समझ जाते है कि अब सम्मिलित इच्छा, ज्ञान क्रिया मे शिथिलता आ गयी या वह समाप्त हो गयी। इतिहास मे ऐसे सैकडो महायुद्धो की कथाए मिलगी जिनमें जीती हुई सेना यकायक हतोत्साह और पराजित हो गयी क्योकि जिसके हाथ मे ध्वज था वह किसी कारणवश गिर गया। शत्रु भी इस बात की चेष्टा करता है कि राजा का झडा ले चलनेवाला पहले मारा जाय ताकि लोगो का उत्साह समाप्त हो जाय। सामूहिक इच्छा के प्रतीकीकरण मे जितना लाभ है उतना ही खतरा भी है। सामूहिक

इच्छा यदि एक साथ जागती ह तो एक साथ ही सो भी जाती है। यदि वह एक साथ सचेष्ट होती है तो एक साथ निश्चेष्ट भी हो सकती है। इसलिए सामूहिक प्रतीक बनाने वालो को एसे प्रतीक मे अधिक से अधिक प्राचीन स्मति तथा वतमान आकाक्षाओ को प्रकट करना होगा ताकि प्रतीक सामने न रहने पर भी उसका प्रभाव अन्तर्मानस पर बना रहे। सामने राष्ट्रीय पताका न भी दिखाई पडे पर उसकी भावना मन में इच्छा तथा ज्ञान को सचेष्ट करती रहे। मन की स्थिति ऐसी रहे कि प्रतीक का कलेवर आँख से न दिखाई पडने पर भी उसका विचार उसका सकल्प बना रहे। ऐसी ही अनुभूति के कारण सेनाए शत्रु के हाथ म पडी हुई अपनी पताका छीनने के लिए प्राण उत्सग कर देती ह।

राजनीतिक प्रतीक के द्वारा एकता

ऐसे राजनीतिक प्रतीको को समझने के लिए हमको हर एक देश की राजनीतिक विचारधारा को भी समझना चाहिए। राजनीति है क्या वस्तु ? समाज पर लागू किये जानेवाले आदेशो को बनाना या बिगाडना—इसी का नाम राजनीति है।[१] राजनीतिक वग उस व्यक्ति समह को कहते ह जिसम कुछ आदेशो को लोग स्वत या आदतन मानते ह तथा पालन करते ह तथा कुछ को सम्भवत बाध्य होकर उनका पालन करना पडता है। सामाजिक अनुभव तथा शिक्षा से ऐसा राजनीतिक वग बनता है जिसम स्वेच्छया आदेश माननेवाले या बाध्य होकर आदेश माननेवाले एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते रहते ह। राजनीति का अध्ययन केवल इतना ही है कि उस समाज मे आदेशो को पालन कराने का क्या तरीका है—विधानसभा द्वारा शासन द्वारा सेना द्वारा प्रजातत्र द्वारा या निरकुश शासन द्वारा। आदेशो का पालन कराने की जसी राजनीतिक विधियाँ होगी वसा ही प्रभाव सामाजिक शिक्षा पर पडेगा। प्रजातत्रीय समाज तथा निरकुश शासनवाले समाज की राजनीतिक शिक्षा पर इसी प्रकार प्रतीको का भिन्न भिन्न प्रभाव पडता है और जनता के मन तथा बुद्धि का विकास तदनुरूप होता रहता है।[२]

राजनीतिक वर्ग की सीमा बदलती रहती है। जितने अधिक लोग एक ही आदेशक (चाहे वह विधानसभा हो नरेश हो सना हो इत्यादि) के आदेशो के अन्तगत होते ह उतना ही बडा राजनीतिक कुनबा या वग होगा। ऐसे कुनबे मे वद्धि के साथ उसका कायक्षेत्र भी व्यापक तथा विस्तृत होता जायेगा। यदि एक ही भाषा के लोगो का राज

१ वही, पृष्ठ ३७।

२ इस विषय पर निम्नलिखित विद्वानों की रचनाएँ पढ़नी चाहिये—
S A Burrell R A Kann—M Du P Leejr P Loewenheim Richard Wan Wagenan इत्यादि।

नीतिक वग बहुभाषा भाषियो का वग बन गया तो उसकी समस्याएँ भी बढ़ जायेंगी। ऐसे कई समाज एक ही राजनीतिक आदेश के भीतर आ सकते ह जिनके रहन सहन मे वडा अ तर हो। ऐसे विभिन्न लोगो को एक सूत्र मे मिलाकर रखना बडा ही कठिन काम है। हर एक की आशाओ तथा महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति कठिन हो जाती है। कोई ऐसी भी दृढ तथा शक्तिशाली वस्तु है जो छोटे छोटे राजनीतिक वर्गों को एक मे मिलाकर, बडे वग मे शामिल कर देती है उनको एक सूत्र मे बाध देती है। कोई ऐसी भी दुबलता है जिसके कारण बडे बडे राजनीतिक वर्गो के टुकडे टुकडे हो जाते ह। किसी ऐसी दुबलता के कारण ही प्राचीन रोमन साम्राज्य टुकडे टुकड हो गया। किसी ऐसी दढता के कारण ही प्राचीन ब्रिटिश साम्राज्य आज भी छिन्न भिन्न नही हुआ। वह वस्तु है प्रतीक। जिस राजनीतिक वग का प्रतीक इतना व्यापक तथा प्रभावशाली हुआ कि सबकी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति कर सके प्रकट कर सके वह वग एक साथ चलता रहगा। जिसका प्रतीक इसमे असफल रहा उस मन्दान छोडना पडेगा। प्राचीन रामन साम्राज्य ने चारो ओर अपनी पताका फहरा दी। बाज पक्षी बना हुआ उनका झण्डा चारा आर गाडा गया। पर रोमन दिग्विजयी हाकर गये थे। अपने मे मिलाने के लिए नही गये थे। ब्रिटिश साम्राज्य जब टूटने लगा ता बडी सावधानी तथा चतुराई के साथ उसका नाम *ब्रिटिश साम्राज्य* से बदलकर *ब्रिटिश कामनवेल्थ — सव साधारण की सम्पत्ति* घोषित कर दिया गया। रोम साम्राज्य के लिए उनकी पताकामात्र ही प्रतीक थी। ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतीक यूनियन जक नही रहा। कामनवेल्थ के हर एक राज्य की पताका भिन्न भिन्न है। सव साधारण की सम्पत्ति को एक सूत्र मे पिरोनेवाले गूथनेवाले ह उनके नरेश। महारानी एलिजवेथ आज ब्रिटिश कामनवेल्थ की प्रतीक ह। सब प्रतीको मे व्यक्ति प्रतीक श्रेष्ठ हाता है। वह सजीव सचेष्ट हमारी आत्मा से निकटतम तथा हमारे सुख दु ख का प्रतिबिम्ब होता है। भारत की राष्ट्रीय एकता भारतीय सघ के अ तगत सभी प्रदेशा की एकता का प्रतीक हमारा राष्ट्रपति है। सयुक्त राज्य अमेरिका की राष्ट्रीय एकता का प्रतीक उनका प्रेसिडेट है। किन्तु, राष्ट्रपति का पद ऐतिहासिक पद महत्त्व नही रखता। इस पद की उत्पत्ति प्रजातन्त्रीय शासन विधान से हुई है। हजार वष पुरानी ब्रिटिश नरेश की परम्परा की स्मति अपना अदभुत ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। नरेश के साथ ही ब्रिटिश प्रजातन्त्रीय प्रणाली का विकास देश के शासन मे नरेश का कोई भी हस्तक्षेप न होना नरेश के होते हुए भी ब्रिटिश पार्लमेण्ट की स्वतन्त्रता—इस समचे इतिहास की छाप ब्रिटिश नरेश पर है। आज ब्रिटिश कामनवेल्थ मे ब्रिटिश नरेश को कामनवेल्थ के सदस्यो की एकता का प्रतीक" मानने मे इसलिए आपत्ति नही हो सकती कि जिस प्रकार वह नरेश स्वय अपने

राज्य के शासन मे दखल नही देता यद्यपि समूचा शासन उसी के नाम पर होता है, उसी प्रकार वह अपने कामनवेल्थ के सदस्यो के राज्य के शासन मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता। वह इतिहास की पुरानी स्मृति तथा जनता की वर्तमान स्वतत्र इच्छा का सम्मिलित प्रतीक है। इसी लिए सन १९४९ मे २७ अप्रल को लन्दन मे एकत्रित ब्रिटिश कामनवेल्थ प्रधान मत्रियो के खुले अधिवेशन मे भाषण करते हुए भारत के प्रधान मत्री प० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—[1]

भारत सरकार ने यह घोषणा की है और स्वीकार किया है कि राष्ट्रो के इस कामनवेल्थ की उसकी सम्पूर्ण सदस्यता बनी रहेगी और वह यह भी स्वीकार करती है कि उसके सदस्य स्वतत्र राज्यो के इस स्वाधीन सगठन का प्रतीक ब्रिटिश नरेश है और इस प्रकार वह नरेश इस कामनवेल्थ का प्रधान है। प० जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषणा करने के बाद भारतीय विधानपरिषद मे यह स्पष्ट कर दिया था कि जहाँ तक ब्रिटिश नरेश का सम्बन्ध है भारतवर्ष उनकी अधीनता स्वीकार नही करता पर ब्रिटिश कामनवेल्थ के स्वतत्र सदस्यो के इस सगठन का ब्रिटिश सम्राट के पद के कारण प्रतीक तथा प्रधान मानता है। इस प्रकार नरेश की सत्ता नरेश के रूप मे नही एक स्वतत्र सस्था के प्रधान के रूपमे तथा सगठनमात्र के प्रतीक के रूप मे रह गयी।[2] इस प्रकार भारतीय जनता की स्वतन्त्रता की इच्छा भी पूरी हो गयी और एक स्वतत्र सगठन को एक साथ मिलाकर रखनेवाला प्रतीक भी प्राप्त हो गया। ब्रिटिश कामनवेल्थ की पताका उसका ध्वज उसका स्तम्भ उसका एकीकरण ब्रिटिश नरेश हो गया।

राजनीतिक विचारधारा नित्य प्रति बदलती जा रही है। इस बदलती विचारधारा का ही प्रतीक ऊपर लिखा ब्रिटिश कामनवेल्थ है जो स्वतन्त्र देशो का स्वतत्र सगठन" कहा जाता है। राजनीतिक सिद्धान्त के अनुसार किसी राज्य के अन्तर्गत ऐसा कोई सगठन नही हो सकता जो निश्चित नियम अथवा आदेशो से बाध्य न हो। कई स्वतत्र राज्यो का गुट कतिपय अतरराष्ट्रीय सधि परम्परा या अन्तरराष्ट्रीय नियमो से बनता है। कामनवेल्थ न तो कोई स्वतत्र राज्य है न उनमे परस्पर सधि का ही कोई नियम है। कामनवेल्थ के भीतर सभी राज्य स्वतत्र है। फिर भी यदि वे एक साथ मिलकर बैठते है, परस्पर विचार करते है तथा एक नरेश को अपना प्रधान बनाये हुए है तो यह उनकी

१ Final Communique—27th April 1949

२ भारतीय विधानपरिषद् में प० जवाहरलाल नेहरू का भाषण, १६ मई, १९४९—"Indian Constituent Assembly Debates—Vol 8—page 2—10

उस स्वतत्र इच्छा तथा ज्ञान का परिणाम है जो एक साथ मिलकर चलने का परामर्श देता है और जिस परामर्श के प्रतीकस्वरूप नरेश का प्रधान बना लिया गया है या मान लिया गया है। प्रधान के पद की मर्यादा ही यह होती है कि वह सबके पद को मिलाकर रखे जो ऐसी देखरेख रखे कि एक दूसरे से अलग होने की भावना पनपने न पाये। अतएव सिद्धान्तरूप से कामनवेल्थ की रचना कर मनुष्य की एक साथ मिलकर चलने की प्रवृत्ति का प्रश्रय दिया गया है। जबसे मनुष्य ने सामाजिक प्राणी बनना सीखा उसने यह भी सीखा कि सगठित रूप से चलने में ही उसका कल्याण है। विश्व के सगठन का एक दूसरे सूत्र में सभालकर रखनेवाली ईश्वर की भावना है। एक वर्ग को एक सूत्र में रखने वाली वस्तु समान महत्त्वाकाक्षा तथा सकल्प है। प्रजातन्त्र की कल्पना तथा स्वतत्र रूप से अन्य देशों के साथ सहचार का साधन कामनवेल्थ है और उनकी इस प्रवृत्ति को जाग्रत तथा सचेष्ट रखनेवाली वस्तु का नाम है नरेश। किन्तु यह नरेश ऐसा कोई अधिकार नहीं रखता कि अपनी सस्था के कार्यों में कोई हस्तक्षेप कर सके वह हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पर हस्तक्षेप के अधिकार का प्रतीक अवश्य है। परिवार में जिस प्रकार बडा-बूढा लोगों के काम में हस्तक्षेप न करते हुए भी उनका मुखिया बना रहता है उसका एक प्रभाव तो रहता ही है वह परिवार के इतिहास तथा सस्कृति का सजीव उदाहरण अवश्य है। परिवार के सदस्य बालिग हो गये हैं। वे अपना इन्तजाम स्वय कर रहे हैं। पर अपने बुजुर्ग का भी ध्यान रखते हैं। उसी प्रकार बुजुर्ग को भी भय रहता है कि परिवारवाले भी उसके कामों पर निगाह रखते होंगे। सम्राट एडवर्ड अष्टम ने जब श्रीमती सिम्पसन से विवाह करना चाहा उन्हे कामनवेल्थ के सदस्यों से कोई सहानुभूति न प्राप्त हो सकी। उनको राज्य छोडना पडा।

राजनीतिक प्रतीकों का कार्य

क्विसी राइट ने[१] राजनीतिक प्रतीकों को रेगुलेटर्स --नाजिम कायदे में रखने वाला या ठीक रास्ते पर लगानेवाला कहा है। बात सही भी है। ऐसे प्रतीकों का अध्ययन दो दृष्टियों से होता है--उनसे क्या सीखा जा सकता है तथा उनको नियत्रण में रखने से क्या लाभ हो सकता है। राजनीतिक प्रतीकों से यह पता चलता है कि राजनीतिक गुटों या सगठनों राज्य देश क्षेत्र जनता विशिष्ट वर्ग आदि को इनसे क्या सदेश प्राप्त हो रहा है या किन सन्देशों का आदान प्रदान हो रहा है। ऐसे प्रतीकों को किसके माध्यम से दूसरों के पास सन्देश भेजने का काम लिया जा रहा है--विधानसभा के द्वारा

१ Quincy Wright—in Symbols of Internationalism—" Stanfoud University Press—Stanford, Pub, 1951—Introduction

समाचारपत्रो के द्वारा व्याख्यानो के द्वारा—कोई न कोई माध्यम तो होगा ही । हमें यह भी देखना होगा कि कौन कौन-से राजनीतिक प्रतीक एक दूसरे के निकट ह, एक दूसरे से सम्बन्धित ह या बार बार दुहराये जा रहे ह । ऐसे ही अध्ययन से हम भिन्न युग भिन्न वग, भिन्न समुदाय के तत्कालीन जीवन के राजनीतिक दृष्टिकोण को समझ सकते है उन देशा तथा उस काल के राजनीतिक इतिहास को जान सकते ह । पर राजनीतिक प्रतीका की जानकारी कभी भी पूरी नहा हा सकती । इसलिए कि राजनीतिक इतिहास तो जाना जा सकता है । राजनीतिक दृष्टिकोण का बदलता हुआ पट आसानी से नही पहचाना जा सकता । राजनीतिक विचारधारा बदलती रहती है और नये-नये प्रतीक बनाती रहती है । अतीत क राजनीतिक प्रतीक आज पुन जाग्रत किये जा सकते ह । अतीत काल से चले आनेवाले प्रतीक आज दफनाये जा सकते है । अन्य प्रतीको के समान राजनीतिक प्रतीक भी शन्य मस्तिष्क से नही समझे जा सकते । राजनीतिक प्रतीक भी अन्य प्रतीका के समान हम आदेश दते ह कि अपनी याददाश्त को टटोलो ।[१]

राजनीनीतिक प्रतीका क तीन मुख्य काय ह —

(१) इनके द्वारा किसी खास समुदाय क्षत्र घटना या आचरण की जानकारी हाती है अथवा इनके सम्बन्ध की अनेक घटनाओ की स्मति जाग्रत होती है जा सब मिलकर एक विशिष्ट वग समुदाय या देश की भावना पदा करते है जसे भारतीय कहने मे भारत के रहनेवाला का बहुत सी बाते एक साथ सामन आ जाता ह राष्ट्रपरिषद कहने से मित्र राष्ट्रसघ की समूची समस्या सामन आ जाती है या पश्चिमी यूरोप कहने स उनकी सब बातें स्मति क सामने नाच उठती ह ।

(२) वे ऐसा स्मृतिया की ओर ले जाते ह जा पहलेवाली बात से जो भावना पैदा हुई है उसक सम्बन्ध म और अधिक साचने समझने या निणय करने मे सहायक हाती ह जस पराक्रमी राजदूत दुबल राष्ट्रपरिषद इत्यादि । राष्ट्रपरिषद् के साथ दुबल शब्द लगते ही उस सस्था के प्रति भावना ही दूसरी हो जायगी तथा हमारा विचार क्रम बदल जायगा । विशेषणात्मक प्रतीक की बडी मयादा है ।

(३) ऐसे प्रतीक जो ऊपर लिखी दानो प्रकार की बातो का एक साथ प्रतिनिधित्व

१ Susanne K Langer— Philosophy in a New Key ' New American Library New York 1948 में इसकी अच्छी व्याख्या की गयी है ।

करते हो उनको प्रकट करते हो जैसे अशोक चक्र । इसके भीतर भारतीय धर्म भारतीय इतिहास उसका नैतिक आधार उसकी परम्परा, उसका लक्ष्य, सब कुछ स्पष्ट हो जाता है । यह चक्र जो सन्देश दे रहा है उसे अन्य राजनीतिक वर्ग ग्रहण करें या न करें पर अपना सन्देश तो वह सुनायेगा ही । भारत के राष्ट्रीय झण्डे पर अशोक चक्र देखकर जिसे भी उसका अर्थ जानने का कौतूहल होगा उसे अनायास हमारे उस सन्देश को ग्रहण करना पड़ेगा ।

भाषा में राजनीतिक प्रतीक

राजनीतिक प्रतीक केवल रूपात्मक ही नहीं होते वे भाषात्मक भी होते हैं । जैसे स्वतन्त्रता या सुरक्षा शब्द को लीजिए । हमने जहाँ स्वतन्त्रता शब्द का उपयोग किया, उसके उपयोग के साथ हमारे सामने समूचा स्वतन्त्रता संग्राम अपने देश या अन्य देशों का इतिहास हमारी राजनीतिक स्मृति के अनुसार खड़ा हो जाता है । उसके साथ ही सुरक्षा शब्द भी है । हमने तत्काल समझ लिया कि स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सुरक्षा कितनी आवश्यक है तथा अपनी रक्षा के लिए अपनी आत्मा की रक्षा के लिए स्वतन्त्रता कितनी आवश्यक है । हम स्वतन्त्रता इसलिए चाहते हैं कि हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी हो सकें हमारा आत्म विकास हो सके और हम उस सन्देश को पूरा कर सकें जो बुद्धि हमें दे रही है । जो शासन प्रणाली जो शासक जो देश हमारी इन कामनाओं या भावनाओं की पूर्ति में बाधक होता है हम उसमें स्वतन्त होना चाहते हैं । राजनीतिक स्वतन्त्रता स्वतः कोई मूल्य नहीं रखती यदि वह मानव के लिए आवश्यक उच्चतम जीवन की पूर्ति न करती हो । यदि स्वतन्त्र होने पर भी शासन उस पूर्ति के योग्य नहीं साबित होता तो उस शासन से भी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है ।[२] प्रजातन्त्र में इसी लिए राजनीतिक दल बनते हैं जो ऐसी ही भावनाओं को जाग्रत कर अपने दल की महत्ता स्थापित करते हैं । इस भावना का सदुपयोग तथा दुरुपयोग भी हो सकता है । स्वतन्त्रता होते हुए भी मनुष्य की आत्मा को कुचला जा सकता है उसे पशु बनाया जा सकता है । ऐसी दशा में क्रान्ति हो जाती है । अतएव स्वतन्त्रता शब्द कहते ही हमारे मन में पराधीनता के अभिशाप की गाथा तथा स्वाधीनता की उच्चता अनायास तथा आपसे आप पैदा हो जाती है । बन्धन रहित जीवन की मानव की प्राकृतिक

१ Symbols & Society page 25
२ Herbert A Simon— Administrative Behaviour —Macmillan & Co New York 1947—page 198—219

इच्छा तथा बन्धन युक्त जीवन की जटिलता का समूचा इतिहास जाग उठता है । अतएव 'स्वतत्रता उस स्थिति का प्रतीक है जिसमे मानव अपने मनुजत्व को प्राप्त करता है ।

शक्ति की भूख

परम शक्तिशाली भगवान् का अश मानव अपने को शक्तिहीन नही देख सकता । शक्ति की उसम सहज तथा स्वाभाविक भूख होती है । कोई भी मनुष्य अशक्त नही रहना चाहता । कोई भी मनुष्य निरवलम्ब नही रहना चाहता । वह अपना बल, अपना अधिकार बढाना चाहता है । राजनीतिक शक्ति भी इसी भूख का परिणाम है । इस भख के कारण अनगिनत उपद्रव होते रहते है और हो रहे ह । इसी से परस्पर द्वेष भी पदा होता रहता है । पर किसी भी दशा मे द्वेष अकेले नही चलता । जहाँ राग होगा वही द्वेष होगा । जो दूसरे से लडता है वह कुछ से मेल भी रखता है । आज के युग मे लडते-लडते मनुष्य थक गया है । अत वह मेल की बात भी सोच रहा है । क्षुद्र राष्ट्रीय विचार को कल तक सब कुछ समझा जाता था । अब वही मानव फिर से अपनी सार्वभौम सत्ता तथा सार्वभौम बन्धुत्व की बात भी सोच रहा है । प्राचीन भारतीय आदर्श वसुधैव कुटम्बकम की ध्वनि अब फिर से कानो मे गूजने लगी है । इसी लिए राष्ट्रसघ की भावना जड पकडती जा रही है । सयुक्त राष्ट्रसघ की परिकल्पना विश्व बन्धुत्व की भूमिका है ।

राजनीतिक आँकड़े

विश्वबन्धुत्व के हामी चाहे कितना भी प्रयत्न करे पर द्वेष विद्वेष के बीच से परस्पर की दूरी बढ रही हे । इसका भी प्रतीक मौजूद है । यह प्रतीक अक प्रतीक के रूप मे है । आँकडा मे है । इन आँकडो का बडी सावधानी के साथ पर बडे परिश्रम से सकलन श्री इथील पूल ने किया था ।[१] पहले तो उन्होने बडे राष्ट्रो के परस्पर बढते हुए विद्वेष की तालिका दी है । उन्होने उन देशो के पाँच प्रमुख समाचारपत्रो की सम्मतियाँ एकत्र की ह कि उन्होने एक दूसर देश के प्रति कितना जहर उगला । सन् १८९० से १९४९ के पचास वर्षों के बीच म जो कुछ लिखा गया है उसका हिसाब लगाया गया है । इसके अनुसार अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध की बात सबसे अधिक उन दिनो होती है जब महायुद्ध छिडा होता है । उसके बाद परस्पर का द्वेष बढता ही जाता है । बढ़ता ही जा रहा है ।[२]

१ Ithiel de Sola Pool in Symbols of Internationalism'—Published by Board of Trustees of Leland Stanford Junior University—See Symbols & Society—page 27 30 २ Pool—pages 60 63

आलोच्य पचास वर्षों मे यानी सन १८९० से सन १९४९ तक सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रास के पाँच प्रमुख पत्रो ने ३०० बार में से ११५ बार एक दूसरे के विरुद्ध मत प्रकट किया था। सयुक्त राज्य ब्रिटेन तथा जमनी के तीन राष्ट्रो के गुट मे परस्पर अविश्वास प्रकट करने की सूचक सख्या २०२ है। सयुक्त राज्य फ्रास तथा जमनी के तीन के गुट में यह सख्या २१६ है। सयुक्तराज्य फ्रास तथा ब्रिटेन के तीन राष्ट्रो के गुट मे विरोध सूचक सख्या १७६ है। ब्रिटेन फ्रास रूस के तीन गुट मे १७७ है तथा सयुक्त राज्य रूस फ्रास का तीन गुट अलग करके आँकडा देखे तो विरोध सूचक सख्या १८४ होगी। सब मिलाकर देखा जाय तो रूस तथा जमनी की परस्पर विद्वेष की भावना सूचक सख्या सबसे अधिक थी यानी २४२ से २४९ के बीच मे। द्वितीय महायुद्ध ने इस बात को साबित कर दिया। इस प्रकार ऊपर दिये गये अनुसूचक[१] अक प्रतीक से राजनीतिक विचार स्पष्ट प्रकट हो गये।

अको द्वारा राजनीतिक विद्वेष की भावना को आकने का प्रयत्न क्विसी राइट तथा क्लिगबग न भी किया है। क्लिगबग ने इस इतिहास सिद्ध बात को साबित कर दिया है कि फ्रास तथा जमनी मनोवैज्ञानिक रूप से एक दूसरे के शत्रु है।[२] इनका आर्थिक व्यापारिक सम्बन्ध भी टूटता जा रहा है। सन १८८० से लेकर १९५२ के आकडे से यह बात प्रकट हो जायेगी। सन १८८० म जमनी तथा फ्रास के समच आयात निर्यात के व्यापार म से एक दूसरे के साथ ९ ४ प्रतिशत व्यापार होता था। सन १९१२ म ९ १ प्रतिशत सन १९२८ मे ७ ३ प्रतिशत। सन १९३७ म महायुद्ध के पूव ५ ५ प्रतिशत तथा सन १९५२ म ६ ६ प्रतिशत यानी सन १८८० का एक तिहाई। इन दोनो दशा स जो विदेशी डाक जाती थी विदेशो के साथ पत्र व्यवहार होता था उसमे परस्पर की विदेशी डाक का प्रतिशत सन १८८८ मे १५ २ था। सन १९३७ मे ३ ७ प्रतिशत तथा सन १९५२ मे ४ ४ प्रतिशत था। इसके विपरीत एक दूसरे से अधिक निकट स्वेडन नार्वे डेनमाक तथा फिनलण्ड म सन १८८८ मे ३१ १ प्रतिशत तथा १९४९ म ३९ १ प्रतिशत विदेशी डाक थी। इससे भी अधिक औसत था आयरलैण्ड स इगलैण्ड स्काटलण्ड तथा वेल्स यानी यूनाइटेड किंगडम का आनेवाली विदेशी डाक का यानी आयरलण्ड की समूची विदेशी डाक का ७७ ५ प्रतिशत सन १९२८ म और ८३ ३ प्रतिशत सन १९४९ मे था।

१ Index

२ Frank L. Klingberg— Studies in the Measurements of the Relations among Sovereign States — Vol VI—pages 335 352—Pub 1941

अपनी-अपनी

जो देश विश्व बन्धुत्व की बहुत अधिक बात करते हैं तथा संसार को यह बतलाना चाहते हैं कि वे सबके कल्याण के लिए सबको मिलाकर काम करना चाहते हैं वे स्वयं अन्तरराष्ट्रीय प्रगति तथा चिन्ता से वस्तुतः अधिकतम मुख मोडते जा रहे हैं। इन सबको अपना घर सभालने की अधिक चिन्ता हो गयी है। यह चिन्ता यानी क्षुद्र राष्ट्रीय भावना इनमें बढती ही जा रही है। अन्तरराष्ट्रीय डाक संघ[१] के अनुसार सन् १९२८ में सोवियत रूस में यदि एक पत्र विदेश भेजा जाता था तो १७ पत्र देश के भीतर। सन १९३७ में फी एक विदेशी पत्र पर ९६ देश के भीतर भेजे गये पत्रों का औसत था। इसके बाद के आकड़े रूस ने नहीं प्रदान किये हैं। संयुक्त राज्य अमरिका में सन् १८८० में फी विदेशी पत्र पीछे २५ देशीय पत्र व्यवहार होता था। सन् १९२८ में २८ का औसत हो गया और सन १९५१ में एक विदेशी पत्र पीछे ७० देशी पत्र व्यवहार का औसत था।

अमरिका ने अपना विदेशी व्यापार भी काफी सिकोड लिया है। सन १८७९ में संयुक्त राज्य को विदेशी व्यापार से यदि एक डालर (पाँच रुपया) की आमदनी होती थी तो स्वदेशी घरेलू व्यापार से पाँच की आय थी। सन १९१३ में १ और ७ का औसत हो गया था। सन १९५१ में यदि विदेशी व्यापार से एक की आमदनी होती थी तो स्वदेशी (घरेलू) व्यापार से ११ का—यानी ग्यारह गुना अधिक आमदनी होती थी। विदेशी मामलों में उस देश की रुचि भी घटती जा रही है। अन्तरराष्ट्रीय प्रेस समिति[२] ने सन् १९५२ ५३ में एक गणना करके पता लगाया था कि वहाँ के (संयुक्त राज्य के) समाचार पत्रों में जो स्थानीय समाचार छपते थे उनका १।६ भाग पाठक पढते थे। राष्ट्रीय समाचार का १।७ भाग पाठक पढते थे पर अन्तरराष्ट्रीय समाचार का १।८ भाग ही पढा जाता था। विदेशी समाचारों में भी वही ज्यादातर पढे जाते थे जिनमें 'अमेरिकन या संयुक्त राज्य' का समाचार के शीर्षक में जिक्र हो। सन १९५३ में वहाँ पर एक मतगणना की गयी कि आप अमेरिका के समाचारपत्रों में और अधिक विदेशी संवाद चाहते हैं या नहीं तो केवल ८ प्रतिशत लोगों ने उत्तर भेजा कि हाँ और ७८ प्रतिशत ने उत्तर भेजा जी नहीं। और भी ज्वलंत प्रमाण लीजिए। सन १९३४ १९४९ के बीच में अमरिकन हाई स्कूलों में विदेशी भाषा की कक्षाओं में नाम लिखानेवाले विद्यार्थियों की संख्या में ५२ प्रतिशत की कमी हो गयी तथा अमेरिकन कालेजों में विदेशी भाषा पढनेवालों की संख्या सन १९३६ से १९५३ के बीच में ४३ प्रतिशत घट गयी थी।[३] ये

१ Universal Postal Union २ International Press Institute
३ Symbols and Society—page 35

आँकडे अमेरिकन या रूसी वतमान राजनीतिक गति के प्रतीक नही है ता क्या है ? अर्नेस्ट रेनन ने सही लिखा है कि राष्ट्रीय समुदाय नित्य प्रति के जीवन की मतगणना का परिणाम है ।

भावना तथा प्रतीक

राजनीतिक समाज अपनी भावना तथा कल्पनाओ को बनाता बिगाडता तथा उनसे उलझता चलता है । राजनीतिक अक प्रतीक से ऐसी भावनाएँ बनती बिगडती रहती है । उदाहरण के लिए यदि हम यह कहे कि सन् १९५३ मे प्रतिसहस्र जीवित पदा हानेवाले शिशुओ के पीछे वार्षिक शिशु मत्यु का औसत १२१ ५४ था सन १९५६ में १०५ २४ तथा सन १९५७ मे ९७ २९ और सन १९५८ म ९० से ९५ के बीच मे हो गया तो उसका यही अथ होगा कि प्रदेश मे शिशु रक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है तथा प्रदेश का स्वास्थ्य सुधरा है । यदि हम यह कह कि उत्तरप्रदेश मे सन् १९५४ ५५ मे २४९ पशु चिकित्सालय थे तथा मइ १९६० मे ३९९ तो पशु चिकित्सा मे राज्य की बढती हुई रुचि का यह प्रतीक है । यदि हम यह कह कि सन १९५५ ५६ म प्रदश मे हाथ करघे से १ ७ लाख गज वस्त्र तयार हुआ तथा माच १९६० म ५ १ लाख गज ता वह भी एक महत्त्वपूण प्रतीक होगा ।

ऐसे प्रतीका स एक राजनीतिक भावना बनती है जा तत्कालीन शासन क पक्ष मे होती है । राजनीतिक प्रतीको की भावना का इतना महत्त्व हाता है कि उनम कल्याण तथा अकल्याण दोना ही हो सकते ह । यदि यह भावना बन जाय कि राष्ट्र परिषद के अन्तरराष्ट्रीय बल से हमारी राष्ट्रीयता का काइ ठेस नही पहुचगी हमारे झण्डे की मर्यादा को सयुक्त राष्ट्रपरिषद के झण्डे के सामने अप्रतिभ नही होना पडेगा तो हम राष्ट्रपरिषद की ओर अधिक झुक सकते ह । पर आज राष्ट्रीयता की रक्षा का आतक ऐसा छाया हुआ है कि हम अन्तरराष्ट्रीयता से भयभीत ह । जिन चीजो से हमारा प्रत्यक्ष स्वाथ सिद्ध हाता है उनको ता हम अपना लते ह जसे अ तरराष्ट्रीय द्रव्य काष[२] सयुक्त राष्ट्रपरिषद की स्वास्थ्य शिक्षा समाज कल्याण तथा खाद्य सम्बन्धी शाखा । पर इसके आग बढने का हमारा साहस नही होता । यह कादरता ही यह भय ही आज विश्व बन्धुत्व के माग मे बहुत बडा राडा है काटा है ।

राजनीतिक कल्याण और प्रतीक

राजनीतिक सुधार तथा उद्धार के लिए राजनीतिक प्रतीक बहुत बडा काम कर

१ Monthly Bulletin of Statistics July 1960—U P Govt page 747
२ International Monetary Fund

सकते है । झण्डे पर बना हुआ प्रतीक देखकर लोग सोच सकते हैं कि हमारी आकाक्षाओ की यही अभिव्यक्ति है । इसी झण्डे के नीचे चलना चाहिए । वह ऐसी अभिव्यक्ति है अथवा नही यह दूसरी बात है । इसका अनुभव बाद में होगा । ऐसे प्रतीक से जिससे बहुत-से लोग आकर्षित हो अन्य बहुत से लोग भयभीत भी हो सकते ह तथा उससे भाग भी सकते ह । पाकिस्तान का एकदम मुसलिम प्रतीकी झण्डा देखकर हिदू भयभीत हो सकता है तथा यह सोच सकता है कि वहाँ पर उसका कोई स्थान नही है । भारत का तिरगा झण्डा देख कर हरएक धम तथा विचार का व्यक्ति सोच सकता है कि उसके नीचे सबको शरण मिलेगी, बराबर अधिकार मिलेगा । गलत राजनीतिक प्रतीको से कितने ही देश तथा राज्य छिन्न भिन्न हो गये तथा सोच-समझकर बनाये गये राजनीतिक प्रतीक जसे यूनियन जक के नीचे युगो तक परस्पर युद्ध करनेवाले स्काटलण्ड तथा इग्लण्ड प्रेम तथा सुख के साथ रह सकते ह और रहते ह ।

यूरोप के इतिहास मे धार्मिक तथा राजनीतिक युद्ध की कहानी बडी करुण है । सक्डा साल तक धमगुरु तथा राजा मे प्रभुता के लिए सघष चलता रहा । लाखो के प्राण गये । घोर अशाति छायी रही । राष्ट्र दो प्रतीका के बीच मे पिसता रहा—धम प्रतीक (पोप का झण्डा) तथा राष्ट्र प्रतीक । राजसत्ता ने धमसत्ता पर विजय प्राप्त की । राज्य की पताका ऊचे उठी । एक बार राज्य की दढता स्थापित होने के बाद राज्य के झण्डे की गुरता बढी । बिस्माक ने जमनी की बिखरी शक्तियो को एक मे मिला दिया । गरिबाल्डी तथा मेजिनी ने इटली को एकच्छत्र राज्य बना दिया ।

राजनीतिक प्रतीक का मानव के उत्थान तथा पतन के साथ घनिष्ठ सम्बध है । इस प्रतीक की मर्यादा न समझना गहरी भूल होगी ।

समाज तथा प्रतीक

मानसिक आयु

पिछले अध्याय मे हमने मन के दो भेद बतलाये ह—दो अग बतलाय ह । एक तो इच्छा करनेवाला दूसरा ज्ञान प्राप्त करनेवाला । इच्छा तथा ज्ञान क सयोग स क्रिया की उत्पत्ति होती है । मन के दो स्वरूप ह । एक है ज्ञात मन तथा दूसरा है अज्ञात मन । इसी को चेतन या अचेतन मन भी कहत ह । मन स ही बुद्धि उत्पन्न होती है । जिस व्यक्ति तथा समाज की बुद्धि का जितना विकास होगा वह उतना ही प्रतीकात्मक काय करेगा । मनोविज्ञान ने बुद्धि का माप दण्ड बना लिया है । बुद्धि मात्रा[1] का अनुसूचक चिह्न १ ० मान लेने स व्यक्ति की तीव्र या मन्द बुद्धि का पता चलता है । बुद्धि मात्रा को जानने के लिए एक विधि का पालन करना पडता ह । हर एक व्यक्ति की मानसिक उम्र (वय) तथा पदायशी उम्र म अन्तर होता है । हमारे यहा तो कहते ह कि पेट म दाढ़ा है —यानी यह बच्चा बचपन मे ही बुजुर्गों के समान बुद्धिमान है । एस भी होते है कि बूढ़े हो गय पर निरे मख बने रहते ह । इसलिए बुद्धि मात्रा प्राप्त करने क लिए मानसिक वय का वास्तविक वय से भाग करके १०० गुना कर दिया जाता है—

$$\frac{\text{मानसिक वय}^{2}}{\text{वास्तविक वय}^{3}} \times १०० = \text{बुद्धिमान}$$

जब यह मात्रा १०० से ऊपर होती है तो व्यक्ति को प्रखर बुद्धि तथा १०० से नीचे मन्द बुद्धि का समझते ह । १ ० के आस पास को साधारण बुद्धि का समझते ह । यह मात्रा १५ ३० तक जड[4] बुद्धि की ४० से ७० तक निबल बुद्धि की ७०–९० तक मन्द बुद्धि[5] की समझी जाती हे । इसी को बुद्धि भागफल[6] भी कहते ह । साधारण बुद्धि का मनुष्य समाज क नियम परम्परा प्रणाली के अनुकल व्यवहार करता है तथा उसमे सवग तथा भावना का सामान्य रूप ही रहता है । वह जिस परिस्थिति मे रहता है उसम निभाये जाता है ।

१ I Q
२ Mental Age
३ Chronological Age
४ Idiot
५ Moron
६ I Q

वह समायोजित रहता है। तीव्र बुद्धि का व्यक्ति अति सवेगी[1] तथा उत्तेजित हो जाता है। जरा-सी बात का उस पर असर हो जाता है। उससे किसी ने मजाक में भी कोई बात कह दी तो उसे चुभ जाती है। सामान्य बुद्धि के लोग सामाजिक बुद्धि अधिक रखते हैं। सामाजिक बुद्धि तथा सामान्य बुद्धि का परस्पर सम्बन्ध है। सामान्य बुद्धि के लोगो का व्यवहार तथा लोकाचार सामान्य होता है पर मन्द बुद्धि का व्यवहार विकृत[2] हो जाता है। जिस व्यक्ति मे सामाजिक बुद्धि अधिक होगी वह बहिर्मुखी हो जाता है, यानी वह अपनी अपने परिवार की सेवा से आगे बढकर समाज की सेवा की ओर भी प्रवृत्त होता है। मन्दबुद्धि व्यक्ति मे प्रेरणा तथा सवेग का अभाव हो जाता है। उसमे मानसिक हीनता आ जाती है। किसी समाज के व्यवहार तथा कार्य को देखकर उसके अधिकाश व्यक्तियो की बुद्धि मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक प्रगति उस समाज की **बुद्धि मात्रा** का **प्रतीक** हुई।

मन के रोग

मन कोई स्थिर वस्तु नही है। श्रीमदभगवदगीता मे अर्जुन ने कहा है कि चञ्चलस्तु मन कृष्ण —हे कृष्ण मन चञ्चल है। उसकी चचलता के ही कारण उसमें सवेगात्मक हलचल बराबर होती रहती है। उसकी भावना इच्छा ज्ञान आदि मे बराबर उथल पुथल होती रहती है।[3] ऐसी ही हलचल से उसे मनोदौबल्य[4] तथा विक्षेप[5] का रोग हो जाता है। मानसोपचार के विज्ञान के जन्मदाता फ्रञ्च विद्वान डा० पीनेल[6] ने मन के इन रोगो को दैवी प्रकोप नही बल्कि सवेगात्मक प्रकोप सिद्ध किया था। अब हम यह समझ गये है कि मनोदौबल्य का रोगी अपने दोष तथा अपनी दुबलताओ को समझता है पर अपने ऊपर नियत्रण नही रख सकता। जसे कोई व्यक्ति यह भली प्रकार समझता हो कि चोरी करना बुरी बात है पर चोरी करने की अपनी आदत से मजबूर हो जाता है। किन्तु विक्षेप के रोगी को समय स्थान तथा अपने व्यक्तित्व का भी ज्ञान नही रहता। विक्षेप के रोग से देहजात[7] तथा मनोजात[8] बीमारियाँ पैदा हो जाती है। कल्पनाग्रह हठप्रवृत्ति भीति (डर) चिन्ता तथा उन्माद[9] इत्यादि पैदा हो जाते है।

१ Emotional Sensitivity २ Abnormal
३ Disturbances in Emotional Aspect of Life
४ Psychoneuroses ५ Psychoses
६ जन्म सन् १७४५—मृत्यु सन् १८२६।
७ Organic ८ Functional
९ Obsession Compulsion Phobia, Anxiety Hysteria etc

समाज मे इन रागा की वृद्धि उसके मानसिक ह्रास का प्रतीक होती है। सभ्य समाज ने अब इस सम्बन्ध मे काफी सावधानी बतना शुरू किया है। इसलिए कि अब विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि बहुत स शारीरिक रोग जसे उदर विकार या हृदय का रोग मानसिक सवेगा का परिणाम ह। मन का प्रभाव शरीर के अग अग पर तथा समाज के अग अग पर पडता है। समाज की प्रचलित व्यवस्था का मन पर बडा प्रभाव पडता है। मान लीजिए कि समाज म बडी बेकारी है। इस बेकारी से नवयुवका मे जा निराशा उत्पन्न होगी उससे उनमे मानसिक राग बढेगा। इस प्रकार व्यापक रोग या प्रचलित आर्थिक व्यवस्था समाज की वस्तु स्थिति का आवश्यक **प्रतीक** है। इन प्रतीको के द्वारा समाज के प्राकृतिक वातावरण दहिक सीमाओ' सामाजिक वातावरण तथा मानसिक अवस्था की जानकारी हा जाती है।

ज्ञात तथा अज्ञात मन

पिछले अध्यायाा म विशेषकर स्वप्न के अध्याय म हमने मन की दा अवस्थाओा पर प्रकाश डाला था। एक ता मन का वह भाग है जो जाग्रत अवस्था म क्रियाशील रहता है वातावरण तथा परिस्थिति से प्रेरित होकर उनके प्रभाव से काम करता है—यानी सोचता है विचार करता है ऐसी परिस्थितिया का देखकर जा इच्छा उत्पन्न हाती है उस पर विचार के अनुसार नान के अनुसार काय करने का आदश दता है। किन्तु इसको असली तथा मुख्य मन नही समझना चाहिए। सम्पूण मन का तीन चौथाई भाग अज्ञात या अचेतन मन है। यह एक अनुभवात्मक सस्कारात्मक मानसिक शक्ति है। यही शक्ति हमारी शारीरिक और मानसिक चेष्टात्मक बाधात्मक और सवेगात्मक[२] क्रियाओ का सञ्चालन करती है। मन के इस भाग का प्रभाव हमार व्यवहार और विचारा पर पराक्ष रूप से सदव पडता रहता है। इसी पर हमारे व्यक्तित्व का विकास आश्रित है। जिस व्यक्ति क अज्ञात मन मे विराधी भावो के द्वन्द्व से जितनी ही अधिक भावना ग्रथियाँ पड जाती ह उतना ही जटिल और सघषमय उसका जीवन हा जाता है।[३]

अज्ञात मन गतिशील है। इसमे सदा विरोधी इच्छाओ तथा विचारो का सघष चलता रहता है। हमका उस सघष की चेतना नही होती। जब बाह्य जगत् का मन

१ Bio'ogical Limitations
२ Cognative Cognitive and Emotive
३ डॉ० पद्मा अग्रवाल— 'विकृत मनोविज्ञान'', प्रका० मनोविज्ञान प्रकाशन १६, २३, गोविन्दपुरा, चौक, बाराणसी। सन् १९५९, पृष्ठ, ५१।

सो जाता है, जब बाह्य जगत् का हमे ज्ञान नही रहता हम स्वप्न देखते ह और समूचा व्यवहार करते है। कोई-न कोई अव्यक्त शक्ति यह सब कराती अवश्य है। ज्ञात तथा अज्ञात मन में एक बडा भारी अन्तर यह है कि ज्ञात मन वास्तविक परिस्थिति इत्यादि के अनुसार विचार करके काम करता है पर अज्ञात मन ऐन्द्रिक वासना तृप्ति सिद्धान्त' पर चलता है। वह सामाजिक नियमा से बधा नही है। अज्ञात मन पर सस्कार की छाप है अनुभूतियो की छाप है, ज्ञात मन में जिन बातो को तकवश, भयवश सामाजिक प्रतिबन्धवश दबा दिया या छोड दिया जाता है अज्ञात मन उसे सचित करके रखता है। यद्यपि ज्ञात और अज्ञात मन के विचारा में सामजस्य नही है तथापि ज्ञात मन को अज्ञात मन से अपने विचार विनिमय में बडी सहायता मिलती है। किसी ने यदि कभी एक कुत्ते का मार दिया और वह काटने दौडा तो उस समय ज्ञात मन ने शरीर को आदेश दिया कि भाग जाओ। वह व्यक्ति कुत्ते से बचकर भाग गया। पर दुबारा कुत्ते को देखकर जब मारने की इच्छा हुई ता उसे मारन के लिए सब कुछ परिस्थिति अनुकूल होने पर भी अज्ञात मन की अनुभूति तथा स्मति से कुत्ते के काटने की घटना का बाध हो जाता है और तब ज्ञात मन उस विचार को छोड देता है। पर ज्ञात मन की इस अतृप्त इच्छा को अज्ञात मन बटारकर रख लेता है और सज्ञाहीन अथवा निद्रा की अवस्था में स्वप्न म किसी चूहा या बिल्ली को ही मारकर अपनी वासना की तृप्ति करा लेता है। यह चूहा या बिल्ली वास्तव म उस कुत्ते का प्रतीक है। स्वप्न मे देखी गयी जो बहुत सी बातें निराधार कल्पना प्रतीत होती ह उनका वास्तविक आधार ज्ञात मन की अतृप्त इच्छा मे मिलेगा। काम शक्ति[1] हो या बाह्य वस्तु से प्रेम मन का अज्ञात भाग उनका सञ्चालन कर रहा है।

मानसिक संघर्ष का परिणाम

फ्रायड हो अथवा उनके मत के विरोधी डा० जुग सभी ने यह स्वीकार किया है कि ज्ञात मन मे इच्छा की उत्पत्ति ज्ञान फिर क्रिया का काय अनवरत रूप से चल रहा है। फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार मानसिक रोगो का प्रमुख कारण अन्तर का सघष और दमन है। जब कभी ज्ञात मन म सघष उठता है वह तक वितक द्वारा शान्त कर लिया जाता है। इसके लिए मस्तिष्क में कुछ आवश्यक सूझ सुझाव आ ही जाते ह क्याकि सघष के विषय यानी वस्तु का हम बोध होता है। उसकी लाभ हानि पर हम विचार कर लेते ह। परन्तु अज्ञात मन का सघष भयकर होता है। हमे चेतना नही होती कि हम क्या चाहते है। इच्छा की वस्तु प्रकृति का ज्ञान ही नही होता। विश्लेषण करने

१ Libido

पर इतना जान पडा है कि यह हमारी प्रकृति–मूल इच्छा और आदश का द्वन्द्व है । इस द्वन्द्व से किसी के भी जीवन की जय पराजय हो सकती है । कभी अज्ञात मन की प्रकृत इच्छाएँ विजय पाती ह कभी वातावरण से बना हुआ जीवन आदश । प्राय प्रकृत इच्छाएँ ही पराजित होती ह और उनका दमन कर दिया जाता है । किन्तु यह प्रत्यक्ष सत्य है कि किसी भी इच्छा को दबाने के लिए उसका दमन यथष्ट नही होता । दमन से इच्छाए नष्ट नही होती । उलट अभिव्यक्ति के लिए और भी उत्सुक तथा सबल हो जाती ह । इसके अतिरिक्त दमन का यह भी परिणाम होता है कि मनाजगत म अनेक भावना ग्रथियाँ[१] बन जाती ह जो मनाविच्छेद[२] का कारण बनती ह और अन्ततोगत्वा अनेक मानसिक रोग भी हो जाते ह । [३]

मन मे सघष तथा दमन का प्रतीकात्मक रूप बन जाता है जिसको समझने की जरूरत होती है । उसी प्रकार समाज के मानसिक रोग के प्रतीक से पूरे समाज का ही अध्ययन हो जाता है ।

मन की वास्तविकता की बात

घूम फिरकर सब बात मन पर ही आती है । अपने इस ग्रथ के हर अध्याय म हमको मन पर ही विवेचन करना पडा है । उसकी वास्तविकता को समझाना पडा है ताकि मन से उत्पन्न प्रतीक समझ मे आ सके । अपने निजी सुधार के लिए मन की गति को ठीक रखना है । अपने समाज के सुसगठन के लिए सबके मन को एक समान बनाना है । वद वाक्य है ––

सगच्छध्व सवदध्व स वो मनासि जानताम्

एक साथ मिलकर चलो सवाद करो तुम्हारे मन एक ज्ञानवाले हो ।

इस मन को ही अपने म सब कुछ शक्ति तथा ज्ञान का भण्डार भरना है । तभी हम अपना कल्याण कर सकते ह । वेदवाक्य है––

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यऽसि वीय मयि धेहि ।
बलमसि बल मयि धेहि, ओजोऽसि ओजो मयि धेहि ।।

भगवन तू तेज है मेरे अन्दर तेज स्थापित कर । तू जीवनी शक्ति है मेरे अन्दर यह शक्ति स्थापित कर । तू बल है मुझे बल दे । तू ओज है मुझे ओज दे ।'

१ Mental Complexes २ Mental di sociations
३ वही, डॉ० पद्मा अग्रवाल की पुस्तक— 'विकृत मनोविज्ञान"—पृष्ठ ११८ ।

ये सब चीजे मेरे अन्दर स्थापित होनी है। मेरी आत्मा मे स्थापित होनी है । इनका भण्डार मुझे अपने मन मे भरना है। यह 'मैं'–मेरा मन है।

किन्तु मै क्या हू ? म उसी परमात्मा का स्वरूप हू। मनुष्य ईश्वर का प्रतीक है। परमात्मा के अतिरिक्त ब्रह्म के अतिरिक्त और कही कुछ भी नही है। ईशोपनिषद म शुरू मे ही कह दिया है कि

सब खल्विदं ब्रह्म

यह सारा जगत् ईश्वर स आच्छादित है। छान्दोग्य उपनिषद् (३ १४ १) ने लिखा है कि निश्चय यह सब ब्रह्म है उससे उत्पन्न होता है उसमे लीन होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (६ ११) कहती है कि वह एक देव सब भूतो मे छिपा है सव व्यापी है। पश्चिमी विद्वान स्पिनोजा का भी यही मत है। मुडक उपनिषद (३ १ १) के अनुसार द्वासुपर्णा —एक ही वृक्ष यानी प्राकृत जगत पर दो पक्षी—जीव और परमात्मा बैठे ह। एक पक्षी वृक्ष के फल को खाता है यानी भोगता है और दूसरा खाता नही केवल देखता है। यह दूसरा पक्षी चेतन आत्मा है—ब्रह्म है—साक्षी है। मनुष्य का जीव ही सब कुछ है। पर उस मनुष्य म तीन चीजे ह। ऋषि आरुणि ने श्वेत केतु स कहा था कि मनुष्य मे मन अन्नमय है प्राण जलमय है वाणी तेजोमय है। मन ही मनुष्य का राजा है। इसी का मनुष्य का सञ्चालन करना है। मनुष्य म चेतना धारा के रूप म निरन्तर बहती रहती है। यह सदा आगे जाती है। कभी पीछे नही लौटना कोई अवस्था किसी बीती हुई अवस्था की नकल नही होती। कोई और भेद न हो ता इतना भेद ता होता ही है कि इनम एक वर्तमान अनुभव है और दूसरी किसी बीते हुए अनुभव की स्मृति। वर्तमान म हम बाहरी पदार्थों के सम्पर्क में आते ह। स्मृति म वह सम्पर्क विद्यमान नही होता। पहले प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। दूसरे प्रकार के ज्ञान मे उपलब्धो के चित्र या बिम्ब हमारे सम्मुख आते ह। जागरण मे ये दोनो बाध मिले जुले होते ह। हम पदार्थो को देखते ह उन्ह छूते ह उसके साथ ही अनेक अनुभवो को स्मरण भी करते ह। चित्र की अपेक्षा प्रत्यक्ष का प्रभाव अधिक तीव्र होता है। हमारे जीवन का अच्छा काल निद्रा मे गुजरता है। निद्राकाल म हम स्वप्न भी देखते है। स्वप्न अवस्था मे बाह्य वस्तुओ से सम्पर्क तो टूट जाता है परन्तु चित्र विद्यमान रहते ह। प्रत्यक्षीकरण के अभाव म चित्रो को तीव्रतम रूप म प्रकट होने का अवसर मिलता है। हम चित्र और प्रत्यक्ष म भेद नही कर सकते। [१]

किन्तु अनुभव की अनुभूति की तीन अवस्थाएँ होती है। प्रश्नोपनिषद मे गार्ग्य

१ डॉ० दीवानचन्द्र–"दर्शनसग्रह"—सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, १९५८—पृष्ठ १७—१८।

ने पिप्पलाद से पूछा कि कौन देव स्वप्ना को देखता है जिसे सुख अनुभव होता है ? और जिसमे ये सब प्रतिष्ठित ह ? (४१) लिप्पलाद ने उत्तर दिया—

स्वप्न अवस्था मे यह देव अपनी महिमा को अनुभव करता है। जो कुछ देखा है, उसे फिर देखता है। जो सुना है उसे फिर सुनता है जो कुछ देशो मे और दिशाओ मे अनुभव किया है उसे फिर अनुभव करता है। दृष्ट के साथ अदृष्ट को भी देखता है सुने हुए के अतिरिक्त जो नही सुना है उसे भी सुनता है। अनुभूत के साथ उसे भी अनुभव करता है जो पहले नही अनुभव किया। सत को देखता है और असत को भी देखता है।

किन्तु प्राण कभी नही सोते। जागरण मे इद्रियाँ बाह्य जगत से हमारा सम्पक बनाये रखती ह। इद्रिया मन के सयोग मे ही काम करती ह। परतु मन उनके सयोग के बिना भी काम कर सकता है। निद्रा मे इद्रिया सो जाती ह। मन नही सोता। प्रत्यक्षीकरण तो नही होता परतु पिछले अनुभवा के चित्र स्वप्न मे प्रस्तुत होते जाते ह। स्वप्न मे कभी स्मृति काम करती है। मन सत को भी देखता है और असत को भी देखता है।[१]

निद्रित अवस्था मे स्वप्न का होना अनिवाय नही ह। कुछ लोग स्वप्न रहित निद्रा के बाद कहते ह— खूब आनद स सोये। उनके शब्दा से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे उस आनद की अवस्था का स्मरण है। परन्तु यह ठीक नही मालूम होता कि उस आनद की अवस्था का स्मरण है। वास्तव म व इतना ही कहते ह कि उन्हे उस समय की बाबत कुछ याद नही है। इस प्रश्न का दाशनिक पहलू है। चेतना मन या आत्मा का चिह्न है। जसे कोई प्राकृतिक पदाथ विस्तार विहीन नही हो सकता उसी तरह कोई मन चेतना विहीन नही हो सकता।[२]

बात फिर मन की ग्रहण शक्ति की रही। सोने या जागने से कुछ अतर नही पडता। योगी लोग देखते ह और सुनते ह—उन बातो को भी जो दूसरो के लिए विद्यमान नही होती। इसका अथ यही है कि उनकी ग्रहण शक्ति अति तीव्र हो जाती है।[३] मन की यह ग्रहण शक्ति मनुष्य की तीनो अवस्थाओ म बनी रहती है— जाग्रत निद्रित तथा सुषुप्ति की अवस्था। जाग्रत अवस्था मे आत्मा या मन बहिष्प्रज्ञ रहता है। बाहरी चीजा से प्रत्यक्ष सम्बध रहता है। आरुणि ने श्वेतकेतु से कहा था कि 'सारी प्रजाए (जो कुछ दृष्ट जगत मे है) सत पर आश्रित ह और सत म प्रतिष्ठित ह। प्रथम सत् म तेज उत्पन्न हुआ तेज से जल और जल से अन्न उत्पन्न हुआ। मन ही अन्नमय है। प्राण जल

१ वही, पृष्ठ १९। २ वही पृष्ठ १९।
३ वही पृष्ठ, ९८—'अभ्यास उसके तन्तुजाल और मस्तिष्क को अति सूक्ष्मग्राही बना देता है।"

मय है। वाणी तेजोमय है। अतएव वाक की सत्ता मन के ऊपर हुई। मन का सहारा वाक है। प्राण है। निद्रा में स्वप्न अवस्था सदा बनी रहती है। पिप्पलाद के अनुसार जागरण तथा स्वप्न अवस्था के अलावा तीसरी अवस्था सुषुप्ति की है। इसमें चेतना बनी रहती है, परन्तु बाह्य पदार्थों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रहता। माण्डक्य उपनिषद ने एक चौथी अवस्था बतलायी है। उसके अनुसार—

चौथी अवस्था मे न आन्तरिक अवस्थाओ का ज्ञान रहता है न बाह्य वस्तुओ का। यह अवस्था सुषुप्ति की ज्ञानमय अवस्था भी नही। यह अलक्ष्य अद्वैत अचिन्त्य रूप है।

इस चौथी अवस्था म मन मर जाता है। यह अवस्था समाधि की होती है, जो योगी जनो को ही सुलभ है। मन की गति पहले केवल जागरण निद्रा-सुषुप्ति अवस्था तक ही है। वद्यक ने सुषुप्ति अवस्था का जो वर्णन किया है वह स्वप्न के अध्याय में लिख आये ह। मन की इन तीनो अवस्थाओ को हम कसे प्रकट करे—कसे पहचाने कैसे समझें? इसके लिए एकमात्र उपाय **प्रतीक** है या कसिरेर के शब्दो में 'प्रतीकात्मक रूप ह। कसिरेर ने मन के विचित्र अनुभवो तथा गतियो के कारण ही मनुष्य को प्रतीकात्मक पशु[१] कहा था।

सकेत का त्रिकोण

मन की ऊपर लिखी तीन अवस्थाओ के द्वारा ही हम वास्तव मे जो कुछ इस जगत म है उसे जान या पहचान सकते ह। हम जो कुछ जानते या पहचानते ह और उससे हमारे मन म जो विचार उठते ह उसको व्यक्त करने का साधन ही प्रतीक है।[२] इस व्यक्त करने के साधन को लेखक मारिस ने चिह्न माना है। मॉरिस के अनुसार चिह्न अथवा सकेत उस वस्तु का नाम है जो ऐसे काय के लिए प्रेरित करता है जिसकी उस समय प्रेरणा ही होती।[३] जसे हम कोई बात कहने जा रहे हो पर दूसरा आँख से इशारा करके मना कर दे। किन्तु यदि यह कहा जाय कि जो सकेत है वह सकेत देखनेवाले के मन स भिन्न है तो यह भी ठीक नही है।[४] सकेत को समझनेवाले के मन में यदि साके-

१ 'Animal symbolicum"

२ Alfred North Whitehead– Symbolism its Meaning and Effect—'Macmillan & Co London, 1927 Chapt I

३ Charles Morris—'Signs Language and Behaviour'—Prentice Hall I New York, 1946—page 365

४ C J Ducasse in two articles on Philosophy and Phenomenological Research"—Vol III 1942—page 43

तिक भाषा की काई जानकारी नही है तो वह उसको समझगा भी नही । पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ भाग म हाँ का अर्थ स्वीकृति तथा हूँ अ का अथ अस्वीकृति है । यदि हम हू अ' का नही समझते तो एेस सकेत को हम पकड न सकेग । इसी लिए यह कहा जाता है कि सकेत की भाषा सावभौम नही हो सकती या नही हाती ।

प्रतीक हो या सकेत--और दोनो मे अ तर है--दोनो की एक खास बात ध्यान म रखनी चाहिए । दाशनिक बगमन के अनुसार सकेत अथवा प्रतीक त्रिकोणात्मक होते ह--

एक ता है समझनवाला सकत या प्रतीक का रूप । दूसरा हुआ इनक द्वारा निर्दिष्ट वस्तु और तीसरा हुआ वह जा इन दाना बाना का समझता या पहचानना है । बिना किसी सकेत या प्रतीक की व्याख्या किय निर्दिष्ट पदाथ को बुद्धि म कैसे लाया जायगा ? इसी लिए प्रतीक प्रन्त प्ररणा का ही विषय न बनकर ज्ञान का विषय हो जाता है । जितना जिसका बोध होगा जितनी जिसकी जानकारी होगी उसी के हिसाब मे प्रतीक न कवल जाना जायगा बल्कि बनाया भी जायगा । मनोवैज्ञानिक विलियम जास ने लिखा है कि हमारा ज्ञान दो प्रकार का हाता है —एक तो किसी चीज के बारे मे जानकारी का हाना और दूसर किसी चीज के बारे म जानकारी का हासिल करना । जहाँ अध विश्वास या अज्ञान होता है वहाँ इस प्रकार की जानकारी हासिल नही की जाती । इसलिए ज्ञान का क्षेत्र मन के क्षत्र पर निभर करगा । हमने अपनी दुनिया जितनी बना रखी है उसके भीतर ही यदि हम रहते ह तो हमारे ज्ञान की उतनी ही सीमा बनी रहेगी । यदि हम अपने ज्ञान को विस्तत करग ता हमारी दुनिया भी उतनी ही बडी होती चली जायगी ।[१] किन्तु ज्ञान के विस्तार म भी एक बाधा है ।

ससार म एेसी काई चीज नही है जो किसी ओर **इंगित** न करती हो । एक वस्तु दूसरी वस्तु की ओर इशारा करती नजर आती है । किसी वक्ष की ओर देखा । पत्ते से

१ William Jones— Principles of Psychology'—Henry Holt & Co New York 1890 Vol I Page 221

ध्यान फूल की ओर फूल से फल की ओर फल से उसके स्वाद की ओर—फिर स्वाद से उसकी इच्छा की ओर इच्छा से सकल्प सकल्प से प्रेरणा प्रेरणा से काय काय म सफलता या फिर विफलता—इत्यादि एक पर एक वस्तु इगित होती रहती है। हमारा नित्यप्रति का जीवन इसी प्रकार एक दूसरी स सम्बद्ध वस्तुओ मे लगा लिपटा चल रहा है। इस सम्बध की हम जितनी अधिक पहचान प्राप्त कर लेते ह हमारा सामाजिक जीवन उतना ही अधिक सुसम्बद्ध होता है। जो लाग आत्मा परमात्मा अ तर्ज्ञान आदि की बात नही मानते वे ऊपर लिखी वस्तुओ की वस्तु से सम्बद्धता के आधार पर यह मानते ह कि एक आदमी दूसर के मन की बात घटनाओ तथा सकेत या प्रतीको के माध्यम से जान जाता है। हुसर[१] ऐसे मनोवज्ञानिक के अनुसार दूसरे की मन की बात आदमी तभी समझ सकता है जब वह प्रतीकात्मक भाषा को समझता हो। उन्होने उदाहरण देकर यह साबित किया है कि बाहर स जो कुछ दिखाई देता है उससे बात स्पष्ट नही होती। वह ता एक प्रतीक है जिसके भीतरी अथ म पैठना होगा। यह भीतरी अथ ही उस वस्तु का प्रतीक का आध्यात्मिक अथ है। हम एक पुस्तक देखते ह। उसकी आकृति या जा कुछ उसम लिखा है वह दूर स देखन म एक बाह्य पदाथ है। म देख रहा हू कि पुस्तक है। मेरी मज पर दायी ओर रखी हुई है। पर ज्यो ही मने उसे खोलकर पढना शुरू किया म उसकी ओर एक बाहरी पदाथ के रूप म आकषण से उठकर उसके भीतरी अथ म पहुच गया और तब उस पुस्तक का समूचा रूप ही मेरे लिए बदल गया। यही चीज हर वस्तु के लिए लागू होती है। सामने बहुत से मकान बने ह। पर जब हम किसी मकान क भीतर जाते ह उसके भीतर रहनवाले से हमारा परिचय होता है उस समय उस मकान का महत्त्व ही बदल जाता है। इस घर मे गोस्वामी तुलसीदास जी रहते थे—यह कहते ही उस घर को देखते ही हमारा मन रामायण तथा राम की कथा तक पहुच जाता है। इसी प्रकार शब्दमात्र का कोइ प्रयोजन नही होता उनके अथ मे शब्दो की साथकता है। एक दूसरे का अथ अथवा आशय समझने से ही सामुदायिक भावना पैदा होती है और वसी ही भावना से समाज का सगठन दढ होता है। एक दूसरे का आशय समझना तथा उसके प्रति सहानुभति का होना ही मन का मिलना कहा जाता है।

१ Hussei —quoted by Alfred Schutz in Symbols and Society'— Page—161 — The physical object' the other s body , events occurring on this body and his bodily move ments are apprehended as expressing the other s ' Spiritual I' towards whose motivati onal meaning context I am directed '

जिस समाज मे अधिक से अधिक लोगो का मन मिला रहता है वही बलवान होता है और उसका बल उसके प्रतीकात्मक रूप के कारण होता है । जहाँ सामाजिक प्रतीक अधिकतम उन्नत होग वह अधिकतम सभ्य समाज होगा । यह प्रश्न दूसरा है कि आज के समाज के प्रतीक अधिक उन्नत ह या सभ्यता के आदिकाल के । यह बात तो वसी समस्यामय है जैसा कि यह निणय करना कि आज का व्यक्ति अधिक सभ्य है या प्राकृतिक जीवन बितानेवाला आदिकाल का व्यक्ति ।

हर एक का सीमित ससार

किन्तु मनुष्य चाहे किसी युग का हो किसी सभ्यता का हो हर एक का ससार उसके चारो ओर की सीमा तथा वातावरण म ही केन्द्रित रहता है । ऐसा हो सकता है कि ऐसी अपनी अपनी दुनिया का क्षेत्र एक दूसरे के क्षेत्र म पडता हो । पिता तथा पुत्र का अपना अलग ससार होते हुए भी क्षेत्र एक हो सकता है पर क्षेत्र एक होने पर भी दृष्टिकोण म भेद हो सकता है । ससार की स्थिरता समाज की दृढता इसी बात पर निभर करती है कि अधिकतम लोगो का क्षेत्र भी एक ही हो और दृष्टिकोण भी एक ही हो । परिवार की प्रगति के लिए आवश्यक है कि पिता पुत्र का दृष्टिकोण एक हो । समाज की प्रगति के लिए भी यही आवश्यक है । जितना ही अधिक सहचार तथा सहयोग एक दूसरे के काय मे होगा उतनी ही अधिक सभ्यता तथा सामाजिक मर्यादा की वृद्धि होगी । जो लोग ऐसे सहयोग तथा सहकारिता के प्रतिकूल काम करेगे वे समाज म दोषी होगे । म के स्थान पर हम की भावना हर एक समाज मे बढनी ही चाहिए । मेरे हित की बात के स्थान पर 'हमारे हित की बात सोचनी चाहिए । आज समाज मे मेरे' हित के विरुद्ध काम करना उतना बडा अपराध नहा है जितना हमारे हित के विरुद्ध काम करना । मेरे मकान के सामने कूडा करकट फेक दना काननन अपराध न हो पर समाज का आदश है कि जो व्यक्ति एक के मकान के सामने गन्दगी कर सकता है वह सबके मकान के सामने कर सकता है । कूडा फेकने के लिए समाज ने एक स्थान निश्चित कर रखा है । जो उस स्थान के अलावा दूसरे स्थानो पर फेकता है वह बीमारी फलाने का काम करता है । अतएव यह बात हमारे हित के विरुद्ध है इसलिए अपराध है । हर एक का अलग ससार उसके मन के भीतर है पर बाह्य जगत मे अपना ससार दूसरे के साथ मिला देना होगा । तभी समाज चल सकेगा । समाज अपना हित किन बातो मे समझता है इसका प्रकट प्रतीक उस समय का कानून है विधान है । सामाजिक विचारधाराएँ भिन्न होती ह इसका निर्देशक तो भिन्न देश के भिन्न कानन होते ह । कही पर बलात्कार करने पर प्राणदण्ड होता है कही पर उस पर सजा भी नही होती । कही पर चोरी के लिए हाथ

काट लिया जाता है। कहीपर साधारण कद की सज़ा होती है। किन्तु समाजो के अधिक तम समान नियमो को मिलाकर उनका 'अधिकतम सहयोग तथा सहचार करानेवाली संस्था सयुक्त राष्ट्रसघ, सबके अपने अपने ससार को एक ससार बनाने का प्रतीक भारतीय सिद्धा त कि विश्वब धु' बनो भी मनुष्य की सावभौमिक लौकिक, पारलौकिक एकता तथा आध्यात्मिकता का प्रतीक है।

संकेतों के तीन रूप

कि तु प्रतीको की इस दुनिया में प्रतीको को समझना भी चाहिए। उनकी व्याख्या तथा उनका अथ भी जानना चाहिए तभी विश्व में एकता स्थापित हो सकेगी। प्रतीक का यदि सकेत के रूप मे मान ल तो ब्रूनो स्नेल नामक विद्वान के कथनानुसार[१] सकेत तीन प्रकार के होते ह। पहली श्रेणी मे तो निश्चित उद्देश्यात्मक काय होते हैं जसे सिर हिलाना इशारा करना इगित करना उगली उठाना या मुह स बोलना। दूसरी श्रेणी मे भीतरी अनुभव या मन की बात को अपनी आकृति से व्यक्त करते ह। ऐसे काय मे निश्चयात्मक काय नही होता। वसा करने की नीयत होती है। जसे आँख मटकाना जीभ निकाल देना या आख ब द कर लेना। कोई चीज देखने म बुरी लगी। आख ब द कर ली। तीसरी श्रेणी मे नकल करते ह काय करनेवाले दूसरे पात्र का रूप हम कुछ समय के लिए स्वय अपना लेते ह। जसे यह बतलाने के लिए कि अमुक व्यक्ति काना है हम अपनी एक आख ब द कर ल या रगमच पर हम अकबर जहागीर प्रताप, शिवाजी आदि का अभिनय कर। कि तु दूसरी तथा तीसरी श्रेणी की चीज ही वास्तव मे सकेत है प्रतीक नही। इनके द्वारा ही प्रतीक की उत्पत्ति हो सकती है पर प्रतीक तो "शारेबाज़ी की चीज नही है। वह निश्चयात्मक काय है। किसी ग दी वस्तु को देखकर आँख ब द कर लने से यह तो प्रकट हो गया कि वह चीज हम पस द नही है। पर इस सकेत से प्रतीक नही बना। सम्भव है कि जिस समय हमने ग दी चीज को देखा हो हमारे नेत्रो मे ककडी भी पड गयी हो और इसी लिए आँखे ब द हो गयी हो। निश्चयात्मक काय या प्रतीक तो तब होगा जब हम मुह से कह कि इस चीज को यहाँ से हटा दो या हम हाथ बढाकर इशारा करे कि हटाओ हटाओ। "सलिए यह समझ लेना चाहिए कि **सकेतों** से समाज की सभ्यता नही आँकी या जाँची जा सकती। उसके लिए **प्रतीक** की आवश्यकता होती ह। प्रतीक की भाषा प्रौढ होती है, सकेत की शशवी।

१ Symbols and Society page 167

सत्य और असत्य

सकेत स प्रतीक तक पहुच भी गये तो यह साचना पडेगा कि हम जिसे प्रतीक समझ रहे हैं, वह सत्य है या असत्य। टामस हाब्ज[१] ने लिखा था कि सत्य तथा असत्य ये वाणी के गण ह वस्तु मे नही किसी वस्तु का सही ढग से नाम बतलाना ही सत्य है। इसका अथ तो यह हुआ कि सच्चा ज्ञान वही है जिसम सही अथ समझा या लगाया जाय। जिस वस्तु स्थिति के वास्तविक रूप का प्रतीक होगा वही सच्चा प्रतीक होगा। विश्वास या अविश्वास ऐसे प्रतीक की सत्यता या असत्यता को नही बदल सकते। यदि प्रतीक किसी वस्तु के सही अथ मे है तो फिर वह अकाट्य है और उसकी सत्ता अक्षुण्ण है। सच और झूठ की विश्वास से स्वतत्र सत्ता है। कोई भी विचार सही या गलत हो सकते हैं सच या झठ हो सकते ह। पर किसी वस्तु का अथ निश्चित हो जाने पर उसकी सच या झठ की परिभाषा भी निश्चित हा जाती है। और यह निश्चित अथ ही प्रतीक है। सत्य तथा असत्य ये दोना प्रतीक की सम्पत्ति ह। वह प्रतीक सत्य है जो किसी निश्चित वस्तु के लिए है। वह प्रतीक असत्य है यदि वह किसी निश्चित पदाथ का बोधक नही है। डा० ईटन लिखते ह कि यह नही भूलना चाहिए कि प्रतीक चिह्न सकेत या ध्वनि या मूर्ति से अधिक बडी चीज है। प्रतीक इनम स कोई भी चीज है और उसके अतिरिक्त वह मन पर पडनेवाला प्रभाव भी है। यानी उसके साथ जो मनोवज्ञानिक गति उत्पन्न होती है वह भी है। प्रतीक धारणाए ह इसलिए यह कहना कि सत्य प्रतीक की सम्पत्ति है वास्तव म यह कहना है कि सत्य धारणाओवाली वस्तु है।[२]

डा० ईटन आग चलकर लिखते ह कि बिना किसी वास्तविकता या सत्ता का हवाला दिये सत्य की समीक्षा नही की जा सकती। यह वास्तविकता विचार के रूप म, भावना आदि के रूप मे हो सकती है। सत्य तो उस चीज का बतलाता है जो है। सत्य को समझने के लिए जिस चीज स हमारा तात्पय है उस समझना पडेगा। अत ज्ञान प्रारम्भ से ही वास्तविकता की ओर ले जाया जाता है। उसका आध्यात्मिक लक्ष्य होता है। किन्तु आध्यात्मिकता की दिशा म विनम्रता मे बढना होगा। पहल तो वास्तविक की सीमित धारणा बनानी होगी। उसके बाद जितनी जानकारी बढती जाय अपनी धारणा का विस्तार उतना ही बढाते जाना होगा।

१ Thomas Hobbes— Liviathan Part I Chapt 4 quoted by Dr Eaton— Symbolism and Truth —page 149

२ Eaton—Symbolism and Truth—page 149 50

धर्म की धारणा

उदाहरण के लिए धर्म की धारणा को लीजिए। अगर हम यह निश्चय कर ले कि बिना निश्चित प्रमाण मिले कि ईश्वर है ईश्वर की सत्ता है ईश्वर सत्य है, हम ईश्वर के प्रतीक मूर्ति या प्रतिमा मे आस्था नही रखेंगे अथवा धार्मिक प्रतीको को नही मानेंगे तो हमे शायद ईश्वर की सत्ता की कभी जानकारी न हो सके। सर्वसत्तावान् सर्वशक्तिमान प्रभु की जानकारी के लिए हमको उस दिशा मे अपने मन का क्रमागत विकास करना होगा। हमको उन प्रतीको का सहारा लेना होगा जो हम उस वास्तविकता की ओर ले जा रहे है। यानी हमको पहले सीमित धारणा से चलना होगा। कला के द्वारा चित्रो के द्वारा मूर्ति के द्वारा साहित्य के द्वारा पौराणिक कथाओ के द्वारा हमको ईश्वर का प्रतीक भरा पूरा मिलता है। उनके द्वारा हमको उपासना के योग्य ईश्वर तथा दार्शनिकों के ईश्वर की जानकारी शुरु होती है। ससार के बडे बडे धर्म हिन्दू मुसलिम ईसाई यहूदी सभी धर्म उस ईश्वर की ओर इगित करते है सकेत करते है। यदि ईश्वर को धार्मिक रूप मे समझना है तो पौराणिक रूप से उसकी व्याख्या करनी होगी यदि ऐतिहासिक रूप से समझना है तो धार्मिक या राजनीतिक इतिहास के प्रतीक के माध्यम से समझना होगा यदि अनैतिहासिक रूप से ही समझना है तो उसके प्रतीकात्मक रूप मे समझना होगा। पर यह ध्यान मे रखना होगा कि यदि धार्मिक प्रतीको को धार्मिक रूप मे काम करना है तो चाहे वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात कितनी ही दूर क्या न हो उनको **वास्तविकता का अकन** मानना पडेगा। श्री वाइल्डर लिखते है——

> पौराणिक गाथाए वास्तविकता का सवाद देती है। उनमे व्यक्त सत्य का महत्त्व अथवा उनमे सत्य का कितना अनुपात है यह उस गाथा के बनानेवालो के अनुभव तथा बुद्धिमता पर निर्भर करता है। बाइबिल (ईसाई धर्मग्रथ) के एक दूसरे से मिले जुले प्रतीक वास्तविक अर्थ रखते है और उनमे बोधात्मक अन्तर्दृष्टि है। वे महंगे नैतिक अनुभव से पैदा हुए है और यदि उन अनुभवो मे कोई त्रुटि होगी तो उनमे भी त्रुटि हो सकती है। उनके रचयिता वे प्रवक्ता या पैगम्बर लोग है जिनकी अन्तर्दृष्टि उनके जीवन से ही प्रमाणित है इन कारणो से हम ईसाई धर्म की चित्र रूपी भाषा को सत्यता का मूल्य प्रदान करेंगे ही।[1]

१ Amos N Wilder— —Myth and Symbol in the New Testament '— Chapt VIII—page 145

किन्तु धार्मिक तथ्य इतनी आसानी से ही पकड मे नही आ जाते । ज्ञात तथा अज्ञात मानस किस प्रकार इन्हें ग्रहण करता है, यह वज्ञानिक विवेचन से स्पष्ट न होगा । ईसाई पादरी गालाघेर ने लिखा है[१] कि अदश्य के त्वरित अनुभव या उसकी आध्यात्मिक वास्तविकता की अनुभूति (जो वास्तव में दुलभ वस्तु है) के अतिरिक्त म इन धार्मिक वस्तुओ को स्वत उनके द्वारा पूरी तरह से नही जान सकता । शब्दो मे उनका ठीक तरह से व्यक्त नही किया जा सकता । उन्हे समझने के लिए सूक्ष्म दष्टि की आवश्यकता है । इन्ही बातो से धम म प्रतीकवाद की आवश्यकता उत्पन्न हुई । धम के तथ्यो को बुद्धि सरलता से ग्रहण नही कर सकती । धम इतनी गूढ तथा रहस्यमय वस्तु है कि शब्दो के द्वारा उसको प्रकट नही किया जा सकता इसी लिए प्रतीक की आवश्यकता पडी उसके माध्यम की आवश्यकता हुई ।

जो बात या विचार या वस्तु शब्दा द्वारा व्यक्त न की जा सके उसी का व्यक्त करने की कला का नाम प्रतीक है । बोक्सर ने लिखा है —[२]

ईश्वर का तत्त्व हमारी पकड के बाहर है प्राचीन धमग्र थ हमका ईश्वर स इतना दूर तथा मानव जीवन क लिए दुर्भेद्य बता दत ह कि धम का वह लक्ष्य ही समाप्त हो जाता है कि मनुष्य अपने मालिक के निकटतम आता रहे । इस उलझन म हमको केवल प्रतीका के द्वारा माग मिलता है ईश्वर से निकटता केवल शब्दा के द्वारा नही हा सकती । इसके लिए हमको कार्यात्मक प्रतीका से काम लेना पडता है शब्द स अधिक क्रिया का हमारे ऊपर प्रभाव पडता है इसके द्वारा गूढ धार्मिक बाते भी समझ मे आ सकती ह ।

बोक्सर ने जिन काय प्रतीको का जिक्र किया है वही है उपासना का कमकाण्ड पूजन विधि अचन का तरीका—तत्र मत्र हवन जप तप इत्यादि । ऐसे उपायो का सहारा आदि युग का आदमी भी लेता था आज भी लेता है । धार्मिक प्रतीक पहले भी थे अब भी ह । केवल उन प्रतीका के प्रति दृष्टिकोण म अन्तर हो गया है । प्रारम्भिक मनुष्य जादू-टोना क प्रतीक म भी विश्वास करता था सभ्य मनुष्य उनम विश्वास नही करता । दोनो दृष्टिकोणा म जो अन्तर है ब्राइसन ने बडे अच्छे ढग से समझाया है । वे लिखते हैं —[३]

१ Eugene Gallagher S J 'The Value of Symbolism —in Symbols and Values an Initial Study'—Chapt VI—page 116 17

२ Ben Zion Bokser—'Symbolic Knowledge and Religious Truth' in Symbols and Values —Chapt XI—page 173

३ Lymon Bryson—'The Quest for Symbols'—in Symbols and Values —Chapt I page 4

'प्रारम्भिक लोगो का' मन प्रतीको का उपयोग प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूपेण नियत्रण प्राप्त करने के लिए करता है। उसका विश्वास था कि भौतिक जगत् की घटनाओ पर नियत्रण की शक्ति उनमें है। पर सभ्य मन का विश्वास है कि प्रतीक प्रकृति को स्पष्टत प्रकट कर देते ह। बाह्य जगत् पर उनका और कोई वश नही। हाँ उनका वश यह अवश्य है कि मनष्य के आचरण पर उनका जो प्रभाव पडता है उससे आगे की बात, यानी नियत्रण की बात सम्भव होती है। सीधे सादे ढग से तात्पय यह है कि प्रारम्भिक मनुष्य प्रतीको को बाह्य जगत पर अधिकार प्राप्त करने के उपयोग मे लाता था सभ्य मनुष्य इनका उपयोग मानव पर नियत्रण या प्रभाव डालने के लिए करता है। इससे यह बात निकली कि जब आधुनिक मनुष्य भगवान् की प्राथना करता है वह घटनाओ को बदलने के लिए नही पर अपने में ही परिवतन के लिए ऐसा करता है।

कि तु आइजन ने इसके साथ यदि यह भी जोड दिया होता कि प्राथना से मनुष्य में परिवतन हो सकता है तो घटनाओ का चक्र भी बदल सकता है सवशक्तिमान ईश्वर, सब कुछ कर सकता है। प्राथना के बल पर मत्यु भी टाली जा सकती है। आज के युग मे प्राथना को कवल वज्ञानिक दृष्टि से देखने से काम नही चलेगा। प्रकृति मनुष्य तथा ईश्वर तीना की सत्ता को ठीक से समझना होगा। यह बात सही है कि प्राचीन काल का मनुष्य प्रकृति तथा प्राकृतिक बातो का बहुत गलत अथ लगाता था। उसकी ऐसी वज्ञानिक जानकारी नही थी कि वह प्रकृति को ठीक से पहचान सके। पर इस गर जानकारी से एक लाभ भी था। वह प्रकृति तथा प्राकृतिक बातो के प्रति बडा आदरशील था। उसमें प्राकृतिक पवित्रता भी थी। आज का मानव प्रकृति से बहुत कुछ परिचित है। अपनी इस जानकारी के कारण वह प्रकृति के प्रति अवज्ञाशील तथा उच्छखल भी हो गया है। आज का मानव दिन प्रतिदिन अप्राकृतिक भी होता जा रहा है। आज मनोविनान आदि के सहारे हम मानव स्वभाव से अधिक परिचित हो गये ह। पर इससे सभ्य जगत मे कल्याण से अधिक अकल्याण हुआ है। अपने ज्ञान का हम दुरुपयोग कर रहे ह। मानव स्वभाव की जानकारी से लाभ उठाकर हम मानव का अपहरण कर रहे ह। अतएव यह कहना बडा कठिन है कि धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से सभ्य जगत की प्रतीकात्मक नैतिकता तथा धार्मिकता स समाज का अधिक उत्थान हो रहा है या होगा या असभ्य जगत् की प्रतीकात्मक नतिकता या धार्मिकता से। इस बात का निणय करना बडा कठिन है। यह कहने मे कोई बाधा नही है कि जहाँ तक प्रतीक का सम्बन्ध है कल का तथा आज का धार्मिक प्रतीक दोनो ही सत्य है। प्रारम्भिक प्रतीका को झूठा मानने का कोई कारण नही दीख पडता ।

किसी प्राचीन प्रतीक की आज भले ही आवश्यकता न हो पर इससे प्रतीक की सत्ता

तथा सत्यता को आघात नही पहुचता । हमारे नित्य प्रति के जीवन मे जो वस्तु स्थिति है जो घटना है जो पदाथ है उसके साथ जब ऐसे विचार का मेल हो जाता है जो नित्य प्रति के जीवन के हमारे अनुभव से परे है—तब वह प्रतीक बन जाता है प्रतीक कहलाता है । हम किसी चीज का अथ समझान के लिए जिन बहुत-सी विधियो का सहारा लेते ह उनमे सकेत ह चित्र ह मूर्ति है उपमा है उदाहरण है—मिसाल है । किन्तु किसी वस्तु के लौकिक और आध्यात्मिक अर्थ म बडा अन्तर यह है कि जा प्रतिमा हमने जिस अथ मे खडी कर दी है वह निर्दिष्ट पदाथ को स्पष्ट करती है यानी जो वस्तु है उस वस्तु का प्रतिबिम्ब मात्र है या वह वस्तु किसी और उपाय स समझ मे नही आ सकती इसलिए प्रतिमा के रूप म समझायी गयी । दूसरे शब्दा म प्रतिमा के रूप मे जा चीज व्यक्त की गयी है वह प्रत्यक्षत किसी और ढग से भी व्यक्त की जा सकती है या उसको व्यक्त करने का उस मूर्ति क अलावा और कोई उपाय हो नही है ? यदि उसे प्रकट करने का और कोई उपाय नही है तभी वह प्रतीक कहलायेगी । यह नही भलना चाहिए कि किसी भी प्रतीक का समझान के लिए दूसरे प्रतीको का ही सहारा लेना पडेगा । प्रतीक की व्याख्या प्रतीक ही कर सकत ह । इसलिए प्रतीक केवल तकपूण या बौद्धिक रूप से समझने योग्य चीज नही है । उसकी वास्तविकता का अनुभव करना पडगा । जहा पर समझाने की सीमा समाप्त हो जाती है वही स उसका अथ प्रारम्भ होता है । प्रतीक तो प्रतीकात्मक इच्छा से ही बनत ह ।[१]

वास्तविकता तथा सत्य का समन्वय

इस ससार म कोई वस्तु अथ हीन नही हो सकती सार हीन हो सकती है । ससार म अथ रहित वस्तु की तुलना की सत्ता ही नही हो सकती । परम सत्य तथा वास्तविक सत्ता तो ईश्वर की है । पर हमारे लिए सता उन सभी चीजो की है जो इन्द्रिय जन्य हो तथा जिनका हम नित्य प्रति क जीवन म वास्तविक कह सके । मनुष्य के भीतर बठी आत्मा सब द्रष्टा तथा सब साक्षी है, पर अपने ज्ञान तथा अपने अनुभव को वह तभी प्रकट कर सकती है जब उसे किसी भौतिक वस्तु का मन के अतिरिक्त हाथ पाँववाले शरीर का माध्यम मिले ।[२] अनगिनत घटनाए हम देखते तथा सुनते रहते ह । आज हमारे सामने जो कुछ है वही वास्तविक बात है । पर इसके साथ ही हमारा अनुभव भी लगा हुआ है । वह अनुभव कल का हो या युगो से सचित सस्कार के रूप म हो । जो है जो था और जो होनेवाला है तीनो बात ज्ञात और अज्ञात मानस

१ Symbols and Society—page 178 २ वही, पृष्ठ १८७ ।

के मन पटल पर अंकित है। इन तीनों को मिलाकर ही मन किसी वस्तु का अर्थ निश्चित करता है। अर्थ का निश्चय हो जाने पर उस वास्तविक वस्तु में स्थायित्व आ जाता है। उसकी सत्ता तथा सत्यता दोनों हो जाती हैं। यदि जो दिखाई पडता है उसी को वास्तविक मान ले तो अर्थ पूरा नहीं होता। हमारे सामने एक जानवर खडा है। हमने कहा 'घोडा'। कल भी यह जानवर घोडा था आज है और कल भी रहेगा। उसमें कुछ ऐसे गुण हैं जो और चार पैरोवाले जानवरों में नहीं हैं। उसमें कुछ ऐसी विशिष्टता है कि हमने उसके चार पैर देखकर उसे 'गधा' नहीं कहा। 'घोडा' शब्द कहते ही घोडे के समस्त गुण, उसकी चाल, उसकी उपयोगिता सब स्पष्ट हो गया। उस प्रकार के गुण वाले जानवर का नाम—प्रतीक 'घोडा' हुआ। अब यदि कोई कहे कि 'घोडा' नाम प्रतीक की व्याख्या करो, तो हम गतिशील तथा शक्तिशील जानवर या वस्तु का प्रतीक ढूँढना पडेगा। हम कहेंगे कि 'बहुत तेज चलनेवाला, चार पैरवाला, परिश्रमी इत्यादि।' ये सभी शब्द अपने अपने अर्थ में 'घोडा' शब्द के प्रतीक बन गये। उस जानवर का हमने सही नामकरण किया। इसलिए हाब्ज जैसे लेखक भी सन्तुष्ट होंगे कि हमने सही प्रतीक बनाया। यह सत्य हुआ। पर हम उसी गुणवाले जानवर को 'गधा' कह दें तो असत्य प्रतीक हुआ क्योंकि वास्तविकता के विपरीत बात हुई। जिस पशु के लिए घोडा अर्थ सही होता है उस पशु के लिए गधा अर्थ सही न होगा। पर्यायवाची समानार्थक शब्द हो सकते हैं। पर एक वस्तु का एक ही अर्थ होगा। हर एक चीज के मानी अलग अलग हैं। इसी प्रकार हर एक वास्तविकता का प्रतीक भी भिन्न होता है। एक के अर्थ से दूसरा अर्थ समझाया जा सकता है। एक प्रतीक दूसरे प्रतीक को समझा सकता है। पर दोनों मिलकर एक नहीं हो सकते। प्रतीक की सत्यता उनकी विभिन्नता में है।

हम अपनी आँखों से जो दिखाई देता है वह वास्तव में वही है जैसा हमारे नेत्रों ने समझा—यह कोई नहीं कह सकता। अँधेरे में देखा कि एक बडा लम्बा आदमी पैर बढाता चला आ रहा है। निकट आने पर समझ में आया कि एक आदमी ऊँट पर बैठा चला आ रहा है। बात रही दिखाई पडने की दृष्टिगोचर पदार्थ की आकार की बनावट की।[1]

पदार्थ और प्रस्थापना

संसार में हम अपनी आँखों से जो कुछ देख रहे हैं वह केवल बाह्य रूप से दृष्टिगोचर पदार्थ है, केवल आकार है, बनावट है। यदि हम किसी मनुष्य को देखते हैं तो वह केवल

१ Appearance

आँख कान नाक, हाथ पैरवाला एक आकार मात्र है। किन्तु इस आकार के भीतर उस मनुष्य के मन बुद्धि स्वभाव विचार धारणा, इच्छा विकार आदि ऐसी बहुत-सी चीजें ह जो बाहर स दिखाई नही पड रही ह। हरएक आकार के साथ उसका आध्यात्मिक यानी आधिभौतिक पहलू भी छिपा हुआ है। मन से इस पहलू की जानकारी को अलग नही किया जा सकता। जब कोई आकार हमारे नेत्रो के सामने आता है बुद्धि तुरत उसके भीतर भी पठ जाती है और उसकी वास्तविकता को आकने लगती है। जो वस्तु किसी आकार तथा उसके भीतरी पहल को जितना अधिक हमारे निकट ला सके वह उसका प्रतीक हुई। कितु किसी वस्तु का परिचय स्वय वह वस्तु है। अन्य किसी प्रकार का परिचय ता उसकी व्याख्या मात्र है। व्याख्या एक सीमा तक हो सकती है। सर्वांगीण व्याख्या तो वह वस्तु स्वय है।[1] किसी वस्तु के आकार तथा उसक भीतरी स्वरूप को अधिक से अधिक निकट रूप म व्यक्त करनेवाली वस्तु का नाम प्रतीक है और यह अधिक से अधिक निकटता ही सत्य'[2] है। व्याख्या की सीमा होती हे। सत्य की भी सीमा हाती है। परम सत्य तो स्वय वह भगवान है जिसने सब चीजो की रचना की। और काई वस्तु परम सत्य नही हो सकती। अज्ञात काल स मनुष्य मनुष्य को पहचानने की चेष्टा कर रहा है। ग्रथ पर ग्रन्थ लिख डाल गये पर आजतक उसकी पहचान तो नही मिली। एक मनोवज्ञानिक काई व्याख्या करता है दूसरा और कुछ। इसलिए कौन व्याख्या सही है सत्य है कौन गलत या झूठ है यह कहना भी सापेक्षिक होगा। अपने दष्टिकोण मे जितना समझ मे आया वह सत्य है इतनी बात तो कही जा सकती है। इस प्रकार सत्य तथा असत्य यह सापेक्षिक वस्तु बन जाते ह। जो हमको सही जचे वही सत्य है।

यहाँ पर एक शका उठ सकती है। मान लीजिए कि हमने किसी घोडे की तस्वीर बनायी। अब यह तस्वीरवाला घाडा वास्तव मे घोडा नही है। असली घोडे मे जो गति है जो ज्ञान है वह इसम कुछ भी नही है। पर उस असली घोडे की पूरी नकल जरूर की गयी है। बनावट इतनी सही है कि उस घोडे के भीतर का ज्ञान भी चेहरे से इगित हो रहा है। यह चित्र घोडे का प्रतीक हुआ। किन्तु क्या यह सत्य है? घोडा भी नही है, उसका ज्ञान भी नही है उसकी गति भी नही फिर भी क्या वह चित्र सत्य है? इसलिए कुछ लोगो का कहना है कि सत्य न तो प्रतीक है और न वास्तविक वस्तु। वास्तविक

१ इस सम्बन्ध में देखिए—A N Whitehead—'The Concept of Nature — 1920—Chapt I

२ 'Proposition — Symbolism and Truth page 151

की हमारी जानकारी सदव अधूरी रही है और रहेगी। अतएव वह भी सत्य नहीं हो सकती। तो फिर सत्य क्या है?

इसका एक ही उत्तर हमारी समझ मे आता है। डा० ईटन ने इसका नामकरण किया है— प्रस्थापना। हमने उस चित्र मे घोडे की 'प्रस्थापना' कर दी है। प्रस्थापना म न तो प्रतीक है और न उसके द्वारा मन मे कोई विचार उत्पन्न करने का प्रयोजन या सकल्प होता है। किसी वस्तु की किसी रूप में प्रस्थापना केवल अथ-बोधक होती है। बच्चो की वणमाला पुस्तक में घ से घाडा प्रतीकात्मक नही है। केवल घ अक्षर की प्रस्थापना मात्र है। अथ के रूप मे कही गयी वस्तु स्वत मन के लिए विचार का विषय नही बन जाती। वह केवल इतना ही कर सकती है कि विचार करने के द्वार पर थपथपा दे, ताकि विचार का काम आप चाहे तो चालू हो जाय। घोडे की तस्वीर देखकर घोडा-सम्बन्धी विचार के द्वार पर थाप लग गयी। अब यदि मन को अवकाश है तो वह अपना काम शुरू करेगा, वरना यदि वह मन किसी और तरफ लगा हुआ है तो दूसरी दिशा की ओर मुड जायगा। हम उस तस्वीर को उठाकर रख दगे हटा दगे। इस प्रकार यह भी मालूम हुआ कि केवल सत्य की प्रस्थापना से ही मन की प्रतिक्रिया नही शुरू होती। उस प्रस्थापना में कितना वेग है कितनी गतिशीलता है इस पर भी बात निभर करेगी। किसी ने कहा कि राम ने सत्य बात कही है —अब यह ठोस बात कह दी गयी। हमने सुन लिया। अब यह वाक्य हमे किसी सत्य घटना की ओर ले जाता है। किसी अकाट्य सत्य की ओर ले जाता है—किसी वस्तु की ओर ले जाता है। ये सब बाते बाद में आती ह। यह जरूरी नही है कि कोई प्रस्थापित समस्या हमे किसी वस्तु की ओर ले ही जाय। वह हमे केवल किसी सिद्धात की ओर भी ले जा सकती है। किन्तु यदि कोई बात न तो हमे किसी वस्तु की ओर ले जाय न किसी सिद्धान्त की ओर ले जाय न किसी प्रयोजन को इगित करे तो बात सत्य की परिभाषा मे नही आ सकती। वह निश्चयत असत्य है। अत प्रस्थापना यदि उद्देश्यहीन है तो असत्य है।

सत्य की रचना मन या बुद्धि के तत्त्वो से नही होती। जो चीज़ है जिसकी जसी सत्ता है जिसकी जसी वास्तविकता है उसको सही ढग से व्यक्त कर देना सत्य है। सच-झूठ की पहचान केवल विचार की क्रिया से नही हो सकती। कौन धार्मिक सिद्धान्त सत्य है, कौन पौराणिक कथा सत्य है, कौन देवता वास्तव म वतमान ह, इन सब बातो का अतिम निणय कौन करेगा? मन बुद्धि के निणय सदव दोषपूण इसलिए होगे कि मन-बुद्धि अपने सस्कारो से बधे हुए है। असली ज्ञान तो अन्तरात्मा को होता है जो मन-बुद्धि, दोनो के ऊपर है।

हवा मे कोई वस्तु प्रस्थापित नही होती। श्री जी० ई० मूर ने पते की बात लिखी है

कि जिस वस्तु की सत्ता नही है जो है ही नही उसका न तो आकार बन सकता है और न उसके सम्ब ध मे विचार उठ सकते ह ।[१] जिन चीजो की सत्ता जिस व्यक्ति के लिए नही है वह उनका आकार नही बनायगा न उनके बारे मे सोचेगा । दक्षिण अफ्रीका क घोर जगलो म रहनेवाला व्यक्ति रेडियो से एकदम अपरिचित है । उसे कोई जानकारी नही है कि ध्वनि निक्षप क्स होता है । अतएव उसके लिए रेडियो का न तो आकार सत्य है न रेडियो का विचार सत्य है । ज्यो ज्यो मनुष्य का ज्ञान बढता जाता है सत्य तथा वास्तविक से उसका परिचय बढता जाता है । आदिकाल से मानव इसी प्रकार सत्य का पता लगाता चल रहा है । इसे हम कहते ह सत्य की शोध । हम उस चीज के बारे मे सोच ही नही सकते जो कि नही है । शून्य मे कोई नही सोचता । सत्य वास्तविकता की सत्ता की प्रस्थापना करता है । अस्तित्व को प्रकट करता है । बाकी उसक बाद सोच विचार निरूपण प्रतीकीकरण आदि काय मन बुद्धि का है । आवश्यकता है अस्तित्व को समझन की । किसी वस्तु की सत्ता प्रकट रूप म ही नही होती—सत्य प्रकट सत्ता तक ही सीमित नही है । प्रकट सत्ता न होते हुए भी अस्तित्व हो सकता है । यदि प्रकट सत्ता पर ही सत्य निभर कर तो ईश्वर भी सत्य नही रह जायगा । वास्तविकता स्वय अन्ततोगत्वा इतना सूक्ष्म वस्तु हो जाती है कि उसका अस्तित्व ही सन्दिग्ध हो जाता है । इस सूक्ष्म तत्त्व का ज्ञान आसानी स नही हो सकता । इसके अस्तित्व की प्रस्थापना सत्य द्वारा हो गयी । पर उसका ज्ञान तथा उसका उपयोग भी होना ही चाहिए । अत प्रस्थापित सत्य प्रतीक का रूप धारण कर लेता है । पिछले अध्यायो म हमने धार्मिक तथा तात्त्विक प्रतीको की व्याख्या की है । तात्त्विक प्रतीको क बारे म हमने थोडा बहुत विस्तार स ही लिखा है । परम सूक्ष्म अस्तित्व के प्रस्थापित सत्य को बोधगम्य बनाने वाले तथा परम सत्य की ओर ल जानेवाले तथा गूढ रहस्यो का समझानेवाले तात्त्विक प्रतीक ह ।

धारणा तथा सत्य

अपने नित्य प्रति के जीवन म हम सत्य तथा असत्य स खेलते चलते ह । जो बात नही हुई उसके कहने का अथ है झूठ बोलना । किन्तु ऐसे झूठ में भी किसी वस्तु की सत्ता वतमान है वह कल्पना म ही हो सकती है पर बुद्धि अस्तित्व हीन वस्तु की कल्पना नही कर सकती । मने कहा कि आज सीगवाला हाथी देखा । ससार म सीग की भी सत्ता है । हाथी की भी । पर हाथी में सीग को प्रस्थापित कर उसम असत्य की प्रस्थापना हो गयी ।

१ G E Moore— The Conception of Reality —in the Philosophical Studies —1922—page 215

हाथी के सम्बन्ध में हमारी धारणा ने उसमें से सींग को निकाल दिया। इस प्रकार विवेक ने सत्य असत्य का बँटवारा कर दिया। विचारों में सत्य तथा असत्य के प्रस्थापन से ही वास्तविक जगत से सम्बन्ध स्थापित होता है सम्बन्ध सम्भव होता है। इसलिए यह मान लेना पड़ेगा कि सत्य का व्यावहारिक मूल्य है। सत्य के द्वारा हम वास्तविकता को पहचान लेते हैं और सत्य के द्वारा स्वयं सत्य को जान जाते हैं। एक सत्य दूसरे सत्य से सम्बद्ध होता है। सत्य मार्ग पर चलने से सत्य का अस्तित्व मालूम होने लगता है। सत्य से ही परम सत्य का पता चलता है। सत्य का लक्ष्य है परम सत्य और परम सत्य को प्राप्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। इस सत्य तथा परम सत्य को व्यक्त करने वाली चीज का नाम प्रतीक है।

सत्य हमें सही रास्ते पर ले जाता है। असत्य हमको भटका देता है। अज्ञानवश असत्य को भी हम सत्य समझ लेते हैं। स्वप्न में देखनेवाला जब तक स्वप्न देख रहा है उसके लिए वह सपना सत्य है। सपने में असत्य होने की बात भी उसके दिमाग में नहीं आती। किसी बात पर जमकर विश्वास करनेवाले के लिए उसका विश्वास सत्य है वह अपने विश्वास को छोड़ नहीं सकता।

विश्वास धारणा से बनता है। किन्तु विश्वास तथा धारणा में बड़ा अन्तर है। जब विश्वास जम जाता है तो बुद्धि काम करना बन्द कर देती है। जिनको झाड़ फूक में विश्वास हो जाता है वे डाक्टर के आश्रित नहीं रहते। उनको यदि समझाया भी जाय कि बीमारी झाड़ फूक से अच्छी नहीं होती तो वे मानने को तयार न होंगे। किसी वस्तु की सत्ता के बारे में हमको विश्वास होते ही हम धारणा की अनिश्चित दशा को समाप्त कर विश्वास के द्वारा उस वस्तु की शंकाशील सत्ता को समाप्त कर देते हैं। हमारे लिए उस वस्तु की सत्ता स्थापित हो गयी है। हमारे मन में यह धारणा हो सकती है कि रामचन्द्र अवतारी पुरुष थे भगवान् के अवतार थे। पर विश्वास ने रामचन्द्र को भगवान मानकर अब धारणा के लिए कोई काम बाकी नहीं छोड़ा। विश्वास निश्चयात्मक होता है। धारणा तथा विश्वास के बीच की दो सीढ़ियों को एक ही छलांग में पार कर देनेवाली चीज विश्वास है। धारणा के बाद बुद्धि निर्णय करती है। निर्णय पर पहुँचकर तार्किक विवेचन करती है।[1] बुद्धि ने धारणा बनायी, किसी परिणाम पर पहुंची फिर उस परिणाम का तार्किक विवेचन किया तब जाकर वह निश्चित विश्वास पर पहुंची। यदि वह तुरत विश्वास कर बैठी तो उसे ही अंध विश्वास कहते हैं। जिस विश्वास के साथ निर्णय तथा तार्किक विवेचन न हो उसे अंध विश्वास

१ D Hume—'Treatise on Human Nature Vol I Part III Sec 7

कहते ह । किन्तु अति सूक्ष्म अस्तित्ववाली चीजें स्थूल तथा वाहरी विवेचन स सिद्ध नही हो सकती इसलिए कि तक भी सीमित है। तक बुद्धि का विषय है। बुद्धि की पहुँच सीमित होती है। बुद्धि के आगे बढकर जो काय होता है वह बाहरी इन्द्रियो से चाहे वाणी हो या प्रतीक दोनो से परे हा जाता है। वहाँ पर केवल आत्मा का अनुभव काम देता है। इसलिए हमार शास्त्र कहते ह कि ईश्वर अनुभवगम्य है, बोध गम्य नही। यह तक से सिद्ध नही होता। तक उसके सम्बन्ध मे अनुभव को सिद्ध कर सकते हैं। हम अपनी धारणाओ के दास तब तक ह जब तक हम उनके द्वारा निणय या परिणाम पर पहुँचने तथा विवेचन करने का काम न ले। स्मरण रहे कि विवेक की चलनी मे छानने पर धारणा का मल निकल जाता है। उसका रूप बदल जाता है। सत्य के माग से निकली हुई धारणा सत्य तक पहुचा देती है। सत्य निश्चितता की ओर ले जाता है। केवल ईश्वर या राक्षस कह देन मे बात पूरी नही होती। ईश्वर है राक्षस है --कहना पडगा।

विश्वास तथा अविश्वास प्रत्यक्षत एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। इनमे जमीन आसमान का अन्तर है। पर ह दाना एक ही वस्तु--सापेक्षिक रूप से। जिस धुरी पर ये दोना घमते ह वह एक ही है। एक ही वस्तु के बारे में दोना ही चीज लाग होती ह। ईश्वर तो एक है कोई उस पर विश्वास करता है कोई अविश्वास। इसलिए अविश्वास होना भी उस वस्तु की सत्ता का ही सिद्ध करता है। हमन जादू टोना को अध विश्वास कहा है। हम इस निणय पर तक द्वारा पहुच ह पर जादू टाना की उपयोगिता मे अविश्वास हो सकता है किन्तु उनकी सत्ता उनके अस्तित्व को कैसे काटा जा सकता है? इसलिए विश्वास का विरोधी अविश्वास को नही मानना चाहिए। अविश्वास वास्तव मे विश्वास का ही एक रूप है एक श्रेणी है। मनुष्य विश्वास से अविश्वास को या अविश्वास से विश्वास को पहुचता है। विश्वास का विरोधी अविश्वास नही है। उसका विरोधी है शका समीक्षा।[१] अन्यथा जिसे हम अविश्वास कहते ह वह विश्वास ही है। एक ने कहा--- ईश्वर है। वह ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करता है। दूसरा कहता है--- 'ईश्वर नही है --तात्पय यह कि वह ईश्वर के न होने मे विश्वास करता है। विश्वास दोना ही दशा मे है और शका तथा समीक्षा दोनो के लिए ही लागू होते हं। मनुष्य को अपने विश्वास पर भी शका हो सकती है और अविश्वास पर भी। शका और समीक्षा हर चीज मे होती रहती है। ईश्वर की सत्ता पर शका पग पग पर होती है। फिर समीक्षा मन-ही मन होती है। जहाँ पर मन तथा बुद्धि थक जाती है वहा अनुभव काम देता है।

१ W James— Psychology'—Vol II, Chapter 21 Page 284

एक प्रकार के ऐसे भी लोग होते है जिनकी बुद्धि ऐसी हो जाती है कि व किसी चीज को धारण ही नही कर सकते । वे शका और समीक्षा भी नही कर सकते । पर यह तो बुद्धि का रोग हुआ या जडता हुई । जहाँ शका तथा समीक्षा सो जाती है वही जडता का प्रादुर्भाव होता है जडता से ही अध विश्वास उत्पन्न होता है । इसके विपरीत एक और दशा होती है जिसे शकितमना[1] कहना चाहिए । एसे लोगो को सत्य की खोज तथा वास्तविकता की जानकारी की ऐसी धुन होती है कि वे किसी भी बात पर टिकना नही जानते । रात दिन इधर उधर की उधडबुन बनी रहती है । उनका मन इतना चचल तथा अस्थिर हो जाता है कि उनके विश्वास को कभी स्थिरता नही प्राप्त हो सकती । इस प्रकार की बुद्धि से बडा अकल्याण होता है । ऐसी बुद्धि मनुष्य को बहुत ही बेचैन तथा निकम्मा बना देती है ।

साराश यह कि विश्वास तथा अविश्वास सत्य की प्रस्थापना है । सत्य को प्रस्थापित कर प्रतीक बनता है । प्रतीक की आवश्यकता इसलिए भी है कि वह शकाशील तथा शक्तिमना को स्थिर होन म सहायता दे । प्रताक बनाकर हम उसको स्थिरता से सोचने का अवसर देते ह । प्रतिमा का प्रतीक ईश्वर के प्रति स्थिर भाव से सोचने का अवसर दता है । यदि प्रतीक न होता तो अस्थिर मन और भी अस्थिर हो जाता । विश्वास तथा अविश्वास की दुनिया म प्रतीक ही एसा स्तम्भ है जो बुद्धि का एकमात्र अवलम्ब है सहारा है ।

निषेध की मर्यादा

जो लाग किसी धार्मिक या आध्यात्मिक तत्त्व की सत्ता अस्वीकार करते है जो कहते ह कि नही है यानी जा निषध करते ह उनकी बाता को भी समझन का प्रयत्न करना चाहिए । यह हम लिख चके ह कि जो चीज **ह** नही वह **नहीं** भी नही हो सकती । **हाँ** और **नहीं** वस्तु के अभाव म **नहीं** हो सकते । जिस चीज की सत्ता ही नही है उसके लिए न ता अस्ति' होगा और न नास्ति । **हाँ** और **नहीं** मे अ तर केवल इतना ही है कि पहलेवाले की बात तो निश्चित होती है दूसरे की अनिश्चित हो जाती है । यदि म यह कहू कि मै घर जा रहा हू तो एक निश्चित बात का प्रतिपादन हो गया । सबको मालम हो गया कि म कहाँ जा रहा हू कुछ समय बाद मै कहाँ पर मिलूँगा तथा इस समय मेरा कायक्रम क्या है । पर यदि म निषेधात्मक रूप मे कहूँ— मै घर नही जा रहा हू" तो इससे केवल इतना ही पता चला कि अपने घर पर म नही मिलूगा । पर मै कहाँ

[1] 'Sceptic'—Symbolism and Truth Page 185

मिलूगा मेरा क्या कार्यक्रम है और म किस स्थान पर मिलूगा—यह सब अस्पष्ट है। मेरी इस नहा के भीतर कोई ऐसी बात है जो कि हा है पर वह क्या बात है यह कुछ भी तय नही है। मान लीजिए कि मन कहा कि सूरज नही चमक रहा है तो इससे इतना तो पता चला कि इस समय धूप नही है पर न चमकन का कारण बदली है रात है आकाश म गद छा जाना है—यह सब अनिश्चित दशा की बात हा गयी।[१] अतएव निषेधात्मक बात से बहुत-सी बात पदा हो गयी जिनके बारे म हमारी जिज्ञासा पदा हो गयी। यदि मने किसी बात का खण्डन करते हुए कह दिया कि एसा नही हो सकता तो इसका मतलब तो केवल इतना ही हुआ कि जितना किसी दूसर ने कहा है और जसा कि किसी दूसरे के कथनानुसार होना चाहिए वसा नही हो सकता। पर इसके अलावा और क्या होगा कसा होगा यह तो मेरी बात से स्पष्ट नही हुआ। यदि मने यह कहा कि 'अब और कुछ नही हो सकता तो उससे तो मतलब यही निकला कि जो हुआ है जो हो गया है उसकी सत्ता बना रहेगी। निषध तथा खण्डन म ज्ञान समाप्त नही हो गयी अस्ति व नही समाप्त हो गया। केवल अनिश्चितता ही बढी। और कुछ नही। सूरज नही चमक रहा है कहन म जो बहुत सी बाते सोचनी पडी उनसे बुद्धि का काम बढ गया। बुद्धि वही तक कारण निकाल पाती है जहा तक सकी पहुच है। सूरज के न चमकन का कारण सूयग्रहण भी हो सकता है। जिसका यह कारण नही मालूम है वह बदली रात्रि या गद —इन तीन कारणा को बतलायगा। यदि इन तीनो म से कोई कारण नही है तो ये सभी कारण असत्य हुए। इसलिए कि सूय के न चमकन की घटना की सत्यता का **प्रस्थापन** ठीक स नही हो सका है। ये तीना बाते सूय के न चमकन का कारण हो सकती ह पर चूकि वास्तविक घटना यानी सूय ग्रहण स भिन्न ह अतएव असत्य ह। सच और झूठ घटना की सत्ता पर निभर करता है। निषधात्मक बात केवल तात्पय प्रकट करती है। तात्पय स निश्चित अथ पर पहुचन म देर लगती है। निषधात्मक बात तभी असत्य होती है जब उसम एक भा पक्ष य का प्रस्थापन होता है।[२]

मन कहा कि म घर नही गया था —और मेरे साथी को मालूम है कि म घर से आ रहा हू। पर जब म कह रहा हू कि म घर नही जाऊगा —और म अपने दफ्तर की ओर चल पडा तो मेरी इस निषेधात्मक बात मे सत्यता है। अनिश्चित बात भी सत्य हो सकती है।

१ Symbolism and Truth—Pages 197 199
२ वही, पृष्ठ २१२।

हर बात के सच तथा झूठ का अन्दाजा बराबर लगा करता है। यदि किसी न कहा है कि म पढा लिखा व्यक्ति नही हूँ' तो इस बात की छानबीन तुरन्त हो सकती है। यदि छानबीन म बात सही उतरी तो वह सत्य कहलायेगी। मन कहा कि कल रास्ते मे मेरे दो मित्र मिल थे।' पर ये दोनो मित्र कौन है कहाँ से आये यह स्पष्ट नही है। यदि पता लगाने से यह मालूम हो जाय कि दोनो मित्र थ—यह बात सही नही है दोना ही हमारे शत्रु थे तो इन सब बातो स यह साबित हो गया कि म झूठ बोल रहा था। किन्तु यदि म यह कहूँ कि कल माग मे मेरे मित्र सत्यदेवनारायण सिह मिले थ तो किसी के लिए छानबीन की बात ही नही रह गयी। हमारी बुद्धि को मालूम है कि कौन मेरा मित्र है कौन शत्रु अतएव बात निश्चित हो जान से उसकी सत्यता तुरन्त प्रकट हो जाती है। यह तो रोज के अनुभव की बात है कि झूठ बोलनेवाला गोल जवाब देता है। निषेधात्मक बात को गोल ढग से कहकर उसमे अनिश्चितता पदा करता है। असत्य बात कभी स्पष्ट नही हो सकती। किसी एक बात को छिपान के लिए अनेक बात जोडनी पडती है। सत्य का माग सीधा होता है।

स्मृतिरूपी प्रतीक

प्रतीक सीधे माग पर ले चलता है। या तो हम जो कुछ कर रहे ह प्रतीकात्मक है पर वाणी इच्छा सकल्प बुद्धि द्वारा जो प्रतीक बने ह उनका लक्ष्य ही है सीधी साफ बात कह दना। जो लोग प्रतीक की सत्ता को ही नही मानते उनके निषेध से भी लाभ होता है। व कहते ह कि प्रतीक नही ह। तो फिर क्या है? चिह्न है सकेत है है तो कुछ। व कह सकते ह कि किसी वस्तु का आध्यात्मिक महत्त्व नही होता। पर आध्यात्मिक न सही कोई महत्त्व तो होगा ही। जो प्रतीक समझ मे न आय उसे प्रतीक न मानने स कसे काम चलगा? जिन प्रतीको की व्याख्या नही की जा सकती व व्याख्या के अभाव मे प्रतीक नही ह एसा कहन से काम नही चल सकता। डा० ईटन के कथनानुसार एसे प्रतीको का अर्थ **होता ह** और विभिन्न तार्किक रीति स इनको **सिद्ध किया जा सकता** है। प्रतीक को सिद्ध करने के लिए जिस तार्किक आधार की आवश्यकता है वह स्वय उन प्रतीको म वतमान है।[1] आवश्यकता है, उनका अध्ययन करने की। ऐसी कोई वस्तु नही है जो जिज्ञासा मे परे हो। एसी कोई चीज नही है जिसके बारे म कम या बेश जिज्ञासा न होती हो जिज्ञासा न पदा होती हो। क्या और 'क्यो तो हर चीज के साथ लगा हुआ है। हम किसी भी वस्तु को देखते है तो यह क्या है —'यह क्यो है —

१ वही, पृष्ठ २६१।

का प्रश्न हमारे मन में उठता है। सडक पर हजारो आदमी चले जा रहे हैं। हम आँखें फाड फाडकर उनकी ओर देख रहे ह। हर एक के बारे मे "यह कौन है का सवाल उठता है। यह सवाल उठते उठते जिसको हमने पहचान लिया या जान लिया, वह इसलिए नही कि उसने आकर बतलाया कि म अमुक व्यक्ति हूँ, आपसे अमुक दिन भेट हुई थी बिना उस परिचित व्यक्ति के कहे ही हमन पहचान लिया। यह पहचान क्या है ? मन के प्रश्न का मन द्वारा ही उत्तर है। मन को उत्तर दिया हमारी या मन की स्मति ने याददाश्त ने। ज्ञान की स्वत कोई ठोस व्याख्या करके समझना कठिन है। ज्ञान के साथ अनुभूति होती है। ज्ञान मे पिछला अनुभव भी मिला रहता है। ज्ञान के साथ बुद्धि के सस्कार का भी योग है। ज्ञान केवल भौतिक पदाथ नही है। आधिभौतिक पदाथ है। उसी प्रकार स्मृति या याददाश्त भी आध्यात्मिक महत्त्व रखती है। युग-युग की बात हमारे मन म स्मति के रूप म सचित रहती ह। स्मति का आकाश पाताल की बातें याद रहती ह। स्मति अनुभव से हाती है। दस वष पहले जा देखा है वह आज भी याद है। इसी स्मति के सहारे हम हर चीज को जानते तथा समझते रहते हैं। नित्य के अनुभव से स्मति का कोष बढता रहता है। जा जितना ही पढा लिखा होगा उसकी जानकारी भी उतनी ही ज्यादा रहगी। स्मति के सहारे ही निषध खण्डन, मण्डन प्रस्थापन हाता रहता है। अनन्त काल से मानव का याद है कि जब बादल उमडकर आता है तो वर्षा होती है। आकाश म बादल देखते ही स्मति हमे आग होने वाली बात को बतला देती है। हमको सावधान कर देती है। हम आग का प्रबन्ध कर लेते ह। बाहर घूमन जा रहे थ। बादल देखा। छाता भी ल लिया। स्मति का याद दाश्त को स्मरणशक्ति का ताजा करते रहन के बहुत से उपाय ह। जो बात भूल रही है उसे पढकर फिर से याद कर लिया। जो घटना भूल गयी थी दूसरी घटना के सहारे फिर से याद हा गयी। पुस्तक की पक्तिया स्मृति के लिए प्रतीक बन गयी। सडक मे गढा देखकर स्मति ताजी हो गयी कि गढे में पर पडन से पर टूटता है। अतएव गढा प्रतीक का काम कर रहा है। गढा पर टूटन की घटना का प्रतीक हो गया। प्रतीक का बहुत बडा काम तथा उपयोग है स्मरणशक्ति को जाग्रत करते रहना स्मरण को विस्मरण होन से बचाते रहना। प्रतीक की इस दुनिया मे प्रतीक स्मति है सम्मरण है चेतावनी है। सकेत का काम क्षणिक होता है। इशारा कर दिया कर दिया याद याद दिला दी दिला दी। पर निरन्तर याद दिलानेवाली वस्तु प्रतीक है। सडक पर पुलिसवाले की हरी रोशनी माग के प्रशस्त होन की याद दिलाती है। पर किसी दूकान की हरी रोशनी यह नही बतलाती कि रास्ता साफ है घुस पडो। यो हरे रग को जल तथा आकाश का प्रतीक बना दिया गया है। किसी चित्र मे वह रग भरा हो तो

आसानी से उसका अर्थ समझ मे आ सकता है। एक सकेत को कई अर्थों मे उपयुक्त किया जा सकता है पर एक प्रतीक अपने स्थान पर अचल रहता है। चार परवाले जिस जानवर को व्यक्त करने के लिए वाणी ने घोडा शब्द प्रतीक बना दिया वह किसी भी दशा मे गधे को व्यक्त नही कर सकता। यह हो सकता है कि घोडे के गुण का वाचक वह प्रतीक बन जाय जैसे 'आदमी क्या है घोडा है —पर वह प्रतीक घोड का दायरा छोड नही सकता।

यह सही है कि हर प्रकार की बात समझने के लिए उस समय की परिस्थिति भी जाननी चाहिए। कोई कहे कि सोने से सर मे दद हो गया'—तो उस दद का कारण जानने के लिए यह पूछना पडगा कि रात को या दिन को सोये सिर के नीचे तकिया था या नही सिर के ऊपर पखा तो नही चल रहा था इत्यादि। प्राणिमात्र के जीवन के दो अग हैं—मन तथा शरीर। बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब दोनो मे मेल नही खाता। मन चाहता है कि काम न करे। पर परिस्थिति काम कराती रहती है। मन हो रहा है कि मिठाई खायँ पर डाक्टर ने मना कर रखा है क्योकि शरीर मे मधुमेह की बीमारी है। मन चाहता है कि नहा धोकर पूजा पाठ करे शरीर है कि ज्वर मे बिस्तर पर पडा हुआ है। मन और शरीर मे जितना अधिक मेल हो सकेगा जीवन उतना ही अधिक आश्वस्त तथा सुखी होगा। परिस्थिति के अनुकूल मन तथा शरीर दोनो को बनाने से मनुष्य का सामाजिक जीवन सुधर जाता है। जिन तत्त्वो को लकर परिस्थिति बनती है उनमे से एक भी तत्त्व निकाल देने से वह बदल जाती है।[१] बाग म बडी गन्दगी है, क्योकि पतझड का मौसम है। पत्तियाँ झड रही ह। यदि पत्तियो के झडने की बात निकाल दी जाय तो समूची परिस्थिति बदल जाती है। इसलिए हर एक बात की अपनी परिस्थिति होती है। हर एक प्रतीक अपनी परिस्थिति के भीतर होता है। परिस्थिति से पृथक करके कोई बात समझी नही जा सकती चाहे वह बात 'ईश्वर है'– इतनी सही ही क्यो न हो। परिस्थिति का दायरा विश्वासमात्र का हो सकता है इस लोक और उस लोक का भी हो सकता है। जो प्रतीक को पहचानता है वह परिस्थिति को भी पहचानता है। प्रतीक का क्षत्र यदि व्यापक है तो उसकी परिस्थिति का क्षत्र भी व्यापक है। यदि समाज बिना परिस्थिति के नही होता तो परिस्थिति भी बिना प्रतीक के नही होती। किन्तु वास्तविकता के भौतिक तत्त्व के भीतर पठन पर ब्योरे की चीजो मे जाने पर अनन्त प्रकार की बाते तथा विभिन्नता मिलेगी।[२] इस विभिन्नता मे मन को

१ वही पृष्ठ २९८।
२ वही, पृष्ठ ३१०।

भटकन स बचाकर उसे खीचकर मौलिक तत्त्व की ओर ले जान की क्रिया का नाम ही चित्त की साधना है। मन भटक गया तो मौलिक तत्त्व तक पहुच नही पायेगा। मन को भटकने से बचाना हर एक समाज का धम है, हर एक सभ्यता का कतव्य है।

समाज और प्रतीक

समाज के सुचारु सचालन के लिए आवश्यक है कि मन अपनी सही गति से चले बुद्धि का सही ढग पर विकास हो चित्त का संस्कार बन, मनुष्य सुसस्कृत हो असस्कृत नही। पर कसिरेर क शादा म मनुष्य प्रतीकात्मक पशु है। अतएव समाज की हर अच्छाई या बुराई का कारण प्रतीक होगा। जा कुछ यहाँ है अभी है प्रकट है उतने स ही मन तथा बुद्धि की आवश्यकता की पूर्ति नही होती। जो कुछ विशिष्ट वास्तविकता है इनके ऊपर उठकर भी जा कुछ है उसको प्रतीक रूप म बनाना जानना, पहचानना होगा। प्रतीकात्मक क्रिया का बोध करना होगा।[१] ईश्वर की प्रतीकात्मक सत्ता मे सामाजिक सत्ता का एकीकरण करना होगा। भूख प्यास काम वासना यह सब ता नित्य की अभी की समस्याएँ ह। यदि समाज केवल इनका ही हल निकालता रहे ता साहित्य कला विज्ञान इनकी आवश्यकता ही न रहे। मनुष्य की आध्यात्मिक भूख आध्यात्मिक माँग तथा हर एक प्राणी के साथ सम-सामञ्जस्य नही स्थापित हागा। प्रकृति अपन नियमो के अनुसार काम कर रही है। पर वह इतना ही नही व्यक्त कर रही है। उसका काय नियम और व्यवस्था तथा समयानुसार काय करन का प्रतीक है। उस प्रतीक को यदि नही पहचाना गया तो प्रकृति का वरदान हमारे लिए लाभदायक सिद्ध न हो सकेगा। स्त्री केवल भोग की इच्छा पूरी करन के लिए नही होती। उसका उपयोग आत्मा के एकीकरण के लिए मातत्व की व्यापकता के लिए मात शक्ति को जाग्रत करन के लिए है। विवाह का अर्थ केवल एक स्त्री को अपनाकर रखन क लिए नही है। विवाह का लक्ष्य भोग साधना भी नही है। हिन्दू शास्त्र न स्पष्ट लिखा है विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिए पित ऋण से उऋण होन के लिए अपनी आत्मा को अनक रूप मे प्रकट करने के लिए है। अतएव स्त्री भोग का प्रतीक नही है मात शक्ति का प्रतीक है। इस प्रतीक को पहचानना होगा।

हर एक मनुष्य का जीवन निश्चित परिस्थिति मे होना है पदा होते ही उसके साथ उसका कुल धम, कुल का इतिहास समाज सामाजिक सस्कार तथा सामाजिक प्रणाली

१ Alfred Schutz Concept and Theory Formations in the Social Sciences — n the Journal of Philosophy —Vol I 1954, Pages 257 273

उसकी हो जाती है।[१] वह अपनी सामाजिक परिस्थिति तथा सामाजिक संस्कार का दास हो जाता है। समाज ने जिस प्रकार की विद्या जिस प्रकार का रहन सहन जिस प्रकार का जीवन स्वीकार कर रखा है उस नवजात बच्चे को भी स्वीकार करना पड़ता है। अतएव वह जिस परिस्थिति में पैदा होता है उस परिस्थिति को कायम रखने की नसीहत उसे मिलती है। उसकी जिम्मेदारी हो जाती है। अपनी जिम्मेदारी को अपने इस ज्ञान को वह पहले तो वाणी प्रतीक के द्वारा प्राप्त करता है फिर अन्य सभी प्रतीक उसे इसी दिशा की ओर ले जाते हैं। वह पिता माता का चरण स्पर्श करते-करते गुरुजनों का आदर करना सीखता है। पूजा पाठ उपासना का तत्त्व समझना है।

किन्तु परिस्थिति अपना काम करती रहती है। हर एक व्यक्ति अपनी भिन्न परिस्थिति में उत्पन्न होता है। किसी ने अध्यापक के घर में जन्म लिया किसी ने बढ़ई लोहार चमार शिकारी आदि के। हर एक के कर्तव्य तथा कार्य की सीमा पृथक हो गयी भिन्न हो गयी। समाज का जो ज्ञान है, वह भिन्न वर्गों में बँट गया बँट जाता है। हर एक को अपने अपने वातावरण तथा कर्तव्य परिधि के भीतर की जानकारी रहती है। इस प्रकार समाज में गुट बन जाते हैं। उम्र के गुट बन जाते हैं। जवानों की टोली अलग होती है। बूढ़ों का अलग गुट बन जाता है। भिन्न पेशेवालों की टोली अलग हो जाती है। समाज के भीतर समाज बन जाता है। परिस्थिति के भीतर परिस्थिति पैदा होती रहती है। एक-दूसरे के स्वार्थ में संघर्ष भी होता है। समाज की कलह भी पैदा हो जाती है। उसकी एकता छिन्न भिन्न हो जाती है।

किन्तु समाज का विघटन रोकने के लिए सबसे बड़ी वस्तु भाषा प्रतीक है। भाषा समाज को एक सूत्र में बाँध रखने का महान कार्य करती है। भाषा उसे मिलाकर रखने का बड़ा भारी सम्बल है। इसके अलावा वेश भूषा आदि भी एकता के अनेक तथा अनगिनत प्रतीक हैं जिनसे समाज बँधता है। पर हमको हर एक की भिन्न रुचि तथा विचार को भी समझते रहना चाहिए। जब हम इन चीजों को समझते रहेंगे तभी हम एक दूसरे के निकट आते रहेंगे। धर्म के द्वारा साहित्य तथा कला के द्वारा संगीत तथा शृंगार के द्वारा सामाजिक एकता का विकास होता है। और साहित्य तथा कला के माध्यम से एक समाज दूसरे समाज को समझने तथा पहचानने लगता है। उसका बोध होता है। साहित्य तथा कला के प्रतीक के माध्यम से विश्व बंधुत्व स्थापित होता है।

सामाजिक जीवन एक दूसरे के साथ इतना नत्थी तथा सम्बद्ध है कि जिसने इसको पृथक करने का प्रयास किया, वह गहरी भूल करता है। शासन से लेकर शासित तक

१ Symbols and Society Page 193 194

मालिक से लेकर नौकर तक परिवार में पडोस मे जीवन के हर पहलू मे हम एक दूसरे से बध हुए ह । जो समाज के ब धन को तोडता है वह इस एक मे मिलानवाली कडी को तोड रहा है । भिन्न देश भिन्न समाज भिन्न वग को प्रकट करन के लिए व्यक्त करन के लिए हम उसका नाम प्रतीक बना लेते ह । जैसे इगलैण्ड अमेरिका रूसी चीनी जापानी इत्यादि । पर इन सबके भीतर एक तत्त्व है—मनुष्य । सब देशो के मनुष्य एक ह । सब देशो की मानवीय आवश्यकताओ का मौलिक आधार भी एक ही है । जो कुछ अ तर है वह परिस्थिति का है । जिसन परिस्थिति की अवज्ञा की वह भूल कर रहा है । गम मुल्क का रहनवाला एक धोती दुपट्टा मे काम चला सकता है । पर ठढे मुल्क का रहनेवाला सिर से पर तक कपडो से ढँका रहता है । यदि ठण्ढ मुल्क का व्यक्ति पूर्वी लोगो की वेश भूषा देखकर उन्हे असभ्य समझे तो उसकी भूल हागी । यदि भारतीय पडित तिब्बत के रहनेवालो को नित्य प्रात स्नान का उपदेश दे तो उसकी भूल होगी । परिस्थिति की अवज्ञा नही करनी चाहिए ।

समाज का विकास केवल परिस्थिति म जकड रहन से भी नही हा सकता । समाज को जागरूक रहना होगा । हर एक को अपनी बुद्धि से वतमान परिस्थितिया से ऊपर उठकर नयी परिस्थिति—और भी अनुकूल परिस्थिति–बनानी होगी । जितना ही जाग्रत समाज होगा वह उतन ही अधिक प्रतीका की रचना करता चलेगा । प्रतीक जाग्रति तथा चेतनता के प्रमाण ह । प्रतीक समाज की एकता की व्याख्या ह । प्रतीक यदि न हो तो समाज की सत्ता ही नही रहती । जगली जातियो म हो या सभ्य समाज मे उनके प्रतीक ही उन्हे एक साथ ले चल रहे ह चाह व जादू टोना के प्रतीक हो या धम के प्रतीक हो हर एक आदमी हर एक के सामने जाकर बात नहा कर सकता । हर एक व्यक्ति हर एक से मिलकर प्रत्यक्ष जानकारी हासिल नही कर सकता । हर एक व्यक्ति हर दूसरे व्यक्ति की भाषा समझ नही सकता । सब की भाषा सब के विचार सब की भावना को तो परम ज्ञानी योगी ही जानता होगा । पर समाज की तथा विश्व की एकता के लिए ऐसी अधिक से अधिक परस्पर जानकारी होनी चाहिए ऐसी अधिक से अधिक निकटता आनी चाहिए । आदि काल से ही ज्ञात तथा अज्ञात मानस चेतन तथा अचेतन बुद्धि इस आवश्यकता को समझती रही है । इसलिए उसन प्रतीक की रचना की है । प्रतीक की भाषा से हम घर बैठे ससार को जान सकते हैं पहचान सकते हैं समझ सकते हैं । हर देश की सभ्यता तथा विचार से परिचित हो सकते ह ।

आज की सभ्यता इतनी विषम हो गयी है कि मनुष्य को प्रतीको का पहचानने का तथा समझन का अवकाश नही मिल रहा है । यदि वह प्रतीको के अध्ययन म अधिक

समय दे तो वह अपनी बहुत बडी रक्षा कर सकता है। देखने मे हम पहले से बहुत अधिक सभ्य हं पर प्रतीको की अवहेलना के कारण हम एक दूसरे से कहीं अधिक पथक होते जा रहे ह। विज्ञान ने वायुयान आदि के द्वारा हमारी एक-दूसरे से दूरी समाप्त कर दी है। पर प्रतीको के प्रति उदासीनता तथा अज्ञान ने हमें एक-दूसरे से काफी दूर कर दिया है। विश्व-सकट का यही कारण है।

उपसहार

कार्त्तिक की पूर्णिमा के दिन से जन धर्मावलम्बी अपनी तीथ-यात्रा प्रारम्भ करते ह । तीथयात्रा की याजना बना ली जाती है । वर्षा की समाप्ति के बाद मागशीष (अगहन) का महीना न तो घोर शीत का रहता है न गर्मी का अतएव यात्रा के लिए यह आदश ऋतु होती है । यात्रा मे जिन तीर्थों का दशन करना होता है उनकी सूची तयार हो जान पर एक मानचित्र बना लिया जाता है । यात्रिया के लिए यह मानचित्र या नक्शा माग प्रदशक होता है । पूर्णिमा के दिन यह मानचित्र प्रमुख स्थान पर रख दिया जाता है । जिनको यात्रा नहीं करनी हानी वे भी इसका दशन करन जात ह । इस दशन स ही उन्ह तीर्थों के दशन का आनन्द आता है उनके विश्वास क अनुसार तीथयात्रा का फल मिलता है ।

अब यह मानचित्र क्या है ? न ता वह स्वय तीथस्थान है न उसम कोई प्राण है और न उसम देवता की ही प्रस्थापना की गयी है । पर यह जन दवताआ तथा तीथस्थानो की ओर इगित अवश्य करता है । अतएव यह मानचित्र स्वय निर्जीव होते हुए भी सजीव की व्याख्या कर रहा है निर्देश कर रहा है । यह मानचित्र समूच जन धम जनी यात्रा विधि तीथस्थान जनी विश्वास तथा जनी इतिहास का प्रतीक है । एक ही प्रतीक म इतनी सब चीजो की एकता तथा धारणा सन्निहित है ।

पशु तथा मनुष्य में अन्तर

समाज तथा सभ्यता के भौतिक एव आधिभौतिक विचार तथा विषय के एकीकरण और एकता का काम प्रतीक करता है । ससार मे कोई भी प्राणी जिसमे बुद्धि है बिना प्रतीक के रह नही सकता । समाज की सभ्यता के अनुसार प्रतीक की प्रौढता तथा परिपक्वता मे कमी-बशी हो सकती है पर प्रतीक का रहना अनिवाय है । मनुष्य प्रतीकात्मक पशु है । प्रतीक पशु के लिए तथा मनुष्य के लिए दोनो के लिए होते हैं । खाने की घण्टी कुत्ते तथा आदमी दोनो के लिए भाजन करने की सूचना देती है तथा भोजन का प्रतीक बन जाती है । भोजन की परिकल्पना से कुत्ते के मुख से पानी टपकने लगता है । मनुष्य को भी भूख मालूम होन लगती है । पर पशु तथा मनुष्यो म एक ही महान अन्तर है जिस अन्तर के कारण आज मनुष्य अपनेको पशु से बडा समझता है । पशु प्रतीक

बना नही सकता । मनुष्य प्रतीक बनाता है । बनाता रहता है । मनुष्य द्वारा निर्मित प्रतीक पशु के लिए चिह्न अथवा सकेत का काम देता है, प्रतीक के रूप म नही खान की घण्टी कुत्ते के लिए भोजन का प्रतीक नही है, सूचक है सकेत है ।

सकेत और प्रतीक मे अन्तर

सकेत तथा प्रतीक का अन्तर हमने बार-बार समझाने का प्रयास किया है । अग्रेजी मे चिह्न या सकेत को साइन (Sign) कहते ह । प्रतीक को सिम्बल (Symbol) कहते है । अग्रेजी शब्दकोष में साइन को वह रूढ़िगत प्रतीक जो किसी विचार का व्यक्त करता हो कहा है तथा सिम्बल को किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य सकेत (चिह्न) लिखा है । अब ये दोना शब्द एक दूसरे से इतने निकट हैं कि इनका अन्तर समझना बडा कठिन हो जाता है । यदि हम यह कहें कि दृष्टि विषयक एक पदाथ की ओर सकेत करने वाली चीज का नाम सकेत है तो उदाहरण के लिए गणित के विद्यार्थी ने जोड क लिए + का सकेत बना रखा है । इसका केवल इतना ही अथ है कि— — म — यानी दो चीजो को जोडना है ।[१] गणित का विद्यार्थी जब कभी + का उपयोग करेगा उसका तात्पय जोड से होगा । पर मनुष्य की बुद्धि इतनी व्यापक चपल तथा चतुर है कि एक सकेत का उपयोग एक के लिए दूसरा हो जाता है तो दूसरे के लिए भिन्न । ईसाई पादरी के गले में यदि + लटकता रहता है तो इसका तात्पय जोड नही है । वह तो प्रभु ईसा क सूली पर लटकने का प्रतीक है क्रास है । भाषा के लिए भी यही है । अगर लन्दन म कोई कहे कि सडक पर मिलगे तो उसका अथ होगा राजपथ पर मुख्य सडक पर भारत म गली मे भी जो माग होता है उसे सडक कहते ह । शाब्दिक सकेत भी अपने अथ मे बदल जाते ह । मनुष्य का स्वभाव इतना प्रतीकात्मक है कि वह अपनी धारणा के अनुकूल हर एक सकेत को प्रतीक मे बदलता रहता है । गणितज्ञ न जिस चीज को अपने काम के लिए बनाया दूसरे ने उससे दूसरे प्रतीक का काम ल लिया । प्रतीकात्मक स्वभाव तथा बुद्धि का ही परिणाम है कि साहित्यकार तथा कलाकार ऊची से ऊची कल्पना कर लेता है । कमल पुष्प को आँख का प्रतीक बना दिया जाता है । नीलाकाश में छिटके हुए तारा को हृदय पर लगे हुए घाव साबित कर दिया जाता है । खाने की घटी की आवाज सुनकर कुत्ते की आँखो या मन के सामन घटी नही आती भोजन आ जाता है । घण्टी के बजाने के सकेत न भोजन का प्रतीक उत्पन्न कर दिया इसी प्रकार सकेत एक दृश्य विषयक पदाथ होता है पर बुद्धि प्रतीको की निरन्तर आवश्यकता के कारण उसे प्रतीकात्मक बना लती है । प्रतीक अदृश्य पदाथ को व्यक्त करनेवाला दृश्य सकेत है ।

१ Symbols and Society—Page 538

सकेत दृश्य पदाथ का बोधक है। सडक पर हरी बत्ती माग साफ और जान लायक होने की निशानी मात्र है पर हरा रग रास्ता साफ होने का प्रतीक है। सडक पर स्कूलो के पास लडका दौड रहा है' ऐसा चित्र बनाकर बोर्ड पर लगा देते ह। यह सकेत इस बात की चेतावनी मात्र है कि इस रास्ते मे अक्सर लडके सडक आर-पार किया करते ह सावधानी से मोटर चलाओ पर किसी भी दशा में उस सकेत का यह अथ नही है कि यहाँ पर स्कूल चल रहा है। पढाई हो रही है। लडके पढ रहे ह और खेल रहे ह। उस बोड को देखकर इतनी ढर-सी बात हमार दिमाग म आ गयी ता हमने उस साइनबाड को निकट मे स्कूल होने का प्रतीक बना लिया। यह काय हमारी चेतन शक्ति ने हमारे ज्ञात मानस न अज्ञात मानस की सहायता से किया। अज्ञात मानस का सस्कार जैमी प्रेरणा देता है अपने अनुभव के काष से ज्ञान निकाल कर दता है उसी के सहारे ज्ञात मानस हर एक तिल का ताड किया करता है। हर एक प्रतीक को सकेत तथा सकेत को प्रतीक बनाता रहता है।

अज्ञात मानस की सहायता इसलिए जरूरी है कि बिना अनुभव तथा जानकारी से काम लिये सकेत या प्रतीक दोना ही समझ म नही आते। जिसे जानकारी नही है वह आकाश म बादल देखकर कसे अनुमान लगा सकेगा कि इस ऋतु म इस अवसर पर आकाश मे बादल का घिर आना बफ गिरने का प्रतीक है ? बिना अनुभव के यह कसे पता चलेगा कि आकाश मे अमक प्रकार के बादला का घिर आना वर्षा की निशानी नही है। यह बादल नही धूल की आधी है। बिना मेघगजन के भी बिजली चमकती है इत्यादि। इस प्रकार प्राकृतिक सकेत भी तभी प्रतीक का रूप धारण करेगे जब उनकी जानकारी हासिल की जाय। जब उनको सीखा-समझा जाय तभी प्रतीकात्मक रूप बनता है। हमने एक शब्द कहा— प त ल। जिसन पत्तल नही देखा जिसके मन मे पत्तल की कोई धारणा नही है वह कम समझेगा कि यह अक्षरो में पत्ता से बनी थाली का प्रतीक है। जो पत्तल का उपयाग समझता ही नही अगर उसके सामने पत्तल दिखा दी जाय ता भी वह कुछ नही समझेगा। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि बिना जानकारी हासिल किये हुए बिना समझे हुए दृश्य पदाथ का तथा दृश्य सकेत का कोई महत्त्व नही है। इसी प्रकार बिना किसी वस्तु का गुण तथा स्वभाव जाने आँखो से दिखाई पडनेवाली वस्तु कोई महत्त्व नही रखती। सब कुछ ज्ञान तथा अनुभव पर, चेतन तथा अचेतन मानस के विकास तथा सस्कार पर निभर करता है। जो लोग गूढ़ प्रतीको को देखकर उन्हे तुच्छ तथा हेय समझकर टाल देते ह, वह प्रतीक का दोष नही है उनकी बुद्धि का दोष है।

शब्द का कार्य

यदि प त्त ल शब्द का कोई अर्थ न हो तो वह प्रतीक बन नहीं सकता। केवल अक्षरों को मिला देने से शब्द नहीं बनते। ध्वनि बनती है। बिना अथ का शब्द नहीं होता। बिना अथ का प्रतीक नहीं होता। स्वत प त्त ल शब्द मे कोई जान नहीं है कोई भावना नहीं है। पर हमारे सामने यदि पत्तल रख दी जाय तो तुरत निश्चित हो जाता है कि भोजन परसा जायेगा जस थाली सामने रखने पर। तो फिर, यदि कोई पुकारकर कहे— लोग बठ गय ह। पत्तल लाओ तो इसका मतलब यह हुआ कि अब भोजन आनवाला है। अतएव पत्तल शब्द के साथ हमारी कई धारणाएँ तथा इच्छाएँ जाग्रत हो गयी। दृश्य पदाथ पत्तल का कई अदृश्य पदार्थों से सयोग मन न करा दिया। इसलिए यदि हमने 'कुर्सी कहा ता उस कुर्सी के शब्द ने हमको बैठनेवाली विशेष चीज़ और बठने की क्रिया का दोनो का बाध करा दिया। किन्तु कुर्सी लाओ' कहने के पहले बठने की इच्छा बठनवाली किसी चीज़ की इच्छा हुई। उसके बाद मन न बठनेवाली एक विशष चीज़ जिसे कुर्सी कहते ह ढूढ निकाली और शब्दो द्वारा प्रकट कर दिया। इसलिए बठन की चीज चाहिए—यह ता अवर्णित अनुभव हुआ। उससे एक विशिष्ट चीज़ की माँग की गयी जा व्यक्त या वर्णित अनुभव हुआ। अत शब्द वर्णित अनुभव है।[1]

जिस शब्द का अथ है वह स्थायी तथा सवव्यापक प्रतीक बन गया। जिसके पेट से पदा हुए अथवा जो पेट से पदा करनेवाली के समान ममता रखती है उसका प्रतीक है शब्द माता। अब माता सवव्यापक तथा स्थायी प्रतीक बन गया। माता शब्द का अथ जिसे भी मालूम हुआ, उसके लिए वह समूची ममता स्नेह दया मातृ शक्ति आदि का सम्मिलित प्रतीक बन गया। अपनी इस धारणा तथा भावना को समझान के लिए हर एक से बहुत लम्बा चौडा व्याख्यान देन की जरूरत नहीं है। केवल इतना कहा कि माता है —या माता समान है —और सब बाते साफ हो गयी। शब्द प्रतीक इसलिए सर्वोपरि माने जाते ह कि वे सवव्यापक होते ह। सवव्यापक परब्रह्म है इसीलिए तो नाद से ध्वनि से परब्रह्म का प्रतीक सवव्यापक शब्द बना—ॐ इत्येत दक्षरमिद सवम्। ॐकार ही हर तरफ व्याप्त है।

अनेक प्रकार के प्रतीक

प्रतीक के अनक रूप हो सकते ह। इशारा भी प्रतीक का काम कर सकता है। केवल इशारा प्रतीक नहीं है। पहले तो वह सकेत है पर व्यक्ति के साथ प्रस्थापन के

१ F S C Northrop— Linguistic Symbols and Legal Norms — Chapt IV देखिए।

बाद वह प्रतीक का काम करता है। वेश्या के इशारे तथा पत्नी के इशारे मे माता के इशारे मे तथा अध्यापक के इशारे मे काफी अ तर होता है। इसी प्रकार आकृति भी प्रतीक का रूप धारण करती है। जिसका मुह टढा है उसकी आकृति म तथा जिसका मुह किसी मौके पर टढा दिखाई पडता है दोनो मे बडा अ तर हो जाता है। क्रोधपूण चेहरा हम बतला दता है कि हमारे अमुक कार्य से अमुक व्यक्ति को क्रोध आ गया है। इमारत की बनावट उसम रहनेवाला या उसम पूजा करनवाला का धम तथा पेशा तक बतला देती है। यह मुसलिम निर्माण कला है यह मस्जिद है यह गिर्जा है यह मन्दिर है—यह हम उस इमारत का देखकर समझ जाते ह। पतली छडी कमर का प्रतीक बना दी जाती है। मछली सु दर नत्रा का प्रतीक बन जाती है। जिस प्रतीक के साथ जितनी अधिक अदृश्य बातें सम्बद्ध होगी जा जितना अधिक व्यापक होगा, वह उतना ही अधिक उपयाग म आयेगा। साहित्यकार एसे ही व्यापक प्रतीको से काम लेता है। अधिकाश प्रमी विरह पाडा से दु खी हाते ह। अतएव साहित्यकार कहता है कि प्रम का प्रतीक है विरह। सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का मकान एकदम श्वत है। उसका नाम है ह्वाइट हाउस। *आजकल समूचे अमरिकन शासन तथा उसकी नीति का बोधक है ह्वाइट* हाउस। हम कहते ह ह्वाइट हाउस न जान क्या करे। ह्वाइट हाउस समूच अम रिकन प्रजातन्त्र तथा उसकी शासन प्रणाली का प्रतीक हो गया। इसी प्रकार सव व्यापक प्रभु की सत्ता को उसकी अदश्य शक्तियो को प्रतिभा तथा वभव को जो प्रतीक अधिक से अधिक स्पष्ट कर सके वह धार्मिक प्रतीक कहलायगा। उस अज्ञात शक्ति का पहचानने की मनुष्य म सबसे पहल इच्छा हाती है क्याकि अपन को पहचानना सभी चाहते ह। इसलिए धार्मिक प्रतीक सबसे प्रबल हात ह। पर जिस शक्ति की जानकारी निकट से लेशमात्र भी नही है जो कवल धारणा तथा भावना प्रधान है उसके सम्बन्ध म हम जा प्रतीक बनाते ह वह हमारे अज्ञात मानस तथा ज्ञात मानस क सस्कार और विकास के अनुसार उतना ही अधिक भाव प्रधान या कल्पना प्रधान भी हो सकता है। इसी लिए सभ्यता तथा सस्कृति क अनुसार धार्मिक प्रतीक ऊचे उठते जात ह। भारतीय मत्र तथा तत्र शास्त्र के प्रतीक धार्मिक प्रतीका की उच्चतम अभिव्यक्ति ह। जिन्हें हम यत्र कहते ह उनम ज्ञान तथा अनुभव का पाडित्य भरा पडा है।

भावना प्रधान

किन्तु भौतिक या आधिभौतिक किसी प्रकार का तक हो यदि वह सासारिक दृष्टि तथा तक और जिज्ञासा—इनकी सन्तुष्टि नही कर सकता ता उसे अपना लन में कठिनाई होती है। यो अज्ञानवश हम किसी प्रतीक को न माने, उससे प्रतीक निष्क्रिय

नहीं होता । पर ज्ञान तथा तक के द्वारा भी जिसे नही समझाया जा सकता ज्ञान की सीमा के भीतर से जिस प्रतीक के बारे मे प्रकाश नही उपलब्ध होता वह प्रतीक नही है ।[१] अनुभव तथा अ तर्दृष्टि से बननेवाले प्रतीक साधारण ज्ञान की परिधि में नही आते पर एक ऐसी रेखा अवश्य है जहाँ पर कि उनसे कुछ प्रकाश मिलता ही है । यह जरूर है कि प्रतीक विशषत साहित्य कला या धम के प्रतीक सासारिक रूपेण समझने तथा समझाने योग्य वस्तु की ओर ही मूलत निर्देश नही करते । साहित्य का काम है हमारे मन की सु दर भावनाओ को जाग्रत कर देना । कला का काय है हमारी सत्य शिवम् सुन्दरम् की प्रवत्ति मे हिलार पदा कर उसे उनकी ओर उ मुख कर देना । इन्द्रिय जन्य पीडा या सुख स्वत अपने मे ही समाप्त नही हो जाते । एक अनुभव से दूसरा एक भावना से दूसरी भावना जाग्रत होती है । दरवाजा छोटा है सिर म चोट लग गयी । अब दरवाजे को उखाडकर मकान की इमारत को ही बदलन का सकल्प हा जाता है । इसी प्रकार साहित्य तथा कला द श्य पदार्थों[२] का प्रतीकीकरण नही करती व मानव की भावना तथा प्ररणा का जाग्रत करती ह । जा कला जितनी ही सजीव हागी वह उतनी ही भावुक होगी । जा साहित्य जितना ही जाग्रत हागा वह उतना ही भाव प्रधान होगा । जो मन जितना ही चचल होगा वह उतना ही अधिक स्वप्न देखगा । जो अज्ञात मानस ज्ञात मानस की दबायी हुई इच्छाओ के बोझ से जितना दबा होगा वह उतना ही अधिक स्वप्न देखता रहेगा तथा अपनी इच्छा की पूर्ति करता रहेगा ।

मन ने अपन अनुभव से पहचाना है कि जो सत्य है वही शिव है । जो शिव है वही सु दर है । इसी लिए वह हर एक अच्छी तथा प्रिय वस्तु को उसी रूप से देखना चाहता है कि सत्य शिव सुन्दरम का बाध हो । किन्तु सत्य तथा प्रिय के विषय म भी हर एक की अपनी भावना तथा धारणा होती है । किसी को चिपटी नाक अच्छी लग सकती है, किसी को सुडौल नाक । इसी प्रकार साहित्य म वर्णित प्रतीक अपनी धारणा के अनुसार ही ग्रहण किये जा सकते ह । शायद इसी लिए श्री टिंडल को शका हुई थी कि साहित्यिक प्रतीक अनिश्चित[२] होते हैं अतएव अनिश्चित हान के कारण उनकी कोई व्याख्या नही हो सकती ।

पर प्रतीक की निश्चितता आमन सामन का सम्बन्ध [३] यानी एक-दूसरे को सामने

१ Wilbur M Urban— Language and Reality' —Macmillan & Co, New York 1939 इस पुस्तक में तक तथा प्रतीक का अच्छा विवेचन है ।
२ William Y Tindall in Symbols and Society —Page 345
३ Charles H Cooley— Social Organizations"–Scribner New York 1909—इस पुस्तक का तीसरा से पाँचवाँ अध्याय पढना चाहिये ।

खडा करक जा सम्बन्ध स्थापित होता है ---उससे नही श्रांकी जा सकती । श्रदृश्य वस्तु को प्रकट करनवाली वस्तु उसे सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयत्न कर सकती है, सफलता शायद ही मिल । भावना तथा धारणा का क्षत्र इतना व्यापक है कि जितना पकड म श्रा जाय उतना ही पर्याप्त समझना पडगा ।

प्रतीक मन तथा बुद्धि की वस्तु है । मन तथा बुद्धि श्रात्मा की सम्पत्ति है । श्रात्मा श्रनन्त तथा चिरन्तन सत्य है । प्रतीक उस चिरन्तन सत्य का प्रतीकमात्र है । प्रतीक से परमात्मा का बोध हाता है ।

— o —

सहायक ग्रन्थ

१ अथर्ववेद
२ आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
३ आर्यों का आदि देश–डॉ० सम्पूर्णानन्द
४ आयुर्वेदीय विश्वकोष
५ कुण्डलिनी योगतत्व
६ कुलमूलावतारतन्त्र
७ काव्यादर्श
८ कौटिल्य अर्थशास्त्र
९ कूर्मपुराण
१० कुरान शरीफ–अनु० नजीर अहमद
११ काशीखण्ड
१२ गोभिलसंहिता
१३ गोरक्ष पद्धति
१४ चरकसंहिता
१५ छान्दोग्योपनिषद
१६ तर्कसंग्रह गुणग्रन्थ
१७ तैत्तरीयोपनिषद
१८ तन्त्रालोक–अभिनवपादगुप्त (८भाग)
१९ देवीभागवत
२० दुर्गार्चनस्तुति –आगरा
२१ दुर्गासप्तशती
२२ दर्शनसंग्रह–डॉ० दीवानचन्द्र
२३ न्यायदर्शन टीका–दर्शनानन्द सरस्वती
२४ निरुक्त
२५ न्यायप्रदीप
२६ परशुराम कल्पसूत्र
२७ पातंजलि महाभाष्य
२८ ब्रह्माण्डपुराण
२९ ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य
३० बृहदारण्यक उपनिषद्
३१ भरत नाट्यशास्त्र
३२ मनुस्मृति
३३ महानिर्वाणतन्त्र
३४ महाभारत
३५ मुण्डकोपनिषद
३६ मीमांसा-दर्शन
३७ मातृकाचक्र–विवेक
३८ मत्स्यपुराण
३९ यजुर्वेद
४० यास्कीय निरुक्त
४१ याज्ञवल्क्यस्मृति
४२ यजुर्वेदसंहिता–जयदेव शर्मा
४३ योगिनीहृदयदीपिका
४४ पातञ्जलि योगदर्शन
४५ ललितापरिशिष्टतन्त्र
४६ लोकविश्वास और संस्कृति–– श्यामाचरण दूबे
४७ वेदान्तदर्शन भाष्यकार–दर्शनानन्द सरस्वती
४८ वाल्मीकिरामायण

४६ वामकेश्वरतन्त्र
५० वात्सायन कामसूत्र
५१ वायुपुराण
५२ विकृत मनोविज्ञान—डॉ० पद्मा अग्रवाल
५३ विष्णुपुराण
५४ श्वेताश्वतरोपनिषद्
५५ शुक्रनीति
५६ शखस्मति
५७ शिवपुराण
५८ शतपथब्राह्मण
५६ शाङ्गधर सहिता —तत्वदीपिका
६० साहित्यदपण
६१ सेतुबध-टीका—भास्कर राव
६२ सौन्दयलहरी—शकराचाय
६३ हलायुध कोश
६४ हिरण्यकेशिनीसहिता
६५ ऋग्वेद
६६ ऋग्वेदादि भाष्य—स्वामी दयानन्द

1 **A Hofstodter**—Subjective The logy
2 **A A Brill**—The Universality of Symbols
3 **Arthur Avelon (Sir John Woodroffe)**—Tantra Raj Tantra A Short Analysis
4 **Arthur Avelon**—The Serpent Power
5 **A Christian Brother**—Edmund Ignatius Rice and Christian Brothers
6 **Alakh Nirajan Pande**—Role of the Vedic Gods in the Grihya Sutra
7 **A C Mukjerjee**—The Nature of Self
8 **Anagarika B Govinda**—Psychological Attitut of Early Buddhist Philosophy
9 **Adam Smith**—Theory of the Moral Sentiment
10 **Alexander Bein**—Mental aud Moral Science
11 **A B Kieth**—History of Sanskrit Literature
12 **A N Whitehead**—Science and the Modern World
13 **A N Whitehead**—Symbolism its meaning and effect
14 **A K Coomarswami**—History of India and Indian Art
15 **A K Coomarswomi**—Dance of Sive
16 **A C Dass**—Rig Vedic India
17 **August Comte**—Positive Polity
18 **Arthur Symons**—The Symbolic Movement in Literature
19 **A N Wilder**—Myth and Symbol in the New Testament
20 **Baldwin**—Thoughts and Things
21 **B K Malik**—The Real and the Negative

22 **B A Gupta**—Hindu Holidays and Ceremonials
23 **Charles Sanders Pierce**—Collected Papers.
24 **C L, Wolley**—The Excavations at Ur and Hebrew Records
25 **C L Wolley**—Sumerians
26 **C A F Rhys Davids**—Buddhist Psychology
27 **Count Goblet D Alirella**—Migration of Symbols
28 **C Singh**—A Short History of Medicine
29 **C G Jung**—Psyopathology of Every day live
30 **C G Jung**—Collected Papers on Analytical Psychology
31 **C G Jung**—Psychology and Religion
32 **C G Jung**—Essays on Contemporary Events
33 **C G Jung**—The Integration of Personality
34 **C G Jung**—Psychology of the Un conscious.
35 **Conference Publication**—Symbols and Society
36 **Charles Morris**—Science Language and Behaviour
37 **Charles H Conley**—Social Organizations
38 **Dora and Erwin Panofasky**—Pandora s Box
39 **David Hume**—A Treatise on Human Nature
40 **Duncan Greenland**—Gospel of Narad
41 **Earnest Jones**—The Theory of Symbolism
42 **E Jones**—Papers on Psycho Analyais.
43 **E Roer**—The Twelve Principles of Upanishads—Vol I
44 **E B Holt**—The Freudian Wish
45 Encylopaedia of the Social Sciences
46 Encylopaedia of Religion and Ethics Edited by James Hastings
47 **E Joffrey**—Antiquarian Repertory
48 **Edward Clodel**—Animism
49 **Ernest Cassirer**—An Essay on Man
50 **F O Schroedar**—Introduction to Pancaratra and Ahir Buddnya Samhita
51 **F C Crookshank**—Influenza
52 **F W Farrar**—Language and Languages
53 **F Clarke**—Essays in the Politics of Education
54 **F R Klingberg**—Studies in the Measurements of the Relations among Sovereign States.
55 **G H Mead**—Concerning Animal Perception

56 **G H Mead**—Mind, Self and Society
57 **Grunwedel and Burgess**—Buddhist Art in India
58 **G K Ogden**—The Meaning of Psychology
59 **George Herbert Betty**—The Mind and its Education
60 **George Birdwood**—Industrial Arts of India
61 **G Puttanham**—Arts of English Poesie
62 **G Simpson Marr**—Sex in Religion
63 **G Macmunn**—Secret Cults of India
64 **Grant Allan**—Evolution of the Idea of God
65 **G E Moore**—The Conception of Reality
66 **Harnach**—History of Dogmas Vol I
67 **H Cutner**—A Short History of Sex Worship
68 **Hans Licht**—Sexual Life in Ancient Greece
69 **Henderson**—Folk lore of Northern Counties of England
70 **H S William**—Historians History of the World
71 **H Bergson**—An Introduction to Metaphysics
72 **Herbert A Simon**—Administrative Behaviour
73 **Jitendra Nath Bannerjea**—The Development of Hindu Iconography
74 **J H Leuba**—Psychology of Religious Mysticism
75 **J G Frazer**—The Golden Bough
76 **J G Frazer**—Psyche's Task
77 **James**—The Varieties of Religious Experiences
78 **Joseph Myer and D Appleton**—The Seven Seals of Sciences
79 **J B Hannay**—Christianity—The Source of its Teaching and Symbolism
80 **J Gardner Wilkinson**—Ancient Egyptians
81 **J J Putnam**—Addresses on Psycho—Analysis
82 **Josiah Royce**—The World and the Individual
83 **K Sausanne Langer**—Philosophy in a New Key
84 **Kant**—Anthropoligia
85 **L R Fernell**—Cults of the Greek State
86 **Mc Taggart**—Some Dogmas of Religion
87 **Mrs Murray Aynsley**—Symbolism of the East & West
88 **Mohd Iqbal**—The Development of Metaphysics in Persia
89 **Nalinikant Bhattasali**—Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum

90 **N Macnicoll**—Indian Theism
91 **Otto Kiefef**—Sexual Life in Ancient Rome
92 **Padma Agarwal**—A Psychological Study in Symbolism
93 **P C Bose**—Introduction to Juristic Psychology
94 **P P S Shastri**—Mahabharat (Editor)
95 **P S Schilpp**—The Philosophy of Ernest Cassirer
96 **Robert M Yerkes and Henry W Nassen**—Chimpanzees Laboratory Colony
97 **R E W Wheeler**—Five Thousand Years of Pakistan
98 **Robertson Smith**—Religion of the Semites
99 **R B Havell**—A Handbook of Indian Art
100 **R E Eaton**—Symbolism and Truth
101 **S Freud**—Interpretation of Dreams
102 **S Freud**—Introductory Lecture on Psychoanalysis
103 **S Freud**—Psychology of Everyday life
104 **S Freud**—Collected Papers
105 **S Freud**—Totem and Taboo
106 **Sohrab H Suntook**—More About Egg Symbol—Theosophy in India
107 **S F Mason**—A History of the Sciences
108 **Sir William Onsely**—Travels in the East, more Particularly Persia
109 **S Stevenson**—The Rites of Twice Born
110 **S Gardiner**—The Theory of Speech and Language
111 **Stanford University**—Symdols of Internationalism
112 **T S Forbal**—The Travels and Settlments of Farly man
113 **T A G Rao**—Elements of Hindu Iconography
114 **Tilak**—Arctic Home of the Vedas
115 **Thomas Inman**—Ancient Faith Embodied in Ancient Names
116 **Thomas Inman**—Modern Christian Symbolism Exposed and Explained
117 **Vincent Smith**—Akbar the Great Moghal
118 **William Cecil Dampier**—A History of Sciences and its Relations with Philosophy and Religion
119 **W H Grant**—An Experimental Approach to Psychiatry
120 **Waddell**—Buddhism of Tibet

121 **Whittaker**—The Neo Platonists
122. **Westropp**—Primitive Symbolism
123 **Worsaacs**—Danish Art
124 **W J Perry**—Origin of Magic and Religion.
125 **Wall**—Sex and Sex Worship
126 **William Stern**—Psychology of Early Childhood
127 **William Jones**—Principles of Psychology
128 **W James**—Psychology
129 **W M Urban**—Language and Reality
130 **E B Hold**—The Freudfan Wish
131 **E Moor**—Hindu Pantheon

REPORTS

1 Athenaeum—1892
2 A Review of the Tenth Edition of Encyclopaedia Britannica
3 Encyclopaedia Britannica
4 Encyclopaedia of Unified Sciences
5 Journal of Philosophy
6 Numismatic Chronicle—1860
7 Philosophy and Phenomenological Research Journal
8 Report of the U S National Museum—1894
9 Inscriptions from the Cave Temples of Western India—1831

—oo—